इस ग्रन्थके प्रकाशक महानुभावोंके स्वर्गीय पिताश्री

श्री मेघजीभाई दामजीभाई–स्मृतिग्रन्थ

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–परमहंसपरिव्राजक "पण्डितराज"

स्वामिश्रीभगवदाचार्यमहाराजविरचितम्

भारतपारिजातम्

(श्रीमहात्मगांधिचरितम्)

(प्रथमोभागः)

प्रकाशकौ —
श्रीमान् रावजीभाई मेघजीभाई
श्रीमान् कानजीभाई मेघजीभाई
मोम्बासा (केन्या-इस्ट आफ्रिका)

ग्रन्थप्राप्तिस्थल :—
(१) पारिजात-प्रकाशन-समिति
पो० बो० ७७४
मोम्बासा (ईस्ट आफ्रिका)
(२) श्री रोहित महेता
C/o थियोसोफिकल सोसाइटी
बनारस सिटी

मुद्रक —
पण्डित बी के शास्त्री
ज्योतिष प्रकाश प्रेस
बनारस सिटी

त्रयाणां भागानां सकलित
मूल्यमष्टादश मुद्रा
तीनो भागो का मूल्य १८)

पूज्य बापूजीको

श्रीमहात्मागाँधीजीके साहित्यका उपयोग
करनेकेलिये श्रीनवजीवन ट्रस्ट
अहमदाबादसे अनुमति
ले ली गयी है।

कुछ शब्द

मैं जून १९५० में ईस्ट आफ्रिकाकी यात्रामें गया था। वहाँ जानेका मेरा एक ही उद्देश्य था और वह यह कि वहाँ हजारों माइल दूर जाकर निवास करनेवाले मेरे हिन्दु और मुसलमान् भाई किस प्रकारसे, किस रीति और नीतिसे, किस वेषभूषा और किस विचारसे अपना कालनिर्गमन करते हैं, इसका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त करना। इसके साथ ही यह भी एक उद्देश्य तो था ही कि वहाँ के हिन्दु भाइयोंमें थोड़ी सी सच्ची धार्मिक जागृति पैदा करनी। धार्मिक जागृतिसे मेरा तात्पर्य यह कभी नहीं समझना चाहिये कि शैव-वैष्णवोंका कलह अथवा हिन्दु-मुसलमानोंमें अन्तर-वृद्धि। मेरे शब्दकोषमें धर्मशब्दके यह अतिगौण अर्थ हैं। धर्म शब्दका मुख्य अर्थ—जिसे मैं समझता और मानता हूँ—सत्य और सदाचार है। निरपेक्ष सत्य तो केवल ब्रह्म ही माना गया है। तदतिरिक्त सभी सत्य सापेक्ष हैं। ब्रह्मरूप निरपेक्ष सत्य करोड़ों और अरबों मनुष्योंमेंसे एक दोकेलिये ही उपादेय है। परन्तु सापेक्ष सत्य करोड़ोंमेंसे करोड़ोंकेलिये और अरबोंमेंसे अरबोंकेलिये आवश्यक और उपादेय वस्तु है। सदाचार उसी सत्यका एक अङ्ग है। तो भी उसकी पृथक् गणना होनी ही चाहिये। चैत्रका पुत्र मैत्र यदि यह कहे कि मेरी माँ चैत्रकी पत्नी है, अथवा वह अपनी माको चैत्रभार्या कहकर संबोधन करे तो इसमें असत्य कुछ भी नहीं है; बात प्रतिशत सत्य ही है। परन्तु यह व्यवहार सदाचार नहीं है। इसी सत्यरूप धर्म और सदाचाररूप धर्ममें जागृति पैदा करना चाहता

था। इस जागृतिकेलिये धन अथवा स्वार्थसे निरपेक्ष प्रचारककी आवश्यकता है। मैं अपनेको ऐसा ही प्रचारक मानता हूँ। मैंने उस देशमें अपनी योग्यता और अपनी शक्तिका अपने हिन्दूभाइयोंके लिये यथावसर उपयोग किया। कितने ही शहरोंमें तो हिन्दुओंके अतिरिक्त मुसलमान् और जैन आदि भाइयोंने भी मेरे विचारोंसे पूर्णतया लाभ उठाया, ऐसा मैं जान सका हूँ।

पूर्व आफ्रिकासे ही मुझे यूरोपकी यात्रामें जाना था। सब निश्चित था। परन्तु समय-संयोग सब निश्चयोंको बदल देता है। मेरे निश्चयमें भी परिवर्तन हुआ। उसका एक बहुत बड़ा आकर्षक कारण हुआ।

मैं गं० स्व० श्रीसतोष बहिन जोषी और उनके भाई श्री० एम० डी० जोषी B. A. के आमन्त्रण और आग्रहसे ही पूर्व आफ्रिकाकी यात्राकेलिये निकला था। मेरा केन्द्र भी मोम्बासामें उन्हींके यहाँ था। वहाँ ही मुझे एक श्रीमान् श्रीकानजी भाई मेघजी नामक सज्जन मिले। उनकी वृद्धा माता श्रीमोतीबाईजीके दर्शन भी मुझे वहाँ ही हुए। आप दोनोंकी उदारतासे ही मैं ईस्ट आफ्रिकाके अतिदूर विभिन्न प्रान्तोंमें धर्मप्रचारार्थ भ्रमणकर सका। मैं जब समुद्रतटीय यात्रा पूरी करके मोम्बासा आया और कम्पाला, जिंजा, नीला (नाइल) नदी आदिकी ओर जानेवाला था उससे पूर्व ही मोम्बासाके प्रतिष्ठित और सामाजिक कार्यकर्ता श्रीयुत पी० डी० मास्टर साहेबने भारतपारिजात पढ़ लिया था। यह एक विद्याप्रेमी सज्जन हैं। उनके घरमें उनका अपना एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है जिसमें कई हजार अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी के पुस्तक हैं। भारतपारिजात पढ़नेके पश्चात् उनकी इच्छा हुई कि यह अप्राप्य ग्रन्थ पुनः

मुद्रित हो और यह अधूरा ग्रन्थ पूरा भी हो। उन्होंने अपनी यह इच्छा तबतक किसीके समक्ष प्रदर्शित नहीं की जबतक उन्हें कोई दानवीर नहीं मिला। एक दिन उन्होंने वहाँके परम उदार, अतिशय सुशील, भक्त-हृदय, लक्ष्मीके कृपापात्र उपर्युक्त श्रीमान् कानजी भाई मेघजीसे इस ग्रन्थके प्रकाशन और परिपूर्णताकेलिए सफल विचार किया। श्री० कानजी-भाईने अपनी पूज्य मातुश्रीकी आज्ञा लेकर इस ग्रन्थको सम्पूर्ण कराकर प्रकाशनकेलिये श्रीमास्टरजीको अनुमति दे दी। उस दिन श्रीमास्टर-साहेब जिस प्रसन्न वदनसे मेरे पास आये थे, वह आज भी मेरे स्मृतिपटपर अङ्कित है। इस ग्रन्थकी परिपूर्णता और प्रकाशन दोनों ही उनकेलिये महान् उत्सव था। श्रीकानजीभाई और श्री० शास्त्री दोनों ही मेरे पास प्रतिदिन प्रातःकाल ८ बजे आया करते थे। दूसरे दिन वह इतने शान्त थे कि उनकी प्रसन्नता उनकी उदारता और गंभीरता में छिपी हुई पड़ी थी। यही तो दानीकी महत्ता है। शास्त्रीने भी कुछ नहीं कहा। जैसे कुछ हुआ ही न हो। श्रीमास्टरसाहबने मुझे कहा था कि श्रीकानजीभाईने कहा है कि यह बात मैं न जान सकूँ कि इतने बड़े धनराशिका निस्स्वार्थभावसे निरभिमान होकर अर्पण करनेवाले कौन भाग्यशाली बन्धु हैं।

इस ग्रन्थमेंसे किसी हदतक आय होनेकी सम्भावना तो की गयी है। इस ग्रन्थके तीन भाग हैं। प्रत्येक भागकी दो दो सहस्र प्रतियाँ छापी गयी हैं। कुल ६ सहस्र प्रतियाँ मुद्रित हुई हैं। तीनों भागोंकी एक एक सहस्र प्रति योग्य विद्वानों और स्वदेश-विदेशके ग्रन्थालयों, विश्वविद्यालयों और विद्यालयोंको अमूल्य बाँट दी जायँगी। अवशिष्ट

तीन सहस्र प्रतिके विक्रयसे धन प्राप्त होगा, उसकेलिये एक कमेटी लगभग नियुक्त हो चुकी है। उस धनपर उस कमेटीका नियन्त्रण रहेगा और समयपर योग्य लेखकों द्वारा किसी भी आवश्यक भाषामें ग्रन्थ या ट्रैक्ट लिखाकर तथा उसी निधिद्वारा उसे प्रकाशित कराकर श्रीमहात्माजीके सिद्धान्तोंका वहाँ ही प्रचार किया जायगा। एक सहृदय योग्य दाताके दानका इससे अच्छा दूसरा उपयोग नहीं हो सकता।

सात्त्विक दानिवीर श्रीकानजी भाई तथा इस पवित्र दानकेलिये आज्ञाप्रदान करनेवाली उनकी और हमारी सबकी श्रद्धेय माताजी ग० स्व० श्रीमती मोतीबाई तथा उनके बडे भाई श्रीरामजी भाईको मैं धन्यवाद देता हूँ कि जिनकी उदार सहायतासे इस महँगीके समय यह ग्रन्थ इस सजधजके साथ प्रकाशित हो सका है।

एव, श्री० पी० डी० मास्टरसाहेबके श्रद्धा भक्ति-पूर्ण उस मनको धन्यवाद देता हूँ जिसने उन्हें इस कार्यकी लगनसे विह्वल बना रखा था।

अहमदाबाद
१५-४-५१ ई०

शुभचिन्तक
स्वामी भगवदाचार्य

भारतपारिजातस्य सर्गक्रमेण विषयसूची

त्मन उष्णीषम्। नातालतः प्रिटोरियागमनम्। मार्गेऽसवर्गे तस्यापमानः। चार्ल्सटाउनाद् जोहानिसबर्गगमनम्। अधिमार्गे तस्याङ्ग्लैः कृत ताडनम्। स्टण्डर्टने भारतीयैः सह सम्मेलनम्। जर्मीष्टने विघ्नम्। यस्याभियोगस्य कृते महात्मा मोहनः प्रिटोरिया गतस्तस्य समाप्तिः। पुनर्नाताल आगमनम्। भारत प्रत्यागन्तु सज्जा। मानसभा। कार्यक्रमे परिवर्तनम्। भारतमागन्तुं प्रयाणम्। भारत आगमनम्।

षष्ठे सर्गे

अहमदाबादे सत्याग्रहाश्रमप्रतिष्ठा तस्याश्रमस्य च नियमाः। आश्रमेऽन्त्यजप्रवेशस्तद्विषयिणी चिन्ता च। त्रयोदशसहस्रराजतमुद्राणा गुप्तदानावाप्तिः। अन्त्यजानामाश्वासनम्। भारतोद्धारचिन्तापरीतात्मनो महात्मनस्तस्याश्रमे निवासः।

सप्तमे सर्गे

चम्पारनसत्याग्रहः। तत्र विजयः। अहमदाबादं प्रत्यागमनम्।

अष्टमे सर्गे

खेडासत्याग्रहः। तत्र विजयः। अहमदाबादं प्रत्यागमनम्।

नवमे सर्गे

श्रीमहात्मनि रोगाक्रान्तिः। राउलेट्बिलम्। महात्मनश्चिन्ता। राउलेट्बिलेन सह युद्धोद्यमः प्रतिज्ञापत्रं च। प्रतिज्ञापत्रस्य समाचारपत्रेषु प्रकाशनम्। भ्रमनिवारणार्थमेकं वक्तव्यपत्रम्। राउलेट्बिलस्य ऐक्टरूपेण परिवर्तनं तस्य विरोधश्च। १९१९ तमे यीशवीयसवत्सरे एप्रिलमासस्य षष्ठ्या तिथौ समस्ते भारते सर्वेषां भारतीयानामुपवासः। पञ्जाबेऽशान्तिः। पञ्जाबे सैनिकशासनम् (मार्शल लॉ)। जल्यानवालेत्याख्य उद्यानेऽत्याचारः। अन्येऽत्याचाराः। लवपुरम् (लाहोर)। पञ्जाबं प्रविशतो महात्मनो निरोधस्तस्य च प्रभावः। लवपुरेऽन्याया अत्याचाराश्च। गुजरानवालानगरेऽत्याचाराः। पण्डितमोतीलालस्य प्रभावेण क्सूरनगरे जनाना प्राणदण्डनिरोधः। श्रीमहात्मनश्चिन्ता।

दशमे सर्गे

पञ्चमजार्जाय महात्मना प्रेषितः सन्देशः । पञ्चमजार्जस्यौदासीन्यम् । असहयोगघोषणा । नेतृणां निरोधो दण्डश्च । श्रीमहात्मनः श्रीशङ्करलालबैङ्करस्य च निरोधः । अहमदाबादे शाहीबागे विशिष्टन्यायालयेऽभियोगारम्भः । न्यायालये महात्मनो मौखिकं निवेदनम् । तत्रैव लिखितं निवेदनम् । तत्र न्यायाधीशस्य निर्णयः । न्यायाधीशकृता महात्मनः स्तुतिः । श्रीशङ्करलालबैङ्करस्यापि कारादिदण्डः । प्रजाभिः कृता महात्मनः स्तुतिः ।

एकादशे सर्गे

यरोडाकारातो महात्मनो मुक्तिः । सत्याग्रहाश्रमे तस्य निवासः । लवपुरे महासभा । पूर्णस्वराज्यस्य तत्र घोषणा । सम्मतिस्तत्र महात्मनोऽपि । अंग्रेजशासनेन सहाहिंसायुद्धविषयकः सत्याग्रहाश्रमे मन्त्रः । वाइसरायसविधे पत्रप्रेषणस्य विचारः । महात्मनस्तत्पत्रं वाइसरायविधे श्रीरेजिनाल्ड रेनोल्ड्जः प्रापयत् ।

द्वादशे सर्गे

रासग्रामे श्रीवल्लभभाईनिरोधः । दांडीयात्राया घोषणा । घोषणामाकर्ण्य तस्यां रात्रौ स्त्रीपुंसानामहमदाबादत आश्रम आगमनम् । महात्मविषयिणी प्रजाकृता चिन्ता । आश्रमे सायङ्काले महात्मनः प्रवचनम् । व्याख्यानभूमेर्महात्मनो गमनं जनानां तत्रैवारात्रि निवासश्च ।

त्रयोदशे सर्गे

प्रातःकाले जनेषु चिन्ताव्याप्तिः । सैनिकेभ्यो महात्मना कृत उपदेशः । सैनिकैः सह महात्मन आश्रमान्महाभिनिष्क्रमणम् । महिलाभिः कृता तस्य पूजा । पुष्पवृष्टिः । एलिसब्रिजे द्वारनिर्माणं सत्कारश्च । चन्दोलासरोवरं प्राप्य परसहस्रेभ्यो जनेभ्यस्तत्कृत उपदेशः । ततो गमनम् । असलालीग्रामः ।

चतुर्दशे सर्गे

असलालीग्रामे महात्मनः स्वागतम्। प्रवचनम्।

पञ्चदशे सर्गे

असलालीतः प्रयाणम्। मार्गेषु स्वागतम्। बारेजग्रामे नित्यकर्मोपासनमुपदेशश्च। नवागावः, वासणा, मातरः, डभाणः, नडियादश्च। नडियादे सन्तराममन्दिरे निवासः। देसाईश्रीमहादेवस्य श्रीदत्तात्रेयकालेलकरस्य च तत्रागमनम्। महात्मनो भाषणम्। विश्रमः। सैनिकेभ्यो नियतरूपेण सूत्रनिर्माणस्यानुशासनम्। नडियादतः प्रयाणम्। बोरियावी आणन्दश्च। आणन्दे प्रवचनम्। तदनन्तरं विश्रमाय शिबिरे गमनम्।

षोडशे सर्गे

आणन्दतो नापागमनम्। ततो बोरसदगमनम्। बोरसदे प्रवचनम्।

सप्तदशे सर्गे

बोरसदात्प्रयाणम्। जनतादर्शनम्। रासग्रामप्राप्तिर्भोजनादिकाः क्रियाश्च। रासग्रामे भाषणम्।

अष्टादशे सर्गे

कङ्कापुरम्। कारेली। गजेरा। पुराणिश्रीछोटालालेन सह महात्मनो वार्तालापः। प्रार्थना भाषणं च। जम्बूसरं प्रति प्रयाणम्। तत्र स्वागतम्। नेहरूश्रीपण्डितमोतीलालस्य तत्रागमनम्। नेहरूपण्डितश्रीजवाहिरलालस्याप्यागमनम्। आन्ध्रदेशान्मुम्बय्याश्च कतिपयानां नेतॄणामागमनम्। महात्मनो भाषणम्। श्रीखुर्शेदमहोदयायाः कुमार्याः श्रीमृदुलायाश्च युद्धे स्त्रीणां निवेशाय समागतानां पत्राणां समायामुल्लेखः। पण्डितमोतीलालस्य तत्पुत्रस्य पण्डितजवाहिरलालस्य च व्याख्यानम्। सभाभवनात्प्रत्यागमनम्।

एकोनविंशे सर्गे

बन्धुसरारामोदः । व्याख्यानम् । समनी तत्रोरदेशश्च । शालगा तत्रोरदेशश्च । देरोलम् । मरूचनगर आगमनं तत्र स्वागतं सभा च । अङ्कलेश्वरं गन्तुं नौभिः श्रीनर्मदां तरीतुं नर्मदातटगमनम् । तदानीन्तनदृश्यवर्णनम् । श्रीनर्मदोच्छ्रितगच्छन्तं महात्मानमवलोक्य । श्रीनर्मदां दृष्ट्वा महात्मन उक्तिः । नमनं नार्मदजलस्पर्शश्च । नौवर्णनम् । श्रीमदब्बासतैय्यबजीमहोदयेन श्रीमत्या नायडूसरोजिनीदेव्या च सह नावारोहणम्महात्मनः । नौप्रस्थानम् । नर्मदापारं गत्वा महाजनसम्मर्देऽदृश्यीभवति महात्मनि भरूचवासिनां नगरं प्रत्यागमनम् ।

विंशे सर्गे

अङ्कलेश्वर आगमनं तत्रोरदेशश्च । सजोदं, मागरोलं, रायमा, उनराटी, साहोलं, मटगांवः । मटगावे महात्मनो हृदयविद्रावकं प्रवचनम् । देलाटं तत्र प्रवचनम् । छापरामाठा । तापीकुक्षौ सुरतागमनम् । तत्र सभायां गमनं प्रवचनं च । डींडोली, वांसं, जलालपुरं, नवसारी । नवसार्यां प्रवचनम् । श्रीमिट्टूदेव्याः कार्यंगा प्रशंसनम् । नवसारीतः प्रयाणम् । पेथाण कराडी च । महात्मनः सैनिकानां नामनिर्देशः । दर्शनं स्वागतं रात्रौ तत्रैव निवासश्च ।

एकविंशे सर्गे

दाण्डीप्रयाणम् । समुद्रवर्णनम् । दाण्ड्यां प्रवचनम् । लवणानुशासनभङ्गः । समस्ते भारते लवणानुशासनभङ्गः । दाण्डीतः पुनः कराड्याम् । धारवाडा तत्र भाषणम् । श्रीदेसाईमहादेवस्य निग्रहः । कराचीस्थस्य श्रीजयरामदासस्याङ्ग्रेजकृतताडनचर्चा । युद्धं शमयितुमङ्ग्रेजानां प्रयत्नः कराडीतः श्रीमहात्मनो वाइसरायं प्रति प्रेषयितुं पत्रलेखः । तस्यामेव रात्रौ महात्मनो निग्रहः ।

द्वाविंशे सर्गे

महात्मनः पदे श्रीमदब्बासजी । धरासणायां युद्धाय युद्धसमिते रचना ।

घरासणाया युद्धाय श्रीमदब्बासस्य प्रयाणम्। महात्मना लिखितस्य पत्रस्य वाइसरायसविधे प्रापणम्। कराड्यामग्रेजसैनिकानामागमनमब्बासमहोदयं प्रति सेनाभङ्गादेशश्च। श्रीमदब्बासकृतमनुशासनोल्लङ्घनं तस्य तत्सेनायाश्च निग्रहश्च। श्रीकस्तूराम्बाकृतमब्बासपूजनं विसृष्टिश्च। श्रीमती सरोजिनीनायडू सैनापत्ये। घरासणाया युद्धारम्भः। लौहरज्जुभिर्लवणभूमिं परितोऽङ्ग्रेजैः कृतः परिवेषः। श्रीसरोजिनीदेव्या युद्धम्। उष्णर्तौ सन्तपति सूर्ये निरावृतप्रदेशे आतपे देव्या उपवेशनम्। अग्रेजैर्यष्टिप्रहारा देव्याः सैनिकेषु कृताः। श्रीसरोजिनीदेव्या निग्रहः। सैनापत्ये इमामसाहिबः। तस्य निग्रहः। श्रीमतः प्यारेलालस्य निग्रहः। युद्धम्। गांधीश्रीमणिलालस्य निग्रहः। श्रीमतो नरहरिपरिखस्य युद्धम्। स ताडितो मूर्छितः। शिबिरे तदानयनम्। युद्धम्। तत्र सत्याग्रहशिबिरेऽङ्ग्रेजैः कृतं लुण्ठनम्। श्रीनरहरिपरिखस्य निग्रहः। तत्कृता घोषणा। न्यायालये तस्योक्तिः। सत्याग्रहशिबिरः श्रीमदम्बालालपटेलस्याधिकारे। तस्य श्रीत्रिभुवनदासस्य च निग्रहः। सत्याग्रहशिबिरे पुनरङ्ग्रेजसैनिकानामाक्रमणम्। तत्कृतं शिबिरलुण्ठनम्। त्रिभीषणं युद्धम्। आगमनेन वर्षर्तोर्युद्धस्थगनम्। भूमिकराप्रदानयुद्धम्। श्रीमहात्मनो विजयः। तेन सह वाइसरायकृतः सन्धिः। सर्वेषां महात्मनः सैनिकानां मुक्तिः। लन्दने राउन्डटेबलकान्फ्रेंसे गन्तुं महात्मनो यात्रा।

त्रयोविंशे सर्गे

तत्र गोलपरिषदि तस्य प्रवचनम्। भारत आगमनम्। पण्डितजवाहिरलालाब्दुलगफ्फारखांश्रीशिरवानीप्रभृतीनां निग्रहसमाचारप्राप्तिः। मुम्बय्यां व्याख्यानम्। मुम्बापुरीतः वाइसरायं प्रति पत्रप्रेषणम्। तेन वाइसरायस्य क्रोधोत्पत्तिः। मुम्बापुर्यां रात्रौ मणिभुवनतो महात्मनोऽपहरणम्।

चतुर्विंशे सर्गे

यरोडाकारागारे महात्मनो निवासः। अन्त्यजानां पृथङ्निर्वाचनसमाचारेणामरणान्तमुपवासघोषणा। तामाकर्ण्य भारतीयनेतृणां सर्वासु दिक्षु

प्रयासः । उपवासदिवसेषु कारागारे एव निवासस्य महात्मनोऽभिलाषः । साबरमत्या सत्याग्रहाश्रमाय महात्मनः पत्रम् । श्रीजानकीदेव्यै महात्मनः पत्रम् । विलिंग्डनरस्य पत्र महात्मकृतं तदुत्तर च । व्रतारम्भे महात्मनः काचिदुक्तिर्व्रतारम्भश्च । तदानीं तत्र तद्दर्शनार्थं नेतॄणामागमनम् । महात्मनो विजयः । श्रीकस्तूराम्बाकरकमलदत्तरसपानपूर्वकं महात्मकृतः व्रतविसर्गः । महात्मनः कारातो मुक्तिः । पुण्यपत्तने (पूनाया) पर्णकुटीरे निवासः ।

पञ्चविंशे सर्गे

पुना राजाज्ञाभङ्गः । पुनर्निरोधः । अन्त्यजसेवार्थमाज्ञाप्रार्थनं शासनकृतस्तदनङ्गीकारस्तदर्थं पुनरुपवासश्च । पुनर्मुक्तिः । पुनः पर्णकुटीरे पुण्यपत्तने । साबरमत्या सत्याग्रहाश्रमस्य महात्मकृत विसर्जनम् । रासग्रामे सत्याग्रहाय तस्य प्रयाण निग्रहश्च । मुक्तिः । महत्तप आदर्तुं तस्याग्रहः । स्वसचिवमण्डलेन परामर्शः । श्रीवजाज-यमुनालालकृत श्रीमहात्मानयन वर्धानगरे । सेगावकुटीरः । ऋतुवर्णनम् । तप फलम् । महासभायाः धारासभासु शासनप्राप्तिः ।



भारतपारिजातके सर्गोंकी विषयसूची

प्रथम (१) सर्ग

मङ्गलाचरण। भारतवर्षका वर्णन। काठियावाड़का वर्णन। "सुदामापुरी" इस नामका कारण बतानेकेलिये सुदामाब्राह्मणकी कथा। श्रीमहात्माजीके पितामह, पिता और माताका वर्णन। श्रीमती पुतलीबाईने रात्रिमें जिस चमत्कारको देखा था, उसका वर्णन। भगवद्वाणी। भगवान्का अन्तर्धान होना।

द्वितीय (२) सर्ग

श्रीमहात्माजीका गर्भवास। गर्भवासका वर्णन। गर्भ और देवकृत-गर्भरक्षाका वर्णन। श्रीपुतली बाईका समुद्रतटपर जाना और समुद्रकृत सत्कार। माघमासका वर्णन। फाल्गुन मास। चैत्र। वैशाख। ज्येष्ठ। आषाढ़। श्रावण। भाद्रपद। आश्विन। कार्तिक। अवतार वर्णन।

तृतीय (३) सर्ग

नामकरण। यज्ञोपवीत। विद्यारम्भ। श्रीकर्मचन्द्रगाधीका पोरबन्दर छोड़कर राजकोट जाना और वहाँ ही महात्माजीका अध्ययन। बाल-जीवन। बालविवाह और दाम्पत्य। स्कूलजीवन। बीड़ी पीना और उसका परिणाम। अंग्रेजोंको देशसे निकालनेकी भावनासे बलप्राप्तिके लिये मांसभक्षण। सस्कृताध्ययन और मैट्रिकपरीक्षाका पास करना। विलायत यात्रा।

चतुर्थ (४) सर्ग

लन्दननिवास। बैरिष्टर बनना। लन्दनसे बम्बई। राजकोट निवास। बम्बई-गमन। पुनः राजकोट। मेर ज्ञातिकी सेवा। दक्षिण अफ्रिकागमन।

पञ्चम (५) सर्ग

श्रीमहात्माजी नाताल आये। वहाँ भारतवासियोंके अपमानकी कल्पना। स्टेशनपर स्वागत। कचहरीमें श्रीमहात्माजीकी पगड़ी। नातालसे प्रिटोरिया गमन। मारीत्सबर्गमें अपमान। चार्ल्सटाउनसे जोहानिसवर्ग गमन। मार्गमें अंग्रेजोंने महात्माजीको मारा। स्टण्डर्टनमें भारतीयोंसे मिलाप। जर्मीष्टनमें विघ्न। जिस मुकदमेकेलिये महात्माजी प्रिटोरिया गये थे उसकी समाप्ति। पुनः नातालमें आना। हिन्दुस्तानमें लौटनेकी तैयारी। मान-सभा। कार्यक्रमका परिवर्तन। हिन्दुस्तानकेलिये प्रयाण। हिन्दुस्तान पहुँचना।

षष्ठ (६) सर्ग

अहमदाबादमें सत्याग्रह आश्रमका स्थापन और उसके नियम। आश्रममें अन्त्यजप्रवेश और उसकी चिन्ता। १३००० रुपयोंका गुप्तदान महात्माजीको प्राप्त हुआ। अन्त्यजोंको आश्वासन। भारतोद्धारचिन्ताके साथ आश्रममें निवास।

सप्तम (७) सर्ग

चम्पारन सत्याग्रह। विजय। अहमदाबादमें आगमन।

अष्टम (८) सर्ग

खेड़ा सत्याग्रह। विजय। अहमदाबादमें आगमन।

नवम (९) सर्ग

श्रीमहात्माजीकी बीमारी। राउलेट् ऐक्ट। श्रीमहात्माजीकी चिन्ता। राउलेट् ऐक्टके साथ लड़नेकी तैयारी और प्रतिज्ञापत्र। उस प्रतिज्ञापत्रके समाचारका पत्रोंमें प्रकाशन। भ्रमनिवारणार्थ श्रीमहात्माजीका एक वक्तव्य जो उसी प्रतिज्ञापत्रके साथ पत्रोंमें छपा था। राउलेट् ऐक्टका बनना और उसका विरोध। ६ एप्रिल १९१९ का उपवास। पञ्जाबमें अशान्ति

पंजाबमें फौजी कानून । जलियानवाला बाग । दूसरे अत्याचार । लाहौर । श्रीमहात्माजीकी, पञ्जाबमें प्रवेश करते समय गिरिफ्तारीका पञ्जाबमें प्रभाव । लाहौरमें अन्याय और अत्याचार । गुजरानवालामें अत्याचार । कसूरमें अत्याचार । पण्डित मोतीलाल नेहरूके प्रभावसे कसूरमें फाँसीका हुक्म रद्द । श्रीमहात्माजीकी चिन्ता ।

दशम (१०) सर्ग

महात्माजीका पञ्चमजार्जको सन्देश । पञ्चमजार्जकी उदासीनता । महात्माजीकी असहयोगकी घोषणा । नेताओंकी गिरिफ्तारी और सजाएँ । श्रीमहात्माजी और श्रीशङ्करलाल बैंकरकी गिरिफ्तारी । शाहीबाग (अहमदाबाद) की स्पेशलकोर्टमें महात्माजीका अभियोग । अभियुक्त होनेके बाद महात्माजीका मौखिक निवेदन (कोर्टमें) । श्रीमहात्माजीका लिखित निवेदन (कोर्टमें) । जजका फैसला । सजा । जजकृत श्रीमहात्माजीकी स्तुति । श्रीशंकरलाल बैंकरको भी सजा । प्रजाकृत श्रीमहात्माजीकी स्तुति ।

एकादश (११) सर्ग

यरोडा जेलमेंसे श्रीमहात्माजीका छुटकारा । सत्याग्रह आश्रममें श्रीमहात्माजीका निवास । लाहौरमे महासभा । पूर्ण स्वराज्यकी घोषणा । श्रीमहात्माजीकी सम्मति । सत्याग्रह आश्रममें सर्कारके साथ नियमित और अन्तिम युद्धकी मन्त्रणा । वाइसरायके पास पत्र भेजनेका विचार । श्रीमहात्माजीका वह पत्र जो वाइसरायके पास श्रीरेजिनल्ड रैनोल्ड्जके द्वारा भेजा गया था ।

द्वादश (१२) सर्ग

श्रीवल्लभभाईजीकी रासमें गिरिफ्तारी । दाण्डीयात्राकी घोषणा । घोषणा सुनकर उस रात्रिमे लोगोंका आश्रममे आगमन । लोगोंकी श्रीमहात्माजीकेलिये चिन्ता । आश्रममें श्रीमहात्माजीका सायङ्कालमें

भाषण। व्याख्यानभूमिसे श्रीमहात्माजीका जाना और लोगोंका रात्रिभर आश्रममें निवास।

त्रयोदश (१३) सर्ग

प्रातःकाल। लोगोंकी चिन्ता और कलकल शब्दका सुनना। सैनिकोंको उपदेश। श्रीमहात्माजीका आश्रमसे निकलना। बहिनोंने उनका पूजन किया। पुष्पवृष्टि। एलिसब्रिजपर दरवाज़ाका बनाना और सत्कार। चण्डोला तालाबसे हजारों आदमियोंको महात्माजीका उपदेश और बिदाई। असलाली गाँव।

'चतुर्दश (१४) सर्ग

श्रीमहात्माजीका स्वागत। महात्माजीका भाषण।

पञ्चदश (१५) सर्ग

असलालीसे प्रयाण। रास्तेमें स्वागत। बारेजमें नित्यकर्म और उपदेश। नवागाँव, वासणा, मातर, डभाण और नडियाद। नडियादमें श्रीसन्तरामजीके मन्दिरमें निवास। महादेवभाई ओर श्रीकाका कालेलकर आदिका वहाँ आगमन। महात्माजीका भाषण। विश्राम। सैनिकोंको नियमित सूत कातनेकी आज्ञा। नडियादसे प्रयाण। बोरियावी। आणन्द। आणन्दमें भाषण। महात्माजीका विश्रामकेलिये वासभूमि-शिविरमें जाना।

षोडश (१६) सर्ग

आणन्दसे नापा और बोरसद। बोरसदमें भाषण और प्रयाण।

सप्तदश (१७) सर्ग

बोरसदसे बिदाई। जनतादर्शन। भोजनादि। रासमें भाषण।

अष्टादश (१८) सर्ग

कङ्कापुर, कारेली, गजेरा। पुराणी श्रीछोटालालसे बातचीत। प्रार्थना। भाषण। जम्बूसरकेलिये प्रयाण। महात्माजीका जम्बूसरमें स्वागत।

श्रीपण्डित मोतीलाल नेहरूका आगमन। श्रीपण्डित जवाहिरलाल नेहरूका आगमन। आन्ध्रदेश और बम्बईसे कुछ नेताओंका आगमन। जम्बूसरमें श्रीमहात्माजीका भाषण। खुर्शेदबहिन और श्रीमृदुलाबहिनके, लड़ाईमें स्त्रियोंको शामिल करनेकेलिये, आये हुए पत्रका सभामें उल्लेख। सभाके आग्रहसे पण्डित मोतीलालजीका भाषण। पण्डित जवाहिरलालजीका भाषण। श्रीमहात्माजीका सभाभवनसे लौट आना।

एकोनविंश (१९) सर्ग

जम्बूसरसे आमोद। आमोदमें भाषण। समनी। समनीमें उपदेश। त्रालसा। त्रालसामें उपदेश। देरोल। भरूच। भरूचमें स्वागत। भरूचमें सभा। अङ्कलेश्वर जानेकेलिये नौकाद्वारा श्रीनर्मदानदीको पार करनेकी इच्छासे नर्मदा जाते समयका वर्णन। महात्माजीको आते हुए दूरसे ही देखकर नर्मदोक्ति। नर्मदाको देखकर श्रीमहात्माजीकी उक्ति। नमन। नर्मदाके जलका स्पर्श। नौकाओंका वर्णन। श्रीमहात्माजीका श्रीअब्बास तैयबजी और श्रीसरोजिनी नायडूके साथ नौकारोहण। नौकाका चलना। उस पार पहुँचकर भीड़में श्रीमहात्माजीके अदृश्य हो जानेपर भरूच निवासियोंका पीछे लौटना।

विंश (२०) सर्ग

अङ्कलेश्वरमें पहुँचना। अङ्कलेश्वरमें उपदेश। अङ्कलेश्वरसे चलकर सजोड पहुँचना। मागरोल, रायमा, उपराली, शाहोल, भटगाँव। भटगाँवमें दुःखित हृदयसे भाषण। देलाड। श्रीखुर्शेदबहिन, श्रीमृदुलाबहिनने देलाडकी सफाई की। देलाडमें भाषण। छापरामाठा। तापी नदीको पार करके सूरत पहुँचना। वहाँकी सभामें जाना। सूरतमें भाषण। डींडोली, बाँझ, जलालपुर, नवसारी। नवसारीमें महात्माजीका भाषण। श्री मिट्टूबहिनके कार्योंकी प्रशंसा। नवसारीसे प्रयाण। पेथाण। कराडी। श्रीमहात्माजीके सैनिकोंकी नामावली। लोगोंने श्रीमहात्माजीका दर्शन किया। स्वागत। रात्रिमें कराडीमें ही निवास।

एकविंश (२१) सर्ग

दांडीकेलिये प्रयाण। लोगोंकी भीड़में श्रीमहात्माजी चले जा रहे हैं। समुद्रका वर्णन। समुद्र दर्शन। दांडीमें भाषण। श्रीमहात्माजी नमक कानून भङ्ग करते हैं। श्रीमहात्माजीके सैनिकोंने भी नमककानून तोड़ा। देशभरमें और दांडीमें रोज नमक-कानून भङ्ग। दांडीसे पुनः कराडी। छापवाड़ा। छापवाड़ामें भाषण। महादेवभाईकी गिरफ्तारीका जिक्र। जयरामदास (करांची) के मार पड़नेकी चर्चा। युद्धके रोकनेका सर्कारी प्रयत्न। कराडीसे वाइसरायको महात्माजीका पत्र। उसी रात्रिमें श्रीमहात्माजीकी गिरफ्तारी।

द्वाविंश (२२) सर्ग

श्रीमहात्माजीकी लड़ाईको श्रीअब्बासजी सम्हालने लगे। धरासणाकी लड़ाईकेलिये युद्धसमितिका निर्माण। श्रीअब्बासजीकी धरासणा युद्धकेलिये घोषणा। महात्माजीका लिखा हुआ पत्र वाइसरायके पास भेजना। कराडीमें अंग्रेजी सिपाहियोंका आना। श्रीअब्बासजीको तितर बितर हो जानेकी आज्ञा देना। उनका इनकार। उनकी और सभी सैनिकोंकी गिरिफ्तारी। श्रीकस्तूरबाकृत अब्बासजीका पूजन और बिदाई। श्रीसरोजिनी नायडूका सेनापतित्व। सर्कारी सिपाहियोंने नमकके क्यारोंको तारकी बाढ़ लगा दी। श्रीसरोजिनी नायडूका युद्ध। धूपमें भूखे और प्यासे युद्ध करना। सैनिकोंकी भर्ती। मारपीट। सेनापतिके पदपर इमाम साहेब। उनका पकड़ा जाना। श्रीप्यारेलालजीकी गिरिफ्तारी। युद्ध। श्रीमणिलाल गांधीकी गिरिफ्तारी। श्रीनरहरिभाईका युद्ध। मार खाकर बेहोश होना। शिविरमें उनका ले जाया जाना। युद्ध। सत्याग्रह शिविरमें सर्कारी लूट। श्रीनरहरिभाईकी गिरिफ्तारी। उनकी घोषणा। कोर्टमें उनका बयान। सत्याग्रह शिविर श्रीअम्बालाल पटेलके हाथमें। अम्बालाल और त्रिभुवनदासजीकी धरपकड़। सत्याग्रह शिविरपर पुनः सर्कारी धावा। शिविरका लूटा जाना। भयङ्कर युद्ध। वर्षाऋतुके कारण युद्ध स्थगित।

करबन्दीकी लडाई। श्रीमहात्माजीका विजय। वाइसरायसे समझौता। सब कैदियोंकी रिहाई। राउन्डटेबल्-कान्फ्रेन्सकेलिये महात्माजीकी लन्दनयात्रा।

त्रयोविंश (२३) सर्ग

वहाँ कान्फ्रेन्समें भाषण। भारतमें आना। पं० जवाहिरलाल, श्रीअब्दुलगफ्फारखाँ, शिरवानी आदिकी धरपकडके समाचार। बम्बईमें भाषण। वाइसरायको बम्बईसे पत्र। पत्र पढकर वाइसरायका क्रोध। मणिभुवन (बम्बई) से रात्रिमें महात्माजीकी गिरिफ्तारी।

चतुर्विंश (२४) सर्ग

यरोडाजेलमें श्रीमहात्माजीका निवास। अन्त्यजोंके पृथक् निर्वाचनपर श्रीमहात्माजीकी, मरणान्त पवित्र उपवासकी घोषणा। इस घोषणापर भारतीयनेताओंके भिन्न भिन्न प्रयत्न। श्रीमहात्माजीका उपवासके दिनोंमें जेलमें ही रखनेकेलिये सर्कारसे आग्रह। सत्याग्रह आश्रम साबरमतीको महात्माजीका पत्र। श्रीजानकीबाईको महात्माजीका पत्र। विलियम् शररका पत्र और उनको महात्माजीका उत्तर। व्रतके प्रथम दिनमें महात्माजीका वक्तव्य और व्रतारम्भ। यरोडा जेलमें महात्माजीके अन्तिमदर्शनके लिये नेताओंकी भारी भीड। महात्माजीका विजय। श्रीकस्तूरबाके हाथसे रसपान। सबका आनन्द। श्रीमहात्माजीकी मुक्ति। पर्णकुटीर पूनामें निवास।

पञ्चविंश (२५) सर्ग

पुनः राजाज्ञाभङ्ग। पुनः गिरिफ्तारी। अन्त्यजोंकी सेवाकेलिये जेलमें आज्ञा माँगना और सर्कारी इन्कार। पुनः उपवास। पुनः छुटकारा। पुनः पर्णकुटी (पूना)। सत्याग्रह आश्रमका भङ्ग करना। रासकेलिये प्रयाण। पकडा जाना। मुक्ति। तपस्या करनेका महात्माजीका निश्चय। अपने कार्यसचिवमण्डलसे परामर्श। श्रीजमनालालजी बजाजका आश्रममें आना और वर्धा श्रीमहात्माजीको ले जाना। शेगाँवकी कुटिया। ऋतुवर्णन। तपस्याका फल। महासभाकी सत्ताकी प्राप्ति।

आभार

जिस समय मैं इस ग्रन्थके तीनों भागोंको प्रकाशित करानेके लिये मोम्बासासे भारत-अहमदाबादके लिये निकल रहा था, उस समय मोम्बासाके धर्म प्रेमी नागरिक बन्धुओंने जिस उत्साहसे हजारोंकी संख्यामें "हिन्दू-युनियन" में उपस्थित होकर मुझे बिदाई दी थी और श्रीकानजी भाईकी श्रीमाताजीने—जिन्हें मैं भी और सारा मोम्बासाका हिन्दू समाज भी माताजी ही कहते हैं—जिस वात्सल्य और मातृ प्रेमसे मेरे गलेमें आशीर्वादात्मक पुष्पहार पहिनाया था उसका विचार करके मैं हैरान था कि मैं जिस कार्यके लिये भारत जा रहा हूँ वह कैसे पूर्ण होगा ? सन् १९४० के अन्तिम सत्याग्रह सग्राम तककी तो मेरे पास सभी सामग्री उपस्थित थी, ग्रन्थ भी मैं लिख चुका था, वह प्रकाशित भी हो चुका था परन्तु तीसरे भाग की कोई भी सामग्री मेरे ग्रन्थालयमें नहीं थी। मेरी दृष्टि श्रीमान् किशोरलाल घ० मशरूवालाजी ओर गयी। मैंने उनसे इस विषयमें सहायता माँगी और उन्होंने तत्काल ही मुझे अमुक ग्रन्थोंकी सूचना दी। मैं मानता हूँ, लाखों करोडों विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे कि श्रीमहात्माजीकी नवखली (नोवाखली) यात्रा उनके जीवनको अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ सुवास थी। श्री महात्माजीने अपने समस्त जीवनमें अनेक आश्चर्यमय घटनाओंको जन्म दिया है। परन्तु मैं समझता हूँ कि दाडीकूच, सन् १९४२ का "भारत छोडो" सत्याग्रह और नोवाखला यात्रा, यह उनके अनेक कार्य मालाओंके सुमेरु हैं। इसीलिये मैंने "भारत पारिजात" में दाडी कूचको, पारिजातापहारमें "भारत छोडो" सत्याग्रहको और "पारिजात सौरभ" में नोवाखली यात्राको मुख्य स्थान दिया है। नोवाखलीयात्राके सभी प्रसङ्ग मुझे कहाँसे प्राप्त होंगे, मेरे इस प्रश्नका उत्तर श्रीकिशोरलाल भाईजीने ही दिया कि इसके लिये महुवा

(सौराष्ट्र) में श्रीकुमारी मनु गांधीजीके पास जाना चाहिये। राजकोट (सोराष्ट्र) के श्रीपुरुषोत्तम भाई गांधीजीने श्रीमनु बहिनको सूचना दी कि मैं उनके पास जानेवाला हूँ। मैं महुवा पहुँचा। श्रीमनु बहिन गांधीको मिला। मैंने उनकी उस आलमारीको देखा जिसमें पू० बा और पू० बापूजीके अनेक संस्मरण भरे पडे थे। श्रद्धा और भक्तिकी साक्षात् मूर्ति मनु बहिनने हर एक वस्तुके ऊपरसे तुलसी और पुष्प हटा हटाकर मुझे दिखाना और उसका विवरण करना शुरू किया। यह कार्य बहुत बड़ा और बहुत पवित्र था। जगत्‌के एक महापुरुषका एक महान् जीवन उस आलमारीमें सन्निहित है। उनकी चरणपादुका है। उनके चप्पल हैं जिनकी उन्होंने अपने हाथों मरम्मत की थी। उनकी टूटी फूटी, सडी-गली शालका एक बहुत पुराना, छोटा सा टुकडा है जिसे वह कभी शरीर ढाँकनेको ओढ लेते थे, और जिसके मध्य भागमें उन्होंने अपने हाथों पैबन्द लगाया था। उनके हाथके कते हुए सूत हैं। उनकी दाढीके बाल भी थोडेसे वहाँ एक छोटी सी डब्बीमें सुरक्षित हैं। दो तीन कटे हुए मुर्दार नखके टुकडे भी पडे हैं। उनकी एकाध धोती है। एकाध रुमाल है। उनके कितने ही स्वाक्षरयुक्त पत्र हैं। श्रीबा की साडी है। और भी कितनी ही पवित्र वस्तुओंके साथ-साथ श्रीबा की वह पवित्र दो चूडियाँ भी हैं जो चिताकी राखमेंसे ज्योंकी त्यों निकल आयी थीं। वह पाच थीं। तीन श्रीदेवदास भाई गांधीके संग्रहालयमें हैं। इन सब अलभ्य दर्शनीय वस्तुओंके दर्शनके बाद मैंने उनके मुखसे बापूके नोवाखलीके इतिवृत्त कुछ सुने, कुछ भावनगर समाचारमें प्रकाशित डायरीके पत्रोंमें पढे। आँख रो रो पडती थीं। हृदय मचलता था। मन विह्वल होता था। मस्तिष्क घूमता था। जीभ निर्व्यापार थी। अस्तु, मुझे महुवासे बहुत कुछ मिला। मैंने वहाँसे आनेके बाद भी कितने ही प्रश्न उनसे पत्रद्वारा पूछे और निरन्तर तत्काल मुझे उत्तर मिलते रहे।

वहाँसे ही मैं पोरबन्दर पू० बापूके स्मारक कीर्तिमन्दिर देखने गया था जिसे सौराष्ट्र दानवीर श्रीनानजी भाई कालिदासने एक महान्

व्ययके पश्चात् तैयार कराया है। उसमें मुखमण्डपकी दोनों ओर पू० बापूजीके जीवनकी लगभग सभी घटनाएँ संगमर्मरके विशाल टुकड़ोंमें अङ्कित कराकर वह भीतमें लगा दिये गये हैं। शीघ्रताके कारण मैं उन घटनाओंकी तारीख सन् आदिको लिपिबद्ध नहीं कर सका था। पीछेसे वहाँके असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर श्रीबैजूभाई तथा पाजरापोलके डा० श्रीजयन्तीलाल भाईने श्रम करके लिख-लिखाकर मेरे पास भेज दिया।

श्रीमहात्माजीके कितने ही भाषणोंको समझनेमें मुझे कभी-कभी कठिनता होती थी क्योंकि उनमें उनके सिद्धान्तोंके कुछ मूल रहस्य होते थे। उनका स्फोट भी मुझे श्रीमाननीय किशोरलाल मशरूवालाजीसे ही प्राप्त होता रहता था।

मुझे ऐसी ही एक बहुत बड़ी सहायता काशीके श्रीगांधीजी ग्रन्थमाला-से प्राप्त हुई है। मैंने उनमें सगृहीत महापुरुषोंके लेखों और वचनोंका उपयोग किया है।

अब पू० बापूजीके सभी साहित्य नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबादके अधिकारमें सुरक्षित हैं। ट्रस्टकी आज्ञा बिना अब कोई श्रीमहात्माजीके लेखों, पुस्तकों, पत्रों, भाषणोंका उपयोग नहीं कर सकता। मैंने उसके लिये आज्ञा और अनुमति प्राप्त करनेकी उस ट्रस्टके व्यवस्थापक श्रीमान् जीवणजी भाई देसाईसे प्रार्थनाकी और वह अविलम्ब बिना किसी बाधाके स्वीकृत हुई। फिर शिक्षण और साहित्यकी ९ वर्षोंकी सम्पूर्ण फाइलका लाभ लेनेके लिये उन्होंने मुझे वह फाइलें दे दी थीं।

एवं भाई श्रीनरहरि परिखजीने मुझे अपनी अमूल्य सम्मति इस भागके निर्माणमें दी थी। श्रीयुत भाई परीक्षितलाल मजूमदार, श्रीमान् चीकूभाई देसाई आदिसे मुझे अमुक-अमुक विषयोंमें स्पष्ट विचार प्राप्त हुए हैं।

मैं इन सब माननीय बन्धुओंके प्रति आदरपूर्वक उपकार भाव अपने हृदयमें सुरक्षित रखता हूँ। इनकी उदारता, इनके श्रम, और

इनके हार्दिक प्रेमके बलसे इस कार्यको—इस भागको इतनी शीघ्रतासे केवल दो महीनोंमें लिखकर, हिन्दी टीकाकर, प्रेस कॉपीकर—पूरा करनेमें मैं इस वृद्धावस्थामें समर्थ हो सका हूँ।

अन्तमें मैं ज्योतिषप्रकाश प्रेस काशीके अध्यक्ष पण्डित श्रीबालकृष्ण शास्त्रीजीको धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इन तीनों भागोंको लगभग दो महीनोंमें छापकर पूराकर दिया है। प्रूफ जाँचनेमें मुझे उनकी बहुत बडी सहायता प्राप्त हुई है। उनके सारे स्टाफने भी भारी दिलचस्पी इस मेरे कार्यमें ली है। मैं सबको आशीर्वाद देता हूँ।

श्रीमन्माननीय पण्डित गोपालशास्त्री दर्शनकेसरीजीने भी कुछ प्रूफ और कुछ शुद्धाशुद्धपत्र तैयार करनेमें मेरी सहायता की है। मैं उनका उपकृत हूँ।

— स्वामी भगवदाचार्य्य



"महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति"

 श्री० कनु गांधी

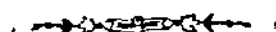
नमो नमो भारतभूजनन्यै

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-परमहंसपरिव्राजक-स्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराज-प्रणीतम्

स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहितम्

भारतपारिजातम्

(श्रीमहात्मगांधिचरितम्)



[1]प्रथमः सर्गः



श्रियः शरण्यं सकलापदापगापतिप्रबुद्धातितरङ्गताडिताः ।
समाश्रयन्ते यदिहार्तिनाशनं तदेव पादाब्जरजो ह्युपास्महे ॥ १ ॥

समस्त विपत्तियोंके बडे-बडे तरङ्गोंसे ताडित होकर लोक, जगदम्बाके शरणागतरक्षक और दुःखविनाशक चरणकमलकी जिस धूरिका आश्रय लेते हैं उसी धूरिकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १ ॥

जयत्वजस्रं जगदम्बिकाम्बकद्वयी यया सर्वमिदं निरीक्ष्यते ।
महाघभाजोऽपि कटाक्षिता यया परां समृद्धिं नितरां वितन्वते ॥ २ ॥

जगदम्बाके वे नेत्र सदा विजयी रहें जो समस्त जगत्का निरीक्षण कर रहे हैं और जिनसे कटाक्षित होकर बडे-बडे पापी भी परा समृद्धि=मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

---

१. वंशस्थविल = इन्द्रवंशा छन्द ।

जयन्तु ते श्रीगुरुपादरेणवो यदीयसामर्थ्यलवादपि प्रभुः ।
महाकवीनां सरणिं समादराच्चिषेवितुं चाहमतुण्णधीरपि ॥ ३ ॥

श्रीगुरुचरणकमलोंकी वह धूरि जयको प्राप्त हो, जिनके सामर्थ्योंमें से एक अल्पसामर्थ्यसे भी, मैं मन्दबुद्धि होता हुआ भी, डरता-डरता अथवा आदरके साथ महाकवियोंके मार्गमें चलनेकेलिये प्रभु=समर्थ हुआ हूँ ॥३॥

जयत्वसौ कोऽपि महायमीश्वरोऽपवित्रयत्रीणि जगन्ति योऽञ्जसा ।
दयाभयाचारविचारशिक्षणान्महात्मगाँधिः सकलश्रुतिश्रुतः ॥ ४ ॥

जिन्होंने दया, अभय, आचार और विचारकी शिक्षासे तीनों लोकोंको सर्वथा पवित्र कर दिया है, वह कोई अपूर्व 'महान् सयमी और सर्वलोकविश्रुत महात्मागाधीजी विजयी रहें ॥ ४ ॥

पुरा समस्तं जगदप्यभासयत्प्रदानतो ज्ञानमहामणेरलम् ।
अशिक्षयज्जीवनपर्वशर्वरीविभेदनं यत्प्रथमेऽरुणोदये ॥ ५ ॥

यहांसे १२ वें श्लोक तक भारतदेशका वर्णन है। इन ६ श्लोकोंमें 'जहाँ-जहाँ यत् या यत्र शब्द आया है उसका सम्बन्ध १३ वें श्लोकके 'भारतमेदिनीतल' शब्दसे है।

जिस भारतवर्षने प्रथम 'अरुणोदयमें अर्थात् सृष्टिके आरम्भमें ज्ञानरूप-महामणिके दानसे समस्त जगत्को प्रकाशित किया और जीवनके मार्गमें रहे हुए अन्धकार-अज्ञानका नाश करना सिखाया— ॥ ५ ॥

समाततं मोहमहातमस्त्रयं निरोद्धुमज्ञानकलाविवर्जितः ।
वसुन्धरायां श्रुतिभास्करप्रभाः प्रकाशयामास च यत्र स प्रभुः ॥ ६ ॥

और जिस भारतवर्षमें उस सर्वशक्तिमान् भगवान्ने पृथिवीपर फैलेहुए मोहरूप महान् अन्धकारका निरोध करनेकेलिये वेदरूप सूर्यकी प्रभाको जन्म दिया— ॥ ६ ॥

यदा यदा धर्मधियः पराहताः सदा तदा यत्र परात्परः प्रभुः ।
अवातरद्धर्मपथव्यवस्थितिं विनिर्ममेऽनन्ततनुः पुनः पुनः ॥ ७ ॥

और जिस भारतवर्षमें जब-जब धर्मबुद्धिका प्रलय हुआ तब-तब परात्पर तथा अनन्तरूप भगवान्ने अवतार लिया और फिर-फिरसे धर्म-मार्गकी व्यवस्था की— ॥ ७ ॥

वृषाकपायी च वृषाकपिर्हरिस्तनूनपादाशुग ईश उज्ज्वलः।
परप्रसादात्स्वत एव सन्निधिं समर्थयन्ते किल यत्र सर्वदा ॥ ८ ॥

पार्वती, लक्ष्मी, महादेव, विष्णु, सूर्य, अग्नि, वायु, कुबेर, यह सब देवता परमप्रसन्नतासे स्वतः ही जिस भारतवर्षमें सदा निवास करते हैं— ॥ ८ ॥

मनुर्मनायी च भगीरथो नृपः स भानुरिक्ष्वाकुरनन्तकीर्तिमान्।
अजो दिलीपोऽजसुतो रघुस्तथा रघूत्तमो यत्र जनिं गृहीतवान् ॥ ९ ॥

मनु, शतरूपा, भगीरथ, भानु, इक्ष्वाकु, दिलीप, रघु, अज, दशरथ और श्रीरामने जिस भारतवर्षमें जन्म लिया— ॥ ९ ॥

स सत्यवान्सा च तदङ्गना सती सती च सीता जगदेकपावनी।
पुरस्सरो लक्ष्मण ऊर्ध्वरेतसां बभूव यत्रैव च केकयीसुतः ॥१०॥

सत्यवान्, सावित्री, जगत्को पवित्र करनेवाली सीता, ब्रह्मचारि-शिरोमणि लक्ष्मण और धर्मात्मा भरतने जिस भारतवर्षमें जन्म लिया था— ॥ १० ॥

महायशोरत्ननिधिर्युधिष्ठिरो महाबलः कृष्णसखोऽर्जुनश्च सः।
पतिव्रता सा द्रुपदात्मजा जनिं मुदाऽग्रहीद्यत्र सतीश्वरी शिवा ॥११॥

बड़े यशस्वी युधिष्ठिर, तथा बड़े बलवान् कृष्ण जिनके मित्र थे उस अर्जुनने और पतिव्रता, सतीशिरोमणि, परमकल्याणी द्रौपदीने जिस भारतवर्षमें जन्म लिया था— ॥ ११ ॥

यदुक्षयोल्लसभृदार्तसंश्रयः शरण्यरक्षापणकौतुकान्वितः।
महाशिवाध्वादिमहोपदेशकः स कृष्णचन्द्रः समपीपवच्च यत ॥१२॥

यदुओंका नाश करनेवाले, दीनोंके आश्रय, शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले, महाकल्याणके मार्गके आदि महोपदेशक भगवान् कृष्णचन्द्रने जिस भारतवर्षको पवित्र किया था ॥ १२ ॥

अनारतं तत्र जगद्गुरण्यति प्रभारते भारतमेदिनीतले ।
स काठियावाड उदारसंग्रहो विराजते ख्यातयशाः प्रदेशकः ॥१३॥

उसी निरन्तर अतिप्रभावान् और जगद्गुरु भारतवर्षमें, बड़े-बड़े वीरों और महात्माओंका जिसमें संग्रह है ऐसा प्रसिद्ध काठियावाड प्रदेश सुशोभित हो रहा है ॥ १३ ॥

अयं च सौराष्ट्रपदेन बोधितः पुरा पृथिव्यां प्रथितो महायशाः ।
विहाय वृन्दावनभूमिमागतं व्यधाच्छरण्यं शरणे महाप्रभुम् ॥१४॥

पहिले सौराष्ट्रनामवाले इस काठियावाडने वृन्दावनका त्याग करके आनेवाले महाप्रभु भगवान् कृष्ण को अपने यहाँ (द्वारकामें) आश्रय दिया था ॥ १४ ॥

महादरिद्रो द्विजराजवंशजः सुतस्य नन्दस्य सतीर्थ्यपेशलः ।
उवास तत्रैव तपस्वितां वहन् सुदामनामा सह भार्ययोटजे ॥१५॥

पहिले भारतवर्षका वर्णन हुआ । पश्चात् तदन्तर्गत काठियावाडका वर्णन हुआ । अब महात्मागान्धीजीकी जन्मभूमि सुदामापुरी–पोरबन्दरके वर्णनका आरम्भ होता है ।

उसी काठियावाडमें नन्दकुमार कृष्णके सहपाठी महादरिद्र ब्राह्मण सुदामा तपस्वियोंके समान किसी झोपड़ीमें अपनी स्त्रीके साथ निवास करते थे ॥ १५ ॥

निपीडिता निर्धनतानृशंसताप्रहारतस्तद्द्विजराजवल्लभा ।
समृद्धशोका प्रजितुं हरेः पुरीं नियोजयामास पतिं कदाचन ॥१६॥

दरिद्रतासे पीडित होकर सुदामाकी स्त्रीने सुदामाको भगवान्की पुरी द्वारकामें जानेकेलिये एक दिन प्रार्थना की ॥ १६ ॥

जगामविप्रः प्रियया प्रणोदितो मुहुर्मुहुः स्वस्य विखिन्नमानसः।
प्रियस्य मित्रस्य पुरीं बिभित्सया दरिद्रतादुर्गमदुर्गसंसदः ॥१७॥

अपनी स्त्रीसे बार-बार प्रेरित होकर (मित्रसे धन मांगना अच्छा नहीं है अतः) दुःखितमनसे सुदामा दरिद्रताके दुर्गम दुर्गके भवन तोड़नेकी इच्छासे प्रिय मित्र श्रीकृष्णकी पुरीको गये ॥ १७ ॥

शनैः शनैर्विप्रवरेण गच्छता विचारमाला विविधाः प्रतन्वता।
अकारि लोकोत्तरकान्तिशालिनी हरेः पुरी नेत्रपथातिथिर्मुदा ॥१८॥

भगवान् पहचानेंगे या नहीं, प्रेमसे मिलेंगे या नहीं, वह क्या पूछेंगे, मैं क्या कहूँगा, धनकी प्रार्थना उनसे मैं कैसे करूँगा, इत्यादि विचार करते जाते हुए सुदामाने धीरे-धीरे आनन्दसे द्वारकापुरीका दर्शन किया॥१८॥

हिरण्यभारै रचितान्महागृहानखण्डदीप्तिप्रचयातिशालिनः।
प्रकाशपुञ्जैरिव नैजशृङ्गकैः प्रभाकरं रोद्धुमिवोत्थितान्द्विजः ॥१९॥

इस श्लोकके द्विज इस कर्तृपदका २१ वे श्लोकके ऐक्षत इस क्रिया-पदके साथ सम्बन्ध है।

ब्राह्मण सुदामाने सोनेके बने हुए महाप्रकाशवाले बड़े-बड़े भवनोंको देखा। सुदामाको ऐसा मालूम हुआ मानो वे भवन अपने सुवर्णमय-

विलोक्य तस्यां पुरि नैजसम्पदां तिरस्कृतिं कर्तुमखिन्नयोग्यतान्।
महेर्ष्यया सन्ततमुष्णरश्मिना गृहान्प्रदग्धानिव काञ्चनाननान् ॥२०॥

द्वारकाके सब भवन सोनेके थे। वह सदा अग्निके समान प्रकाशमान थे। उन स्वाभाविक प्रकाशमान घरोंके लिये सुदामा उत्प्रेक्षा करते हैं :—

सूर्यने जब देखा कि द्वारकाके भवन मेरे ऐश्वर्य-प्रकाशको भी तिरस्कृत करनेमें समर्थ हैं अर्थात् मुझसे भी अधिक प्रकाशमान हैं तब उसने ईर्ष्यासे द्वारकाके घरोंमें आग लगा दी हो और उससे जलते हुओंके समान उन घरोंको सुदामाने देखा ॥ २० ॥

महार्णवे तान्प्रतिबिम्बितान्गृहान् प्रकम्प्यमानांस्तरलैस्तरङ्गकैः ।
तदीयदौर्भाग्यविशेषवस्तुना निमज्जतस्तोयनिधावैवैक्षत ॥२१॥

द्वारकापुरी समुद्रके तटपर बसी हुई है। उसके भवन समुद्रमें प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। तरङ्गोंकी चञ्चलतासे वह प्रतिबिम्बित भवन काँपते हुएसे प्रतीत होते हैं। उसके लिये सुदामा उत्प्रेक्षा करते हैं कि यह भवन मेरे दुर्भाग्यसे भय खाकर काँपते हुए समुद्रमें निमग्न हो रहे हैं। अर्थात् वह डूब जाना पसन्द करते हैं परन्तु मुझ जैसे दुर्भगको देखना पसन्द नहीं करते हैं। श्लोकार्थः—

सुदामाने, महासागरमें प्रतिबिम्बित तथा समुद्रके तरल तरङ्गोंसे प्रकम्पित उन भवनोंको अपने दुर्भाग्यके कारण समुद्रमें डूबते हुएके समान देखा ॥ २१ ॥

कथं कथंचित्समतीत्य गोपुरं पुरीप्रवेशं कृतवान्भयाकुलः ।
द्विजो व्यलोकिष्ट बहुत्र संस्थितान्विवेकयुक्तान्प्रहरीन्यशस्विनः ॥२२॥

किसी-किसी प्रकार डरते-डरते सुदामाने गोपुरको लाघकर पुरीमें प्रवेश किया। बहुत स्थानोंपर विवेकी और यशस्वी पहरेदारोंको उन्होंने खड़े देखा ॥ २२ ॥

मनोहरैः पार्श्वगतैश्च हट्टकैः सुसज्जितानश्वरथादिसङ्कुलान् ।
अदृष्टपांसून् स्तरपङ्क्तिशोभितान्महापथान्विप्रवरो व्यलोकत ॥२३॥

सड़ककी दोनों ओर मनोहर बाजारोंसे सुसज्जित, घोड़ागाडी आदिसे भरेहुए, वृक्षमालासे शोभित साफ स्वच्छ सड़कोंको सुदामाने देखा ॥२३॥

शिशुप्रबोधाय विनिर्मितान्बहूञ्छिशुप्रपूर्णाञ्छुभशिक्षणालयान् ।
अवेक्ष्य सर्वं प्रथमाश्रमोद्भवं स्मृतौ स्थितिं वृत्तमुपाददेऽस्य तत् ॥२४॥

बचोंको पढानेके लिये, बचोंसे भरेहुए, बने हुए बहुतसे सुन्दर विद्यालयोंको देखकर सुदामाकी स्मृतिमें उनकी शैशवावस्थाके सब वृत्तान्त उपस्थित हो गये। अर्थात्, सुदामाने अपने बालपनका स्मरण किया ॥ २४ ॥

कलालयान्यन्त्रगृहानितस्ततश्चलत्पताकान्विपुलान्गृहानपि ।
जय स्वदेशेतिसदक्षरान्वितान्स काष्ठखण्डान्बहुशो व्यलोकत ॥२५॥

सुदामाने बहुतसे हस्तकलाओंके भवन, यन्त्रोंके भवन, उड़ती हुई पताकाओंसे युक्त दूसरे बड़े-बड़े भवनोंको तथा जहाँ तहाँ "जयस्वदेश" इन अक्षरोंसे युक्त काष्ठखण्डों (साइनबोर्डों) को देखा ॥ २५ ॥

विलोकयन्नेवमयं शनैः शनैर्निकेतनद्वारि हरेरुपस्थितः ।
दिदृक्षमाणः स्वसखं पदं न्यधाद्विशुष्कवक्त्रो हरिवेश्मवर्त्मनि ॥२६॥

इस प्रकारसे धीरे-धीरे द्वारकापुरीको देखते हुए सुदामा भगवान् कृष्णके राजमहलके द्वार पर जा पहुँचे । अपने मित्रको देखनेकी इच्छा-वाले उन्होंने, डरके मारे सूखतेमुँहसे राजमहलके अन्दर पैर रखा ॥२६॥

निवारितो द्वारजनेन दीनवाक्सवेपथुर्विप्रवरो जगाद तम् ।
सुदामनामाहमनन्तवैभवं द्विजो दिदृक्षे हरिमर्तिनाशकम् ॥२७॥

द्वारपालने उन्हें अन्दर जानेसे रोक दिया । वह दीन होकर कहने लगे कि सुदामा मेरा नाम है, मैं ब्राह्मण हूँ, अनन्तवैभव भगवान्‌का दर्शन करना चाहता हूँ ॥ २७ ॥

पुरः प्रतीहारनियुक्तकिङ्करो महाप्रभोः प्राप्य मिलत्करद्वयः ।
समागतं कश्चिदपूर्वदर्शनं निवेदयामास बहिःस्थितं द्विजम् ॥२८॥

द्वारपालने भगवान्‌के सामने जाकर, हाथ जोडकर बाहर खड़े हुए ब्राह्मणके आनेकी सूचना दी ॥ २८ ॥

प्रवेशितं द्वारजनेन दुर्गतं विशीर्णदुश्चीवरखण्डमण्डितम् ।
चिरादभिज्ञाय सखायमात्मनो हरिः स राजासनतो व्यधावत ॥२९॥

द्वारपालने सुदामाको अन्दर भेजा । दुरवस्थामें प्राप्त चीथड़ेहाल अपने मित्रको ज़रा देरमें पहिचानकर भगवान् अपने आसनको छोड़कर उठकर दौड़े ॥ २९ ॥

दयासरस्वान्भगवाञ्जगत्पतिः सवारिनेत्रो भृतरोमहर्षणः ।
समुद्धरो निर्भरमात्मसत्सखं समालिलिङ्गाशु चिरेण सङ्गतम् ॥३०॥

दयासागर, जगत्पति भगवान्‌की आँखोंमें जल आ गया, और शरीरमें रोमाञ्च हो गया। बहुत दिनोंके पश्चात् मिले हुए अपने सन्मित्रको, आनन्दके साथ, उन्होंने छातीसे लगा लिया ॥ ३० ॥

निवेशयामास हरिर्महोन्नते महार्घ्यरत्नावलिसङ्कुलासने ।
द्विजं पुनस्तत्पदधावनक्रियां स्वयं स्वहस्तेन मुदा समापयत् ॥३१॥

भगवान्‌ने सुदामाको रत्नजटित महासिंहासनपर बैठाकर स्वयं अपने हाथोंसे उनके चरणका प्रक्षालन किया ॥ ३१ ॥

शरीरभागे कृशता द्विजन्मनः कपोलयोर्गर्त उतापि चक्षुषोः ।
अगूढता जत्रुयुगे विपादिकाः पदद्वये श्रीहरिमत्यरोदयन् ॥३२॥

सुदामाके शरीरकी कृशताने, गालों और आँखोंके खड्डेने पसलियोंकी बाहर दीखती हुई हड्डियोंने और पैरोंकी बिवाइयोंने भगवान् कृष्णको रुला दिया ॥ ३२ ॥

कथं न नामाहमये तव स्मृतिं गतोऽद्ययावद्यदिमां दशां गतः ।
प्रियो वयस्यस्त्वमिति प्रबोधयन्पुनर्हरिः शोकसमाकुलोऽभवत् ॥३३॥

आप मेरे प्रिय मित्र हैं, आप यदि इस दीनदशाको प्राप्त हुए तो आपने मेरा स्मरण क्यों नहीं किया ? ऐसा कहते-कहते भगवान् पुनः शोकसे व्याकुल हो गये ॥ ३३ ॥

ददौ द्विजायाथ स भक्तवत्सलः सुरासुराणां मनसापि दुर्लभाम् ।
परां समृद्धिं भवनं गतोपमं स्वयं सुदासादिसमन्वितं हरिः ॥३४॥

भक्तवत्सल भगवान्‌ने सुरों और असुरोंको मनसे भी दुर्लभ—ऐसी महती सम्पत्ति, दासदासियोंसे परिपूर्ण, निरुपम सुन्दर भवन सुदामाकेलिये स्वयप्रदान कर दिये ॥ ३४ ॥

तदाप्रभृत्येव तदीयनामतः प्रसिद्धिमापन्नगरीयमञ्जसा ।
परश्च तस्यामभवत्प्रतिष्ठितो द्विजो महानुत्तमचन्द्र आख्यया ॥३५॥

तबसे ही वह पुरी सुदामाके नामसे प्रसिद्ध हुई। अर्थात् उसका नाम सुदामापुरी हुआ। उसी पुरीमें एक बडे प्रतिष्ठित उत्तमचन्द्रनामक श्रेष्ठ द्विज निवास करते थे ॥ ३५ ॥

सुदामपुर्या नृपतेः परं मतः स सत्यसन्धः प्रथमं प्रमन्त्रिताम्।
गतः परं केनचनापिहेतुना जगाम जूनागढभूभुगाश्रयम् ॥३६॥

श्रीउत्तमचन्द्रजी बड़े ही सत्यवादी थे। अतः वह सुदामापुरीके राणासाहेबके अत्यन्त आदृत थे। वह पहिले वहाँके *दीवान थे। परन्तु किसी कारणविशेषसे कुछ परस्पर वैमनस्य हो गया और श्रीउत्तमचन्द्रजी † जूनागढके नवाबके यहाँ चले गये ॥ ३६ ॥

ननाम गत्वा स नवाबसाहिबं करेणवामेन शिरः स्पृशन्वदन्।
प्रदत्त एवास्ति तु दक्षिणः करः सुदामपुर्याः क्षितिपालकाय मे ॥३७॥

श्रीउत्तमचन्द्रजीने जूनागढके नवाबको बाएँ हाथसे सलाम किया। पूछनेपर उत्तर दिया कि उनका दाहिना हाथ सुदामापुरी—पोरबन्दरके राणासाहेबको दिया जा चुका है ॥ ३७ ॥

---

*Prime minister = प्रधानमन्त्रीको बम्बईप्रान्तमें दीवान कहा जाता है।

† *जूनागढ काठियावाड़में एक बड़ा स्टेट था। मुसलमानोंके हाथमें* था। हिन्दुओंके पवित्र तीर्थ गिरिनार और प्रभास इसी राज्यमें थे। सोमनाथ महादेवका वह प्रख्यातमन्दिर जिसे गजनीने कई बार लूटा था, इसी राज्यमें पट्टनमें समुद्रके किनारे था। आज भी उसका भग्नावशेष यात्रियोंके हृदयोंको अपनी ओर खींचनेमें समर्थ है। यहाँ ही प्रभास है जहाँपर भगवान् श्रीकृष्णने यदुओंका संहार किया था। यहाँसे ही भगवान् कृष्ण परधाम गये थे। इसी राज्यमें प्रभासके पास ही वह स्थल है जहाँपर *व्याधने श्रीकृष्णभगवान्को बाण मारा था।* अब वह स्टेट सौराष्ट्र सर्कारके हाथमें है और सोमनाथ मन्दिरका उद्धार हो रहा है।

ततः प्रतिष्ठां परमां समाश्रयन्नुपेयिवांस्तत्र पितृत्वमावसन् ।
क्रमेण षण्णां स उदारसत्क्रियापरः सुतानां भगवत्कृपावशात् ॥३८॥

इस स्पष्टवादितासे उनकी वहाँ बहुत प्रतिष्ठा हुई। सत्कर्मपरायण रहकर, वह भगवत्कृपासे ६ पुत्रोंके पिता बने ॥ ३८ ॥

सुतेषु तेषु श्रितभूरिभाग्यकः स कर्मचन्द्रः प्रथितोऽधिभूतलम् ।
विशोभयामास च कार्यभारितां चिरं विवेकेन हि पोरबन्दरे ॥३९॥

उन ६ पुत्रोंमेंसे सबसे बडेभाग्यशाली पुत्र, "कर्मचन्द्र" इस नामसे संसारमें प्रख्यात हुए। उन्होंने पोरबन्दरमें बहुत दिनोंतक कारभारीके पदको सुशोभित किया ॥ ३९ ॥

ततः परं तत्र स राजसंसदः सदस्य आसीत्परमः प्रतिष्ठितः ।
पदं दिवानस्य च *राजकोटके तथा च † वॉकानिरकेऽग्रहीत्ततः ॥४०॥

उसके पश्चात् वह पोरबन्दरमें ही राजसभाके प्रतिष्ठित सदस्य नियुक्त हुए। राजकोटमें और उसके बाद वॉकानेरमें उन्होंने दिवानके पदको ग्रहण किया ॥ ४० ॥

स राजकोटे जनता सुखावहं पदं दिवानस्य चिरं विभूषयन् ।
यथाक्रमं राजनियोजितां ययौ प्रतिष्ठयाऽऽमृत्यु हि वृत्तिभोगिताम् ॥४१॥

वह राजकोटमें दिवानपदपर बहुत दिनोंतक रहकर, मृत्युपर्यन्त प्रतिष्ठाके साथ स्टेटसे पेन्शिन पाते रहे थे ॥ ४१ ॥

स औत्तमिः सत्यपथातिनिष्ठतामुदारतां कोपकरस्वभावताम् ।
पुपोष शूरत्वमनन्यभावतो नराधिपे भक्तिभरं महाशयः ॥४२॥

वह उत्तमचन्द्रके पुत्र श्रीकर्मचन्द्रजी सत्यवादी, उदार और क्रोधी-स्वभावके थे। वह बडे शूर और राजभक्त थे ॥ ४२ ॥

---

*राजकोटक अर्थात् राजकोट। राजकोट काटियावाड़में एक बड़ा हिन्दूराज्य था। अब सौराष्ट्र सर्कारकी वह राजधानी है।

† वॉकानिरक अर्थात् वॉकानेर। यह भी राजकोटके पास एक हिन्दूराज्य था। अब सौराष्ट्र सर्कारके हाथमें है।

न तेन सेहे नृपतेर्विमानना कदाचिदेकेन कृताऽऽङ्ग्लभूभुवा ।
गतस्तु कारां घटिकां न च क्षमानिवेदनेहां प्रकटीचकार सः ॥४३॥

एक समय किसी अङ्ग्रेजने राजकोटके ठाकुरसाहेबका अपमान कर दिया। श्रीकर्मचन्द्रजी उसे न सह सके। उचित उत्तर देनेपर वह एक घण्टेके लिये जेलमें चले गये परन्तु क्षमाप्रार्थनाकी इच्छा भी प्रकट न की ॥४३॥

कदापि नोत्कोचमयं महाजनः कुतोऽपि केनापि यथा गृहीतवान् ।
मितम्पचत्वं न पुपोष तेन नो स संचिकायार्थनिधिं यदृच्छया ॥४४॥

उन्होंने कभी भी, किसी प्रकारसे भी, किसीसे भी घूस नहीं ली। वह कंजूस नहीं थे अतः यथेष्ट धन सङ्ग्रह भी नहीं कर सके थे।

स जीवनान्तावसरे द्विजाध्यतः कुतश्चिदध्यैत विमोहभेदिनीम्।
मुखेन गीतां हरिणा प्रवर्तितामनन्तजन्मार्जितपापमार्जनीम् ॥४५॥

उन्होंने अपने अन्तिम समयमें किसी ब्राह्मणसे मोहविनाशिनी तथा अनन्तजन्मोंके पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान् श्रीकृष्णकी गीताका अध्ययन किया ॥ ४५ ॥

गृहे महाभाग्यभुजो वसुन्धरामहारमेवास्य पतिव्रताग्रणीः ।
सहैव तेनाधिकसत्कृतावियं मनो दधाना विललास पुत्तलिः ॥४६॥

महाभाग्यशाली उन श्रीकर्मचन्द्रजीकी स्त्रीका नाम पुतलीबाई था। वह पृथिवीकी महालक्ष्मी थी। पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ थी। पतिके साथ ही वह सत्कर्मोंमें लगी रहती थी ॥ ४६ ॥

कथं नु कस्यापि वचोविदग्धता महानियत्या उपवर्णने क्षमा ।
जगज्जनन्या इव पुत्तलेर्भवेत्सुतो हि यस्या अविचिन्त्यशक्तिभूः ॥४७॥

किसकी वाणीमें इतनी चतुरता है कि जो अतिशक्तिमान् पुत्रकी माता श्रीपुतलीदेवीका गुणवर्णन कर सके ? ॥ ४७ ॥

यया समुत्पाद्य सुरेशसन्निभं गुरुं गुरूणामिव विश्ववर्चसम ।
सुतं हरिश्चन्द्रमिव प्रभासितं जगत्त्रयं धन्यतमा कथं न सा ॥४८॥

जिन श्रीपुतलीबाईने इन्द्रसमान, सुरगुरुके समान, और हरिश्चन्द्रके समान आश्चर्यप्रद—तेजोयुक्त पुत्रको जन्म देकर भारतको प्रकाशित किया वह क्यों न सबसे अधिक धन्य हो ? ॥

अतिप्रवीणा भगवत्पदाम्बुजद्वयीसमर्चाविधिषु स्वभावतः ।
न दर्शनान्नापि समर्चनादृते कदापि सान्नं बुभुजे हरेः सती ॥४९॥

वह स्वभावसे ही भगवत्पूजासेवामें अत्यन्त निपुण थी । भगवान्‌के दर्शनके विना उन्होंने कभी भी अन्नग्रहण नहीं किया ।

सदैव मासांश्चतुरो जलप्लुतो व्रतेन दानेन महोत्सवेन च ।
निनाय सा विघ्नसहस्रसङ्कुलाप्यनार्तभावेन महार्घ्यवैष्णवी ॥५०॥

श्रीपुतलीबाई सदा ही अनेक विघ्नोंके होनेपर भी व्रत, दान, और महोत्सवके द्वारा *चातुर्मास्यको शान्तिसे व्यतीत किया करती थीं क्योंकि वह परम वैष्णवी थीं ॥ ५० ॥

† अथ गतवति काले श्रीहरेः सेवनेन
प्रतिदिनमतिरम्यश्रीकथास्वादनेन ।
विमलहृदयभावा मध्यरात्रे शयाना,
किमपि किमपि चित्रं सा कदाचिद्ददर्श ॥५१॥

ऐसे ही, भक्तिमें उनके कुछ दिन बीत गये । भगवत्सेवा और भगवत्कथाश्रवणसे उनका हृदय निर्मल हो गया था । एक दिन आधीरातको लेटी हुई उन्होंने कुछ आश्चर्य जैसा देखा ॥ ५१ ॥

---

* गुजरात और सौराष्ट्रमें आषाढ शुक्ल एकादशीसे कार्तिक शुक्ल एकादशी तक शास्त्राज्ञानुसार चातुर्मास्यनियम पालन किये जाते हैं । अनेक व्रत, दान, पुण्य आदि इस देशमें किये जाते हैं । छोटी २ बचियाँ भी इस चातुर्मास्य—चौमासेमें भाग लेती हैं और कठिन व्रत करती हैं ।

† यहाँसे लेकर इस सर्गके अन्ततक मालिनीछन्द है ।

निखिलभुवनसारं श्रौतसन्दर्भसारं
रिपुमथनविसारं योगिनांकण्ठहारम् ।
प्रहसितदशनाभासंहृतध्वान्तधारं,
कमपि च तमकस्मादागतं सा ददर्श ॥५२॥

उन्होंने क्या आश्चर्य देखा, उन्हें कहते हैं:—समस्त ब्रह्माण्डमें एक मात्रतत्त्ववस्तु, वेदोंके प्रतिपाद्यवस्तुवा मुख्यलक्ष्य, शत्रुओंके नाशकरनेमें समर्थ, योगिजनोंके स्मरणकी प्रियवस्तु, तथा अपने मन्दहास्यसे खुले हुए दाँतोंकी प्रभासे अन्धकारको नाश करते हुए अपूर्व भगवत्स्वरूपको, श्रीपुतलीबाईने, अपने सामने आये हुए देखा ॐ ॥ ५२ ॥

हृदयजलजमध्ये यामधिश्यामभूर्ति
प्रतिदिवसमुपास्त श्रेयसे शुद्धचेता ।
चकितचकितभावा तां पुरो वीक्ष्य हृष्टा
प्रणतिमधिततानासाबुदस्रा पदाब्जे ॥५३॥

जिस दिव्यमूर्तिका वह अपने हृदयकमलमें सदा ध्यान करती थीं, उसी मूर्तिको अपने सामने खडी देखकर, आश्चर्यके साथ उठकर, श्रीपुतलीबाईने चरणोंमें प्रणाम किया। आँखें प्रेमाश्रुसे भर गयीं ॥ ५३ ॥

इह विविधसमर्चाचर्चितोऽद्यैव वत्से!
तव परमपवित्रं गर्भगेहं विशामि ।
प्रसरदतिकुविद्याकल्पितानेकरूढि-
व्यथितजनशुभायेत्याह सा दिव्यमूर्तिः ॥५४॥

ॐ जब कोई भी किसीकी भक्तिमें तदाकार बन जाता है तब उसे प्रतिक्षण उस इष्टदेवका दर्शन हुआ ही करता है। इष्टदेव अपनी सच्ची भक्ति करनेवालेकी ओर सदा दयाभाव रखते हैं। इसीलिये भक्त पुतलीबाईको उनके इष्टदेव भगवान्ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। ऐसे दर्शनका रहस्य मेरे अन्य ग्रन्थोंमें शोधना चाहिये।

उस दिव्यमूर्तिने कहा कि हे पुत्रि ! तुमने मेरी अनेकविध प्रेमसे सेवा की है। मैं प्रसन्न हूँ। फैलती हुई अविद्यासे कल्पित अनेक रूढियोंसे व्याकुल जनोंका कल्याण करनेके लिये मैं तुम्हारे गर्भमें प्रवेश कर रहा हूँ ॥ ५४ ॥

विकसितमुखपद्मा पुत्तली कान्तकान्ती
रघुपतिपदपद्मप्रत्तदृष्टिर्निषण्णा ।
हृदयपटलजातानर्गलप्रेमसिन्धौ
प्रभुगमनमजानान्नैव मग्ना तदानीम् ॥५५॥

श्रीपुतलीबाईका मुखकमल खिला हुआ था। शोभा बढी हुई थी। स्थिर होकर रघु=जीवों के। पति=रक्षक। भगवान् के चरणोंमें दृष्टि लगायी हुई थीं। हृदयमें जो अपार प्रेमसागर उत्पन्न हुआ था उसीमें वह डूब गयी थीं अतएव भगवान् कब अन्तर्धान हो गये, इसे वह न जान सकीं ॥ ५५ ॥

अहरहरधिवृद्धध्यानहृद्यङ्घ्रियुग्मा,
प्रभुवचनसमृद्धप्रत्यया पुत्तली सा।
निजतनुपरिचर्यां पर्यचारीद्विनम्रा,
वसति सकलजन्तोर्वासभूमिर्हि तत्र ॥ ५६ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराज-
प्रणीते भारतपारिजाते
प्रथमः सर्गः

श्रीपुतलीबाई प्रतिदिन अधिक २ भगवान्के चरणोंका ध्यान करने लग गयी थीं। भगवान्के वचनमें उनका पूर्ण विश्वास था। अतः नम्रभावसे वह अपने शरीरकी रक्षा करने लग गयीं। क्योंकि समस्त प्राणियोंके आश्रयभूत भगवान् उनके शरीरमें निवास कर रहे थे ॥ ५६ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते-
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते प्रथमः सर्गः

❀ द्वितीयः सर्गः

यासो न येषामतिदैन्यभाजामासीच्छरीरावरणाय किञ्चित् ।
तेषां प्रकम्पाय समुद्यतोऽसौ मासः सहस्यः सहसाऽऽजगाम ॥१॥

श्रीमहात्माजीके गर्भवासका समय माघमासका होता है। अतः उसका वर्णन ५ श्लोकसे करते हैं:—

जिन दीनोंके शरीर ढाँकनेके लिये कोई भी वस्त्र नहीं था उनको कँपानेकेलिये माघमासका आगमन हुआ ॥ १ ॥

मासोऽयमागत्य तुषारपातैः कायातिभेदे कुशलैः प्रशीतैः ।
वातैः कृपाशून्यतयेव नित्यं कोपीव कोऽपि प्रजहार दीनान् ॥२॥

यह माघमास आकर किसी क्रोधी व्यक्तिके समान शरीरको फाड़देनेवाले अत्यन्तशीतलवायुसे, निर्दयतापूर्वक दीनोंपर प्रहार करने लगा ॥ २ ॥

उष्णीषकं नापि वपुश्छदो नो नो कम्बलं नापि करच्छदश्च ।
सोपानदन्यत्किमपि प्रसोढुं हेमन्तबाणान्न हि दुर्विधानाम् ॥३॥

गरीबोंके पास न तो पगडी सिर बाँधनेकेलिये थी, न कुर्ता था, न कम्बल था, न हाथके मोजे थे, न जूते थे और न कोई अन्य ऐसी वस्तु थी जिससे कि वह हेमन्तके बाणोंको सहन कर सकते ॥ ३ ॥

केचिन्निराहारपरायणा वा केचित्सदार्धोदरभोजना वा ।
केचिद्द्वितीयेऽहनि केऽपि तार्तीयीके सदाऽभुञ्जत दुःखदुःखम् ॥४॥

उस समय कोई तो भूखे ही मरते थे, कोई आधा पेट खाकर जीते थे, कोई दूसरे दिन और कोई तीसरे दिन महाकष्टसे भोजन पा सकते थे ॥ ४ ॥

❀इस सर्गमें इन्द्रवज्रा छन्द है।

येन प्रकारेण मनुष्यजातिर्दुःस्था तथामन्पशवोऽपि नूनम् ।
नग्नाः कथंकारमिमे सहन्तां हैमन्तिकांस्तीव्रशराननाथाः ॥५॥

उस समय जिस प्रकारसे मनुष्यजाति दुःखित थी वैसेही पशु भी पीडित थे। वे बिचारे नग्नावस्थामें हेमन्तके तीव्रबाणोंको कैसे सहते ? ॥ ५ ॥

विपत्तिरिथ्ये निखिलेऽत्र लोके ह्याहेतिशब्दे वितते जगत्सु ।
मासे सहस्ये जगदेकनाथः श्रीपुत्तलेर्गर्भगृहं विवेश ॥६॥

प्रथमसर्गमें कहा जा चुका है कि भगवान् माता श्रीपुतलीबाई के गर्भ में पधारे थे। वह कब पधारे इसका वर्णन करते हैं:—

इस प्रकारसे जब सबलोक दुःखसे नष्ट हो रहे थे, चारो ओर हाहाकार मचा हुआ था तब माघमासमे भगवान् श्रीपुत्तलीबाईके गर्भमें विराजे ॥ ६ ॥

जगत्त्रयान्तर्यमयन्महेशो गम्यः सता सर्वगुरुः शरण्यः ।
तस्थौ समाश्रित्य स पुत्तलिं यद्गर्भो गुरुस्तेन बभूव तस्याः ॥७॥

समस्त लोकमें व्याप्त होकर रहनेवाले, सत्पुरुषोंसे प्राप्य, सबके महागुरु और शरणागतरक्षक भगवान् श्रीपुतलीबाईके आश्रित होकर निवास करते थे अतः उनका गर्भ गुरु हुआ ॥ ७ ॥

नित्यं प्रयत्नैर्गुणविश्रुताया देव्याश्च तस्याः सविधे स्थितं तत् ।
वृन्दं सुरीणां समुपेत्य नाकाद्गर्भं सिषेवे श्रितदेवदेवम् ॥८॥

स्वर्गसे आयाहुआ देवियोंका झुण्ड परमगुणवती श्रीपुत्तलीबाईके पासमें बैठकर भगवन्निवासभूत उस गर्भकी *सेवा करता था। पुत्तलीबाई की सेवाही गर्भकी सेवा थी ॥ ८ ॥

श्रीपुत्तलिं स्वीयतटे विहर्तुं दृष्ट्वाऽऽगतां रत्ननिधिर्महाब्धिः ।
प्रक्षालयामास पदौ स तस्या रत्नाधिरत्नस्य महाधरित्र्याः ॥९॥

---

* परमकृपालु देवता समय-समय पर योग्य आत्माओंकी सब प्रकारसे, अदृश्य होकर रक्षा करते हैं। यह अत्यन्त सत्य घटना है।

महासागर अपने तटपर घूमने फिरनेकेलिये आयी हुई श्रीपुत्तलीबाई को देखकर उनके चरणोंको धोताथा क्योंकि उन्होंने रत्नोंके रत्न भगवान्‌को धारण कियाथा ॥ ९ ॥

निर्जीवरत्नाकरतां गतोऽहं, चिद्रत्नमेषा वहतीति मत्वा।
आवेद्य रत्नानि महार्घ्यभाञ्जि, पूजां ससर्जातितरामुष्याः ॥१०॥

समुद्र यह विचारकर कि–मैं तो जड रत्नोंका आकर हूँ और यह चिद्रत्न–भगवान्‌को धारण करनेवाली हैं—बहुमूल्य रत्नोंको उन्हें अर्पण करके उनकी पूजा करता था ॥ १० ॥

माभूद्व्यथाऽस्या इति पीतुरह्नि शैत्येन सेवा विदधेऽथ नक्तम्।
वह्निः प्रसादाय समुत्कआसीत्तेने च तेनेयमतीव हर्षम् ॥११॥

श्रीपुत्तलीबाईको शीतसे कष्ट न हो अतः दिनमें भगवान् सूर्य और रात्रिमें उनकी प्रसन्नताकेलिये अग्निदेव उपस्थित रहते। इससे वह अत्यन्त हर्ष पाती थीं ॥ ११ ॥

मासस्तपाः प्राणिगणं निपीड्य कामं स्वकीयैर्निशि सम्प्रहारैः।
प्रातः समन्युर्मिहिकामिषेण पश्चात्तपन्सर्वजनैः स दृष्टः ॥१२॥

रातभर सब प्राणियोंको अपने प्रहारोंसे पीडित करके, प्रातःकाल ओसके बहानेसे ※ रोतेहुए—पश्चात्ताप करते हुए माघमासको लोगोंने देखा ॥ १२ ॥

स्मृत्वैव सख्युस्तपसोऽपराधं कोष्णोऽभवत्फाल्गुनिकोऽथ मासः।
अन्तं गतं सर्वजनस्य दुःखं किञ्चित्तदानीं शिशिरातुरस्य ॥१३॥

फाल्गुन मास आया। वह अपने मित्र माघके अपराधको देखकर थोडा गर्म हो गया। इससे शीतसे व्याकुलजनोंका दुःख कुछ शान्त हो गया ॥ १३ ॥

※ दूसरे लोग भी अन्यायसे किसीको पीड़ित करके पश्चात् रोते और पश्चात्ताप करते हैं।

आजग्मतुस्तौ मधुमाधवौ द्वौ हरेः सपर्यां क्रमतो विधातुम् ।
परा प्रफुल्लाम्रवणाज्झरन्तीमामोदवीचिं नितरां दधानौ ॥१४॥

गर्भस्थ भगवान्‌की सेवा करनेके लिये आम्रवृक्षोंकी सुगन्धिको धारण करते हुए क्रमसे चैत्र और वैशाख मास आये ॥ १४ ॥

कूजत्पिकौ गुञ्जदलित्रजाढ्यावारक्तपत्रद्रुमसङ्घरम्यौ ।
त्रैविध्यमाराद्धतौ शिवस्य वायोः समेतावुपकारशीलौ ॥१५॥

कोइलें जिनमें कूज रही थीं, भ्रमर गूँज रहे थे, थोडी थोडी लालिमा छा रही थी ऐसे पत्तोंसे लदे हुए वृक्षोंसे शोभित, और शीतल, मन्द, सुगन्ध वायुको लिये हुए, उपकारपरायण चैत्र और वैशाख मास आये ॥ १५ ॥

ज्येष्ठो निशा अल्पतमाश्चकार आश्चर्यमर्काय ददावुदारः ।
औन्न्यं नदीनामभिमानताने विस्तारयामास तपन्प्रतापैः ॥१६॥

ज्येष्ठ मास आया । उसने रात्रिको थोडी (छोटी) कर दी । सूर्यमें तेजी पैदा कर दी । नदियोंके अभिमानमें न्यूनता कर दी । ज्येष्ठ तपने लगा ॥ १६ ॥

आषाढ आगत्य जलाभिषेकैस्तप्ता भुवं शीतलतां निनाय ।
गर्जद्भिरभ्रैः कृषिकारसङ्घमाह्लादयामास धृतिं प्रदाय ॥१७॥

आषाढ मासने आकर जलवर्षण करके सन्तप्त पृथिवी को शीतल बनाया । गर्जते हुए बादलोंसे किसानोंको उसने धैर्य बँधाया ॥ १७ ॥

वृक्षान्पशून्पक्षिगणान्मनुष्यान्भूमीर्नदीर्निर्झरिणीस्तटाकान् ।
अन्धूंश्च वापीः परिखाश्च खातान्सन्तर्पयामास नभो जलौघैः ॥१८॥

श्रावणने खूब जल वर्षाकर वृक्षों, पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों, भूमि, नदियों, झरनों, तालाबों, कूओं, बावडियों, खाइयों और गड्ढोंको तृप्त कर दिया ॥ १८ ॥

एवं नभस्योपि हरेः पदाब्जयुग्मप्रसादाय कृतप्रयाणः ।
निरयं जगर्जाथ ववर्ष वारि धाराधरैर्णैक्यमवाप्य साधु ॥१९॥

भाद्रपदमास भगवच्चरणारविन्दकी सेवाकेलिये आकर बादलोंके साथ अच्छी मित्रता करके रोज़ गर्जता और बर्षता था ॥ १९ ॥

सर्वं जगच्छ्रीहरिकामजन्यं तस्मादिदं सर्वममुष्य हृद्यम्।
हृद्यस्य सन्तर्पणतोऽतितृप्तस्सन्तृप्तिमाप्तोऽपि भवत्यवश्यम् ॥२०॥

शङ्का होती है कि गर्जने बर्षनेसे भूमि आदि, अथवा किसानोंको सुख मिला। इसमें भगवच्चरणारविन्दकी क्या सेवा हुई? उत्तर देते हैं कि:—

यह सब जगत् भगवान्‌की इच्छासे—सङ्कल्पसे ही पैदा हुआ है अत एव यह भगवान्‌को प्रिय है। प्रियके तृप्त करनेसे, (यद्यपि भगवान् पहिले से ही अतितृप्त हैं तो भी) अवश्य ही तृप्ति प्राप्त करते हैं॥

सेवा समेषामिह जन्मिनां या सैवास्ति सेवा जगदीश्वरस्य।
पञ्चर्तवो जन्मफलं प्रपन्नाः संसेवमाना भगवत्प्रजास्ताः ॥२१॥

हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा इन पाँच ऋतुओंने भगवत्प्रजाकी सेवा करके अपने जन्मको सफल कर लिया। ❀ क्योंकि जीवोंकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है ॥ २१ ॥

❀ शास्त्रमें कहा है कि:—

न मे पूज्यश्चतुर्वेदी पूजयन्भक्तिवर्जितः।
न मे पूज्यः सदा चासौ मद्भक्तः श्वपचोऽपि वा॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्।

अर्थात् भगवान् कहते हैं कि यदि भक्तिरहित चतुर्वेदपाठी भी हो तो वह अपूज्य है और मेरा भक्त श्वपच हो तो भी पूज्य है। मेरे भक्तको ही देना चाहिये और उसीसे धर्मोपदेश ग्रहण करने चाहियें। भगवज्जनकी पूजा उस प्रकारसे करनी चाहिये जैसे कि मेरी-भगवान्‌की। यह श्लोक वैष्णवोंके श्रीसम्प्रदायके पूर्वाचार्यों द्वारा स्वीकृत है।

ऐसे ही अष्टविधभक्तिमें भी भगवत्-जनके लिए श्रद्धा और प्रेम करनेकी आज्ञा हुई है। यथा:—

ऊर्जः सहा यत्र च तत्र काले सम्प्रापतुर्दर्शनमीश्वरस्य।
शोकोर्जनात्सोऽभवदूर्ज एव तद्दुःखसंसोढृतया सहाः सः ॥२२॥

कार्तिक और मार्गशीर्ष यह दो मास उस समय भगवान्के दर्शन नहीं कर सके अतः शोकाधिक्यसे कार्तिकका नाम ऊर्ज पड़ा और उस दुःखको सहनेके कारण ही मार्गशीर्षका नाम सहा पड़ गया ॥ २२ ॥

एवं शनैः प्राप स सूतिमासो नाम्नाश्विनोऽसौ जगतां नमस्यः।
यस्मिन्धरा भागवती नृमूर्तिर्मोदाद्ध्रुवं भाग्यवतीं चकार ॥२३॥

इस रीतिसे धीरे-धीरे जन्ममास—आश्विन मास आया जिसमें भगवान् की उस मनुष्य मूर्ति ने वसुन्धराको भाग्यवती बनाया ॥ २३ ॥

श्री विक्रमाब्दे सुखदे शराक्षिग्रहेनसंख्यामित ऐश्वरी सा।
कृष्णे च पक्षेऽवततार यर्हि सा द्वादशी रेज वदग्रतेजाः ॥२४॥

आश्विनमास, कृष्णपक्ष, द्वादशीतिथि और विक्रमका १९२५ सवत् था जिसमें भगवान्की उस मूर्तिका—श्रीमोहनदास गांधीका अवतार हुआ ॥ २४ ॥

सर्वाननिष्टाञ्छमयिष्यमाणो लोकांश्च भद्राण्युपनेष्यमाणः।
भूमिं पुनीतेऽद्य जगन्निवासस्तुङ्गैस्तरङ्गैर्विततस्ततोऽब्धिः ॥२५॥

सर्व अनिष्टोंको शान्त करनेकेलिए तथा लोगोंको कल्याण देनेकेलिए आज जगदाधार भगवान् पृथिवीपर अवतीर्ण हो रहे हैं अतः समुद्र अपने विशाल तरङ्गोंसे विस्तृत हो गया ॥ २५ ॥

मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम् ॥
स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे दम्भवर्जनम् ॥
मत्कथाश्रवणे प्रीतिः स्वरनेत्राङ्गविक्रिया।
ममानुस्मरणं नित्यं यच्च मां नोपजीवति ॥
भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन्म्लेच्छेऽपि वर्तते।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स यतिः स च पण्डितः ॥

श्रीभारताभीलमहार्णवस्य संशोषणाय क्षमता दधानः।
गृह्णाति विष्णुर्जनिमित्यहष्यन्सन्तो विनिर्धूतमनःकषायाः ॥२६॥

भारतके दुःखसागरको सुखानेमें समर्थ, भगवान् जन्म ग्रहण कर रहे हैं, यह जानकर निर्मल मन वाले सज्जन प्रसन्न हो गये ॥ २६ ॥

निर्बुद्धितासन्तमसप्रवृद्धबाधातिबाधापरिकल्पनाय।
चिद्राशिरेषोऽवतरत्यवन्यामित्यर्तिभाजां हृदि मोद आसीत् ॥२७॥

दुःखिजनोंको इसलिए आनन्द हुआ कि अज्ञानरूप अन्धकारकी बाधाको बाधा पहुँचानेकेलिए अर्थात् उसका नाश करनेकेलिए इस ज्ञानभण्डारका अवतार हो रहा था ॥२७॥

नानाऽपराधं हरिमन्दिरेषु येषां प्रवेशः प्रतिषिद्ध आसीत्।
तेषां मनो हर्षभरो न वित्ते संचिन्त्य सर्वोद्धृतिकृत्प्रसूतिम् ॥२८॥

विना अपराधके ही जिन लोगोंका भगवान्के मंदिरमें जाना निषिद्ध था, उन्होंने जब सोचा कि सबके उद्धार करनेवाले महापुरुषका जन्म हो रहा है, तब उनका आनन्द उनके मनमें नहीं समाया ॥ २८ ॥

स द्वारकाधीश उपेत्य पूजां योऽगात्प्रसादं खलु चार्मकारीम्।
श्रीरामचन्द्रः शबरीश्वरोऽपि मायामयोऽमाय इयाय हर्षम् ॥२९॥

जो * कृष्णजी चमारकी पूजाको ग्रहण करके प्रसन्न हुए थे और जो रामजी भिल्लनी शबरीके स्वामी थे, मायासे परे होते हुए भी मायामय वे दोनों † हर्षको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥

औदार्यवित्तप्रथितो महेशो धत्ते कुबेरं यदभीष्टसिद्ध्यै।
तत्पूर्तये श्रीहरिरेष एतीत्येवं विचिन्त्यातिमुदं प्रपेदे ॥३०॥

*भगवान् श्रीकृष्णने एक समय साक्षात् प्रकट होकर चमारभक्तके हाथका पकाया हुआ भोजन स्वीकार किया था। यह बात आबालवृद्ध प्रसिद्ध है।

† भगवान् राम और भगवान् कृष्ण ये दोनों भी सर्वोद्धारक हैं

मलिनवेषकी भी पूजा करना लोग सीखें, इसी विचारसे श्रीमहादेवजीने कुवेष–जटाजूट–मुण्डमाला, भस्म आदि धारण किया है। श्रीशिवजी यह विचारकर प्रसन्न हुए कि जिस अभीष्टकी सिद्धिकेलिए–अस्पृश्यतानिवारण-के लिए मैंने यह कुवेष धारण किया है, उसीकी पूर्तिकेलिए श्रीविष्णु-भगवान् भी आ रहे हैं ॥ ३० ॥

स्युः कश्मरा वा विमलार्थका वा निर्णिक्तवासः पिहिताङ्गका वा।
स्युर्भूरिधूरिश्रितनक्तका वा तेषां समेषां स हरो दयालुः ॥३१॥

चाहे कोई मलिन हों, चाहे निर्मल मनवाले हों, चाहे खूबधुलेहुए कपड़े कोई पहिने हुए हों, चाहे गर्दगुब्बारसे भरे हुए चिथड़े ही कोई पहिने हों, भगवान् शिवजी सबपर दयाभाव रखते हैं ॥ ३१ ॥

और महा मार्गाधीजीभी सर्वोद्धारक ही होनेवाले है। अतः वह दोनों प्रसन्न हुए थे।

† पद्मपुराणमें लिखा है:—

प्रत्युद्गम्य प्रणम्याथ निवेश्य कुशविष्टरे।
पादप्रक्षालनं कृत्वा तत्तोयं पापनाशनम्॥
शिरसा धार्य पीत्वा च वन्यैः पुष्पैरथार्चयत्।
फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च॥
स्वयमासाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च।
पश्चान्निवेदयामास राघवाभ्यां दृढव्रता।
फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थस्तस्यै मुक्तिं परां ददौ॥

अर्थात् शबरी अस्पृश्यजातिमें पैदा होकर भी वैदिक तपस्विनी थी और भगवान् श्रीरामने उसका जलफल सब कुछ स्वीकार किया था। यद्यपि यहाँके श्लोकोंसे यह प्रतीत होता है कि भगवान् रामने शबरीके जूठे फल खाये थे। परन्तु श्रीवाल्मीकिरामायणमें ऐसा नहीं है। यहाँ भी अर्थ करना चाहिये कि वह चखकर, परीक्षा करके वृक्षसे फल तोड़ लायी थी और उन्हें भगवान्ने स्वीकार किया।

ये ब्राह्मणा ये च भुजाधिजाता ये चोरुजाता अपि येऽङ्घ्रिजाता।
ये चातिशूद्रा विविधापराधाः सर्वान्हरो वीक्षत एकदृष्टया ॥३२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अतिशूद्र तथा अनेक अपराध वालोंको भी श्रीशङ्करजी एक ही दृष्टिसे देखते हैं ॥ ३२ ॥

तद्दर्शनस्पर्शनभक्तिभाजां बाधाप्रदाने कथमस्य हर्षः।
लोकप्रणीतानयमार्जनाय समागतं श्रीहरिमन्वमंस्त ॥३३॥

ऐसे समदर्शी शिवजीके दर्शन और स्पर्शरूप भक्तिकरनेवालोंको बाधा पहुँचानेमें उनको हर्ष कैसे हो सकता था? अत एव लोगोंकी अनीतिका मार्जन करनेकेलिए भगवान्‌के अवतारका उन्होंने अनुमोदन किया ॥ ३३ ॥

ये दुर्जनाः स्वार्थपरायणा वा ये वा परार्थाभिहतिप्रसन्नाः।
मायाभ्यवस्कन्दनतुन्नचित्तास्तेशोकसम्पातमुपार्जिजन्त ॥३४॥

जो दुष्ट थे, स्वार्थी थे, परार्थहानिसे प्रसन्न होनेवाले थे, मायाके जालसे व्यथितचित्तवाले थे, उन लोगोंको इस अवतारसे बड़ा भारी शोक हुआ ॥ ३४ ॥

येषां न विद्या न तपःप्रभावो धर्मे न श्रुत्तिर्न रतिर्विवेके।
ते पापपङ्कातिकलङ्कितास्तु शोकानले चिक्षिपुरात्मचित्तम् ॥३५॥

जिनके पास न विद्या थी, न तप था, न जिनकी धर्ममें श्रुति थी और न विवेकमें रति थी ऐसे पापी लोगोंने शोकानलमें अपने मनको डाल दिया ॥ ३५ ॥

दुर्मेधसां श्रीहरिभक्तिगङ्गास्पर्शद्रुहां मूढधियां जनानाम्।
पाखण्डिनां चापि पराश्रितानां सन्तापपापं प्रबलं बभूव ॥३६॥

जो दुष्ट बुद्धिवाले थे, जो भगवद्भक्तिभागीरथीका स्पर्श भी नहीं करते थे, जो मूर्ख थे, पाखण्डी थे, दूसरोंसे जो पल रहे थे ऐसे निकम्मोंको बड़ा भारी सन्ताप हुआ ॥ ३६ ॥

नैल्येन शोभां महतीमपुष्णन्पृथ्वीरुहाः सा सरसा रसाऽऽसीत् ।
पात्रं प्रवृद्धं सरितां प्रकृष्टं याता दुरध्वा अपि सत्पथत्वम् ॥३७॥

श्रीमहात्मागान्धीजी के जन्मसे वृक्षोंमें नीलिमा आ गयी । पृथिवी सरसा बन गयी । नदियोंका पाट-विस्तार प्रसन्न होकर बढ़ गया और खराब मार्ग भी अच्छे बन गये ॥ ३७ ॥

तस्मिन्दिने श्रीहरिरात्तबाल्यः श्रीपुत्तलेरुत्तमभाग्यसीम्नः ।
सूनुत्वमापद्विपदां पदानां विध्वंसनं तत्र सुदामपुर्याम् ॥३८॥

उस दिन भगवान्ने बालभाव स्वीकारकरके परमभाग्यशालिनी श्रीपुतलीबाईका पुत्रत्व सुदामापुरीमें स्वीकार किया । यह पुत्रत्व सर्व आपत्तियोंके स्थानोंका नाश करनेवाला है ॥ ३८ ॥

स्वप्नायमानं किल भारतीयं भाग्यं जजागार पुनः क्षणेन ।
स्वाधीनताया वदने च हास्यमास्ये च दुःखं परतन्त्रतायाः ॥३९॥

स्वप्नवत् प्रतीयमान भारतवर्षका भाग्य पुनः क्षणभरमें जागरित हो गया । स्वाधीनताके मुखपर हँसी और पराधीनताके मुखपर विषाद जागरित हुआ ॥ ३९ ॥

केनापि पुण्येन पुरार्जितेन श्रीकर्मचन्द्रो महतां महीयान् ।
आपत्पितृत्वं स्पृहणीयमेवं मर्त्यैस्तथा निर्जरसां समाजैः ॥४०॥

ऐसे पितृत्वको, जिसकी स्पृहा सभी मनुष्य और सभी प्रकारके देवता करते हैं, श्रीकर्मचन्द्रजीने किसी पूर्वजन्मके पुण्यसे ही प्राप्त किया था ॥ ४० ॥

नो शैशवं यस्य न यौवनं नो स्त्रीत्वं न पुस्त्वं न नपुंसकत्वम् ।
वृद्धिक्षयाभ्यां रहितश्चिदात्मा लीलावपुष्मान्शिशुतां प्रपेदे ॥४१॥

जिस चिदात्माकी न तो शैशवावस्था है, न युवावस्था है, न स्त्रीत्व है, न पुरुषत्व है और न नपुंसकत्व है, जो वृद्धि और क्षयसे रहित है, वह लीलाशरीर धारण करके शिशुभावको प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥

* आकर्ण्य श्रुतिसुखदां प्रवृत्तिमिष्टां
तत्काले सुखभरविस्मृतस्वकोऽसौ ।
श्रीगांधी श्रियमधिकां यथा व्यतारी-
दाहूय द्रुतमतिदीनरुग्णलोकान् ॥४२॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराज-
प्रणीते भारतपारिजाते
द्वितीय सर्ग

† श्रीगांधीने—श्रीकर्मचन्द्रगांधीने जब कर्णसुखद, इस समाचार-को—पुत्रजन्मको सुना तो उसी समय वह आनन्द और हर्षसे अपनेको भूल गये । शीघ्र ही अत्यंत दीनों और रोगियोंको बुलाकर खूब सम्पत्ति उन्होंने लुटा दी ॥ ४२ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते द्वितीय सर्ग



* प्रहर्षिणी छन्द ।
† श्रीकर्मचन्द्रगांधीजीको ही लोग कबा गांधी कहते थे ।

तृतीय सर्गः



श्रद्धाधरणिसौभाग्यधात्रा पित्रा क्रमेण सः ।
वेदवाणीपरायत्तैः संस्कारैः संस्कृतः सुतः ॥१॥

श्रद्धारूपधरणीके सौभाग्यविधाता अर्थात् श्रद्धालु पिता श्रीकर्मचन्द्रजी-ने क्रमसे सब संस्कार अपने पुत्रके किये ॥ १ ॥

कान्तसंहननस्यास्य पिता नामाकरोन्मुदा ।
लक्ष्मीमूहिष्यते यस्मात्तस्मान्मोहन इत्यसौ ॥२॥

वह बालक लक्ष्मी—बाह्य और आभ्यन्तर शोभाको धारण करेगा अतः पिताने इस सुन्दरशरीरवाले बालकका नाम ॐमोहन रखा ॥ २ ॥

अथवा स्वसदाचाराद्विचाराद्युत्तमोत्तमात् ।
सर्वेषां मोहनादेष सुनाम्ना मोहनोऽभवत् ॥३॥

अथवा यह बालक अपने आचार और उत्तमोत्तम विचारोंसे सबको मोहित करेगा अतः इसका नाम मोहन पड़ा ॥ ३ ॥

ॐ मोहन शब्द मा+ऊहनसे बना है। माका अर्थ है लक्ष्मी। ऊहनका अर्थ है प्राप्त करनेवाला। लक्ष्मीको जो प्राप्त करे उसे मोहन कहते हैं। लक्ष्मीका अर्थ है शोभा। शोभा दो प्रकारकी होती है। बाह्य और आभ्यन्तरिक। सद्विचार और सत्कृति यह आभ्यन्तरिक शोभा है। आकृतिवैशिष्ट्य, सद्गोष्ठी, परोपकार आदि बाह्य शोभा है। तात्पर्य यह निकला कि जिसके विचार उत्तम हों, व्यवहार उत्तम हों, शरीरकी रचना उत्तम हो, सत्पुरुषोंके ही बीचमें जो रहता हो, जो परोपकारमय जीवन व्यतीत करता हो उसे मोहन कहते हैं।

ज्ञानधाराधराभूयोऽसौ सर्वसम्पत्समन्वितः ।
उपनिन्ये चिदात्मानं जनकः स्वतनूजनिम् ॥४॥

विद्वान् और सम्पत्तिशाली पिताने अपने पुत्रका यज्ञोपवीत संस्कार किया ॥ ४ ॥

सम्प्राप्ते पञ्चमे वर्षे मायाग्रन्थिविमोक्षणम् ।
कावागांधी स्वपुत्रस्य विद्यारम्भं व्यधीधपत् ॥५॥

श्रीयुत कावागांधीजीने ५ वें वर्षमें अपने पुत्रका विद्यारम्भ संस्कार किया ॥ ५ ॥

शैशवं क्रीडया नीतं नाधीतं मोहनेन तत् ।
क्रीडासक्तसहाध्यायिबालानामेव सङ्गमात् ॥६॥

मोहनने खेलाडी सहाध्यायियोंके संगसे कुछ पढ़ा लिखा नहीं और बाल्यावस्था ऐसी ही बिता दी ॥ ६ ॥

सप्त वर्षाण्यतीतानि मोहनस्यायुषस्तदा ।
सुकुमारकुमारस्य सुन्दरे पोरबन्दरे ॥७॥

पोरबन्दरमें कुमार मोहनके ऐसे ही सात वर्ष बीत गये ॥

कर्मचन्द्रोऽस्ततन्द्रोऽसौ विजहौ पोरबन्दरम् ।
राजकोटं गतो राजसभासभ्यो बभूव सः ॥८॥

आलस्यशून्य—पुरुषार्थी श्रीकर्मचन्द्रजीने पोरबन्दरको छोड दिया और वह राजकोटमें राजसभाके सभ्य बन गये ॥ ८ ॥

मोहनोऽपि समानीतः कर्मचन्द्रेण गांधिना ।
तत्रैव पाठशालायां नियमेन प्रवेशितः ॥९॥

* श्री० महात्माजीके पिता कर्मचन्द्रजीको ही लोग कावागान्धी कहा करते थे ।

श्रीकर्मचन्द्रजी अपने साथ ही मोहनको भी लेते गये और उन्होंने उसे पाठशालामें प्रविष्ट करा दिया ॥ ९ ॥

शिक्षकाणां मनांस्येष शिष्टाचारेण मोहयत् ।
मोहनो नामधेयं स्वं चारितार्थ्यमुपानयत् ॥१०॥

शिक्षकोंके मनोंको शिष्टाचारसे मोहित करते हुए मोहनने अपने नामको चरितार्थ कर दिया ॥ १० ॥

— घण्टावादनवेलाया पाठशालामुपागमत् ।
अन्तिमे घण्टिकानादे गृहमेवागमत्सदा ॥११॥

मोहन सदा घण्टा बजनेके समय स्कूलमें जाते थे और छुट्टीका घण्टा बजते ही घर चले आते थे ॥ ११ ॥

न कदाचिच्चकारायं कालातिक्रममध्वनि ।
विजानन्निव कालस्य शैशवेऽपि महार्घ्यताम् ॥१२॥

कभी भी उन्होंने मार्गमें समय नहीं बिताया । मानो लड़कपनमें भी वह समयकी बहुमूल्यताको जानते थे ॥ १२ ॥

हारिश्चन्द्रमुपाख्यानं नाटकीये च मन्दिरे ।
द्रष्टुमाज्ञापित. क्वापि पितृभ्यां मोहनो गतः ॥१३॥

एक समय मातापिताकी आज्ञासे मोहन नाटकशालामें हरिश्चन्द्र नाटक देखने गये ॥ १३ ॥

तदा समापतं यत्तु नाटकीयं विलोक्य स ।
स्फुटं रुरोद भूपस्य कष्टं तथ्यं विभाव्य च ॥१४॥

उस समय नाटकमें उस उपाख्यानको देखकर, और हरिश्चन्द्रके कष्टोंको ⊕ सत्य मानकर वह खूब रोये ॥ १४ ॥

⊕ कितने लोगोंका मत है कि हरिश्चन्द्रका समस्त उपाख्यान

हरिश्चन्द्रो यथा सेहे कष्टं सत्यस्य रक्षणे ।
सहेरन्नपरे किं नेत्येष तर्हि परामृशत् ॥१५॥

उन्होंने उस समय विचार किया कि यदि हरिश्चन्द्रने सत्यकी रक्षामें इतने कष्ट सहन किये तो अन्य लोग भी वैसेही कष्ट, सत्यकी रक्षामें क्यों न सहें? ॥ १५ ॥

आगत्य पाठशालातोऽभ्यस्याऽनभ्यस्य वा कचित् ।
पाठ्यानि पुस्तकान्येष भवनेऽन्यदवाचयत् ॥१६॥

मोहन पाठशालासे आकर कभी पाठ्यपुस्तकोंका अभ्यास करते, कभी न करते और घरपर अन्य पुस्तक बाँचा करते थे ॥ १६ ॥

श्रवणपितृभक्त्याख्यं पुस्तकं कर्हिचिन्मुदा ।
वाचयामास सन्तोषं गमयामास मानसम् ।

किसी दिन वह श्रवणपितृभक्ति नामक नाटकको बड़े प्रेमसे पढ़कर बहुत सन्तुष्ट हुए ॥ १७ ॥

वीवधे स्थापयित्वा च मातरं पितरं कचित् ।
श्रवणं नीतवन्तं स काचचित्रे व्यलोकत ॥१८॥

एक दिन शीशामें चित्र दिखानेवाले तमाशगीरने उन्हें चित्र दिखाये । उसमें बँघरमें मातापिताको ले जाते हुए श्रवणको उन्होंने देखा ॥ १८ ॥

कोशलेशस्य बाणेन घातिते †श्रवणे तयोः ।
अन्धयोः स विलापानामक्षराण्यग्रहीत्स्फुटम् ॥१९॥

सभ्यता के प्रचारकेलिये पर्याप्त है । कल्पित हो तो भी, यह उत्कृष्ट-कल्पना ही भारतीयमस्तिष्कके उत्कर्षकी समर्थिका है ।

† कितने ही वाक्योंसे यह प्रतीत होता है कि अन्धमातापिताके बालकका नाम श्रवण नहीं था प्रत्युत अन्धपिताका ही यह नाम था । अत एव यह बालक श्रवणकुमार कहा जाता है ।

यहाँसे लेकर ३४ वें श्लोकतककी क्रिया एक है और वह ३४ वें श्लोकमें ही भूषयामासुः यह क्रियापद है।

मतवाले हाथी, बहते मदवाले निर्मद हाथियोंके बच्चे, हथिनियाँ और बड़े-बड़े गजराज ॥ ३१ ॥

तुङ्गास्तुरङ्गमा रथ्या विनीताश्च वनायुजाः।
पारसीकाः सहेषाढ्या आजानेयाः सहस्रशः ॥३२॥

वनायुदेशके, पारस देशके बड़े बड़े कुलीन और सुशिक्षित घोड़े हिनहिनाते हुए हजारों, रथमें जुते हुए और बिना जुते हुए उस समय वहाँ आये ॥ ३२ ॥

सौराष्ट्रसंभवा वंश्या दर्शनीया महाबलाः।
गन्धर्वा वडवा हृष्टाः किशोराश्च सहस्रशः ॥३३॥

सुन्दर सुन्दर काठियावाडी घोड़े व घोडियाँ और घोड़ोंके बच्चे सहस्रोंकी संख्यामें उस समय वहाँ आये ॥ ३३ ॥

लसत्पताकाः सुरथा गवोढ्रा नयनाहराः।
कावागांधिगृहाभोगं भूषयामासुरञ्जसा ॥३४॥

जिनपर पताकाएँ लहरा रही थीं ऐसे रथ, मनोहर बैलोंकी जोडियाँ, यह सब श्रीकर्मचन्द्रगाधीके मकानके अहातेको सुशोभित कर रहे थे ॥ ३४ ॥

चूर्णकुन्तलशोभाढ्यः काकपक्षसुशोभितः।
अञ्जनाञ्चितदीर्घाक्षरश्मिपुञ्जप्रकाशितः ॥३५॥

यहाँसे ४० वें श्लोक तकका ४० वें श्लोकमें आये हुए आसीत् क्रियापदके साथ सम्बन्ध है।

टेढ़ेबालोंसे और काकपक्षसे सुशोभित, अजनवाली बड़ी-बड़ी आँखोंके तेजसे प्रकाशित—॥ ३५ ॥

तिलकं मस्तके न्यस्तं कुण्डले कर्णयुग्मके।
पवित्रोरःस्थले शुभ्रा रम्या प्रालम्बिकां दधत् ॥३६॥

मस्तकमें ऊर्ध्वपुण्ड्र; कानोंमें कुण्डल और छातीपर सुन्दर लंबी सोनेकी माला धारण किये हुए—॥ ३६ ॥

अङ्गुलिं दीपयन्स्वस्य महर्घोर्मिकया तदा।
दधानः कङ्कणे शुभ्रे दीनोद्धरणहस्तयोः ॥३७॥

बहुमूल्य अङ्गूठीसे अपनी अङ्गुलिको प्रकाशित करते हुए दीनोद्धारक दोनों हाथोंमें कङ्कण पहिरे हुए—॥ ३७ ॥

निष्प्रयाणिच कौशेयमुष्णीषं मस्तके वहन्।
दुकूलं धौतवस्त्रं च युतकं च महाधनम् ॥३८॥

शिरपर नयी रेशमी पगडी, रेशमी धोती और बहुमूल्यवाले जामा = युतकको धारण किये हुए—॥ ३८ ॥

सौराष्ट्रजन्मनि प्रोच्चैरश्वे वल्गां करान्तरे।
गृह्णन्विश्वमनोहारि मन्दहास्यं विभासयन् ॥३९॥

काठियावाडी घोडेपर, लगाम हाथमें लेकर, विश्वमनोहर मन्द हास्य करते हुए ॥ ३९ ॥

महाभिलाषः कस्तूरपाणिग्रहणकर्मणि।
मोहनो मोहनो हासीत्स गच्छन्श्वशुरालयम् ॥४०॥

श्रीकस्तूरबाईके पाणिग्रहणकी इच्छावाले, ससुरार जाते हुए मोहन, निश्चय ही सबको मोहित कर रहे थे ॥ ४० ॥

अनवद्यगुणैर्वन्द्यो मोहनो विश्वमोहनः।
अथातारि हयादाशु योग्यानां करपल्लवैः ॥४१॥

प्रशस्तगुणोंसे वन्दनीय, विश्वमोहन मोहनको वहां पर योग्य लोगोंने अपने हाथोंसे शीघ्र घोडेसे उतार लिया ॥ ४१ ॥

शनैः शनैः पदन्यासं व्यधाद्यास्विचारवान्।
शीघ्रता नैव कुत्रापि शोभाया आस्पदं भवेत् ॥४२॥

दशरथके बाणोंसे श्रवणके मारे जानेपर, उन अन्ध मातापिताके विलापको उन्होंने खूब श्रवण किया ॥ १९ ॥

श्रावणेनेव पुत्रेण नूनं भाव्यं मयाऽप्यथ ।
इत्येवं बाल्यकालेऽसौ मनसा समकल्पयत् ॥२०॥

श्रवणके समान ही मैं भी बनूँगा इस प्रकारसे बचपनमें मोहनने सङ्कल्प किया ॥ २० ॥

हारमोनियमित्याख्ये वादित्रे च पुनः पुनः ।
अन्धयोर्दुःखिमनसोरक्षराणि स गीतवान् ॥२१॥

हारमोनियम पर मोहन उसी अन्ध मातापिताके विलापके गीतको कईबार गाया करते थे ॥ २१ ॥

व्यापारैरेवमन्यैः स सत्यनिष्ठामपूपुषत् ।
मातापितृपदार्चाया आदर्शं समपूपुजत् ॥२२॥

इन कर्मोंसे तथा अन्य व्यवहारोंसे भी उन्होंने सत्यनिष्ठाका रक्षण किया । मातापिताकी सेवाके आदर्शको भी महत्त्व दिया ॥ २२ ॥

भविष्ये प्रभविष्णूनां परिपाट्या गुणागमः ।
भवत्येवात्र दृष्टान्तो मोहनोऽयं हि गृह्यताम् ॥२३॥

होनहार बालकोंको क्रमसे गुणोंकी प्राप्ति होती रहती है इसमें मोहन ही उदाहरण हैं ॥ २३ ॥

शान्तिश्च गुरुशुश्रूषा दीनसेवाऽस्य मौनिता ।
सत्यनिष्ठा मनःशुद्धिरासन्बालसखा इव ॥२४॥

शान्ति, मातापिताकी सेवा, दीनोंकी सेवा, मौन रहना, सत्यनिष्ठा और मानसिक पवित्रता ये सब मोहनके बालमित्र समान थे ॥ २४ ॥

पुरा काले तु सर्वेषां शरदां पञ्चविंशतिम् ।
ब्रह्मचर्यं ध्रुवं पाल्यमासीच्छ्रुतिपथान्वितम् ॥२५॥

प्राचीन समयमें २५ वर्ष तक वैदिकमर्यादाके अनुसार ब्रह्मचर्य सबको पालना पड़ता था ॥ २५ ॥

अष्टवर्षा भवेद्गौरीत्यादिवाक्यानुसारतः ।
भारते बालदाम्पत्यमनिष्टं वर्ततेऽधुना ॥२६॥

आजकल्ह भारतवर्षमें "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" इत्यादि आधुनिक पण्डितोंके कथनानुसार बचपनमें ही अनिष्टकारक पतिपत्नी भाव वर्तमान है ॥ २६ ॥

रूढया हि तया रूढ्या पितरौ पुत्रवत्सलौ ।
वर्षे त्रयोदशे बाले सपत्नीकं प्रणिन्यतुः ॥२७॥

इसी प्रचलितरूढिसे मातापिताने मोहनको १३ वर्षकी अवस्थामें विवाहित कर दिया ॥ २७ ॥

अन्तिमो मोहनः पुत्रस्तेन द्रविणराशयः ।
व्ययिता मुक्तहस्ताभ्यां पितृभ्यामत्र कर्मणि ॥२८॥

मोहन अन्तिम पुत्र थे अत एव मातापिताने दिल खोलकर खूब विवाहकार्यमें व्यय किया ॥ २८ ॥

आगच्छतोपविशता तथा पचतभुञ्जता ।
अभीतपिबता चासीत्क्रिया द्वित्रेष्वहस्स्वपि ॥२९॥

आओ, बैठो, पकाओ, खाओ, पीओ, दो तीन दिनोंतक यही क्रिया होती रही ॥ २९ ॥

दूराद्दूरतराद्यैँल्लोकाः परिणयोत्सवे ।
सादराः सादरं सर्वे नूनमामन्त्रितास्तदा ॥३०॥

इस विवाहमें सादर सबको आमन्त्रण भेजा गया था अत एव दूर दूरसे लोग बड़े आदरके साथ उस समय आये थे ॥ ३० ॥

गजा महोत्कटा मत्ता निर्मदाः करिदारकाः ।
धेनुकाः सपरिष्कारा गजनाथाधिरक्षिताः ॥३१॥

सुन्दरविचारवाले मोहन धीरे-धीरे चलने लगे क्योंकि शीघ्रता यहाँ भी शोभा नहीं देती है ॥ ४२ ॥

श्रौतेन विधिना तत्र श्रौतमार्गप्रवर्तकः ।
मोहनः श्रीलकस्तूरदेव्याः पाणिमपीडयत् ॥४३॥

वेदमार्गप्रवर्तक श्रीमोहनने वैदिक विधिसे श्रीकस्तूरदेवीका ❀ पाणिग्रहण किया ॥ ४३ ॥

तातिका घानिकाः शिल्पिश्रेष्ठा दौन्दुभिका अलम् ।
मार्दङ्गिकाश्च निपुणं स्वकलाः समदर्शयन् ॥४४॥

उस समय तातिक, घानिक, दौन्दुभिक, मार्दङ्गिक आदि शिल्पियोंने भले प्रकार अपनी अपनी कलाएं दिखायीं ॥ ४४ ॥

मनोहत्यागताः सर्वे मोदकान् प्रत्यवस्य ते ।
कणेहत्य पयः पीत्वाऽथाऽलं कृत्वौदनं गताः ॥४५॥

आये हुए सब लोग खूब लड्डू खाकर, दूध पीकर और भोजन समाप्त करके तब गये ॥ ४५ ॥

बालोद्वाहविनाशायोपयमं शैशवेऽकरोत् ।
नाशयन्ति जना नूनं विषं पीत्वा विषाशरम् ॥४६॥

बालविवाहका नाश करनेके लिये ही मोहनने अपना बालविवाह स्वीकार किया । जगत्में भी देखा जाता है कि विष खाकर लोग विषके प्रभावको नष्ट करते हैं ॥ ४६ ॥

दाम्पत्यविधिना रेमे ततो बालोऽपि मोहनः ।
धर्मपत्न्या तया सार्धं भवः केन पराजितः ॥४७॥

श्री मोहन बालक थे तो भी अपनी धर्मपत्नी श्रीकस्तूरबाईके साथ

❀ विद्याभ्यास और विवाह यह दोनों बातें केवल हिन्दुससारमें ही हो सकती हैं । महात्मा गांधी

दाम्पत्यभावसे बर्तने लगे। यदि कोई शङ्का करे कि भगवदवतारको यह शोभा नहीं देता है तो उसका उत्तर है कि "संसारको किसने जीता है!" ॥ ४७ ॥

यस्मिन्कस्मिन्समाचारपत्रेऽपाठीत्स कस्यचित्।
निबन्धमतिनिर्बन्धं दर्शयन्तं शुचिव्रते ॥४८॥

श्रीमोहनने किसी समाचारपत्रमें, किसी लेखकका पवित्रताके विषयमें आग्रहपूर्ण एक लेख पढ़ा ॥ ४८ ॥

एकपत्नीव्रतं सर्वैः पतिभिः पाल्यतामिति।
पपाठ तत्र बालोऽसौ सावधानमना ननु ॥४९॥

उस लेखमें बालक मोहनने बहुत सावधानीके साथ पढ़ा कि सब पतियोंको एकपत्नीव्रत पालन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

तदानीमेव तेनैतद्व्रतं सङ्कल्पपूर्वकम्।
उच्चावचं विचार्यैव स्वीचक्रे धर्मसाधकम् ॥ ५० ॥

उसी समय श्रीमोहनने खूब विचार करनेके पश्चात् धर्मसाधक उस एक पत्नीव्रतको सङ्कल्पपूर्वक ग्रहण किया ॥ ५० ॥

हाइस्कूले समारब्धामधीतिं सोऽजहान्नहि।
प्रशस्यः सर्वदाचासीच्छिक्षकाणां मनस्विनाम् ॥ ५१ ॥

विवाहके पश्चात् भी मोहनने हाईस्कूलका पढ़ना नहीं छोड़ा। मनस्वी शिक्षकों की दृष्टिमें उनकेलिये बहुत प्रतिष्ठा थी ॥ ५१ ॥

सत्याचारे सदाचारे प्रेमाधिक्यं प्रणीतवान्।
न सेहेऽसावुपालम्भं कस्यचित्कर्हिचित्क्वचित् ॥ ५२ ॥

सत्य और सदाचारमें मोहनका प्रेम अधिक अधिक बढ़ता गया। कभी भी उन्होंने किसीका उलाहना नहीं सहा ॥ ५२ ॥

कस्यचिन्मित्रवर्यस्यैव दुस्सङ्गाद् दुर्गतिप्रदात्।
प्रारेभे मोहनः पातुं निरुद्धां धूमवर्तिकाम् ॥ ५३ ॥

श्रीमोहनने किसी अपने सम्बन्धीके दुष्ट ससर्गसे अत्यन्त ॐ निकृष्ट बीडीका पीना शुरू किया ॥ ५३ ॥

एकदा वर्तिकाभावे द्रव्याभावे च मोहनः ।
तस्य दुष्टस्य साहाय्यादात्मघाते मनोदधौ ॥ ५४ ॥

एक समय श्रीमोहनके पास न तो बीडी थी और न उसके लिये पैसे थे। अत उस दुष्टसम्बन्धीकी सहायतासे † आत्मघात कर डालनेका उन्होंने विचार किया ॥ ५४ ॥

संगृह्योन्मत्तबीजानि बालकाभ्यां निशामुखे ।
केदारमन्दिरं गत्वा घृतदीपः समर्पितः ॥ ५५ ॥

उन दोनो बालकोंने—श्रीमोहन और उनके सम्बन्धी साथीने—सायङ्काल धतूरेके बीजको लेकर राजकोटमें केदारमन्दिरमें जाकर केदारजीको घीका दीया जलाया ॥ ५५ ॥

ॐ मेरे काकाको बीडी पीनेकी आदत थी। उनको और अन्योंको धूँआ निकालते देखकर हमें भी वैसी ही इच्छा हो गयी। पैसे तो मिलते नहीं थे अत काका बीड़ी पीकर जब फेंक दें तो उसी जूठे ठूँठेको हमने चुराना शुरू किया। लेकिन् इसमेंसे धूआँ अधिक नहीं निकलता था। अत नौकरके पैसोंकी चोरी शुरू की। एक सप्ताह ऐसा ही चला। . । बडी उम्रमे बीड़ी पीनेकी मुझे कभी इच्छा ही नहीं हुई। और मैं सदा मानने लग गया कि बीडी पीनेकी आदत जगली, गन्दी और हानिकारक है। महात्मा गाधी।

† हमने सुना कि एक प्रकारका एक वृक्ष होता है, जिसका नाम मैं भूल गया हूँ, उसकी टहनी भी बीड़ीके समान ही सुलगती है और पियी जा सकती है। हम दोनों मित्र उसीको पीने लग गये। परन्तु हमको सन्तोष नहीं हुआ। हमारी पराधीनता हमको खटकती थी। बडोंकी आज्ञा बिना कुछ नहीं हो सकता, इसका दुःख हुआ। हमने व्याकुल होकर आत्मघात करनेका निश्चय किया। महात्मा गाधी

केदारदर्शनं कृत्वा रहसि द्वौ समागतौ।
साहसं न परं जातं तयोर्जाङ्गुलभक्षणे॥ ५६॥

केदारजीका दर्शन करके वह दोनों बालक एकान्तस्थानमें गये। परन्तु वहाँ विष भक्षण करनेकी हिम्मत उन दोनोंकी न हुई॥ ५६॥

त्रयं चतुष्टयं वापि बीजानां गिलितं हठात्।
बालकाभ्यां परं पश्चान्मृत्योर्भयमुपागतम्॥ ५७॥

उन दोनोंने धतूरेके ३-४ बीज तो खा लिये परन्तु पीछेसे उन्हें मृत्युका भय लगा॥ ५७॥

रामस्य दर्शनं कृत्वा गत्वा श्रीराममन्दिरम्।
शान्त्या स्थेयं पुनर्जातु नैवं कार्यमिति स्थितम्॥ ५८॥

श्रीराममन्दिरमें जाकर, रामजीका दर्शन करके दोनोंने यह निश्चय किया कि शान्तिसे रहना चाहिये और फिर कभी ऐसा काम नहीं करना चाहिये॥ ५८॥

देशरक्षां पुरस्कृत्य जगद्रक्षां च यो विभुः।
ईश्वरोऽत्र समायातः स कथं निष्फलो व्रजेत्॥ ५९॥

जो ईश्वर देश और जगत्की रक्षाकेलिये आया है वह विषभक्षणादिके द्वारा प्राणघात करके निष्फल कैसे जा सकता है!॥ ५९॥

तस्य कश्चित्सहाध्यायी मांसाहारपरायणः।
मोहनेऽपि तथा कर्तुमाग्रहं नित्यमाचरत्॥ ६०॥

श्रीमोहनका कोई सहपाठी मांसाहारी था। वह मोहनको भी मांस खानेकेलिये नित्य आग्रह करता था॥ ६०॥

प्रोक्तं मित्रेण यद्वः कुलीना राजकोटगाः।
अनेके मांसमश्नन्ति छात्राश्चापीति सर्वदा॥ ६१॥

वह मित्र इन्हें रोज कहा करता था कि राजकोटके बहुतसे कुलीन लोग, तथा अनेक छात्र भी मांस खाते हैं॥ ६१॥

अन्तरेणैव मांसाशं निस्तेजस्का वयं प्रजाः।
अङ्ग्रेजास्तं च कुर्वाणा राज्यमस्मासु कुर्वते॥ ६२॥

उसने यह भी कहा कि हम लोग मास नहीं खाते अत एव निर्बल प्रजा बने हुए हैं। और अंग्रेज मास खाते हैं, अत एव वह हमपर राज्य करते हैं॥ ६२॥

मांसाशेनैव मां पश्य दृढाङ्गं बहुधावनम्।
मांसाहारेण नश्यन्ति शीघ्रमेव व्रणादयः॥ ६३॥

उसने कहा, मुझे देखो, मैं मास खाता हूँ, अत एव मेरा शरीर दृढ है। मैं अधिक दौड सकता हूँ। मास खानेसे फोडे-फुन्सियाँ शीघ्र अच्छी हो जाती हैं॥ ६३॥

मांसाहारं हि कुर्वाणा बलवृद्धिसमन्विताः।
वयमाङ्ग्लान्पराजेतुं शक्ताः स्यामेति निश्चितम्॥ ६४॥

यह निश्चय है कि मासाहार करनेसे, हम लोग भी खूब बलवान् होकर, अंग्रेजोंको हरानेमें समर्थ होगे, ऐसा उसने कहा॥ ६४॥

शिक्षका अपि खादन्ति मांसमस्मात्सखे प्रिय।
भक्षणीयं त्वयाप्येतद्भवितासि ततो बली॥ ६५॥

मास्टर लोग भी मास खाते हैं अतः प्रियमित्र! तुम भी मास खाओ। उससे बलवान् बनोगे॥ ६५॥

एवमादिप्रलोभेन मोहितो मोहनोऽपि सः।
मांसाशने प्रवृत्तोऽभूद्गुलेच्छुर्निभृतं क्वचित्॥ ६६॥

इस प्रकारके प्रलोभनसे मोहित होकर श्रीमोहन भी कभी कभी मासाहार छुपकर करने लगे॥ ६६॥

मांसाहारे न तस्यासीज्जिह्वास्वादः प्रयोजकः।
बलं प्राप्य विदेशीयविजिगीषैव कारणम्॥ ६७॥

जीभके स्वादकेलिये श्रीमोहन मांस नहीं खाते थे प्रत्युत इसलिये खाते थे कि बल प्राप्त करके विदेशियोंको जीत सकेंगे ॥ ६७ ॥

श्रद्धां लोकोत्तरां पित्रोर्मोहनश्चापुपस्सदा ।
मिथ्याभाषी न सोऽप्यासीत्तयोरग्रे कदाचन ॥ ६८ ॥

श्रीमोहनकी अपने मातापितामें अगाध श्रद्धा थी, अतः वह उनके समक्ष कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहते थे ॥ ६८ ॥

मातृमान्पितृमान्बालो मोहनो धर्मभावनः ।
मातापित्रो रतो भक्तौ प्रसितः सेवने तयोः ॥ ६९ ॥

मोहनकी माता धर्मरता थीं और पिता भी धर्मरत थे । अतः उनकी धर्ममें भावना थी । मातृभक्त और पितृभक्त मोहन मातापिताकी सेवामें तत्पर थे ॥ ६९ ॥

नित्यं पितृपदाम्भोजसंवाहनपुरस्सरम् ।
मूर्ध्ना प्रणम्य तत्पादौ नक्तं निद्रामुपेयिवान् ॥ ७० ॥

सदा, मोहन पिताके चरणकी सेवा करके, प्रणाम करके तब रात्रिमें शयन करते थे ॥ ७० ॥

पितरौ वैष्णवौ मे स्तो मत्कुलं चापि वैष्णवम् ।
जानीयातां यदीदं मे कर्म खेदस्तयोर्भवेत् ॥ ७१ ॥

एकदा स विचिन्त्येति सत्यसंरक्षणाय च ।
पापादस्मान्निवृत्तोऽभून्मोहनो सद्यस्तु धार्मिकः ॥ ७२ ॥

एक दिन श्रीमोहनने विचार किया कि मेरा कुल वैष्णवकुल है । मेरे मातापिता भी वैष्णव ही हैं । यदि उनको यह मेरा मांसाहार-कर्म मालूम हो जायगा तो उन्हें बहुत खेद होगा । इस लिये और सत्यकी रक्षाके लिये भी श्रीमोहन इस पापसे सदाके लिये छूट गये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

तस्मिन्स्वभावपूतेऽपि ये ये दोषा विलोकिताः ।
ते तु लीलाप्रसिद्ध्यर्थं सतामित्यवधार्यताम् ॥ ७३ ॥

श्रीमोहन तो भगवदवतार होनेके कारण स्वभावसे ही पवित्र थे। उनमें जो यह सब दोष आये थे वह तो लीलाकी सिद्धिके लिये ही थे अर्थात् लोग सीखें कि पापोंमेंसे किस प्रकारसे बच जाना चाहिये। मातापितासे छुपाकर कुछ भी नहीं करना चाहिये। जिस कार्यसे मातापिताको कष्ट हो, उसे नहीं करना चाहिये इत्यादि ॥ ७३ ॥

अथाध्येतुं समारेभे देवभाषां स मोहनः ।
काठिन्यादेव तद्भाषाध्ययनात्स पराजितः ॥ ७४ ॥

इन सबको छोडकर स्कूलमें अब श्रीमोहनने संस्कृत पढना शुरू किया। परन्तु उसकी कठिनतासे वह घबरा गये ॥ ७४ ॥

कृष्णाशङ्करनामा तं तद्भाषाध्यापकस्तदा ।
बालबुद्धिं विषीदन्तं समाश्वासयदर्भकम् ॥ ७५ ॥

उस समय संस्कृतके अध्यापक, उस स्कूलमें, श्रीकृष्णा-शङ्करजी थे। उन्होंने बालकबुद्धि, बालक मोहनको चिन्तातुर देखकर आश्वासन दिया ॥ ७५ ॥

ततः पश्चादमर्त्यानां सस्नेहमपठद्गिरम् ।
तस्मै सुशिक्षकायासौ सततं बहुधारयन् ॥ ७६ ॥

उसके पश्चात् तो श्रीमोहनने बडे *प्रेमके साथ संस्कृतका अध्ययन किया और पण्डित कृष्णाशङ्करजीका बहुत आभार स्वीकार किया ॥ ७६ ॥

वत्सरेऽष्टादशे प्राप्ते स हि मैट्रिक्युलेशनम् ।
परीक्षामुत्तताराथ विदेशं गन्तुमैहत ॥ ७७ ॥

श्रीमोहनने १८ वें वर्षमें मेट्रिककी परीक्षा पास की और उसके बाद विदेशमें जानेकी इच्छा की ॥ ७७ ॥

---

*पश्चात् मुझे विदित हुआ कि किसी भी हिन्दु बालकको संस्कृतके सुन्दर अभ्यासके बिना नहीं रहना चाहिये। महात्मा गांधी

वैष्णवेन न कर्तव्या सिन्धुयात्रा कदाचन।
इत्याक्रोशः समुत्पन्नः सर्वेषामेव वक्त्रतः॥ ७८॥

उस समय सबके मुँहसे यही बात निकलने लगी कि वैष्णवको समुद्रयात्रा नहीं करनी चाहिये॥ ७८॥

पिता स्वर्गं गतश्चासीत्पितृव्यः पोरबन्दरे।
मर्यादां वैष्णवीं पुष्णन्कोऽनुमन्येत तन्मतिम्॥ ७९॥

पिता श्रीकर्मचन्द्रजीका देहान्त हो चुका था। चाचाजी पोरबन्दरमें थे। अतः कोईभी वैष्णव उनके विचारको बलदेनेवाला नहीं था॥ ७९॥

माताऽस्य विधवा वृद्धा निर्धनापि तपस्विनी।
तथापि सा समुत्साहा ज्यायान्भ्राताऽपि साहसी॥ ८०॥

उनकी माता बेचारी वृद्धा और निर्धन हो रही थीं; तथापि उनका उत्साह मन्द नहीं था। श्रीमोहनके बड़े भाई भी साहसी थे॥ ८०॥

मोहनो नोहनेऽदक्षो विदेशगमनोत्सुकः।
ताभ्यामनुमतश्चक्रे सामग्रीसंचयं मुदा॥ ८१॥

माता और ज्येष्टबन्धुकी आज्ञासे विचारकुशल श्रीमोहनने विदेश यात्राकी सामग्री तैयार कर ली॥ ८१॥

महाविद्यालयं त्यक्त्वा मिलित्वा स्नेहिमण्डलम्।
आशीर्वादान्गुरूणां च गृहीत्वा निर्ययौ ततः॥ ८२॥

कॉलेज छोडकर, स्नेहियोंसे मिलकर, गुरुओं का आशीर्वाद लेकर मोहन कॉलेजसे आये॥ ८२॥

मात्रा प्रणोदितः श्रीमान्प्रतिशुश्राव मोहनः।
कदापि नैव सेविष्ये मांसं मद्यं परस्त्रियम्॥ ८३॥

माताकी प्रेरणासे श्रीमोहनने प्रतिज्ञा की कि मैं मांस, मद्य और परस्त्री सग इनका सेवन कभी नहीं करूँगा॥ ८३॥

श्रीमोहन तो भगवदवतार होनेके कारण स्वभावसे ही पवित्र थे। उनमें जो यह सब दोष आये थे वह तो लीलाकी सिद्धिके लिये ही थे अर्थात् लोग सीखें कि पापोंमेंसे किस प्रकारसे बच जाना चाहिये। मातापितासे छुपाकर कुछ भी नहीं करना चाहिये। जिस कार्यसे माता-पिताको कष्ट हो, उसे नहीं करना चाहिये इत्यादि ॥ ७३ ॥

अथाध्येतुं समारेभे देवभाषां स मोहनः।
काठिन्यादेव तद्भाषाध्ययनात्स पराजितः ॥ ७४ ॥

इन सबको छोडकर स्कूलमें अब श्रीमोहनने संस्कृत पढ़ना शुरू किया। परन्तु उसकी कठिनतासे वह घबड़ा गये ॥ ७४ ॥

कृष्णाशङ्करनामा तं तद्भाषाध्यापकस्तदा।
बालबुद्धिं विषीदन्तं समाश्वासयदर्भकम् ॥ ७५ ॥

उस समय संस्कृतके अध्यापक, उस स्कूलमें, श्रीकृष्णा-शङ्करजी थे। उन्होंने बालकबुद्धि, बालक मोहनको चिन्तातुर देखकर आश्वासन दिया ॥ ७५ ॥

ततः पश्चादमर्त्यानां सस्नेहमपठद्गिरम्।
तस्मै सुशिक्षकायासौ सततं बहुधारयन् ॥ ७६ ॥

उसके पश्चात् तो श्रीमोहनने बडे *प्रेमके साथ संस्कृतका अध्ययन किया और पण्डित कृष्णाशङ्करजीका बहुत आभार स्वीकार किया ॥ ७६ ॥

वत्सरेऽष्टादशे प्राप्ते स हि मैट्रिक्युलेशनम्।
परीक्षामुत्तताराथ विदेशं गन्तुमैहत ॥ ७७ ॥

श्रीमोहनने १८ वें वर्षमें मेट्रिककी परीक्षा पास की और उसके बाद विदेशमें जानेकी इच्छा की ॥ ७७ ॥

---

* पश्चात् मुझे विदित हुआ कि किसी भी हिन्दु बालकको संस्कृतके सुन्दर अभ्यासके बिना नहीं रहना चाहिये। महात्मा गांधी

वैष्णवेन न कर्तव्या सिन्धुयात्रा कदाचन।
इत्याक्रोशः समुत्पन्नः सर्वेषामेव वक्त्रतः ॥ ७८॥

उस समय सबके मुँहसे यही बात निकलने लगी कि वैष्णवको समुद्रयात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ७८ ॥

पिता स्वर्गं गतश्चासीत्पितृव्यः पोरबन्दरे।
मर्यादां वैष्णवीं पुष्णन्कोऽप्यनुमन्येत तन्मतिम् ॥ ७९॥

पिता श्रीकर्मचन्द्रजीका देहान्त हो चुका था। चाचाजी पोरबन्दरमें थे। अतः कोईभी वैष्णव उनके विचारको बलदेनेवाला नहीं था ॥ ७९ ॥

मातास्य विधवा वृद्धा निर्धनापि तपस्विनी।
तथापि सा समुत्साहा ज्यायान्भ्राताऽपि साहसी ॥ ८० ॥

उनकी माता बेचारी वृद्धा और निर्धन हो रही थी; तथापि उनका उत्साह मन्द नहीं था। श्रीमोहनके बडे भाई भी साहसी थे ॥ ८० ॥

मोहनो मोहनेऽदक्षो विदेशगमनोत्सुकः।
ताभ्यामनुमतश्चक्रे सामग्रीसंचयं मुदा ॥ ८१ ॥

माता और ज्येष्ठबन्धुकी आज्ञासे विचारकुशल श्रीमोहनने विदेश यात्राकी सामग्री तैयार कर ली ॥ ८१ ॥

महाविद्यालयं त्यक्त्वा मिलित्वा स्नेहिमण्डलम्।
आशीर्वादान्गुरूणां च गृहीत्वा निर्ययौ ततः ॥ ८२ ॥

कॉलेज छोडकर, स्नेहियोंसे मिलकर, गुरुओं का आशीर्वाद लेकर मोहन कॉलेजसे आये ॥ ८२ ॥

मात्रा प्रणोदितः श्रीमान्प्रतिशुश्राव मोहनः।
कदापि नैव सेविष्ये मांसं मद्यं परस्त्रियम् ॥ ८३ ॥

माताकी प्रेरणासे श्रीमोहनने प्रतिज्ञा की कि मैं मांस, मद्य और परस्त्री सग इनका सेवन कभी नहीं करूँगा ॥ ८३ ॥

पतिप्रेमपराधीनां पत्युराज्ञानुवर्तिनीम् ।
पत्नीं रहः समाश्वास्य निर्जगाम गृहादयम् ॥ ८४ ॥

पति के प्रेमसे पराधीन, पतिकी आज्ञानुसार चलनेवाली श्रीकस्तूर-बाईको एकान्तमें दादस देकर श्रीमोहन घरसे निकले ॥ ८४ ॥

मातुराशीर्वचोवर्मरक्षितः शिष्टशेमुषिः ।
भूयो भूयः प्रणम्यासौ मातृपादौ विनिर्गतः ॥ ८५ ॥

माताके आशीर्वादरूप कवचसे सुरक्षित, उत्तमबुद्धिवाले मोहन माताके चरणोंमें बार बार प्रणाम करके घरसे निकले ॥ ८५ ॥

प्राप्तो मोहमयीं दिव्यां नगरीं ज्यायसा सह ।
समयप्रातिकूल्येन सिन्धुयात्रां न्यरुद्ध सः ॥ ८६ ॥

घरसे निकलकर श्रीमोहन बडेभाईके साथ दिव्य नगरी बम्बई गये। परन्तु उस समय समुद्रमे तूफान था अतः समुद्र यात्राको बन्द रखा ॥८६॥

* मासानसौ कतिपयानथ मोहमय्यां,
नीत्वा स्वजातिवचनानि तृणाय मत्वा ।
शान्ते च शम्बरनिधौ परदेशयात्रां,
पादार्पणं रचयितुं विदधे तरण्याम् ॥ ८७ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामि श्रीमद्भगवदाचार्यमहाराज प्रणीते भारतपारिजाते
तृतीयः सर्गः

श्रीमोहनने कुछ मास बम्बईमें ही बिताकर, स्वजातिवालोंके समुद्रयात्रानिषेधक वचनोंकी कुछ भी परवा न करके, समुद्रके शान्त होनेपर, विदेशयात्रा करनेकेलिये जहाजमें पदार्पण किया ॥ ८७ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते तृतीयः सर्गः

* वसन्ततिलका छन्द ।

※ चतुर्थः सर्गः

श्रीरामभद्रस्मरणं विधाय पोतं विवेशोपविवेश धीरः।
प्रीते निजस्थान उदारचेताश्चचाल पोतः शनकैश्च तस्मात्॥ १॥

भगवान् रामका स्मरण करके धीर मोहनने जहाजमें प्रवेश किया और अपने खरीदे हुए स्थान पर वह जा बैठे। वह जहाज वहाँसे धीरे धीरे चला॥ १॥

श्रीभारतीयामवनिं स मूर्ध्ना नतेन सश्रद्धमथो ननाम।
युवा समस्तान्विससर्ज बन्धूनुपस्थितान्सिन्धुतटे विनम्रः॥ २॥

उस युवा मोहनने मस्तक झुकाकर भारतभूमिको श्रद्धाके साथ प्रणाम किया। समुद्रके तटपर उपस्थित सम्बन्धियोंको नम्र होकर विदा किया॥ २॥

सद्रत्नमाच्छिद्य पलायमानो दयाविगो दस्युरिवाधिपोतः।
आदाय तं मोहनमाशु सर्वलोकेक्षणध्वान्तधरो विलुप्तः॥ ३॥

जैसे कोई निर्दय चोर-डाकू (किसीके) बहुमूल्य रत्नको छीनकर भागता हो वैसे ही वह जहाज मोहनको लेकर शीघ्रही सबकी आँखोंसे छिप गया॥ ३॥

हरन्नयं मोहनदीप्तरत्नं कृतार्थतामात्मनि मन्यमानः।
जयध्वनिं चारचयं[†] अकार कबन्धबिन्दुप्रसुमनांसि भीक्ष्णम्॥ ४॥

वह जहाज मोहनरूप देदीप्यमान रत्नको हरण करताहुआ अपने मनमें कृतार्थताका अनुभव करताहुआ, और जयध्वनि करताहुआ जल-बिन्दुरूप पुष्पोंको बारबार बिखेरने लगा॥ ४॥

※ इस सर्गमें उपजाति छन्द है।

† क विक्षेपे।

मध्येसमुद्रं सहसा विलोक्य सर्वत्र नीलामलनीरराशिम् ।
ऊर्ध्वं ततं नीलनभोवितानं सर्वं जगच्छ्याममयं स मेने ॥ ५ ॥

बीचसमुद्रमें चारों ओर निर्मल नील नीरसमूहको देखकर तथा ऊपर नीलाकाशरूप चन्दवाको देखकर मोहनने सारे जगत्को श्याममय अनुभव किया ॥ ५ ॥

शनैः शनैः प्राप स तं प्रदेशं मायानटी नृत्यति यत्र नित्यम् ।
लीलाश्च लक्ष्मीर्वितनोति यत्र यो भारतं शास्ति निजार्थहेतोः ॥ ६ ॥

धीरे धीरे मोहन उस प्रदेशमें पहुँचे जहाँ नित्य माया-नटीका नृत्य होता है, लक्ष्मी अपनी लीला करती रहती है और जो प्रदेश अपने ही लाभकेलिए आज भारतका शासन कर रहा है ॥ ६ ॥

सदाचचारैव सदा विदेशे वसन्प्रतिज्ञात्रयमप्यजस्रम् ।
मातुः पुरस्तच्चगृहीतमेष सुखेन धीरो निरवाह वीरः ॥ ७ ॥

विदेशमें निवास करते हुए धीर और वीर मोहनने माताके सामने ली हुई तीनों ❀प्रतिज्ञाओंका सुखके साथ अखण्डितरूपसे निर्वाह किया ॥ ७ ॥

यदाकदाचित्स्खलनोन्मुखोऽभूत्तदा सदाऽरक्षदमुं मुकुन्दः ।
हृत्पुण्डरीकेऽस्य सदा विहारी भक्ताधिराजस्य दयापयोधिः ॥ ८ ॥

जब जब वह अपनी प्रतिज्ञासे स्खलित होनेकी स्थितिमें आ पहुँचते थे तब तब उनके परमभक्त हृदयकमलमें विहार करनेवाले दयासागर मुकुन्द--सर्वपापोंके विनाशक श्रीराम उनकी रक्षा कर लेते थे ॥ ८ ॥

कदाचिदाङ्ग्लप्रतिकर्मणाऽसौ कदापि दीनप्रतिकर्मणाऽपि ।
चातुर्यधुर्यं विततोऽधिरस्य प्रविष्ठितो वर्षगणं निनाय ॥ ९ ॥

❀ व्यभिचारत्याग, मांसत्याग और सुरापानत्याग यही तीन प्रतिज्ञाएँ उन्होंने अपनी माताके सामने विलायत चलते समय ली थीं ।

मोहनने विलायतमें चातुर्यधुर्यम् अधिरुह्य = बहुत चतुरताके साथ, नम्रताके साथ, कभी अंग्रेजोंकी पोशाक पहिनकर और कभी दीनजनयोग्य पोशाक पहिनकर, प्रतिष्ठापूर्वक कई वर्ष वहाँ व्यतीत किये ॥ ९ ॥

स फ्रेञ्चभाषां मधुरामतीव लेटिन्गिरं चापि समध्यगीष्ट ।
कालेन तेनैव समस्तविद्यामहापगानाथपदं प्रतीच्छन् ॥ १० ॥

उसी समयमें समस्तविद्यासागरके पदको प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने अत्यन्तमधुर फ्रेंचभाषाका और लेटिन् भाषाका भी अध्ययन किया ॥ १० ॥

यूरोपकार्यं च समाप्य वर्षत्रयेण बैरिष्टर एव भूत्वा ।
नैकानुभूतीर्निपुणं गृहीत्वा स्वजन्मभूमिं प्रतिसम्प्रतस्थे ॥ ११ ॥

यूरोपका कार्य पूरा करके—तीन वर्षमें बैरिष्टर बनकर, अनेक अनुभवोंको भले प्रकार ग्रहण करके अपनी जन्मभूमिके लिये ❀ उन्होंने प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

गत्वा जनन्याः पदयोः पतामि पुनस्तदाशीर्वचनं भजामि ।
आत्मोपनत्या च मनोऽपि तस्याः प्रमोदयामीति मनोरथालिः ॥ १२ ॥

जाकर माके चरणोंमें प्रणाम करूँगा, पुनः उनके आशीर्वाद ग्रहण करूँगा, अपनी उपस्थितिसे उनके मनको मुदित करूँगा, यह सब मोहनकी मनोरथमालाएँ थीं ॥ १२ ॥

यद्यत्कृतं यच्च विचेष्टितं मे यद्वाप्यधीतं महता श्रमेण ।
सोढानि दुःखानि च यानि तानि निवेदयिष्ये क्रमशो जनन्यै ॥१३॥

जो कुछ मैंने विदेशमें किया है, जो मेरी चेष्टाएँ थीं, जो कुछ मैंने महान् श्रमसे पढ़ा है, जो दुःख मैंने सहन किये हैं, सभी बातें क्रमसे माको सुनाऊँगा ॥ १३ ॥

❀ ता. १०-६-१८९१ ई. को बैरिष्टर हुए और ता. १२-६-९१ को हिन्दुस्तानके लिये चल दिये ।

प्रेम्णो गतायाः किल पारतन्त्र्यं तस्याः करस्पर्शमवाप्य भूयः।
अपाकरिष्यामि च तद्वियोगाद्दुःखं मदीये हृदि लब्धजन्म ॥ १४ ॥

प्रेमपरतन्त्र माके पुनः करस्पर्शको प्राप्त करके, उसके वियोगसे जो दुःख मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ है, उसको दूर करूँगा ॥ १४ ॥

परस्सहस्रा सुविचारमाला जग्रन्थ मार्गे सुधियां वरिष्ठः।
परन्तु देवेन विचारितं यत्कथं च तन्निष्फलतां समेतु ॥ १५ ॥

इसी प्रकारकी सहस्रों विचारमालाएँ मोहनने गूँथ डालीं, परन्तु ईश्वरकी जो इच्छा होती है वह कभी निष्फल नहीं जाती ॥ १५ ॥

समागतो मोहमयीं समुत्को बाष्पयानात्तरेः सोऽवततार तूर्णम्।
ज्यायांसमायातमुदस्रचक्षुर्बन्धुं नतेन प्रणनाम मूर्ध्ना ॥ १६ ॥

बम्बई पहुँचकर मोहन शीघ्र ही जहाजसे नीचे उतरे। आये हुए बडेभाई को देखकर उनकी आँखें भींज गयीं। सिर झुकाकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥

चिरादवाप्तं निजसोदरं तं ज्यायानपि प्रेमभरेण बन्धुः।
समालिलिङ्गाशु मुदा चुचुम्ब शिरःप्रदेशं तदमूल्यबन्धोः ॥ १७ ॥

बडे भाईने भी चिरकालके पश्चात् अपने सगे भाईको पाकर शीघ्र ही छातीसे लगा लिया। उस अमूल्य बन्धुके शिरको प्रसन्न होकर चुम्बन किया ॥ १७ ॥

निशम्य बन्धोर्मुखतो जनन्याः स्वर्गे निवासं चिखिदे परं सः।
एतस्य संकल्पितवर्धितायामाशालतायामशनिः पपात ॥ १८ ॥

भाईके मुखसे माताका स्वर्गवास सुनकर मोहनको अत्यंत दुःख हुआ। सङ्कल्पित और वर्धित उनकी आशालता पर बिजली गिर गयी ॥ १८ ॥

श्राद्धं च तत्र स जगाम तस्मान्नातिप्रहृष्टो हृदि राजकोटम्।
प्रणम्य मान्यान्सुसखान्मिलित्वा पप्रच्छ सर्वान्कुशलं विदग्धः ॥१९॥

मालाके समाचारसे वह अत्यन्त दुःखितमनसे ही भाईके साथ राजकोट गये। बड़ोंको प्रणाम किया। सम्बन्धियोंसे मिलकर सबका कुशल समाचार पूछा॥ १९॥

आराधयन्तीं पतिदेवताया हिताय नित्यं कुलदेवतां सः।
कस्तूरदेवीं विरहाग्निदग्धां पत्नीं चकाराथ भुजान्तरे ताम्॥ २०॥

जो अपने पतिदेव (मोहन) के कल्याणके लिये अपनी कुलदेवताकी आराधना करती थीं, पतिवियोगमें जो जल चुकी थीं उन श्रीकस्तूरदेवीका उन्होंने आलिङ्गन किया॥ २०॥

पतिप्रवासोपनताद्वियोगानलाद्वितप्तां प्रथितैकवेणीम्।
आलिङ्ग्य यां शान्तिमुपानिनाय क्षमश्च तां वर्णयितुं भवेत्कः॥ २१॥

पतिके प्रवाससे प्राप्त जो वियोगानल, उससे तपी हुई तथा पतिवियोगसे जिन्होंने * वेणी बाँध रखी थी, उन कस्तूरबाईका आलिङ्गन करके उन्हें जो † सुख प्राप्त हुआ उसके वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है?॥ २१॥

गतेष्वनेहःसु च राजकोटात्स प्राड्विवाड्मोहनदासगाधी।
स्वप्राड्विवाकत्वं व्यवहर्तुकामो जगाम मुम्बां प्रियबन्धुनुन्नः॥ २२॥

कुछ दिन बीत जानेपर, वह बैरिस्टर मोहन, अपने प्रियभाईकी प्रेरणासे बैरिस्टरी करनेकेलिये बम्बई गये॥ २२॥

---

* परदेशे स्थिते पत्यौ धर्मभीरुः पतिव्रता।
न तैलाभ्यञ्जनं केशशृङ्गारं नापि धारयेत्॥

जब पति परदेशमें हों तो भारतकी स्त्रियाँ न तो अपने शरीरमें तेल-फुलेल लगाती हैं और न बालोंका शृङ्गार करती हैं। अतः वेणी बँध जाती है।

† पत्नीका अपनेमें अनन्य प्रेम देखकर प्रसन्न होना किसी भी गुणिजनोंके लिये स्वाभाविक गुण है।

पर न तत्र स्थितिरस्य जाता चिरं ततो भूय इयाय कोटम्।
कथंकथंचित्पदमत्र मान्यः आरोपयामास मनाङ्मनस्वी ॥ २३ ॥

परन्तु चिरकालतक उनकी वहाँ स्थिति नहीं हुई अतः पुनः वह राजकोट गये। राजकोटमें किसी किसी तरहसे माननीय मोहनने अपना पैर जमाया ॥ २३ ॥

श्वेताङ्ग आसीदिह कोपि राजकर्मी प्रकृत्याऽसरलोऽभिमानी।
स एकदा मोहनदासमेनं क्षणादवामानयदुद्धतेशः ॥ २४ ॥

यहाँपर एक कोई अङ्ग्रेज राजकर्मचारी था वह स्वभावसे क्रूर और अभिमानी था। उस महान् उद्धतने एक दिन मोहनका अपमान कर दिया ॥ २४ ॥

यो मानभङ्गं सहते मनुष्यो वृथा पृथिव्यामिह तस्य सत्ता।
मत्वेत्युदीता हृदयेऽस्य काङ्क्षाऽभियोगमादर्तुमदोविरुद्धम् ॥ २५ ॥

यह विचार कर कि "जो मनुष्य मानभङ्गका सहन करता है, पृथिवीमें उसका होना व्यर्थ है" मोहनके हृदयमें उस अङ्ग्रेजके विरुद्ध मानहानिके अभियोग करने की इच्छा हुई ॥ २५ ॥

फीरोजशाहः प्रथया विवेकी न्यायालये लब्धसुकीर्त्यकीर्तिः।
निषेधयामास स मोहनं दुर्व्यापारतोऽस्मात्परिणामदुःखात् ॥ २६ ॥

फीरोजशाह एक बैरिष्टर थे। वृद्धावस्था थी। बड़े विवेकी थे। कोर्टमें उनका यश था। उन्होंने मोहनको अभियोगरूप दुर्व्यापारसे-जिसका परिणाम दुःख था, रोक दिया ॥ २६ ॥

एतद्धि नामास्ति तु पारतन्त्र्यं स्थिते च यस्मिन्नपमानराशिः।
सोढव्य एवेति भवानुपास्तां मौनं स इत्यप्यवदत्तमार्तम् ॥ २७ ॥

व्याकुल बने हुए मोहनको श्रीफीरोजशाहने यह भी कहाकि "इसीका नाम तो परतन्त्रता है। इसके रहते रहते अनेक अपमान सहन करने ही पड़ेंगे, अतः आप चुप रहिये" ॥ २७ ॥

प्रपन्नोऽसौ तस्य वचो निशम्य शर्म प्रपेदे विरदाद्वतीनाम् ।
न व्यस्मरत्किन्तु निखातमेतच्छल्यं मनस्येव महामनीषी ॥ २८ ॥

यद्यपि मोहनने, अन्य उपाय न होनेसे, श्रीफीरोजशाहके कहनेसे शान्तिका अवलम्बन ही किया परन्तु उस महाविद्वानने मनमें गडे हुए काँटेके समान उसे भुला नहीं दिया ॥ २८ ॥

तस्यैव चाङ्ग्लस्य सदाधिपत्ये तन्मण्डपे मोहनकृत्यजातम् ।
दैनन्दिनं वृत्तमतोऽतिगर्ह्यं तस्माद्विवाक्त्वं नितरां स मेने ॥ २९ ॥

उसी अङ्ग्रेजकी इजलासमें मोहनका हमेशा कार्य रहा करता था । अतः वह बैरिष्टरी मोहनको बहुत दुःखदायी हो गयी ॥ २९ ॥

न चेत्प्रसन्नः स तदा तदीयं कृत्यं समस्तं परिवर्तयेत ।
मिथ्यास्तुतिस्तोममयं विधातुं नैच्छत्ततो व्याकुलतां प्रपेदे ॥ ३० ॥

यदि वह अंग्रेज प्रसन्न न रहे तो मोहनके सब कामोंका उलटपलट कर दे । और वह मिथ्याप्रशंसा करना चाहते नहीं थे अत· वह बहुत घबरा गये ॥ ३० ॥

सुदामपुर्याः सितवर्ष्मदस्तेऽप्यासीत्तदा शासनमर्तिपूर्णम् ।
मेराः प्रजुनाः सकला बभूवुः करातिवृद्धिं बहुधा समीक्ष्य ॥ ३१ ॥

उस समय सुदामापुरी (पोरबन्दर) का शासन अंग्रेजोंके हाथोंमें था और वह दुःखपूर्ण था । मेरजातिके लोग तरह तरह के टैक्सोंकी वृद्धि देखकर बहुत व्यथित थे ॥ ३१ ॥

साहाय्यमाधातुमना. स तेषां श्रीमोहनः प्रायतत स्वशक्त्या ।
सहस्रधाऽप्याचरितैः प्रयत्नैर्वार्या न रेखा परमत्र दैवी ॥ ३२ ॥

उनकी सहायताकी इच्छासे मोहनने अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न तो किया । परन्तु दैवी रेखा सहस्रों प्रयत्नोंके करनेपर भी हटायी नहीं जा सकी ॥ ३२ ॥

तदैव तद्राज्यपतौ च कश्चिद्राज्याधिकारः परिकल्प्य आसीत्।
लब्धाधिकारेऽप्यथ भूमिपाले जाता न मेरा व्यथया विमुक्ताः ॥ ३३ ॥

उसी समय सुदामापुरीके राणासाहबको कुछ सत्ता दी जानेवाली थी। राणासाहेब सत्ता तो पा गये परन्तु मेर लोग दुःखसे न छूटे ॥ ३३ ॥

नो साधनं तत्सविधे तदासीद्धरिष्ठधर्माधिपमण्डपाग्र्ये।
पुनर्विचाराय निवेदनेन विना तदर्थस्य महार्थकस्य ॥ ३४ ॥

उस महार्थक—परमावश्यक कार्यको हाई कोर्टमें पुनः विचार करनेके लिये प्रार्थना करनेके सिवाय मोहनके पास दूसरा कोई भी उपाय नहीं था ॥ ३४ ॥

न्यायस्तु तत्रापि सुदुर्लभः स्यात्कालव्ययश्चापि वृथाश्रमोऽपि।
अत्याकुलेनापि हितैषिणाऽपि न्यपेवि मौनं तत एव तेन ॥ ३५ ॥

समय भी जायगा और श्रम भी होगा, तथापि हाईकोर्टमें भी न्याय मिलना तो कठिन है अतः मोहन यद्यपि मेरोंका हित चाहते थे, उसके लिये वह बहुत व्यग्र भी थे, तथापि चुप रह गये ॥ ३५ ॥

इमा अकल्प्या घटना अकस्माद्दूनं मनो मोहनदासगांधेः।
व्यधुर्न्यषेविष्ट ततो नितान्तमौदास्यमारादुपकारशीलः॥ ३६ ॥

इन सब अकल्पनीय घटनाओंने मोहनके मनको अकस्मात् दुःखित बना दिया। अतः उपकारपरायण मोहन उदास रहने लग गये ॥ ३६ ॥

तस्मिन्कठोरे समयेऽस्य बन्धोः पार्श्वे शुभावेदकमेकपत्रम्।
कस्यापि लक्ष्मीपति मोमिनस्य समागतं साम्रदमाफ्रिकातः ॥ ३७ ॥

उसी ही कठिन समयमें उनके भाईके पास आफ्रिकासे एक मेमन जातिके व्यापारीका शुभसूचक आग्रहपूर्ण पत्र आया ॥ ३७ ॥

प्रवर्तमानोऽस्त्यभियोग एको न्यायालयेऽत्रैव महांश्चिरेण।
ममेति तन्मोहनदासमत्र प्रेष्यानुगृह्णातु भवान्द्रुतं माम् ॥ ३८ ॥

दो श्लोकोंमें उस पत्रका सार कहा जाता है:—यहाँ पर कोर्टमें बहुत दिनों से मेरा एक मुकदमा चल रहा है। शीघ्र ही श्रीमान् मोहनको यहाँ भेजकर मुझे अनुगृहीत करें ॥ ३८ ॥

यद्यप्यनेकेऽत्रमयाऽवरुद्धा बैरिष्टरा बुद्धिवरा वकीलाः।
तथापि चेदत्र स एति नूनं साहाय्यमस्माकमुपस्थितं स्यात्॥ ३९ ॥

यद्यपि मैंने यहाँपर बहुतसे बुद्धिशाली बैरिष्टर और वकील रोक लिये हैं तो भी यदि श्रीमोहन यहाँ आवें तो अवश्य मुझे बड़ी सहायता मिले ॥ ३९ ॥

प्राप्येति पत्रं मुमुदे स बन्धुमाहूय तत्कालमुदाराशयम्।
श्रीमोहनं तद्दलगर्भवृत्तं निवेदयामास विदां वरेण्यम्॥ ४० ॥

इस पत्रको पाकर बड़े भाई बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय उदार मनवाले बुद्धिमान् श्रीमोहनको बुलाकर उन्होंने पत्रका वृत्तान्त सुना दिया ॥ ४० ॥

उद्वेजितोऽनिष्टसमाजवृद्धदोषानुवृत्त्या निजदेशवासम्।
विहातुकामः स च तत्र गन्तुमूरीचकाराथ बभार हर्षम्॥ ४१ ॥

समाजमें अनिष्ट दोषोंकी प्रतिदिन वृद्धि देखकर मोहन व्याकुल हो चुके थे। स्वदेश छोड़नेकी इच्छा ही कर रहे थे। अतः उन्होंने अफ्रिका जानेको स्वीकार कर लिया। वह बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥

स्वर्गं गताऽऽसीज्जननी तदीया काष्ठा परा प्रेममहार्णवस्य।
ततो न दुःखाय बभूव किंचिद्भार्यावियोगेन विना तदानीम्॥ ४२ ॥

प्रेमसागरकी अन्तिम सीमा होती है, वह तो पहिले ही स्वर्गवासिनी हो चुकी थी अतः उस समय मोहनको स्त्रीवियोगके सिवाय और कुछ भी दुःखदायी नहीं था ॥ ४२ ॥

अजायतास्यात्मजरत्नयुग्मं परं न बन्धाय बभूव तस्य।
यार्थो न भार्याप्रियता तदानीमासीत्परं तस्य यमीश्वरस्य॥ ४३ ॥

उस समय उनके दो पुत्र भी हो चुके थे परन्तु उनका कोई बन्धन नहीं था। उस समय उनके लिये स्त्रीका प्रेम अनिवार्य था ॥ ४३ ॥

यद्भ्रातरि प्रेममहार्घ्यरत्नं हृदि स्वकीये कुशलो ररक्ष।
न तत्ससर्जाधिकमाधिमस्य तदाज्ञयैवैष उपक्रमो यत् ॥ ४४ ॥

कोई आक्षेप करे कि स्त्रीका इतना प्रेम और जिस भाईने उनकेलिये इतना प्रेम प्रदर्शन किया, सुखकी सब व्यवस्थाएँ कीं; उसकेलिये कोई ममता मोहनके मनमें नहीं थी ? इसका समाधान करते हैं :—
कुशल मोहनने अपने बडे भाईके प्रति अपने हृदयमें जिस प्रेम-महारत्नको धारण किया था वह उनकेलिये दुःखद नहीं हुआ; क्यों कि उन्हींकी आज्ञासे ही तो वह आफ्रिका जा रहे थे। तात्पर्य यह है कि गुरुजनकी आज्ञामें प्रसन्नता ही होनी चाहिये ॥ ४४ ॥

स्वजन्मभूमेर्बहुलो वियोगः सोढो विदेशे वसता च तेन।
वर्षत्रयं तेन हि तद्वियोगो नातीव दुःखाय बभूव तस्य ॥ ४५ ॥

मातृभूमिके वियोग-दुःखका परिहार करते हैं:—अपनी जन्मभूमिके वियोगका दुःख तो उन्होंने विलायतमें ३ वर्षोंके निवाससे सहन करलिया था अतः उसका वियोग भी बहुत दुःखदायी नहीं हुआ ॥ ४५ ॥

एकेन वर्षेण पुनः समेत्य भवीयभोगान्हृदयेश्वरीह।
आवामशोकौ विविधान्विधानैर्भोक्ष्यावहे मा शुचमत्र कार्षीः ॥ ४६ ॥

अब श्रीकस्तूरबाईकी सान्त्वनाका क्रम वर्णन करते हैं :—हृदयेश्वरि ! एक वर्षमें ही मैं पुनः वापस आऊँगा। निश्चिन्त होकर हम दोनों विधि-पूर्वक सांसारिक भोगोंको भोगेंगे। अतः शोक मत करो ॥ ४६ ॥

नात्राधिवासो मम लाभकारी भवेदिदानीं समुपद्रुतस्य।
विघ्नैः सहस्रैर्मदसुप्रिये तन्मुदानुजानीहि ननु प्रसीद ॥ ४७ ॥

इस समय सहस्रों विघ्नोंके कारण मेरे साथ यहाँ बहुत उपद्रव है अतः यहाँका अधिक निवास मेरेलिये लाभदायक न होगा। अतः हे प्राणप्रिये ! प्रसन्न हो और मुझे जानेकी आज्ञा दे दो ॥ ४७ ॥

यद्यामहं त्वं रचयिष्यसीह प्रिये निवासाय ममातिमात्रम् ।
सहिष्यसे तर्हि मया सहैवाऽपदां पदं तेन भव प्रसन्ना ॥ ४८ ॥

हे प्रिये! यदि तुम मुझे यहाँ ही रहनेकेलिये अत्यन्त आग्रह करोगी तो मेरे साथ ही तुम भी दुःख सहन करोगी। अतः प्रसन्न हो जाओ ॥ ४८ ॥

वचोभिरेतैः परिबोध्य भार्यां तद्दुःखभारं लघु लाघवं सः ।
नीत्वा तया चानुमतो मनीषी स्वास्थ्यं प्रपेदे हृदि वीतरागः ॥ ४९ ॥

किसी रीतिसे श्रीकस्तूरबाईको समझा बुझाकर उनके दुःखको शीघ्र ही हल्का करके, उनकी अनुमति प्राप्त करके वीतराग श्रीमोहन हृदयमें प्रसन्न हुए—स्वस्थ बने ॥ ४९ ॥

अथ प्रतस्थे व्रजितुं सहिष्णुर्मुदाफ्रिकां भाग्यपरीक्षणाय ।
मुम्बापुरीतो गुरुबाष्पनावमारुह्य सद्भारतभूमिसूनुः ॥ ५० ॥

इसके पश्चात् भारतभूमिके प्रियपुत्र परमसहिष्णु मोहन भाग्यपरीक्षाके-लिये बम्बईसे जहाज़पर चढ़कर अफ्रिका जानेकेलिये प्रसन्नतासे चल दिये ॥५०

*विश्वार्तिनाशनसमर्थपरार्थसिद्ध्या-
धानैद्धबुद्धिविभवोल्लसिताननेन्दुः ।
श्रीमोहनोऽतिमदमत्तसिताङ्गवर्ग-
क्रौर्यस्य मूर्ध्निपदमाफ्रिकभुव्यधात्सः ॥ ५१ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
चतुर्थः सर्गः

विश्वके दुःखको नाश करनेमें समर्थ, परार्थसिद्धि=परोपकार-में लगे हुए तीव्र बुद्धिरूप विभवसे प्रसन्नमुखवाले श्रीमोहनने, मदोन्मत्त अंग्रेजोंकी क्रूरताके सिरपर और आफ्रिकाकी पृथिवीपर, साथ ही अपना पैर रखा अर्थात् वह आफ्रिका पहुँच गये ॥ ५१ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते चतुर्थः सर्गः

* वसंततिलका छन्द ।

❀ पञ्चमः सर्गः

प्रायेण मासेन समुत्सुको जगत्कल्याणकल्यप्रतिभासनक्षमः ।
नातालमापत्प्रतिकूलभावनैः श्वेताङ्गकैः पूर्णमसौ च मोहनः ॥ १ ॥

समस्तजगत्के कल्याणके प्रातःकालको प्रकाशित करनेमें समर्थ, और उत्सुक श्रीमोहन, एक महीनेमें, विरुद्धभावनावाले अंग्रेजोंसे परिपूर्ण नातालमें पहुँच गये ॥ १ ॥

नातालपोताशय एव बुद्धिमान्दृष्ट्वा सिताङ्गव्यवहारपद्धतिम् ।
श्रीमोहनो भारतभूमिजन्मनां घोरापमानं बहुधाऽन्वमास्त सः ॥२॥

नातालबन्दरपर ही बुद्धिमान् मोहनने अंग्रेजोंकी व्यवहारपद्धतिको देखकर भारतवासियों के भयङ्कर अपमान का अनुमान कर लिया ॥ २ ॥

येनायमाहूत इयाय चाग्रिकां नाम्नाऽबदुल्ला धनिकालितलजः ।
आनेतुमासीदथ कार्मचन्द्रि यातः स्वयं स्वागतिकत्वमेत्य ॥ ३ ॥

जिन्होंने मोहनको बुलाया था वह सेठ अब्दुल्ला भी बन्दरपर स्वागत करनेवालेके रूपमें मोहनको लेनेकेलिये स्वयम् आये थे ॥ ३ ॥

फ्राकोटमुत्कृष्टतमं कलेवरे शीर्षे च वल्लोपममुल्वणौजसि ।
उष्णीषमुष्णद्युतितुल्यतेजसं लोकास्तमैक्षन्त यसानमद्भुतम् ॥ ४ ॥

उस समय शरीरपर तो सुन्दर फ्राकोट और तेजस्वी शिरपर बल्ली-लियोंके समान पगडी पहिने हुए, सूर्यसमान तेजस्वी श्रीमोहनको लोगोंने एक अजनबीके समान देखा ॥ ४ ॥

नीतोऽबदुल्लाधनिकेन सोऽगमन्न्यायालयं द्रष्टुमथो कदाचन ।
सोष्णीषमेतं परिवीक्ष्य मण्डपे न्यायासनस्याधिपतिः चुकोप सः ॥५॥

❀ इस सर्गमें इन्द्रवंशा छन्द है ।

किसी दिन श्रीअब्दुल्लासेठ श्रीमोहनको कचहरी दिखानेको ले गये। पगड़ी पहिने हुए इनको इजलासमें देखकर जज बड़ा क्रुद्ध हुआ ॥ ५ ॥

न्यायासनस्वामितया विवर्धिनीमत्यन्तमोहक्षणदाक्षणच्छटाम् ।
आद्दाय सोऽर्याननुसृत्य मोहनं कर्तुं शिरोवेष्टमधः स्वमूर्धतः ॥ ६ ॥

न्यायाध्यक्ष होनेके कारण, बढ़नेवाली अत्यन्त मोहरात्रिकी क्षणिक छटाके अनुसार उस, जजने मोहनको सिरसे पगड़ी नीचे उतारनेको कहा * ॥ ६ ॥

सोऽपि स्वभावात्सरलोऽपि कोपतो मानाधिकश्रीरतिमत्तमानहृत् ।
त्यक्त्वाशु तं न्यायमहालयं ययौ प्राणास्त्यजेयुर्न हि मानमीश्वराः ॥ ७ ॥

श्रीमोहन स्वभावसे सरल थे तो भी मानवान् थे और मदोन्मत्तोंके मानको हरण करनेवाले थे। अतः क्रोधसे शीघ्र ही कचहरी छोड़कर बाहर चले गये। ठीक ही है—महान् लोग प्राण भले छोड़दें परन्तु मान नहीं छोड़ते ॥ ७ ॥

पत्नीं प्रियां प्राणसमौ च देहजौ यस्मात्स्वजन्मावनिमुत्ससर्ज सः ।
तद्दुःखमत्रापि तमन्वगादिति स्वल्पं ततापाथ बभूव शान्तिभृत् ॥ ८ ॥

जिस दुःखसे श्रीमोहनने प्रियपत्नी, प्राणसमान प्रिय दो पुत्रों, और अपनी जन्मभूमिको छोड़ा वह दुःख अभी भी उनके पीछे लगा था, अतः वह थोड़ासा खिन्न हुए और पश्चात् शान्त हुए ॥ ८ ॥

शौर्यं सदैवातिमहत्प्रशस्यतां धत्ते यदल्पे न दधाति मूर्धनाम ।
दुष्टा न चेत्स्युर्ननु साधुपूरुषव्यक्तिः कथं स्यादथ मर्त्यभूतले ॥ ९ ॥

महान् लोग उसी शूरताकी प्रशंसा करते हैं जो क्षुद्रोंपर प्रकट नहीं की

* सीधा सादा अर्थ यह है—वह जज था अतः उसको अभिमान था। उसी जजपनेके अभिमान से उसने श्रीमोहनको सिरसे पगड़ी उतार देनेको कहा।

जाती। यदि दुष्ट न हों तो इस संसारमें साधुपुरुषोंका पृथक्करण कैसे हो ? ॥ ९॥

त्याज्यं शिरोवेष्टनमाङ्ग्लटोपिका धार्येति तच्चेतसि धारणाऽऽगता ।
अब्दुल्लमत्या प्रतिरोधितो हठादुज्झाञ्चकार स्वमतिं स तां तदा ॥१०॥

श्रीमोहनके मनमें यह विचार हुआ कि पगड़ी छोड़कर टोप पहन लूँ। परन्तु अब्दुल्लासेठके हठसे उन्होंने इस विचारको छोड़ दिया ॥१०॥

सा वृत्तपत्त्रेषु कथा प्रवेशिता न्यायालयीया किल तेन कुत्सिता ।
तत्रातिचर्चा चलितेयमद्भुता तेन प्रसिद्धिं समवाप मङ्क्षु सः ॥११॥

श्रीमोहनने कचहरीकी इस पगड़ी उतारनेवाली वाहियात बातको पत्रोंमें लिखकर भेज दी। इसपर विचित्र चर्चा होने लगी। इस रीतिसे श्रीमोहन शीघ्र प्रसिद्धिको प्राप्त हो गये ॥ ११ ॥

देशात्स्वकीयादभियोगकर्मणि यस्मिन्नियुक्तोऽगमदाफ्रिकामसौ ।
तस्यैव हेतोर्नगरं प्रिटोरियां गन्तुं समादिष्टदमुं धनाधिपः ॥ १२ ॥

जिस मुकदमेमें नियुक्त होकर स्वदेशसे आफ्रिका यह गये थे उसी अभियोगकेलिये शेठ अब्दुल्लाने प्रिटोरिया जानेको उन्हें कहा ॥ १२ ॥

श्रेणीं समग्र्यामथ धूमसद्रथे श्रीमोहनः शान्तमना व्यभूषयत् ।
नो सोऽग्रहीत्किन्तु परां निदर्शनीं स्वस्वापहेतुं द्रविणव्ययोद्धिया ॥१३॥

श्रीमोहन रेलगाडीमें समग्र्या श्रेणी = फर्स्टक्लासमें शान्तिसे बैठ गये। परन्तु उन्होंने द्रव्यव्ययके भयसे सोनेकेलिये टिकट नहीं लिया ॥ १३ ॥

उक्तं च तेन द्रविणाधिपेन नो पश्यामि कार्पण्यविधानकारणम् ।
औन्न्यं धनस्येश्वरसम्प्रसादतो नो विद्यते मे न मनोऽस्ति तुच्छकम् ॥१४॥

शेठ अब्दुल्लाने कहा कि व्ययमें कृपणता करनेका कोई कारण नहीं होना चाहिये। भगवान्‌की कृपासे मुझे धनकी कमी नहीं है। मेरा मन भी तुच्छ—कंजूस नहीं है ॥ १४ ॥

मारीत्सबर्गं स यदाप मोहनः कश्चित्तमागान्निकषाऽऽधिकारिकः ।
पाश्चात्यभागे गमनाय तत्रथे प्रोवाचसत्याग्रहिणं हठी स तम् ॥१५॥

जब मोहन मारीत्सबर्गमें पहुँचे तो उनके पास एक रेल्वे कर्मचारी आया और उस हठीने सत्याग्रही श्रीमोहनको गाडीके पिछले भागमें जानेकेलिये कहा ॥ १५ ॥

क्रीता मयेयं हि निदर्शनी यदा स्थातुं प्रमुख्यासन एव तत्कुतः ।
गन्तव्यमेतत्परिहाय पश्चिमे स प्रत्युवाचेति तमाधिकारिकम् ॥१६॥

श्रीमोहनने उस कर्मचारीसे कहा कि जब मैंने फर्स्टक्लासका टिकट लिया है तो इसे छोडकर पिछले डब्बेमें क्यों जाऊँ ॥ १६ ॥

भूयः स तं भर्त्सयति स्म चेद्भवानावतरिष्यद्भ्यवतारणे तदा ।
नूनं न्ययोक्ष्ये पुलिसं स मोहनः कर्तुं तथैवाकथयत्तमुद्धतम् ॥ १७ ॥

उसने पुनः श्रीमोहनको धमकी दी कि यदि आप नहीं उतरेंगे तो मैं आपको उतारनेकेलिये पुलिसका प्रबन्ध करूँगा । श्रीमोहनने उसे कहा कि तुम पुलिसका प्रबन्ध कर लो ॥ १७ ॥

नैर्घृण्यभाकोऽपि स दण्डधृद्बहिर्हस्ते गृहीत्वा च समाचकर्ष तम् ।
यानं गतं तस्य परिच्छदोऽखिलः संरक्षितो रेलरथाधिकारिभिः ॥१८॥

कोई एक निर्दय दण्डभृत्=पुलिसमैन आया और श्रीमोहनको हाथ पकडकर, बाहर खींच लिया । गाडी चली गयी और उनके सब सामानको रेल्वे अधिकारियोंने रख लिया ॥ १८ ॥

सत्याग्रहित्वान्न निजं परिच्छदं परपर्श हस्तादपि मोहनस्तदा ।
शैत्यप्रकोपाद्वसनासनादिभिर्हीनो महाक्लेशमवाप यद्यपि ॥१९॥

* यदि वह अपने सामानको सभाल लेते तो वह स्वेच्छासे उतरना गिना जाता । अपनी अरुचि प्रकट करने और रेल्वे अधिकारियोंके अनौचित्यके प्रति क्रोध प्रकट करनेका यही एकमात्र उपाय था कि वह कष्ट सहते ।

श्रीमोहनने सत्याग्रही होनेके कारण अपने सामानको हाथसे स्पर्श भी नहीं किया; यद्यपि अत्यधिक ठंडके कारण ओढने और बिछौनेके बिना कष्ट पाते रहे ॥ १९ ॥

योद्धव्यमाहोस्विदिहातिदुर्मदैः श्वेताङ्गकैर्मेऽप्यधिकारलब्धये ।
गन्तव्यमस्मादथवा तु भारतं श्रीमोहनः स्वे मनसीत्यचिन्तयत् ॥२०॥

श्रीमोहनने अपने मनमें विचार किया कि या तो इन महाभिमानी अंग्रेजोंसे, अधिकार प्राप्तिकेलिये; मुझे लडना चाहिये और या तो भारत चले जाना चाहिये ॥ २० ॥

सर्वा विपह्या अथवाऽवमानना: प्रीटोरियां प्राप्य समाप्य तां कृतिम् ।
पश्चात्स्वदेशाभिगमो वरो भवेदित्थं पुनश्चेतसि तेन निश्चितम् ॥२१॥

फिर उन्होंने यह निश्चय किया कि सब अपमानोंको सह लेना चाहिये और प्रिटोरिया पहुँचकर, उस कार्यको समाप्त करके तब भारत जाना अच्छा होगा ॥ २१ ॥

गौराङ्गकाणां हृदयाद्धि रङ्गिकं द्वेषं समुन्मूलयितुं यथाबलम् ।
सर्वाणि दुःखानि विपह्य चोद्यमः कर्तव्य इत्यप्यथ स व्यचिन्तयत् ॥२२॥

उन्होंने यह भी निश्चय किया कि अंग्रेजोंके हृदयमेंसे रङ्गद्वेषको निर्मूल करनेकेलिये, सब दुःखोंको सहकरके भी, यथाशक्ति उद्यम करना चाहिये ॥ २२ ॥

कल्ये स तारेण महाप्रबन्धकं रेलीययानस्य गतार्थसूचकम् ।
शीघ्रं समाचारमजीहयत्तया नातालिकं तं यवनं धनाधिपम् ॥२३॥

प्रातःकाल श्रीमोहनने रेल्वेके मैनेजरको, उनके साथ रेल्वे कर्मचारियोंने जो व्यवहार किया था, तारद्वारा उसकी सूचना भेज दी तथा नातालके उन श्रीअब्दुल्ला शेठको भी इस घटनाकी सूचना तारसे ही भेज दी ॥ २३ ॥

मारीत्सवर्गे च निवासिनो जना आब्दुल्लतारेण विबुध्य तत्कथाम् ।
श्रीभारतीयास्त्वरितं गताश्च तं रात्रौ रथेनाथ ययौ प्रिटोरियाम् ॥२४॥

सेठ अब्दुल्लाने श्रीमोहनके तारको पाकर मारीत्सवर्गमें रहनेवाले भारतीय बन्धुओंको तारसे सूचना दी। वह लोग श्रीमोहनके साथ बनी हुई उस घटनाको जानकर शीघ्र ही उनके पास स्टेशनपर आये। श्रीमोहन रातकी गाडीमें प्रिटोरिया चले गये॥ २४॥

प्रीटोरियां यावदथो पुरा रथो बाष्पप्रयुक्तो न च गच्छति स्म ह।
तच्चार्ल्सटाउन्नितिनाम बिभ्रतीं गत्वा पुरीं सोऽववतार यानतः ॥२५॥

पहिले बाष्पप्रयुक्तः—भापसे चलनेवाला रथ अर्थात् रेल्गाडी प्रिटोरियातक नहीं जाती थी अतः श्रीमोहन चार्ल्सटाउन जाकर गाडीसे उतर पडे॥ २५॥

तस्माच्च जोहानिसवर्गपत्तनं गम्यं तुरङ्गाधिरथेन केवलम्।
तत्रापि गौराङ्गसुयोऽतिदुर्मदास्तं पीडयामासुरलं विनिर्घृणाः ॥२६॥

वहाँसे—प्रिटोरियासे जोहानिसवर्ग केवल घोडागाडीसे ही जाया जाता था। वहाँ भी घोडागाडीमें भी दुर्मद और निर्दय अंग्रेजोंने उन्हें बहुत कष्ट दिये॥ २६॥

अन्तःप्रवेशस्तु पुरैव दुर्मुखैरावारितस्तेन हि बाह्य आसने।
तस्थौ स तस्मादपि चापसारणे यत्नो महांस्तैरभवत्समादृतः ॥२७॥

घोडागाडीमें अन्दर बैठनेको तो पहिलेसे ही दुष्ट गोरोंने मना कर दिया था अतः वह बाहरकी सीटपर जाकर बैठ गये थे। उन गोरोंने श्रीमोहनको वहाँसे भी उठानेका महान् प्रयत्न किया॥ २७॥

प्रायाचि केनापि खलेन दुर्मदाच्छ्लिन्नप्रतिकाशतनुं च बिभ्रता।
स्थेयं त्वयाऽधस्तन इत्यदो वचस्तन्मोहनोऽमंस्त न मानसद्मनः ॥२८॥

किसी कोढियलशरीर—गोरे दुष्टने श्रीमोहनसे कहा कि तुम नीचे

बैठ जावो। मोहनने उसकी बातको नहीं माना; क्योंकि मान ही तो उनका उत्तम धन था ॥ २८ ॥

केचिद्दुर्दुष्कुलजन्मसेविनो गालीश्च तस्मा अपरे चपेटिकाः।
केचिद्गृहीत्वा मणिबन्धके च तं व्याक्रष्टुमिद्धं यतनं वितेनिरे ॥२९॥

किन्हीं नीचोंने उन्हें गालियाँ दीं और किन्हींने थप्पड मारे। और कोई कलाई पकड़कर उन्हें खींचनेका प्रयत्न करने लग गये ॥ २९ ॥

एवं निकृष्टातिनिकृष्टकैरपि प्रताड्यमानो बहुधाऽन्ययात्रिषु।
केनापि कारुण्यसमार्द्रचेतसा संमोचितो हिंस्रगणात्स दुर्मदात् ॥३०॥

इस प्रकारसे यह महानीच अंग्रेज श्रीमोहनको मार और हैरान कर रहे थे। दूसरे जो यात्री बैठे थे उनमेंसे किसी एकको दया आयी और उनको उन हिंसकोंके हाथसे छुड़ा लिया ॥ ३० ॥

अस्यां जगत्यां बलराजमाश्रिता दीनान्सदैव व्यथयन्ति दुर्जनाः।
तस्मात्समुद्धारयितुं च निर्बलानीशात्परः को दधते मनस्विताम् ॥३१॥

इस संसारमें सबल दुष्ट लोग निर्बलोंको सदा हैरान करते ही रहते हैं। दुष्टोंसे दीनोंको बचानेमें श्रीरामके बिना अन्य कौन समर्थ है?॥ ३१ ॥

अस्तं गतो भानुरथागता निशा स्टण्डर्टनं प्राप्य विलोक्य भारतान्।
तत्स्वागतार्थेव समागतान्परं तोषं पुपोषाशु सदा स मोहनः ॥३२॥

सूर्यास्त हुआ। रात्रि आ गयी। स्टण्डर्टन पहुँचकर अपने स्वागतके लिये आये हुए भारतीयोंको देखकर श्रीमोहन अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥३२॥

श्रुत्वा च ते भारतवर्षवासिनस्तस्माननाद्धर्मकथाः समूचिरे।
नैतन्नवं किञ्चिदिहास्ति खेदकं नित्यापमानं विपदामहे वयम् ॥३३॥

भारतीय बन्धुओं ने श्रीमोहनके मुखसे मार्गकी कथाओंको सुनकर

यह्यपि इसमें चिन्ताजनक कोई भी नयी वस्तु नहीं है। हमलोग तो *नित्यापमान सहते हैं ॥ ३३ ॥

गन्ता भवान्प्रातरितः प्रिटोरियां प्राप्तं कथंचिन्नहि सन्निदर्शनीम्।
श्रेण्या च गन्तुं परया द्वितीयया लब्धाऽवरस्यैव च वर्गकस्य ताम् ॥३४॥

लोगोंने कहा, कल्ह आप प्रायः यहाँसे प्रिटोरिया जायँगे। परन्तु फर्स्ट या सेकेण्डक्लासका टिकट आप नहीं पा सकेंगे। निचली श्रेणीका ही टिकट आप पावेंगे ॥ ३४ ॥

तां ट्रान्सवालीयजनाधिवर्धिनीं वृत्तान्तमालां स्वजनैः समर्पिताम्।
श्रीमोहनोऽसौ हृदयेन सन्दधत्सस्माररामं व्यथितोऽतिचिन्तया॥३५॥

ट्रान्सवालवासी भारतीयबन्धुओंकी मानसिक पीडाको बढानेवाली, उस स्वजनोंके द्वारा समर्पित वृत्तान्तमालाको हृदयमें धारण करते हुए, अत्यन्त चिन्तामें व्यथित होकर, मोहनने श्रीरामका स्मरण किया। फर्स्ट-क्लासमें ही बैठकर प्रिटोरिया गये ॥ ३५ ॥

प्रोचेऽथ बाष्पीयरथेयियासता श्रेष्ठेन वर्गेण हि यास्यते मया।
चिन्ताकुले चेतसि धीरता भृशं संजायते सत्पुरुषस्य सर्वदा ॥३६॥

यियासता = प्रिटोरिया जानेकी इच्छा वाले श्रीमोहनने कहा कि मैं बाष्पीयरथे = रेल्गाडीमें फर्स्टक्लासमें ही जाऊँगा। ठीक ही है, सत्पुरुषोंके चिन्ताकुल चित्तमें अत्यन्त धैर्य पैदा होता रहता है ॥ ३६ ॥

वर्गेण सोगारप्रथमेन मोहनः प्रीटोरियां धूमरथे न सन्मना।
प्रत्यूहमायातमपास्य धैर्यतो मार्गेषु जर्मीष्टननामके पदे ॥ ३७ ॥

जर्मीष्टनमें थोडासा † विघ्न आया, उसे धैर्यपूर्वक दूर करके पवित्र

* नित्यापमानसे तात्पर्य उस अपमानसे है जिसकेलिये यह धारणा हो गयी हो कि इसका नाश नहीं हो सकता। उस समय वहाँके भारतीय यही समझते थे कि यह रोग अचिकित्स्य है।

† ट्रेन चली जर्मीस्टन पहुँची। वहाँ गार्ड टिकट देखनेकेलिये

विचारवाले श्रीमोहन गाड़ीमें फर्स्टक्लासमें ही बैठकर प्रिटोरिया गये ॥ ३७ ॥

एकेन वर्षेण तदाभियोगिकं कार्यं स्वमेधाबलतः प्रसाध्य सः ।
भूयश्च नातालमुपेत्य भारतं श्रीमोहनः प्राप्तुमियेष सर्वथा ॥ ३८ ॥

श्रीमोहनने अपनी बुद्धिके बलसे उस अभियोग को एक वर्षमें ही अपने अनुकूल सिद्ध करके, फिर नातालमें आकर, भारतमें ही आनेकी इच्छा प्रकट की ॥ ३८ ॥

धन्योऽब्दुल्ला परिमोदसंयुतो मानं प्रदातुं पुरुषोत्तमाय सः ।
आमन्त्रयामास सिडन्हमे बहूँल्लोकान्सभां चापि चकार सम्मदः॥३९॥

धनिक श्रीअब्दुल्लाशेठने परमप्रसन्नता के साथ पुरुषोत्तम श्रीमोहनको मान देनेकेलिये सिडन्हममें बहुतसे लोगोंको आमन्त्रित किया और एक सभा भी की ॥ ३९ ॥

धारासभासभ्यवराधिकारिता नातालदेशे वसतां च हिन्दिनाम् ।
गर्ह्येति तस्याः समुदासनाय तच्चर्चा च धारासमितौ तदाभवत् ॥४०॥

नातालमें रहनेवाले भारतीयोंकी, वहाँकी धारासभाके सभ्य बननेकी अधिकारिता दूषित थी अर्थात् धारासभाके सभ्य हिन्दुस्तानी नहीं हो

आया। वह मुझे देखकर ही चिढ़ गया। अङ्गुलिसे इशारा करके मुझे कहा कि "तीसरे दर्जेमें जावो"। मैंने अपना फर्स्टक्लासका टिकट दिखाया। गार्डने कहा, "इसका कुछ नहीं, जावो तीसरे दर्जेमें।" इसी डब्बेमें एक अंग्रेज मुसाफिर बैठा था। उसने गार्डको धमकाया कि "तू इस गृहस्थको क्यों हैरान करता है? तू देखता नहीं है कि इसके पास फर्स्टक्लासका टिकट है, इसके यहाँ बैठनेसे मुझे कोई तकलीफ नहीं है" इतना कहकर उस अंग्रेजने मेरी ओर देखा और कहा कि "तुम निश्चिन्त बैठे रहो।" "तुमको कुलीके साथ बैठना हो तो इसमें मेरा क्या?" इतना कहकर गार्ड चला।

—महात्मा गांधी।

सकते थे। हिन्दुस्तानियोंके सभ्य बननेके अधिकारको नष्ट करनेकी चर्चा उस समय धारासभामें चल रही थी ॥ ४० ॥

पत्रे च कस्मिंश्चिदिति व्यलोकत पत्राणि तत्रैव सिडन्हमे तदा।
श्रीमोहनः सम्परिवर्तयन्नथो धन्योऽबदुल्लामपि तद्व्यजिज्ञपत् ॥४१॥

उस समय उसी सिडन्हममें ही किसी समाचारपत्रके पन्ने उलटते पुलटते श्रीमोहनने इस—उपर्युक्त समाचारको देखा और शेठ अब्दुल्लाको भी इसकी सूचना कर दी ॥ ४१ ॥

सम्मेलने तत्र समागतेषु धी-श्रीमांश्च कश्चित्पुरुषो जगाद तम्।
गन्तुं स्वदेशं परिहाय भावनां मासं यदि स्या इह युद्धमस्तु तत् ॥४२॥

उस सम्मेलनमें आये हुए प्रतिष्ठित लोगोंमेंसे बुद्धिमान् और श्रीमान् किसी एक पुरुषने कहा कि "यदि आप देश जानेके विचारको छोड़कर एक मास यहाँ रहें तो यह लड़ाई लड़ी जाय" ॥ ४२ ॥

श्रुत्वा तदीयामिति हार्दिकीं गिरं देशप्रयाणस्य मतिं न्यरुन्ध सः।
संरक्षितुं तन्निजदेशगौरवं वर्षाण्यनेकानि तु तत्र तस्थिवान् ॥४३॥

उन सबके इस हार्दिक वचनको सुनकर श्रीमोहनने देशकेलिये प्रयाणकरनेके विचारको रोक दिया और स्वदेशगौरवकी रक्षाकेलिये अनेक वर्षों तक वह वहाँ ही रहे ॥ ४३ ॥

अन्यायधाराशतकं प्रवर्तितं गौराङ्गकैः स्वार्थविसारहेतवे।
स्वार्थस्य राज्ये प्रसृते विचिन्तनं हानेः परार्थस्य न कुर्वते जनाः ॥४४॥

गोरोंने अपने स्वार्थ—प्रसारकेलिये सैकड़ों अन्यायपूर्ण कायदे चला दिये। जब स्वार्थका राज्य फैल जाता है तब लोग अन्योंकी हानिका विचार नहीं करते ॥ ४४ ॥

संस्थाय तत्रैव विरोधनाय तद्गौराङ्गसम्पादितपापवारिधेः।
स्वप्राड्विवाकत्वेन च जीविकार्जनं धर्म्यं स मेनेऽथ तदेव संन्ययात् ॥४५

वहाँ गोरोंके पापसागरका विरोध करनेकेलिये, वहाँ ही रहकर बैरिष्टरी-से अपनी जीविकाका निर्वाह करना श्रीमोहनने धर्मानुकूल समझा और तबसे वह बैरिष्टरी करने लगे ॥ ४५ ॥

यत्नैः सहस्रैश्च निरन्तरैः श्रमैः श्रद्धाधनानां सुहृदां च योगतः ।
दोषाननेकान्प्रतिषिध्य सर्वथा प्रायात्स्वदेशाभिमुखः स मोहनः ॥४६॥

श्रीमोहनने, अनेकों उपायोंसे, अनेक परिश्रमसे, श्रद्धालु मित्रोंके योगसे, वहाँकी अनेक बुराइयोंको सर्वथा मिटाकर, स्वदेशकेलिये प्रयाण कर दिया ॥ ४६ ॥

⁂ स हि मोहनः परमवैरिगणैः
परिवारितः सकलचित्तहरः ।
अनयस्य राशिमखिलं च ततः
परिदह्य जन्मभुवमागतवान् ॥ ४७ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकश्रीस्वामिभगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
पञ्चमः सर्गः

बडे बडे दुश्मनों से घिरे हुए, अनेक अन्यायोंको नाश करके सर्वमनोहर श्रीमोहन अपनी जन्मभूमिमें आ गये ॥ ४७ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषा टीकासहिते भारतपारिजाते
पञ्चमः सर्गः



⁂ प्रमिताक्षरा छन्द ।

षष्ठः सर्गः

आजीवनं भारतरक्षणाय रक्षाविधीनामपि शिक्षणाय ।
अहमदाबादमहापुरेऽसौ व्यतिष्ठिपच्चाश्रममेकमीड्यम् ॥१॥

जीवनभर भारतकी रक्षाकेलिये और रक्षाकी विधियोंको सिखानेके-लिये श्रीमहात्माजीने अहमदाबाद जैसे विशाल नगरमें एक सुन्दर आश्रम (सत्याग्रह आश्रम) की स्थापना की ॥ १ ॥

तीरे स्रवन्त्याः खलु साभ्रमत्याः शुद्धे सदाऽपां निचयं दधत्याः ।
सदा सदाचारविचारशुद्धया उद्घाटितश्चाश्रम एष तेन ॥२॥

सदा जलधारण करने वाली साभ्रमती—साबरमती नदीके पवित्र तटपर सदाचार और विचारोंकी शुद्धिकेलिये उन्होंने इस आश्रमका उद्घाटन किया ॥ २ ॥

तद्वासिभिः सर्वजनैश्च सत्यं वाचा निगाद्यं मनसा विचार्यम् ।
सत्यस्य हेतोर्वचनं गुरूणामपि प्रहेयं भविता सदेति ॥३॥

उस सत्याग्रह आश्रमके नियमोंका वर्णन करते हैं:—आश्रमके रहनेवाले सर्वजनोंको चाहिये कि सदा वाणीसे सत्य बोलें और मनसे सदा सत्य ही विचारें । सदा सत्यकेलिये गुरुजनोंके वचनका भी—त्याग करना होगा ॥ ३ ॥

न प्राणिहिंसा च कदापि कार्या द्वेषो न कार्यः प्रतिपक्षभाग्भ्यः ।
प्रेम्णैव जेया निजवैरिणोऽपि सदा तदावासिभिरर्चनीयैः ॥४॥

आश्रमवासियोंको कभी कोई हिंसा नहीं करनी चाहिये । शत्रुकेलिये

---

* इस सर्गमें उपजाति छन्द है ।

अतः इस आश्रममें निवासकरनेवालोंको हाथसे कते हुए सूतोंसे, हाथसे ही बने हुए कपडोको ही, सदा धारण करना होगा ॥ ११ ॥

यूरोपरीतीरनुसृत्य सज्जी कृतानि वस्त्राणि जनैरिहत्यैः ।
धार्याणि सारल्यविनाशकानि वस्तूनि नो वा कुड्डुपादिकानि ॥१२॥

विदेशीय ढङ्गसे बने हुए कपडे, तथा सादगीको नष्ट करनेवाले अन्य बटन आदि वस्तु इस आश्रमके निवासियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिये ॥ १२ ॥

भयानलप्लुष्टमनो दधानैर्न शक्यते पालयितुं कदापि ।
सत्यव्रतं प्राणिवधातिहानं तस्माद्भयव्रात इहास्ति हेय ॥१३॥

जिनका मन भयरूप अग्निसे दग्ध हो गया है वह लोग अर्थात् भीरुलोग सत्यव्रत और प्राणिवधत्याग अर्थात् अहिंसाका पालन नहीं कर सक्ते । अतः सबप्रकारका भय यहाँ छोड देना होगा ॥ १३ ॥

भयं नराणामथ भूपतीनां कौटुम्बिकानामथ तस्कराणाम् ।
व्याघ्रादिकानामथ हिंस्रकाणा मृत्योरपि त्याज्यमिह स्थितैस्तु ॥१४॥

इस आश्रममें रहनेवालोंको मनुष्यभय, राजभय, परिवारभय, चोरभय, व्याघ्रादिहिंस्रजन्तुभय और मृत्युभय इत्यादि सब भयोंको छोड देना चाहिये ॥ १४ ॥

सामान्यहि दूजनताविचारै रस्पृश्यता येषु जनेषु चास्ते ।
स्पृश्या हि तेऽप्यत्र यतो विचारः स तादृगिद्धाघविनायकोस्ति ॥१५॥

सामान्यहि दूजनताके विचारोंसे जो जो लोग अस्पृश्य माने जाते हैं, इस आश्रममें वे सभी स्पृश्य समझे जायँगे । क्योंकि वह वैसा विचार–अस्पृश्यविचार *प्रबलपापका जनक है ॥ १५ ॥

* किसी मनुष्यको जन्मसे ही अस्पृश्य माननेमें मानवता लज्जित होती है । हाँ, किसी भी पापात्माको तो अवश्य अस्पृश्य माना जा सकता

वर्णव्यवस्था नहि खण्डनीया सिद्धा न सा हानिकरी कदापि ।
न जातिभेदाः परमत्र मान्या निरर्थका हानिकराश्च सिद्धाः ॥१६॥

इस आश्रममें वर्णव्यवस्थाका खण्डन नहीं है क्योंकि वह कभी भी हानिकारक सिद्ध नहीं हुई है । परन्तु जातिभेद यहाँ नहीं माना जायगा *क्योंकि वह निरर्थक भी है और हानिकारक भी सिद्ध हो चुका है ॥१६॥*

न यत्र वृत्तिः खलु धार्मिकी स्यात्कार्ये च तस्मिन्नहि सिद्धिरस्ति ।
ततो निराबाधतया समेषामीशस्तुतिः सार्वदिकी स्थिताऽत्र ॥१७॥

जिस कार्यमें धार्मिक वृत्ति नहीं रहती उसकी सिद्धि भी नहीं होती । अतः—धार्मिकवृत्तिकी रक्षाकेलिये विना अपवादके सब आश्रमवासियोंको भगवत्प्रार्थना करनी होगी ॥ १७ ॥

है । इस सम्बन्धमें हिन्दूशास्त्रोंका आधार ढूंढना दोनों पक्षोंकेलिये वाहियात बात है । बुद्धि और विवेकसे ही काम लेना मनुष्यता है ।

अस्पृश्यभावनाके पोषणसे अनुदार मनोवृत्ति पैदा होती है, मानव-समाजकी उन्नतिका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, सद्गुणोंकी पूजाकी भावना नष्ट होती है, सामाजिक व्यवस्था शिथिल होती है । वेदान्त-प्रतिपाद्य अभेदकी ओर दुर्लक्ष होनेसे आत्मिक उन्नतिमें बाधा पहुँचती है । ऐसे दूसरे भी अनेक दोष हैं जिनके कारण अस्पृश्यताको हिन्दू-समाजका कलङ्क माना गया है ।

वैष्णवग्रन्थोंमें तो अस्पृश्यता जैसी कोई वस्तु ही नहीं है । माननीय वैष्णवाचार्योंने मानवजातिके उत्थानमें सब सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अत्यधिक प्रयत्न किया है । तस्मै देयं ततो ग्राह्यम् कह कर अर्थात् विष्णुभक्त चाण्डाल हो तो भी उसे ही धन विद्यादि देने चाहिये और उससे ही यह सब लेने चाहियें—कहकर वैष्णवाचार्योंने दूरदर्शिताका परिचय दिया है । उनकी दृष्टि विशाल थी, उनका हृदय उदार था । और वह ही सच्चे वैष्णव थे ।

भी द्वेष नहीं करना चाहिये। अपने शत्रुओंको भी प्रेमसे ही जीतना चाहिये ॥ ४ ॥

न ब्रह्मचर्येण विना कदाचिद्व्रताधिरक्षा सुशकेति मत्वा ।
कार्यो विहारो निजभार्ययाऽपि तत्पालनायैव कदापि नेति ॥५॥

* ब्रह्मचर्यके बिना अन्य व्रतोंकी रक्षा सुशक नहीं है ऐसा मानकर, तत्पालनायैव = ब्रह्मचर्यपालनेकेलिये ही अपनी भार्याके साथ भी आश्रमवासियोंको विहार नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥

शरीरयात्रापरिचालनाय सत्त्वांशवृद्धेः परिपालनाय ।
स्वदेशसेवोत्कमनोभिरभ्याहारश्च कार्यो निवसद्भिरत्र ॥६॥

इस आश्रममें निवास करनेवाले स्वदेशसेवाभिलाषियोंको शरीरनिर्वाह-

* दक्षसंहितामें ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें लिखा है —

ब्रह्मचर्यं सदारक्षेदष्टधा लक्षणं पृथक् ।
स्मरणं कीर्तनं केलि प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

पुरुषद्वारा स्त्रीका या स्त्रीद्वारा पुरुषका विषयाभिलाषसे स्मरण, पुरुषद्वारा स्त्रीके या स्त्रीद्वारा पुरुषके रूप, लावण्य, विलासादिका कीर्तन, पुरुषोंका स्त्रियोंके साथ या स्त्रियोंका पुरुषोंके साथ वैषयिक केलि = हास्य —विनोद, स्त्रीपुरुषका परस्पर रागपूर्वक दर्शन अथवा रागपूर्वक पुरुषद्वारा स्त्रीका और स्त्रीद्वारा पुरुषका प्रेक्षण—अवलोकन, गुह्यभाषण अर्थात् गुह्यवासनासम्बन्धी वार्तालाप, पुरुषद्वारा स्त्रीकी प्राप्तिका और स्त्रीद्वारा पुरुषकी प्राप्तिका—सङ्कल्प, इस सङ्कल्पको पूर्ण करनेकेलिये अध्यवसाय —यत्न करना, क्रियानिर्वृत्ति—स्त्रीपुरुषोंका एकान्तशयन, यह अष्टाङ्ग मैथुन है। इनके त्याग करनेसे अष्टाङ्ग ब्रह्मचर्यका रक्षण होता है।

केलिये और सत्त्वगुणकी वृद्धिकी रक्षाकेलिये ही ※ भोजन करना चाहिये ॥ ६ ॥

जनैरनावश्यकमेकमप्यादातुं च संरक्षितुमत्र वस्तु ।
शक्यं न तेनाथ निपालनीयमस्तेयनाम व्रतमित्यवश्यम् ॥७॥

इस आश्रमके निवासी एक भी अनावश्यक वस्तु न ले सकते हैं और न रख सकते हैं। इस रीतिसे अस्तेयव्रतका पालन करना आवश्यक है ॥ ७ ।

आवश्यकानामपि चाश्रमस्थैस्तावन्ति वस्तूनि विचार्य नित्यम् ।
धार्याणि येषामुपयोग आस्तां नान्यानि मायाऽऽवृतिवर्धनानि ॥८॥

आवश्यक वस्तुओंमेंसे भी आश्रमवासी विचारपूर्वक उतना ही रख सकते हैं जिनका उपयोग हो। अन्य वस्तुओंको नहीं रख सकते अथवा उपयोगसे अधिकको नहीं रख सकते; क्योंकि वह सब वस्तु मायाके जालको बढानेवाले हैं ॥ ८ ॥

स्वदेशसेवानिरतैर्मनुष्यैः स्थित्वाश्रमेऽस्मिन्परमर्षिसेव्ये ।
निर्व्याजताया: परिपोषणेऽपि भाव्यं सदा धीरतयाऽप्रमत्तैः ॥९॥

स्वदेशसेवापरायण मनुष्य इस ऋषि-आश्रममें रहकर सादगीकी वृद्धिमें भी सदा सावधान रहें ॥ ९ ॥

अस्मिन्युगे यन्त्रगतिप्रचारे प्रायेण सारल्यमितो विनष्टम् ।
देशाभिमानोऽथ विवेकिताऽपि गुणाः समे त्वेकपदे विनष्टाः ॥१०॥

इस यान्त्रिक युगमें भारतवर्षसे प्रायः सरलता-सादगी नष्ट हो गयी है। देशाभिमान, विवेकिता, तथा अन्यगुण भी एकदम नष्ट हो चुके हैं ॥ १० ॥

अतः परायत्ततयेह वास परायणैर्हस्तविनीलसूत्रैः ।
हस्तेन वीतानि विनीतभावै र्ग्राह्याणि वासांस्यखिलैः सदेति ॥११॥

※ अर्थात् स्वादकेलिये भोजन इस आश्रममें निषिद्ध है।

* स्वदेशभाषामथ मातृभाषां त्यक्त्वा प्रजा याः परदेशभाषाम् ।
समाश्रयन्ते विपदो भजन्ते ततोऽत्र हिन्दीसुरगीःप्रचारः ॥१८॥

जो प्रजा अपनी देशभाषा और मातृभाषाको छोडकर परदेशभाषाका आश्रय लेती है वह दुःख पाती है अतः इस आश्रममें हिंदी और संस्कृतका प्रचार रखा गया है ॥ १८ ॥

स एवमाद्यैर्नियमैर्विभूष्य सत्यामहेत्यादिमनन्तशक्तिः ।
तमाश्रमं सत्यनिगूढशक्ति प्रदर्शनाय प्रथयांचकार ॥१९॥

श्रीमहात्माजीने इस प्रकारके नियमोंसे सजाकर सत्याग्रह यह शब्द जिसके आदिमें है उस आश्रमको अर्थात् सत्याग्रह आश्रमको, सत्यकी छिपी हुई शक्तिको दिखानेकेलिये, स्थापित किया ॥ १९ ॥

गतेषु मासेषु च तत्सकाशे तावत्समायादमृतस्य पत्रम् ।
अस्पृश्य इन्छत्यधिवासमेकः सदारकन्यो भवदाश्रमेऽस्मिन् ॥२०॥

कुछ ही महीने बाद श्रीअमृतलालठक्करका आश्रममें एक पत्र श्रीमहात्माजीके पास आया कि एक अस्पृश्य अपनी स्त्री और कन्याके साथ आपके आश्रममें निवास करना चाहता है ॥ २० ॥

तदाश्रमस्थैः सकलैः प्रसन्नैरूचे न हानिर्ग्रहणेऽन्त्यजस्य ।
शक्तस्य निर्वाहयितुं समस्तान्सुदुर्गमांस्तन्नियमान्सधैर्यम् ॥२१॥

आश्रमवासियोंने प्रसन्न होकर कहा कि यदि कोई अन्त्यज यहाँके अत्यन्त कठोर समस्त नियमोंका धीरजके साथ पालन कर सकता हो तो उसे यहाँ लेनेमें कोई हानि नहीं है ॥ २१ ॥

पत्न्या च दान्या सुतया च लक्ष्म्या दूदाऽन्त्यजस्तत्र समाजगाम ।
कौटुम्बिकत्वं समुपेत्य तस्थौ तदाश्रमीयैः सकलैः समं सः ॥२२॥

अन्त्यज दूदाभाई अपनी स्त्री दानी और कन्या लक्ष्मीके साथ आश्रममें गये और सब आश्रमवासियोंके साथ कुटुम्बिभावसे रहने लग गये ॥२२॥

* यहाँतक सत्याग्रह आश्रम सावरमतीके नियम वर्णित हुए हैं ।

अहम्मदाबाद उदात्तवित्ते कोलाहलो वैष्णवताप्रधाने ।
समुद्भवौ सर्वजनेषु तत्र मोहाद्भयं धर्महतेः प्रपन्नम् ॥२३॥

वैष्णवताप्रधान और धनिक अहमदाबादमें कोलाहल मच गया। अज्ञानसे सब लोगोंमें यह भय घुस गया कि धर्मका नाश हो गया ॥ २३ ॥

पानीयमानेतुमथ व्रजन्तं तदाश्रमस्थं कमपि प्रवीक्ष्य ।
अन्धौ स्थिता गालिसहस्रपाठं सदैव चक्रुर्गतसद्विचाराः ॥२४॥

उस आश्रमसे कोई भी जब कूएँपर पानी भरने जाता था तो उसे देखकर, जो लोग कूएँपर खड़े रहते थे, वह अविचारी लोग गाली दिया करते थे ॥ २४ ॥

श्रुत्वाऽऽश्रमेऽस्पृश्यकुलप्रवेशं सर्वे सहायाः सुधियोऽपि जाड्यम् ।
गताश्च पौरा द्रविणस्य लाभाद्विनाऽऽश्रमोऽसौ सविपद्बभूव ॥२५॥

आश्रममें अन्त्यजप्रवेशको सुनकर, आश्रमके सहायक जो समझदार थे वह भी जड हो गये। अब धनलाभके बिना आश्रम विपत्तिमें पड गया ॥ २५ ॥

बहिष्कृताश्चेत्सकला भवेम वासं प्रयायाम तदान्त्यजानाम् ।
त्याज्यं न चैतन्नगरं महात्मा समं स सर्वैरिति निश्चिकाय ॥२६॥

श्रीमहात्माजीने सब आश्रमवासियोंके साथ विचार करके निश्चय किया कि यदि हम सब लोग बहिष्कृत हो जावेँ तो जहाँ अन्त्यज लोग रहते हैं, वहाँ ही हम भी चलेंगे। परन्तु इस शहरको नहीं छोडना है ॥ २६ ॥

द्वित्रेष्वहस्स्वेव च मगनलालो यमी शमी शुद्धधियां वरिष्ठः ।
महाभयं समबोधयत्तेप व्राहित्यमृत्स्यस्य विरुद्धचिन्तः ॥२७॥

दो तीन दिनोंके बाद यमी और शमी तथा शुद्धबुद्धिवालोंमें श्रेष्ठ *

* श्रीमगनलालभाई ही आश्रममें एक ऐसे मनुष्य थे जो महा-

श्रीमगनलालभाईने श्रीमहात्माजीको सूचना दी कि अब आश्रममें धनका अभाव हुआ है ॥ २७ ॥

स प्रत्युवाचेति न कापि हानिर्वयं व्रजिष्याम उदूढसत्याः ।
कर्तुं निवासं वसताविदानीं मुदान्त्यजानामतिदुर्गतानाम् ॥२८॥

महात्माजीने कहा, कोई हर्ज नहीं। हम सब सत्याग्रही प्रसन्नतासे अतिदीन अन्त्यजोंके मुहल्लेमें रहनेके लिये चलेंगे ॥ २८ ॥

कश्चित्प्रभाते समवेत्य बालो हसन्महात्मानमुदाजहार ।
स्थितो बहिर्द्वारमुखे भवन्तं दिदृक्षते कश्चिदुदारचेताः ॥२९॥

प्रातःकाल एक बालक हँसता हुआ श्रीमहात्माजीसे बोला कि बाहर दरवाजेपर कोई सेठ खड़े हैं और आपका दर्शन चाहते हैं ॥ २९ ॥

श्रुत्वैव धीमन्महितो महात्मा गतो बहिर्द्वारमथो ददर्श ।
समोटरं कञ्चिदुदारचित्तं पप्रच्छ तं तत्कुशलं प्रहृष्टः ॥३०॥

विद्वानोंसे पूजित श्रीमहात्माजी, सुनते ही बाहर गये और मोटरमें बैठे हुए किसी उदारमना—सेठको देखा। प्रसन्न होकर उनका कुशल समाचार भी पूछा ॥ ३० ॥

त्वद्दर्शनादेव सुखाधिराशे शिवं समुद्रासितमस्मदीयम् ।
तवानुकम्पां सततं समिच्छन्निहागतो देव तवान्तिकेऽहम् ॥३१॥

सेठजीने उत्तर दिया कि हे सुखसागर! आपके दर्शनसे ही हमारा सुख है। हे देव! आपकी कृपा चाहता हुआ आपके पास आया हूँ ॥

साहाय्यमिच्छामि तवाश्रमाय दातुं यथाश्रद्धमतः कृपातः ।
प्रगृह्य तद्दीनजनाधिनाथ प्रपूरयस्वातिमनोरथं मे ॥३२॥

त्माजीके प्रत्येक नियमको सावधानीके साथ पालते थे। इस ग्रन्थलेखकके साथ उनका बहुत गाढ़ सम्बन्ध था। उपनिषद् और उर्दू भाषा उन्होंने इसी ग्रन्थलेखकसे सीखी थी।

सेठजी बोले, मैं आपके आश्रमकेलिये, श्रद्धानुसार कुछ सहायता करना चाहता हूं। अतः हे दीननाथ! कृपाकरके, उसे स्वीकार कर मेरे मनोरथको पूर्ण कीजिये ॥ ३२ ॥

इत्थमेति चार्च धनिकाधिपोऽसौ मुद्राः सहस्त्राणि समर्प्य तस्मै ।
त्रयोदश प्राञ्जलिराशु धीरो यथागतं तेन ययौ रथेन ॥३३॥

सेठजी ऐसा कहकर, १३ सहस्र रुपये महात्माजीको देकर, हाथ जोड़कर उसी समय उसी मोटरसे, जहाँ से आये थे, वहाँ चले गये ॥३३॥

आकस्मिकं प्राप्तमवेक्ष्य काले साहाय्यमासंश्चकिताः समस्ताः ।
दैवेन संवर्धितगौरवस्य तदेव रक्षां सततं करोति ॥३४॥

अकस्मात् इतनी बडी सहायता ठीक समयपर मिली हुई देखकर सब चकित हो गये। दैव जिसका गौरव बढाता है वही उसकी रक्षा भी करता है ॥ ३४ ॥

तस्याथ दुःखावसरेषु धैर्यां दीप्तं सदा चिन्तयतोऽस्तिभक्त्या ।
महात्मनो मोहनदासगांधेर्मनोऽधिकं लीनमतो महेशे ॥३५॥

दुःखके समय धैर्यके साथ अत्यन्त भक्तिसे भगवान्के चिन्तन करनेवाले श्रीमहात्माजीका मन इस घटनासे प्रभुमें अधिक लीन हो गया ॥ ३५ ॥

परप्रसादादधिगत्य मुद्रा दारिद्र्यपादप्रसरोऽवरुद्धः ।
परं कुलेऽस्मिंश्च समागमेन दादोर्विपादः स्वपदं चकार ॥३६॥

भगवत्कृपासे रुपये पाकर दरिद्रता तो दूर हो गयी। परन्तु दादूभाईके आनेसे इस आश्रममें विषादने अपना पैर रख दिया ॥ ३६ ॥

पतिव्रतायै पतिदेवतायां अजिह्मवृत्त्या अतिथिप्रियायै ।
कस्तूरदेव्या अपि चैव यासोऽस्पृश्यः सहारोचत नैव किञ्चित् ॥३७॥

पतिको देवतासमान माननेवाली, निष्कपटवृत्तिवाली, अतिथियोंसे

प्रेम रखनेवाली पतिव्रता श्रीकस्तूरबाईको भी अस्पृश्योंके साथ निवास करना थोडा भी नहीं रुचा ॥ ३७ ॥

तथाऽपरासामपि तत्स्थितानां स्त्रीणां खिदायै नितरामभूत्सः
महात्मनस्तेन गतिर्बभूव संलूनपक्षस्य पतत्रिणोऽत्र ॥३८॥

आश्रमकी अन्य स्त्रियोंको भी यह अन्त्यजोंके साथ निवास खेदजनक प्रतीत हुआ। इससे महात्माजीकी, कटेपंखवाले पक्षी जैसी दशा हुई ॥ ३८ ॥

दादुं च दानीं च सदा विनम्रः प्रसादयामास कथञ्चिदेव ।
धैर्येण सोढुं समबोधयत्तौ मानस्य भङ्गं स महाकृपालुः ॥३९॥

श्रीमहात्माजी बडी नम्रताके साथ दादूभाई और दानी बहिनको किसी प्रकार प्रसन्न रखा करते थे। वह महादयालु मानभङ्गको धैर्यके साथ सहन करनेको समझाया करते थे ॥ ३९ ॥

एवं तपस्यन्स महातपस्वी तदाश्रमेऽन्यैः स्वजनैः समेतः ।
अरुन्तुदं भारतपारतन्त्र्यं समीक्ष्य चिन्ताचलितो बभूव ॥४०॥

महातपस्वी श्रीमहात्माजी इस प्रकार अन्य आश्रमवासियोंके साथ तपस्या करते हुए देशकी कठिन परतन्त्रताको देखकर चिन्तासे व्याकुल हो गये ॥ ४० ॥

स्वतन्त्रताया जननी पुरा याऽनवद्यविद्याव्रतजन्मभूर्या ।
सा भारती भूमिरदभ्रदुःखप्रदा बभूवास्य विपत्तिमग्ना ॥४१॥

जो भारतभूमि पहिले स्वतन्त्रताकी माता थी और समस्त उत्तम विद्याओं और व्रतोंकी जन्मदात्री थी वही भूमि आज दुःखमें फँसी हुई होनेके कारण महात्माजीको अत्यन्त दुःखदेनेवाली बन गयी ॥ ४१ ॥

मोक्षं समुत्पादयितुं महात्मा श्रीभारतस्याथ महाविपत्तेः ।
उपासनायां पुरुषोत्तमस्य दिने दिनेऽसौ दृढतां प्रपेदे ॥४२॥

* दीनानामभयदमेव पारिजातं,
कामानामखिलनृणां सतामनन्तम्।
श्रीरामं परित उपास्य दीनबन्धु-
स्तस्यामाश्रममुषितस्थिवान्महात्मा ॥ ४३ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
षष्ठः सर्गः

महती विपत्तिसे भारतको मुक्त करनेकेलिये श्रीमहात्माजी भगवान्‌की उपासनामें दिनोंदिन दृढ होने लग गये ॥ ४२ ॥

दीनोंको निर्भय बनानेवाले और समस्त साधुपुरुषोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेकेलिये कल्पवृक्षसमान भगवान् श्रीरामकी उपासना करके दीनबन्धु श्रीमहात्माजी आश्रममें रहने लगे ॥ ४३ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते षष्ठः सर्गः

---

* प्रहर्षिणी छन्द।

❀ सप्तमः सर्गः

अथ भारतभूमिभाग्यतः परिसम्पादितसत्तपोबलः ।
स उदारमना व्यचारयत्परिशोषाय विपन्निधेर्भुवः ॥१॥

भारतभूमिके भाग्यसे सुन्दर तपोबल प्राप्त करके उदारमना श्रीमहात्माजी पृथिवीभरके दुःखसागरको सुखदेनेकेलिये विचार करने लगे ॥ १ ॥

नगरं लखनाउमीयिवान्हृदयानन्दतरङ्गवेल्लितः ।
स सभा जयितुं महासभां विविधज्ञानिसमाजसम्प्लुताम् ॥२॥

परमानन्दित चित्तसे श्रीमहात्माजी बड़े बड़े विद्वानोंवाली कांग्रेस—राष्ट्रियमहासभाको देखनेकेलिये लखनऊ गये ॥ २ ॥

कृषकः समियाय कोऽपि तत्पुरतो राजकुमारनामकः ।
अतिदूनमनाः प्रणम्य तं कथयामास निजां विपत्कथाम् ॥३॥

राजकुमार शुक्ल नामक कोई किसान वहाँ श्रीमहात्माजीके पास आये और अत्यन्त खिन्न होकर प्रणाम करके अपनी विपत्ति सुनाने लगे ॥ ३ ॥

निवसामि बिहारमण्डले शिवे चम्पारणनाम्नि पत्तने ।
सितदेहभृतां धनार्थिनामनयस्तत्र च वर्तते ऽधुना ॥४॥

वह बोले, मैं बिहारप्रान्तके चम्पारण शहरमें रहता हूँ । धनके लोभी अंग्रेज आजकल वहाँ बड़ा अन्याय कर रहे हैं ॥ ४ ॥

क्रियते धनलाभलोभतः कृपिरेतैर्मधुपर्णिकौषधेः ।
श्रम कर्मकराश्च भारता नियतास्तैर्व्यथिताः क्षुधानलैः ॥५॥

अंग्रेजलोग धनके लोभसे मधुपर्णिका=नीलकी खेती करते हैं । भूखसे पीड़ित भारतवासियोंको उन लोगोंने मजूरीकेलिये रख छोड़ा है ॥६॥

❀ इस सर्गमें वियोगिनी छन्द है ।

ददते न भृतिप्रयाचिताः प्रतिकूलाचरणाः सिताङ्गकाः ।
सततं परिपीडयन्ति ते स्वकृतौ लग्नजनानपि प्रभो ॥६॥

माँगनेपर भी, वह विरुद्धव्यवहार करनेवाले अंग्रेज, मजदूरी नहीं देते हैं। हे प्रभो! काममें लगे रहनेपर भी लोगोंको वह हैरान करते हैं ॥ ६ ॥

बहुधा परिपीडयन्ति ते सकलान्कर्मकरानमी मुधा ।
विविधापदपानिधौ जनान्पतितान्पाहि परार्थजीवित ॥७॥

यह अंग्रेज सभी मजदूरोंको व्यर्थमें अनेक प्रकारसे पीडा पहुँचाते हैं। विविधविपत्तिरूप सागरमें पडे हुए लोगोंको, हे परोपकारकेलिये जीवन-धारण करनेवाले महात्माजी! बचाइये ॥ ७ ॥

विपदब्धिगतस्य तस्य तद्वचनाद्धृद्व्यथनक्षमात्तदा ।
स च * वैष्णवतामहीपतिः कृपया गन्तुमदः प्रतस्थिवान् ॥८॥

विपत्तिसागरमें पडे हुए उस किसान बन्धुकी हृदयवेधक बात सुनकर उन वैष्णवशिरोमणिने कृपा करके वहाँ जानेकेलिये प्रस्थान कर दिया ॥ ८ ॥

प्रथमं पटनां मुदा ययौ व्रजराजेन्द्रमुखांश्च सज्जनान् ।
परिगृह्य मुजफ्फरात्पुरात्कृपलानीमपि सोऽग्रतो ययौ ॥९॥

श्रीमहात्माजी प्रसन्न होकर पहिले तो पटना गये। वहाँसे † बाबू

* यहाँपर वैष्णवतामहीपतिः इस विशेषणके देनेका तात्पर्य यह है कि "जो परमदयालु हो और परदुःखासहिष्णु हो उसीको वैष्णव कहा जाता है। जो ऐसा न हो, वह चाहे जितना भी बाह्य स्वाङ्ग वैष्णवता दिखानेकेलिये बनाए फिरे परन्तु वह वैष्णव नहीं ही है।"

† ब्रजकिशोरबाबूके बारेमें श्रीमहात्माजी लिखते हैं कि "उनकी विहारी नम्रता, सादगी, भद्रता और असाधारणश्रद्धा देखकर मेरा हृदय हर्षसे भर गया।"

ब्रजकिशोरप्रसादजी, † बाबू राजेन्द्रप्रसादजी आदि सज्जनोंको लेकर और मुजफ्फरपुरसे आचार्य ‡ कृपलानीको लेकर आगे चले ॥ ९ ॥

अथ नाशयितुं महाव्रती विदितां तिन्कठियां समूलतः।
परिवारित एष सज्जनैरधिचम्पारणपत्तनं ययौ ॥१०॥

महाव्रती श्रीमहात्माजी + तिनकठियाका समूल नाश करनेकेलिये अनेक सज्जनोंके साथ चम्पारण गये ॥ १० ॥

प्रथमं च महात्मना गतः सचिवः श्वेतशरीरधारिणाम्।
परिरक्षितुमर्तितो जनान्करणीयाकरणीयबोधनात् ॥११॥

पहिले तो महात्माजी कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान कराकर लोगोंको दुःखमेंसे छुड़ानेकेलिये (निलहा) गोरोंके सेक्रेटरीके पास गये ॥ ११ ॥

स महामदविह्वलो मनागभिमानेन यतिं निरैक्षत।
पतनोन्मुखतां गमिष्यतो मतिरव्याकुलतां भजेत नो ॥१२॥

उस मदोन्मत्त सेक्रेटरीने श्रीमहात्माजीको अभिमानकी नजरसे देखा। ठीक ही है, पतनकी ओर जानेवालेकी बुद्धि शान्तिको नहीं धारण करती ॥ १२ ॥

समगाच्च ततः कमिश्नरं स हि सत्याग्रहशास्त्रसंज्ञितः।
अविवेकपराहतोऽवदत्परिहर्तुं नगरं सपद्यमुम् ॥१३॥

---

† बाबू राजेन्द्रप्रसादजी और बाबू ब्रजकिशोरजीको-दोनोंको श्री महात्माजीने त्यागी लिखा है।

‡ आचार्यकृपलानी उस समय मुज़फ्फरपुरमें प्रोफेसर मलकानीके घरमें रहते थे। कुछ दिन ही पूर्व यह वहाँ कालेजमें प्रोफेसर थे।

+ अपनी ही ज़मीनके ३/२० भागमें चम्पारनके किसान, जमीनके मूल मालिकोंकेलिये नीलकी खेती करनेकेलिये कायदेसे बँधे हुए थे। इसीको तिनकठिया कहते थे। वहाँके मापसे २० कट्ठेका एक एकड़। उसमेंसे ३ कट्ठेमें नीलकी खेती। इसीका नाम तिनकठिया था।

वहाँसे—सेक्रेटरीके यहाँसे श्रीमहात्माजी सत्याग्रहकी तैयारीके साथ कमिश्नरके पास गये। उस अविवेकीने महात्माजीको शीघ्र ही शहर छोड़ देनेको कहा ॥ १३ ॥

शिविरं समुपेत्य मोहनो यमिनामग्रसरो विचारवान्।
सकलाननुयायिनो निजान्समवेतानकरोत्क्षणेन सः ॥१४॥

* यमिपुरुषोंमें श्रेष्ठ, विचारवान् श्रीमहात्माजीने अपने डेरेपर आकर शीघ्र ही अपने सब अनुयायियोंको एकत्रित किया ॥

स जगाद निरस्तसंभ्रमो मम कारागमनं ह्युपस्थितम्।
बितियां मुतिहारिमेव वा परिगन्तुं नु विधीयतां त्वरा ॥१५॥

श्रीमहात्माजीने गंभीरशान्तिके साथ कहा कि निश्चय ही, अब मेरे जेल जानेका समय आ गया है। अतः बेतिया या मोतीहारी चलनेकी आप लोग शीघ्र तैयारी करें ॥ १५ ॥

बितियामुतिहारिसन्निधौ कृषका निर्दयिभिः प्रपीडिताः।
बहवस्तत एव तन्नृणामवलोकनाय मतिं चकार सः ॥१६॥

बेतिया या मोतीहारी जानेका कारण बताते हैं:—बेतिया और मोतीहारीके पास निर्दयी गोरोंने बहुतसे किसानोंको हैरान कर रखा था अतः उन दुःखी मनुष्योंको देखनेकी उनकी इच्छा हुई ॥ १६ ॥

स जगाम ततोऽनुयायिभिर्मुतिहारीमचलग्रतः क्षणात्।
भवने सुखदे च गोरखे वसतिं शान्तिमयीं विनिर्ममे ॥१७॥

* अहिंसा—किसी प्राणिसे द्रोह न करना, सत्य—जैसा मनमें हो वैसा ही वाणीसे बोलना, अस्तेय—शास्त्रविरुद्धरीतिसे परद्रव्यका स्वीकार न करना अथवा परद्रव्यकी स्पृहा नहीं करनी, ब्रह्मचर्य—गुह्येन्द्रियसंयम, अपरिग्रह—विषयोंका संग्रह न करना, यह ५ यम हैं। इन पाँचोंको पालन करनेवालेको यमी कहते हैं।

निश्चल सङ्कल्पवाले श्रीमहात्माजी अपने अनुयायियोंके साथ शीघ्र ही मोतीहारी गये। वहाँ बाबू गोरखप्रसादजीके घरमें शान्तिके साथ निवास किया ॥ १७ ॥

अनुशासनपत्रिकां तदा प्रहितां तां परिगृह्य शासकैः।
अचिरेण विहातुमाशु तत्स विधे प्रान्तममुंगतश्चरः॥१८॥

वहाँ पहुँचते ही वहाँके शासकके भेजे हुए, बिहार प्रान्तको शीघ्र छोड़देनेके हुक्मनामेको लेकर सिपाही श्रीमहात्माजीके पास आया ॥१८॥

महतां महितो मुनिश्च तद्ग्रहणायाऽमतिमार्जवेन सः।
परिदर्श्य दधार शासनप्रतिपक्षित्वमुदारशासनः॥१९॥

बड़े बड़े लोगोंसे पूजित उदारशासनवाले श्रीमहात्माजीने बड़ी नम्रताके साथ आज्ञापत्रिकाको लेनेकी अनिच्छा दिखाकर सर्कारके साथ प्रतिपक्षिभावको स्वीकार कर लिया ॥ १९ ॥

मदिना ब्रिटिशाधिकारिणा यमिनि प्रेषितमाह्वपत्रकम्।
अनुशासनभङ्गहेतुना समुपस्थातुमधीशसद्मनि॥२०॥

पश्चात्, अहङ्कारी बृटिश अधिकारीने श्रीमहात्माजीके पास आज्ञाभङ्ग-करनेके कारण, कोर्टमें उपस्थित होनेकेलिये हुक्मनामा भेजा ॥ २१ ॥

अथ जानुविलम्बिबाहुको गणनातीतजनाधिवेष्टितः।
स्मयमानशशिप्रभाननो ह्युपतस्थौ स विचारसद्मनि॥२१॥

जानुपर्यन्त जिनके भुज लटक रहे थे, अगणित आदमियोंसे जो उस समय घिरे हुए थे, जिनका चन्द्रसमान मुख मुसुकुरा रहा था वह श्रीमहात्माजी कचहरीमें उपस्थित हुए ॥ २१ ॥

परिविद्य महत्तपोऽस्य तन्मृदुतां तामथ शिष्टतां च ताम्।
अतिदूरविगाहिनीं धृतिं चकितोऽसौ हि बभूव शासकः॥२२॥

हाकिम उस समय-कचहरीमें, श्रीमहात्माजीके तप, उनकी स्वभाव-

सरलता और शिष्टता तथा बहुत बड़े धैर्यको देखकर चकित हो गया ॥ २२ ॥

अथ शासनपक्षपोषकः स च शास्ता स्वयमप्यथाकुलः ।
व्यवहारनिरीक्षणत्वरापरिहाणे कुशलं व्यचारयत् ॥२३॥

शासनपक्षपोषक अर्थात् सरकारी वकीलने और स्वयं हाकिमने भी घबड़ाकर मुकदमाचलानेकी शीघ्रताको छोड़ देनेमें ही अच्छा समझा॥२३॥

परमेष महामतीश्वरो मृदुवाचाऽनुजगाद तत्क्षणम् ।
समुपस्थित एव भो अहं स्वयमूरीकरणाय चागसः ॥२४॥

परन्तु महामतिवाले यह श्रीमहात्माजी उसी समय बोल उठे कि मुकदमा ढीला करनेका कोई कारण नहीं है । मैं तो स्वयं अपने अपराधको स्वीकार करनेकेलिए ही यहां उपस्थित हुआ हूं ॥ २४ ॥

अपराधपरीक्षयागता अनुशृण्वन्तु निवेदनं मम ।
अहमद्य युतः प्रयोजनाद्भवदाज्ञावमतिं प्रणीतवान् ॥२५॥

किं च, आप तो मुकदमा सुननेकेलिये यहां आए हैं; अतः मैंने आज किस कारणसे आपकी आज्ञा भङ्ग किया है—इस मेरे * निवेदनको आप सुनें ॥ २५ ॥

जनसेवनभावनायुतो विपदापन्नजनार्तिपीडितः ।
अहमत्र समागमं मुदा परिचर्याचरणाय दुःखिनाम् ॥२६॥

मानवसमाजकी सेवा करनेकी भावनासे युक्त होकर, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंकी विपत्तिसे पीड़ित होकर मैं प्रेमसे दुःखिजनोंकी परिचर्या-सेवा करनेके लिए यहां आया हूं ॥ २६ ॥

अनयव्यवहारसेविनो व्यथयन्त्येव सदा प्रजाजनान् ।
इह नीलकरास्ततोऽहमागतवान्न्यायनिरीक्षणोत्सुकः ॥२७॥

* २६ से ४० श्लोकतक श्रीमहात्माजीका यह बयान है जिसे उन्होंने चम्पारनकी कचहरीमें दिया था ।

यहाँ, नीलवर–नीलकी खेती करने करानेवाले गोरे लोग अन्याययुक्त व्यवहार कर रहे हैं और सदा प्रजाको पीडित कर रहे हैं। अतः मैं क्रूरता–निर्दयताको रोकनेकेलिये यहाँ आया हूँ ॥ २७ ॥

नहि यावदलं विवेचितं सकलं वस्तु भवेच्छ्रुतं मया ।
नहि तावदुपायचिन्तनं सुशकं स्यादिति मे मतौ स्थितम् ॥२८॥

जब तक सब वस्तु सुन न ली जाय और विचार न ली जाय तब तक उसके उपायका विचार सुगमतासे नहीं किया जा सकता है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ २८ ॥

परिचेतुमथात्र संस्थितिं बहुमानैः सुजनैः समागमम् ।
न परं मनसाऽप्यभीप्सितं किमपि क्लेशविवर्धि कर्म तु ॥२९॥

यहाँकी परिस्थितिका परिचय करनेके लिये मैं बहुतेरे प्रतिष्ठित सज्जनोंके साथ आया हूँ। क्लेश बढानेवाले किसी कार्यको करनेका मैंने मनसे विचार भी नहीं किया है ॥ २९ ॥

अपि नीलवरैश्च शासकैर्यदि साहाय्यमिहाप्यते तदा ।
मम कार्यमतीव संभजेत्सरलं वर्त्म न चात्र संशयः ॥३०॥

यदि निलहे गोरे और इस प्रान्तके शासक भी मुझे इस कार्यमें सहायता दें तो इसमें सन्देह नहीं कि मेरा कार्य सरल मार्गको प्राप्त कर सकता है ॥ ३० ॥

न मदागमनेन शक्यतामिह मन्ये कथमप्युपद्रुतेः ।
परमत्र च शासनी मतिर्विरुणद्ध्येव मतिं सदा मम ॥३१॥

मेरे यहाँ आनेसे किसी प्रकारसे भी उपद्रवकी शक्यताको मैं नहीं मानता हूँ। परन्तु इस विषयमें सदा मेरे और सरकारके विचारमें विरोध होता रहता है ॥३१॥

सततं ननु चारचक्षुषः प्रतिपद्यैव चराभिसञ्चितम् ।
विवशा अधिकारिणो जनाः प्रतिपत्तिं दधतीतिवृत्तके ॥३२॥

अधिकारी—हाकिम लोगोंकी आँखें तो केवल खुफिया पुलिस है। यह लोग आकर जो कुछ कह दें उसीको सुनकर, समाचारोंमें अधिकारी-लोग विवश होकर विश्वास कर लेते हैं ॥ ३२ ॥

अत एव तु ते निरन्तरं परवन्तः प्रतिकूलवर्त्मनि।
विहरन्ति यथार्थतः कथामधिगच्छन्ति न कामपीश्वराः ॥३३॥

इसीलिये वह परवान्—लाचार होकर उलटे मार्गमें चले जाते हैं। वस्तुतः क्या बात है, इसका पता हाकिमोंको लगता ही नहीं है ॥ ३३ ॥

यत एव महाशय प्रजाजन एवास्मि ततो मनो मम।
अनुधावति शिष्टिपालने विरमामि स्वकृतिं परं स्मरन् ॥३४॥

महाशय, मैं भी तो एक प्रजा ही हूँ और इसीलिये मेरा मन आज्ञा माननेकेलिये दौड़ता है; परन्तु अपने कर्तव्यका स्मरण करके मैं आज्ञा-माननेसे अलग रह जाता हूँ ॥ ३४ ॥

अपवादममुं न्यायविन्ननुमन्ये यदि तद्विनिश्चितम्।
च्युत एव भवामि धर्मतो मम शुद्धे मनसीत्यजागरीत् ॥३५॥

हे न्यायाधीश! यदि मैं इस आज्ञाको मान लूँ तो निश्चय ही मैं धर्मसे च्युत हो जाता हूँ, ऐसा मेरे शुद्ध मनमें भाव उत्पन्न हुआ ॥३५॥

उपकारपरायणस्य मे हृदये नैव विजायते रुचिः।
परिहर्तुमिमं प्रदेशकं कथमप्येष भवेन्न सत्तम ॥३६॥

मैं उपकार करनेकेलिये आया हूँ इसलिये मेरे हृदयमें ×इस प्रदेशको छोड़नेकी रुचि नहीं होती है। इसलिये, किसी प्रकारसे भी ⊙ यह नहीं हो सकता ॥ ३६ ॥

⊙ अपवाद = आज्ञा। — न्यायविद् = न्याय करनेवाला—न्यायाधीश।

× न्याय और अन्यायका-निर्णय किये बिना मैं इस प्रदेशको नहीं छोड़ सकता।

अथ मानधनाभिजीविनामनयावर्धकशिष्टिभङ्गनात् ।
न विना गतिरस्ति मेऽपरा परिरभ्या सुखदाशु मादृशाम् ॥३७॥

जिन लोगोंका मान ही धन है और मानरूप धनसे जो जीनेवाले हैं ऐसे मेरे जैसे लोगोंकेलिये, अन्यायपूर्ण आज्ञाके भङ्ग करनेके अतिरिक्त, स्वीकार करने योग्य, सुखद तो कोई अन्य मार्ग ही नहीं है ॥ ३७ ॥

नृपशासनभङ्गनेन यत्किमपि प्राप्यमथातिदण्डनम् ।
अतिधीरतया सुखेन तन्मम सोढव्यमितीह निश्चयः ॥३८॥

राजाज्ञा भङ्गकरनेसे जो कुछ दण्ड मिले उसे अत्यन्त धैर्य और प्रसन्नताके साथ सहन करना चाहिये, यह मेरा निश्चय है ॥ ३८ ॥

भवदीहितदण्डकल्पने किमपि न्यौन्यमथो नयावह !
परिकल्पयितुं निवेदनं न हि गृह्यं भवता कदाचन ॥३९॥

हे न्यायाधीश ! आप यह न मान लें कि मुझे आप जो दण्ड देना चाहते हैं उसमें कुछ कमी करानेके लिये मैं यह निवेदन कर रहा हूं ॥३९॥

अपमानविधानवाञ्छया न हि मन्यस्व निदेशभङ्गनम् ।
मम मानसतो विनिस्सृता बहु मान्यैव मया सरस्वती ॥४०॥

आपके या सर्कारके अपमान करनेकी इच्छासे मैंने आज्ञाभङ्ग किया है, ऐसा आप न समझें । किन्तु मेरे अन्तःकरणसे जो ❀ आवाज निकलती है उसीका मैं मान करता हूँ ॥ ४० ॥

भगवज्जनमुख्यतां वहत्यभिधायेति वचः स्थिते यतौ ।
स च शासकवर्य आत्मनः परिपाटीं विदधे गिरामिति ॥४१॥

भगवत्-जन = भागवतोंमें श्रेष्ठ महात्माजी इस प्रकार बोलकर

❀ अन्तःकरणसे जो प्रेरणा उठती है, यह स्वाभाविक और भगवत्प्रेरित होती है । उसके अनुसार ही व्यवहार करना मानवधर्म है । जो हृदयकी प्रेरणाकेविरुद्ध कार्य करता है वह आत्मवञ्चना करता है ॥

चुप हुए तब मैजिस्ट्रेटने अपने बोलनेका क्रम इस रीतिसे शुरू किया—अर्थात् मैजिस्ट्रेट बोला ॥ ४१ ॥

अभियोगनिरीक्षणं गतं परिशिष्टं परमस्य दण्डनम् ।
तदपेक्षितसर्वसाधनप्रतिपत्त्यै हि विलम्बिता गतिः ॥४२॥

मैजिस्ट्रेटने कहा—अभियोग तो सुन लिया अब केवल इनको दण्ड करना बाकी रह जाता है । दण्ड सुनानेकेलिये अपेक्षित सब साधनोंकी प्राप्तिकेलिये ही देरी करनी है ॥ ४२ ॥

अधुना च भविष्यतीह किं प्रतिपत्तुं न शशाक कोऽपि तत् ।
अवगीर्णयशःकलाधरः स महात्मा निरचिन्तयत्समान् ॥४३॥

अब इस समय क्या होगा इसे कोई भी निश्चितरूपसे नहीं कह सकता था । जिनके यशोरूप चन्द्रमाकी सब प्रशंसा करते हैं उन श्रीमहात्माजीने सबको निश्चिन्त बनाया ॥ ४३ ॥

जगदीशसमीहितं नरः परिमार्ष्टुं न हि कोऽपि शक्तिमान् ।
इति भाव्यमपारचिन्तनैर्विरयेऽस्मिन्निति मोहनो जगौ ॥४४॥

श्रीमोहनने—श्रीमहात्माजीने कहा कि भगवान्‌की इच्छाको कोई भी मनुष्य टाल नहीं सकता है अतः इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

भगवान्यदिदातुमीहते वसतिं मेऽद्य निरोधवेश्मनि ।
सुरतः करुणानिधीप्सये प्रतिपत्स्याम्यनुशोचनेन किम् ॥४५॥

यदि भगवान् जेलमें ही मुझे निवासस्थान देना चाहते होंगे तो उनकी इच्छाकी पूर्तिकेलिये सुखसे वहीं निवास करूँगा । चिन्ताकरनेसे क्या लाभ ? ॥ ४५ ॥

परमात्मगतस्तदहं समादरि यूयं वदन्त एव तत् ।
विमपेक्ष्य भविष्यदूहने प्रतिबद्धान्तरवृत्तयो मुधा ॥४६॥

* अवगीर्ण = स्तुत ।

मैं भी और आप भी सदा भगवान्‌के समक्ष परतन्त्र ही हैं। तब भविष्यकी चिन्तामें हम लोग अपनी आन्तरिक वृत्तियोंको क्यों लगाते हैं ? ॥ ४६ ॥

न हि यत्नपराङ्मुखाः क्वचिन्निगृहीते मयि बन्धवो मम ।
भवतेति ममेति सूचना हृदयान्मापगमत्कदापि वः ॥४७॥

मेरे भाइयो ! मेरे जेल चलेजानेपर भी तुम लोग यत्न करना न छोडना । मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि यह मेरी सूचना तुम्हारे हृदयमेंसे निकल न जावे ॥ ४७ ॥

ब्रुवतीति महातपोनिधौ नयसंसत्पतिना समीरितः ।
चर एक उपेत्य दत्तवान्यमिराजाय च पत्रिकामिति ॥४८॥

जिस समय महातपोनिधि श्रीमहात्माजी इस रीतिसे बोल रहे थे उसी समय * कलेक्टरके भेजे हुए एक सिपाहीने उनके पास आकर, उन्हें एक पत्र दिया ॥ ४८ ॥

अथ भोगपतेर्निदेशतोऽस्त्यभियोगात्परिमोचितो भवान् ।
इति शासनधारिणा दले सुभगे शंसृतवृत्तमीरितम् ॥४९॥

कलेक्टरने इस पत्रमें यह समाचार लिखा कि गवर्नरकी आज्ञासे आप अभियोगमेंसे मुक्त कर दिये गये हैं ॥ ४९ ॥

हरिरेव रिरक्षिषेद्यदि स्वजनं कंचनबाहुभिर्निजैः ।
परिपीडयितुं न सत्पथप्रतिपन्नं क्षमते परः क्वचित् ॥५०॥

भगवान् यदि अपने कल्याणकारी विशाल भुजाओंसे किसी सन्मार्गमें चलनेवाले स्वजनकी रक्षा करना चाहे तो उसे कोई भी दुःख नहीं पहुँचा सकता ॥ ५० ॥

---

* उन कलेक्टर महाशयका नाम था मि॰ हेकोक ।

शिविरे नगरे पुरेषु च क्षणतो व्यापदियं सती कथा।
परितस्तमुपेत्य विह्वला जनता वर्धयितुं व्यवस्थिता ॥५१॥

शिविर–डेरेमें, नगरमें, गाँवोंमें, चारों ओर क्षणभरमें यह सुन्दर समाचार फैल गया। विह्वल होकर जनता बधाई देनेकेलिये महात्माजीके पास आयी ॥ ५१ ॥

अथ सत्यजयप्रबोधिनी नविलम्बं निखिले च भारते।
विविधैः करणैश्च संस्तुता शुभवार्तेयमनूनचित्रकृत् ॥५२॥

अत्यन्त आश्चर्यदेनेवाली तथा सत्यके विजयको बतानेवाली यह शुभवार्ता अनेक साधनोंद्वारा समस्त भारतवर्षमें फैल गयी ॥ ५२ ॥

अधिपेन च सोऽर्थितस्तदा यदि साहाय्यमपेक्षितं भवेत्।
अधिकारिगणस्य ते सुखं तदवाप्तुं कृपयाशु ज्ञापिति ॥५३॥

कलेक्टरने यह भी महात्माजीसे कहा कि यदि अधिकारियोंकी सहायताकी आवश्यकता पडे तो उसकेलिये मुझे शीघ्र सूचना दें ॥ ५३ ॥

अतिहर्षभरेण दीनभृत्स च हेकोकमवाप योगिराट्।
अवगत्य तु तन्मनस्वितामधिकं तोषमुपाययौ तदा ॥५४॥

दीनरक्षक, योगिराज श्रीमहात्माजी प्रसन्नताके साथ मि० हेकोक (कलेक्टर) से मिले। महात्माजी कलेक्टरकी उस समयकी मनस्विता–उदारताको देखकर बहुत सन्तुष्ट हुए ॥ ५४ ॥

अथ नीलवरानयोन्मुखाचरणावेक्षणमाश्रयन्मुनिः।
समयं मतिमानुपस्थितं शुभबुद्धे न च कः समृद्धये ॥५५॥

इसके पश्चात् श्रीमहात्माजीने निलहे गोरोंके *अन्यायोन्मुख व्यवहारोंकी जाँच शुरू कर दी। क्योंकि कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा जो मिले हुए अवसरका अपने लाभके लिये उपयोग न करे ? ॥ ५५ ॥

*अन्यायोन्मुख = अन्यायी—अनुचित

अपराधनिबन्धनाश्रिता बहुधा तं परिनिन्दितुं ततः ।
कृतवन्त उदारपापका यतनं किन्तु निरर्थकं गतम् ॥५६॥

जो निलहे या अन्य लोग अपराधी और बड़े पापी थे उन्होंने अनेक प्रकारसे महात्माजीकी निन्दा करनेकेलिये प्रयत्न किया परन्तु निरर्थक हुआ ॥ ५६ ॥

अथ भोगपतेः पुनर्यतेः सविधे पत्रमुपाययौ कचित् ।
तव कार्यगतिर्विलम्बिता परिहेयं तु विहारमण्डलम् ॥५७॥

÷ गवर्नरका पुनः पत्र श्रीमहात्माजीके पास एक समय आया कि आपके कार्यकी गति लम्बी हो गयी है । आपको विहार प्रान्त अब छोड देना चाहिये ॥ ५७ ॥

सपदीति तदुत्तरं ददे विनयेनैव महात्मना तदा ।
मम कार्यमदो विलम्बितं भजतेऽद्यापि न चावधिं परम् ॥५८॥

श्रीमहात्माजीने विनयसे शीघ्र ही उत्तर दिया कि मेरा कार्य बढ़ गया है और उसकी अन्तिम अवधि अभी नहीं आयी है ॥ ५८ ॥

अनयस्य परीक्षणे कृते जनतादुःखकथानके श्रुते ।
न हि यावदनीतिवारणं न विहास्यामि विहारमण्डलम् ॥५९॥

श्रीमहात्माजीने लिखा कि—अन्यायोंकी जाँच करनेपर, जनताकी दुःखकथाके सुन लेनेपर, जबतक अन्यायका निवारण नहीं होगा तबतक मैं विहार प्रान्तको नहीं छोड़ूँगा ॥ ५९ ॥

स च भोगपतेः सदिच्छया पटनां द्रष्टुममुं गतस्ततः ।
जनतापरितापवीक्षिकां समितिं कामपि कर्तुमुद्यतम् ॥६०॥

विहारके गवर्नर जनताके दुःखकी जाँचकेलिये एक समिति बनानेको तैयार थे । उनकी शुभ इच्छाके अनुसार श्रीमहात्माजी उनसे मिलनेकेलिये पटना गये ॥ ६० ॥

÷ उस समयके विहारके गवर्नर सर् एडवर्ड गेट्ट थे ।

समितेश्च सदस्यताकृते विनयात्प्रान्तमहेश्वरेण तु ।
अभिधानमधायि तस्य सज्जनताप्रीतिपरम्पराभुजः ॥६१॥

गवर्नरने विनयके साथ उस समितिका सदस्य बननेके लिये समस्त सत् = उत्कृष्ट—जनताकी परमप्रीतिके पात्र श्रीमहात्माजीका नाम लिया ॥६१॥

विदुषां सुहृदां मनस्विनामपरेषामपि मेऽनुयायिनाम् ।
उचितेऽवसरे च सम्मतिः परिगृह्या भविता मया ननु ॥६२॥

जो विद्वान्, मनस्वी, सुहृद् दूसरे मेरे साथी हैं, समय पड़नेपर मैं उनकी सम्मति अवश्य लूँगा ॥ ६२ ॥

परिपूर्तिमिते निरीक्षणे सदसा संप्रथितेऽपि निर्णये ।
मम तोक्ष्यति मानसं न चेत्परिहास्यामि न मे प्रवर्तनम् ॥६३॥

जाँच हो जानेपर, सभाके द्वारा निर्णयके प्रकाशित कर देनेपर, यदि मेरा मन सन्तुष्ट नहीं होगा तो मैं अपनी वर्तमान प्रवृत्तिका त्याग नहीं करूँगा ॥६३॥

गतवत्यपि तत्सदस्यतां मयि तिष्ठेत्कृषकाधिनेतृता ।
समयैस्त्रिभिरित्यसौ मुनिःप्रतिशुश्राव तु तत्सदस्यताम् ॥६४॥

यदि मैं उस समितिका सदस्य बन जाऊँगा तो भी कृषकों—किसानोंका नेतृत्व मेरे पास रह ही जायगा। इन तीन * शर्तोंसे महात्माजीने उस समितिका सदस्य होना स्वीकार कर लिया ॥ ६४ ॥

सदसोऽधिपतेः पदे स्थितः सर फ्रेङ्कस्लायिउदारमानसः ।
कृषकैर्विधृतं विरोधनं सदसौचित्यपदे निवेशितम् ॥६५॥

समितिके सभापतिके पदपर, उदारचित्तवाले सर फ्रेंकस्लाइ महाशय नियत हुए थे। उस समितिने कृषकोंके विरोधको उचित ठहराया ॥६५॥

* (१) अपने साथियोंसे समय समयपर सलाह लूँगा। (२) समितिके निर्णयसे यदि मुझे सन्तोष न होगा तो मैं अपनी प्रवृत्तिको जारी रखूँगा और (३) कृषकोंका नेतृत्व मैं नहीं छोड़ूँगा। उनकी स्थिति सुधारनेकी सहिष्णुता बनी ही रहेगी। यही तीन शर्तें थीं जो ६२, ६३, ६४ श्लोकोंमें वर्णित हैं।

अनुसृत्य च सम्प्रधारणं समितेर्न्यायसदध्वसम्पुपः ।
अभवन्ननु सार्वकालिकं जनतासङ्कटसंनिवारणम् ॥६६॥

न्यायके सत्पथके रक्षण करनेवाली समितिके निश्चयके अनुसार सदाकेलिए जनताके सङ्कटका निवारण हो गया ॥ ६६ ॥

सुजनो धरणीधरो गया नवमी-श्रीव्रज-राज-गोरखाः ।
अपरे बहवः सहायतां गतवन्तो विजये महात्मनः ॥६७॥

सज्जनधरणीधरबाबू, बाबू गयाप्रसादजी, बाबू रामनवमीप्रसादजी, बाबू व्रजकिशोरप्रसादजी, बाबूराजेन्द्रप्रसादजी, बाबू गोरखप्रसादजी तथा अन्य बहुतसे लोगोंने–तथा प्रोफेसर कृपलानीजी आदिने * श्रीमहात्माजीके इस विजयमें सहायताकी थी ॥ ६७ ॥

* प्रवर्तितां नीतिविरुद्धपद्धतिं,
शताच्च वर्षेभ्य उदस्य धार्मिकः ।
महाश्रमेणैव विहारभूतला-
द्दरिद्रदेवो गुजरातमाययौ ॥६८॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
सप्तमः सर्गः

सौ वर्षोंसे चलती हुई इस अन्याय पद्धतिको, महान् श्रमसे दूरकरके, वह दरिद्रोंके देवता परमधार्मिक श्रीमहात्माजी गुजरातमें आये ॥ ६८ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते सप्तमः सर्गः

---

* यद्यपि यह विजय सत्य और न्यायकी विजय है और उसके साथ ही श्रीमहात्माजीके साथ वहाँ काम करनेवाले सभी महानुभावोंकी विजय है तथापि महात्माजीके विजय कहनेका तात्पर्य यह है कि सत्याग्रहयुद्धकी शोध केवल उन्हींकी है ।

* वंशस्थविल छन्द

* अष्टमः सर्गः

आसीद्यदा मुनिकुलेश्वर एष चम्पा-
रण्ये विहारभुवि गुर्जरमण्डलेऽपि।
सत्याग्रहाख्यसमरस्य च पूर्वरूपं
खेडाविभाग उदतिष्ठिपदेष देवः ॥ १ ॥

जब यह मुनिनायक श्रीमहात्माजी बिहारप्रान्तके चम्पारन शहरमें सत्याग्रहयुद्ध कर रहे थे उसी समय उन्होंने गुजरात प्रान्तमें भी खेडाजिलेमें सत्याग्रहयुद्धका पूर्वरूप उदय कर रखा था। अर्थात् खेडाजिलेमें भी सत्याग्रहकी तैयारी करा रहे थे ॥ १ ॥

आगत्य गुर्जरभुवि प्रसमीक्ष्य दौष्ट्यं
राज्याधिकारिभिरतीव समाहृतं सः।
आश्चर्यमार्यहृदये परमं दधानो
देवो दयापरवशो विकलो बभूव ॥ २ ॥

चम्पारनसे आकर, गुजरातमें सर्कारी अधिकारियोंने जो दुष्टता स्वीकार की थी उसे देखकर, उनके पवित्र और दयालु हृदयमें बहुत आश्चर्य हुआ और उससे वह व्याकुल हो गये ॥२॥

खेडाख्यमण्डलभुवि प्रबलः पपात
दुष्काल इद्धजठरानल उग्ररूपः।
नष्टा कृषिश्च निखिला बहुवर्षणेन
सर्वा प्रजा विकलिता धनधान्यहीनाः ॥३॥

खेडाजिलेमें बड़ा भारी अकाल पड़ा था। अकालका रूप भयङ्कर था।

* इस सर्गमें वसन्ततिलका छन्द है।

उसके पेटमें आग धधकती थी। अतिवृष्टिके कारण सब खेती नष्ट हो गयी थी। सब प्रजा धन और धान्यके विना व्याकुल थी ॥ ३ ॥

चातुर्थिकोंश इह नो यदि धान्यराशे-
दुष्काल एव भविताभिमतस्तदानीम्।
ग्राह्यो भवेन्न कृपिकारगणात्तदैव
राज्येन भूमिकर इत्यभवत्प्रतिज्ञा ॥ ४ ॥

उस जिलेमें सर्कारकी ओरसे यह प्रतिज्ञाथी–नियम था कि यदि चौथाईसे कम खेती पकी हो–तैयार हुई हो तो उस साल दुष्काल पडनेकी घोषणा कर दी जायगी तथा किसानोंसे जमीनकी मालगुजारी उसी साल नहीं ली जायगी–अर्थात् दूसरे साल वसूल की जायगी ॥ ४ ॥

अन्याय्य एव पथि संचरणं कुराज्यं
श्रेयस्करं त्विथ विचार्य विचारहीनम्।
देयो भविष्यति करो नृपतेरिदानी-
मित्यार्तहृद्भयकरीं निरमोदनुज्ञाम् ॥ ५ ॥

अन्यायके मार्गमें चलना ही श्रेयस्कर है, ऐसा विचारकर, विचारहीन सर्कारने दीनोंके हृदयोंको फाडनेवाली आज्ञा निकाली कि सर्कारी मालगुजारी अभी ही देनी पडेगी ॥ ५ ॥

शीघ्रं महात्मवसुमत्यधिपेन तेन
चम्पारणे स्थितवता निखिला निदिष्टा।
खेडाकृपीवलसुरक्षणदत्तचित्ता
रोद्धुं च राज्यकरदानमवश्यमेव ॥६॥

उस समय चम्पारनमें स्थित (महात्माओंकी—भूमिके राजा) श्रीमहात्माजीने, खेडाजिलेके किसानोंकी रक्षामें लगे हुए सब लोगोंको, मालगुजारी देनेको रोकनेकेलिये आदेश दिया ॥ ६ ॥

श्रीवल्लभो रमणलाल-हरिः परीखः
श्रीठक्कुरोऽप्यमृतलालमहाशयोऽसौ ।
श्रीशङ्करो जनतया महिताः समस्ता
निर्णिन्युरात्मगमनं ह्यधिकारिवर्ये ॥७॥

® श्रीयुत वल्लभभाई पटेल, रायबहादुर रमणभाई महीपतिराम नीलकण्ठ, रा० सा० हरिलाल देसाईभाई देसाई, श्रीयुत शङ्करलाल द्वारिकादास परीख, श्रीयुत अमृतलाल ठक्कर, श्रीयुत शङ्करलाल बेङ्कर, समस्त जनतासे सत्कृत इन महानुभावोंने बम्बईके गवर्नरसे मिलनेका निर्णय किया ॥ ७ ॥

मुम्बापुरीविषयभोगपतेर्विदित्वा
तादस्थ्यमेव न गतास्तु तदन्तिकं ते ।
चम्पारणे निवसतोऽस्य महात्मनस्ते-
र्वृत्तं समस्तमिति सम्प्रहितं क्षणेन ॥८॥

इन लोगोंसे मिलनेके सम्बन्धमें बम्बईके गवर्नरने उदासीनता प्रकट की। इस उदासीनता को देखकर वह लोग गवर्नरसे नहीं मिले। चम्पारनमें श्रीमहात्माजीको उसी समय यह सब वृत्तान्त लोगोंने भेज दिया ॥ ८ ॥

विज्ञाय ते निजपराजय भूषणानि
राजन्यमत्र ददते कतिचिन्मनुष्याः ।
आकर्ण्य वृत्तमिति दानजनाधिनाथः
कर्तुं तथा स निषिषेध विचारपूर्वम् ॥९॥

थोड़ासे यह कुछ आदमी—जो गवर्नरसे डरते थे या अपनी प्रतिष्ठासे

® उन दिनोंमें गुजरातसभा सामर्थ्य एवं राजनैतिक संस्था गुजरातमें थी। उसके सभापति श्रीमहात्माजी थे और प्रायः यह सभी लोग उसके माननीय सभ्य थे।

डरते थे—पशुओं और गहनेको बेचकर मालगुजारी (विघोटी) दे रहे हैं, इस समाचारको सुनकर दीनानाथ महात्माजीने विचारपूर्वक, ऐसा करनेको मना कर दिया ॥ ९ ॥

> हृद्भेदनक्षमतमं किल वृत्तजातं
> श्रुत्वा समाप्य च विहारगत सुकार्यम् ।
> आगत्य गुर्जरभुवं कठिनेऽत्र काले
> संरक्षितुं स जनतां निरचेष्ट शीघ्रम् ॥१०॥

सर्कारी नौकर यहाँ मारपीट कर रहे हैं, स्त्रियोंके सामने खराब गाली बका करते हैं, मनमें जो आवे सो सब वह नौकर करते हैं, वह सब बलात्कारसे पशुओंको भैंस आदिको खोलकर लेजाते हैं, इत्यादि हृदयभेदक समाचारोंको सुनकर महात्माजीने बिहारके—चम्पारनके सत्याग्रह कार्यको समाप्त करके, गुजरातमें आकर कठिन समयमें जनताकी रक्षा करनेका शीघ्र ही निश्चय कर लिया ॥ १० ॥

> प्रेटेन घोषितमिदं विषमं तदानीं
> दास्यन्ति ये न करमत्र तदीयभूमिः ।
> साम्राज्यतोऽतिबलतोऽपि भवेद्गृहीता
> प्राप्ता भवेन्न च पुनर्भुव ईश्वरैस्तैः ॥११॥

इसी समयमें छमि० प्रेटने विषम घोषणाकी कि जो लोग मालगुजारी (विघोटी) नहीं भर देंगे उनकी जमीन बलात्कारसे भी सर्कार ले लेगी—छीन लेगी और पुनः भूमिके उन मालिकोंको वह न मिलेगी ॥ ११ ॥

> क्रूरं कठोरमदयं वचनं तदैत-
> द्दण्डो न संभवति धर्मवचःप्रपत्त्यै ।
> अन्याय एप सितशासनके यदि स्या-
> त्त्यामेव राज्यविपरीतमनःपरीतः ॥१२॥

छ खेड़ाजिलेके कमिश्नरका नाम था ।

उद्घोष्य स प्रतिवचस्त्विति दीनदेवः
सत्याग्रहाख्यसमरप्रतिपादनाय ।
सस्यादिताशु समितिर्नडियाद एका
तत्राजहार गिरमित्यभयं महात्मा ॥१३॥

"तुम्हारा यह वचन—यह घोषणा, क्रूर,[1] कठोर[2] और निर्दय[3] है, धार्मिकवचन—सत्यप्रतिज्ञाको स्वीकार करनेकेलिये दण्ड सम्भव नहीं है। यह अन्याय यदि ब्रिटिश राज्यमें भी होने लगेगा तो मैं तो राज्यके विरुद्ध मनको धारण करनेवाला अर्थात् राज्यका विरोधी हो जाऊँगा ॥ इस रीतिसे प्रेट महाशयका उत्तर करके दीनोंके देव श्रीमहात्माजीने सत्याग्रहयुद्धके प्रतिपादन करनेकेलिये-इसको समझाने और प्रचार करनेकेलिये नड़ियादमें एक सभा की। उसमें इस प्रकारसे उन्होंने भाषण दिया:—[4] ॥१२॥१३॥

शृण्वन्तु बन्धव इदं वचनं मदीयं
धर्म्यं समृद्धिशरणं च विवेकपूर्णम् ।
दुष्काल एव विततः खलु मण्डलेऽस्मि-
न्देयस्ततो नृपतये न भुवः करोऽद्य ॥१४॥

भाइयो ! धार्मिक, उन्नति और समृद्धिको देनेवाली विवेकपूर्ण मेरी बातको सुनो। इस जिलेमें निश्चय ही दुर्भिक्ष फैला हुआ है अतः अभी इस वर्ष मालगुजारी नहीं देनी चाहिये ॥१४॥

क्षेत्राणि धान्यरहितानि गृहाणि नृणां
रिक्तानि सन्ति नितरां द्रविणैरिदानीम् ।

---

१ ईर्ष्यापूर्ण या द्वेषपूर्ण ।
२ आवश्यकता और न्यायका अतिक्रमण करनेवाला ।
३ दयाशून्य—मानवताविरोधी ।
४ यहाँसे श्रीमहात्माजीका भाषण संक्षेपमें आरम्भ होता है ।

विस्फारिते च करयोर्युगले नृपस्य
देयो भवेत्कथमहो धरणीकरोऽद्य ॥१५॥

इस समय खेतोंमें अन्न नहीं हैं। घर धनसे खाली हैं। राजाने—सर्कारने दोनों हाथ फैला रखे हैं परन्तु उसमें इस समय मालगुजारी कैसे दी जा सकती है? ॥ १५ ॥

उत्पाद एव यदि धान्यगणस्य न स्या-
त्पूर्णं कदापि नियमात्तु करो न देय ।
अन्यायमाचरति चेन्नरनायकोऽसौ
तस्यापसारणकृतेऽद्य भवन्तु सज्जा ॥१६॥

जब भिन्न भिन्न अन्नोंमेंसे कोई भी अन्न नहीं पैदा हुआ है तो कानियमानुसार कागदेके अनुसार ता मालगुजारी नहीं देनी चाहिये। यदि यह राजा अन्याय करे तो उस अन्यायको दूर करनेकलिये तैयार हो जाओ ॥ १६ ॥

या या प्रजा जगति वृद्धिपथं प्रपन्ना
सोढ्वैव दुःखनिचयं बहुशोऽपि साऽपि ।
तेनाद्य यूयमपि चेद्विपदः सहेध्व
रोहेत नूनमधिकोन्नतिवर्त्म काम्यम् ॥१७॥

जो जो प्रजा उन्नतिके मार्गमें चढी है वह भी बहुत बार कष्टोंको सहन करके ही। अत तुम लोग भी विपत्तियोंको सहन करो तो वाञ्छित उन्नतिमार्गपर अवश्य चढोगे ॥ १७ ॥

सत्याग्रहस्य विधिवद्विधृता प्रतिज्ञा
रक्ष्याऽभविष्यदथ शासनमप्यवेक्ष्यत् ।
युष्मन्मनोबलमलोऽवमतिं विहाय
मानं करिष्यति हि वो दृढनिश्चयानाम् ॥१८॥

'जिस वर्ष चौथाईसे कम फसल हो उस साल मालगुजारी मुल्तवी रहनी चाहिये" यही उस जिलेका कायदा था।

सत्याग्रहकी ली हुई प्रतिज्ञा यदि विधिपूर्वक ठीक ठीक पाली जायगी तो सर्कार भी तुम्हारे आत्मिक बलको जान जायगी और अत एव तुम्हारा अपमान करना छोडकर बडे आदर और प्रसन्नतासे ⊛ मान करेगी ॥ १८ ॥

ये संत्यजन्ति सभया. स्वकृतां प्रतिज्ञां
हेया भवन्ति ननु देशनृपेश्वरैस्ते ।
तस्मात्सहध्वमखिलं परितापमारा-
दायातमापरिबुभूषत शासनानि ॥१९॥

जो लोग भयभीत होकर अपनी की हुई प्रतिज्ञाको छोड देते हैं उन्हें देश, राजा और ईश्वर भी छोड देता है। वह किसीके भी कामके नहीं रह जाते। अत समीपमें आये हुए सब दुःखोंको सहन करो और सर्कारी आज्ञा भङ्ग करो ॥ १९ ॥

ये ग्रामिका अथ तलाटिन उग्रताया
रूपं प्रदर्श्य कृषकाननिपीडयन्ति ।
आकर्णयन्तु मम धर्म्यमिदं वचोऽद्य
सन्त्येव चेदिह सभाभवने स्थितास्ते ॥२०॥

जो मुखी और पटवारी उग्ररूप दिखाकर—डरा धमकाकर किसानोंको हैरान करते हैं वह भी, यदि इस सभामें बैठे हों तो मेरे धर्मयुक्त वचनको सुनें ॥ २० ॥

⊛ यहाँपर मान और आदरमें इस प्रकारका भेद समझना चाहिये। आदर अर्थात् स्वागत। मान अर्थात् प्रतिष्ठा। अथवा इस श्लोकमें प्रतिपादित आदर सर्कारनिष्ठ है और मान युष्मन्निष्ठ है। अर्थात् सर्कार तुम्हारेलिये पहिले तो अपने मनमें आदर धारण करेगी और पश्चात् उसे तुम्हारेलिये प्रकट करेगी। इस आदरके प्रकट करनेका साधन तुम्हारेलिये प्रेमदर्शन और सुविधाओंका प्रदान करना है।

⊛ मुखी या मुखिया। — पटवारी।

कार्तज्ञ्यमुत्प्रथयितुं यदि वाञ्छथैव
राज्यं प्रति प्रथयतेति न वारयामः ।
यत्ताडनं प्रतिबलात्कुरुथ प्रजासु
तत्सर्वथाऽनुचितमस्त्वविवेकभाजाम् ॥२१॥

यदि सर्कारके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेकी इच्छा ही है तो मैं उसे नहीं रोकता हूँ। परन्तु प्रतिबलसे-प्रतिकूल-बलसे—अर्थात् राक्षसी बलसे जो प्रजाको मारा पीटा जाता है वह तो तुम्हारा कृत्य सब प्रकारसे अनुचित ही है ॥ २१ ॥

अत्रागता अधिसभं कृपका विदन्तु
तेषां हिताय हि मया रचितं श्रमेण ।
एकं शुभं समयपत्रमवेक्ष्य तत्र
हस्ताक्षराणि निदधत्विति तच्छिवाय ॥२२॥

जो किसान भाई इस सभामें आये हुए हैं उनको जानना चाहिये कि उनके हितकेलिये मैंने परिश्रम करके एक उत्तम समयपत्र-प्रतिज्ञापत्र तैयार किया है। उसे समझकर उसपर अपना अपना हस्ताक्षर कर देने होंगे ॥ २२ ॥

ऊरीकृतस्य समयस्य निपालनार्थं
प्राणार्पणादिभिरपीह भवेत सज्जाः ।
युष्मद्वचःप्रतिहतिप्रतिघातनायो-
पायो मयापि विधिनैव विधेय एव ॥२३॥

ग्रहण की गयी प्रतिज्ञाका पालन करनेकेलिये प्राणार्पण करनेकेलिये भी उद्यत रहना चाहिये। तुम लोगोंकी प्रतिज्ञाके नाशका नाश करनेकेलिये अर्थात् तुम्हारी प्रतिज्ञा सुरक्षित बनी रहे इसकेलिये मैं भी सदा उपाय करता रहूँगा ॥ २३ ॥

आरम्भ एव समरस्य तदा बभूव
क्रूरप्रहार इह सत्यसमर्थकेषु ।

राज्याधिकारिभिरमर्षविषप्रसिक्तैः
सर्वं कृतं न करणीयमपि प्रलोभात् ॥२४॥

इस सत्याग्रहयुद्धके आरम्भमें ही सत्याग्रहियोंपर क्रूर प्रहार होने लग गये। क्रोधरूप-विषसे सींचे गये हुए सर्कारी अमलदारोंने, लोभवश होकर, जो नहीं करने चाहिये थे, वह सब कुछ उन्होंने * किया ॥ २४ ॥

सत्याग्रहाहवरसग्रहिलैरपीह
राज्यस्य दौष्ट्यमपनेतुमुदारयत्नाः।
आरेभिरे सपदि एव विचारदक्षै-
र्ग्रामेषु युद्धनिपुणाः प्रहिताः समोदाः ॥२५॥

सत्याग्रह-युद्धके रसग्रहिल-रसिक लोगोंने भी सर्कारकी इस दुष्टताके निवारणकेलिये उत्तम प्रयत्न करना शुरू कर दिया। विचारशीलोंने अच्छे अच्छे योद्धाओंको-सत्याग्रहियोंको ग्राममें तैयारीकेलिये भेज दिया ॥२५॥

श्रीश्रीभिषग्वसुमतीन्द्रहरिप्रसादः
श्रीकालिदास उत विट्ठलवल्लभौ च।
श्रीमत्परीखवर-शङ्करशङ्करौ च
लल्लू मणिश्च किल मोहनलालपण्ड्या ॥२६॥

श्रीयुत भिषग्वसुमतीन्द्र—वैद्यश्रेष्ठ-डाक्टरहरिप्रसाद मेहता, श्रीकालिदास जौहरी, श्रीविट्ठलभाई पटेल, श्रीवल्लभभाई पटेल, श्रीशङ्करलाल परिख, श्रीशङ्करलाल बेङ्कर, श्रीलल्लूभाई किशोरभाई, श्रीमणिलाल मेहता और श्रीमोहनलाल पण्ड्या—पाण्डेय ॥ २६ ॥

कस्तूरया निखिलपूजितपादपद्मा
पत्युः पदानुसरणव्रतशालिनी च।

* सत्याग्रहियोंको सर्कारी नौकर मारते भी थे, गालियाँ भी देते थे, उन्हें बदनाम भी करते थे। उनके जानवरोंको जबर्दस्तीसे खोलकर ले जाते थे।

श्रीमन्महागुणिशिरःस्थितिसत्यभिज्ञा
राष्ट्राधिसेवनपरा सदयाऽनसूया ॥२७॥

सब लोग जिनका परम आदर करते हैं और जो अपने पतिके मार्गमें चलनेकेलिये व्रत ले चुकी हैं वह श्रीमतीकस्तूरबा और महागुणियोंके शिरोमणि, राष्ट्रकी सेवाकरनेवाली, दयालु, विदुषी श्रीअनसूयाबहिन–॥२७॥

श्रीवामनो जयकरोऽपि च हार्निमेनः
श्रीफूलचन्द्रशिवजी भगिनी कुँवारी।
सत्याग्रहाख्यपरिचालनरीतिदक्षः
श्रीमन्महात्मसचिवोऽथ दिसाइ नाम ॥२८॥

श्रीवामन, श्रीजयकर, श्रीहार्निमेन, श्रीफूलचन्द्र, श्रीशिवजीभाई, श्रीमती कुँवर बहिन, और सत्याग्रह अस्त्रके चलानेमे निपुण तथा श्रीमहात्माजीके वर्तमान सेक्रेटरी श्रीमहादेवभाई देसाई— ॥ २८ ॥

श्रीभारताम्बरमणिर्विबुधप्रभाढ्यः
श्रीलोकमान्यवर ईशपदानुरक्तः।
गङ्गाधरस्य तनयो विदुषां महीया–
ञ्श्रीमन्महामहिमजुट् तिलकोऽपि बालः॥२९॥

भारतके सूर्य, देवोंके समान कान्तिवाले, सबसे अधिक लोकमान्य, भगवत्पदानुरागी, अत्युत्तम विद्वान्, महान् महिमावाले, श्रीगङ्गाधरतिलकके पुत्र श्रीबाल तिलक–श्रीबालगङ्गाधर तिलक—॥ २९ ॥

श्रीवासुदेवतनयोऽपि गणेश एष
श्रीमावलङ्कर इति प्रथितः सुधीशः।
वाग्मी च कर्मठ उतापि च सर्वसभ्यो
लब्धप्रतिष्ठविदुषां प्रिय इन्दुलालः ॥३०॥

विद्वान्, वाग्मी, कर्मठ, और परमसभ्य श्रीगणेशवासुदेव मावलङ्कर और प्रतिष्ठित विद्वानोंके प्रिय श्रीइन्दुलाल याज्ञिक॥३०॥

सोऽसौ विहारिजनतापतिरार्तबन्धुः,
राजेन्द्र आत्मबलिनां वर उत्तमौजाः ।
आनन्दिनी च परमार्थपरायणाऽपि
वर्मा तथा च बदरीशमहाशयोऽपि ॥३१॥

बिहारी जनताके रक्षक, दीनबन्धु, आत्मिक बलवालोंमें श्रेष्ठ और उत्तम ओजस्वाले बाबू श्रीराजेन्द्रप्रसादजी, परमार्थ परायण श्रीमती ❀ आनन्दीबाई और प्रो० बदरीनाथ वर्माजी ॥ ३१ ॥

अन्येऽपि भारतभुवो गुरुगौरवश्री-
संवर्धनोत्कमनसः सुधियां वरेण्याः ।
धीरा महाबलिशिरोमणयोऽप्यनेके
युद्धाध्वरेऽत्र जगृहुः किल याजकत्वम् ॥३२॥

भारतभूमिके गुरु—गौरवको बढ़ानेके लिये उत्सुक अन्य विद्वान् तथा महान् बलवान् लोगोंने भी इस युद्ध-यज्ञमें याजकपनेको स्वीकार किया था॥३२॥

एतैः समैः परमवीरवराग्रगण्यै-
दुर्धर्षणैश्च सहितोऽतुलयोगमायः ।
ग्रामेषु सश्रममटन् कृषकान्समस्ता-
न्सत्याग्रहाय कृतवान्मुनिरेष सज्जान् ॥३३॥

जिनको कोई हरा न सके ऐसे इन सब महावीरोंके साथ अतुल योगशक्तिवाले मुनि-श्रीमहात्माजीने परिश्रमके साथ ग्रामोंमें फिर फिर कर सब किसानोंको सत्याग्रहकेलिये तैयार किया ॥३३॥

† यच्चोक्तिरेव परमेश्वरसिद्धवाणी
सिद्धिर्भविष्यति भवद्यतनेषु नूनम् ।

❀ चम्पारन सत्याग्रहयुद्धके समय यह बहिन ग्रामसेवामें, श्रीमहात्माजीकी आज्ञाके अनुसार लगीहुई थीं ।

† श्रीमहात्माजीने ग्रामोंमें फिर फिर कर जो उपदेश दिये थे उनका

य: स्वात्मशक्तिमनुसृत्य युधं विधत्ते
स्यादेव तस्य नितरां विजयो महीयान् ॥३४॥

÷ पञ्चका जो कथन है वह परमेश्वरकी सिद्धवाणीके समान है। आपके यत्नमें अवश्य सिद्धि होगी। जो आत्मशक्तिके अनुसार युद्ध करता है उसका यशस्वी विजय अवश्य होता है ॥ ३४ ॥

यो नो बिभेति मरणाद्विदितात्मतत्त्व:
स क्षत्रिय: स्वजनिभूमिसुतः स एव।
संप्राप्य युद्धफलमाशु महायशस्वि
स्वं च स्वदेशमपि कीर्तिभुजं विधत्ते ॥३५॥

आत्मतत्त्वको जाननेवाला जो कोई भी मृत्युसे नहीं डरता वही क्षत्रिय है और वही अपनी जन्मभूमिका पुत्र है। वह महान् यशस्वी युद्धफलको पाकर अपने आपको और अपने देशको भी कीर्तिभुक् = यशका भोग करनेवाला बनाता है ॥ ३५ ॥

न स्मो वयं प्रियतमा: पशवो विमूढा-
स्तस्मान्न शक्नुम इह प्रतिपत्तुमार्या:।
रोषं कथञ्चिदपि चाल्पमपीति नित्य-
माध्यात्मिकादि सुबलेन हि योध्यमस्ति ॥३६॥

प्रियतमा:—प्यारे श्रेष्ठभाइयो! हम लोग मूर्ख पशु तो नहीं ही हैं। अत: किसी प्रकारसे भी थोड़ा भी क्रोध तो नहीं कर सकते। प्रशस्त आत्मशक्तिरूप बलसे इस विषयमें युद्ध करना चाहिये ॥ ३६ ॥

सांसारिकाणि विपुलानि सदैव दु:खा-
न्याबाधितुं न महतां विदितः कथञ्चित्।

सार यहांपर १० श्लोकोंमें दिया जाता है।

÷ एक कमेटी बनायी गयी थी। उसने भी निर्णय किया था कि इस ज़िलेमें इस साल फसल चौथाईसे कम है। यही पञ्चका कथन है।

सत्याग्रहादितर ईदृगुपाय इद्धः
सत्यं निवारयति सर्वसुखप्रतीपम् ॥३७॥

विपुल-महान् सांसारिक दुःखोंको दूर करनेकेलिये सत्याग्रहके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय महान् आत्माओंको अभीतक विदित नहीं है। सत्य, सुखोंके सर्वशत्रुओंको निवारण करता है ॥ ३७ ॥

आयोधनान्त इह सत्यमुपासितारो
राज्यं प्रबोधयितुमेवमदृष्टपूर्वम्।
शक्ष्याम एव सरलप्रकृतिप्रकोपै-
र्दुष्टं फलं भवति शीघ्रमिहैव भोग्यम् ॥३८॥

युद्धके अन्तमें हम सब सत्याग्रही सर्कारको यह बतानेकेलिये समर्थ होंगे कि सीधी सादी प्रजाके कोपसे वैसा अदृष्टपूर्व-पहिले कभी भी न देखा हो ऐसा—दुष्ट फल भोगनेकेलिये शीघ्र मिलता है ॥ ३८ ॥

युष्माकमत्र महती समरेण हानिः
स्यादेव भूमिमहिषीमहिषादिकानाम्।
जानन्नपीति न निवारयितुं युधोऽस्या
युष्मान्कदापि मनसाऽपि विचारयामि ॥३९॥

इस युद्धमें तुम लोगोंकी जमीन भैंस आदिकी भारी हानि होगी इस बातको जानता हुआ भी मैं तुम लोगोंको इस युद्धसे हटानेकेलिये कभी मनमें विचार भी नहीं करता हूं ॥ ३९ ॥

दुःखैर्विना न लभते मनुजोऽत्र कोऽपि
लोकोत्तरं सुखमिति प्रथमं विचार्य।
दुःखानलं गमयितुं न बिभेमि युष्मा-
न्युष्मत्सुखाधिगममीक्षितुकाम एव ॥४०॥

कोई भी मनुष्य दुःखोंके बिना लोकोत्तर-सर्वश्रेष्ठ सुख नहीं पाता इस वस्तुको पहिले भले प्रकार विचार करके तुम लोगोंके सुखागमको

देखनेकी इच्छावाला मैं, इस दुःखदावानलमें तुम लोगोंको भेजनेसे डरता नहीं हूँ ॥ ४० ॥

ये स्वोक्तमत्र वचनं परिपालयन्ति
सत्येन जीवितुमलं ननु कामयन्ते ।
तेवश्यमैहिकसुखं बहुलां प्रतिष्ठां
स्वर्गादिकं च परलोकगता लभन्ते ॥ ४१ ॥

जो अपने वचनको सदा पालते रहते हैं और सत्यसे ही जीनेकी इच्छा रखते हैं वे लोग सांसारिक मोक्ष-स्वतन्त्रता और पारलौकिक मोक्षको प्राप्त करनेका अधिकार पाते हैं ॥ ४१ ॥

सत्यात्परो न परमोऽस्ति विशुद्धधर्मो
रक्ष्योऽत्र धर्मभगवानखिलैर्मनुष्यैः ।
भूमेर्धनात्सुतसुतादिजनादपीह
धर्मो महानिति कदापि न विस्मरेत ॥४२॥

सत्यके अतिरिक्त दूसरा कोई भी पवित्र धर्म नहीं है। सब मनुष्योंको चाहिये कि धर्मकी रक्षा करें। भूमि, धन, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदि सभी वस्तुओंकी अपेक्षा धर्म महान् वस्तु है, इसे कभी भी नहीं भूलना चाहिये ॥ ४२ ॥

ये धर्मरक्षणपरा न पराजयोऽस्ति
तेषां कचिन्न च विपत्तिसमागमोऽपि ।
स्याचेद्विपत्तिरिह न स्थिरतां भजेत
वातेन मेघ इव सापसरेच्च तेन ॥४३॥

जो धर्मकी रक्षा करते हैं उनका कभी भी पराजय नहीं होता है। उनको कभी दुःख नहीं प्राप्त होता है। कदाचित् कभी विपत्ति आवे भी तो वह स्थिर नहीं रहती है। जैसे हवासे बादल उड जाते हैं वैसे ही धर्मसे विपत्ति नष्ट हो जाती है ॥ ४३ ॥

इत्येवमेव मुनिवंशविभूषणाख्यो
ग्राम्यांस्तदा च कृषकानुपदिश्य सम्यक् ।
राज्यप्रहारसहनक्षमतां समर्प्य
सत्याग्रहास्त्रकुशलान्सकलांश्चकार ॥४४॥

उस समय मुनिवंशमें सुन्दर आभूषणरूप, श्रीमहात्माजीने ग्रामोंके किसानोंको इस रीतिसे भलेप्रकार उपदेश देकर सर्कारके प्रहारको सहन करनेकी शक्ति प्रदानकरके सत्याग्रहरूप अस्त्र चलानेमें सबको निपुण बना दिया ॥ ४४ ॥

आदाय सैन्यमतिपुण्यवदेष धीमा-
ञ्शीरोपमेव गतहिंसमथाविरोधम् ।
हिंसाप्रधानमतिकोपि च सद्विरोधि
सैन्यं सिताङ्गकमुपस्थित एव जेतुम् ॥४५॥

बुद्धिमान्-श्रीमहात्माजी किसीपर क्रोध न करनेवाली, महापुण्यशाली सेनाको लेकर हिंसक, अत्यन्त क्रोधी और सत्य अथवा सत्पुरुषोंका विरोध करनेवाली सर्कारी सेनाको जीतनेकेलिये उपस्थित हो गये ॥४५॥

दुर्धीधरा निरपराधिन एव दीना-
न्दुःसैनिका त्रिदिशशासनवाहकास्ते ।
सम्प्रैषयन्सततमेव जनान्गृहीत्वा
कारागृहं परमपावनमानसाढ्यान् ॥४६॥

त्रिदिश-शासनके वाहनरूप निर्दय और दुष्ट सैनिक, उन निरपराध, दीन और परमपवित्रमनवाले लोगोंको पकड़कर सतत जेलमें भेजने लग गये ॥ ४६ ॥

नाभूद्विषाद इह तेन सदामहाणां
श्रीसत्यदेवचरणाम्बुजसंश्रितानाम् ।
आनन्दिनैव मनसा यतिराजशिक्षा-
पूतान्तराः परिगता त्रिदिशस्य काराम् ॥४७॥

श्रीसत्यदेवके चरणकमलका आश्रय लेनेवाले अर्थात् सत्यके पक्षपाती उन सत्याग्रहियोंको उससे दुःख नहीं हुआ। आनन्दी मनसे, यतिराज-श्रीमहात्माजीके उपदेशसे, पवित्र-अन्तःकरणवाले वे लोग सर्कारी जेलमें चले गये ॥ ४७ ॥

> एतेन पापपरिपोषजुषा नृपस्या-
> सत्कर्मणा जगति कोप उदीयमानः ।
> सत्याग्रहादरिपु शासननीतिमेतां
> नीचामपश्यदपराधसमाजभाजम् ॥ ४८ ॥

सर्कारके इस पापपोषक असत्कर्मसे ससारमें क्रोध पैदा हो गया। उस क्रोधने सत्याग्रहमे आदर रखनेवाले अर्थात् सत्याग्रहियोंमें सर्कारकी इस नीतिको नीच और अपराधी समझा अर्थात् सर्कारकी इस दुष्ट और क्रूर नीतिसे सब लोगोंको क्रोध आया और सबने इस नीति की निन्दा की ॥ ४८ ॥

> जाता त्रपा कथमपीह गतत्रपस्य
> राज्यस्य तत्स्वकृतपापमवैक्षतैतत् ।
> सत्याग्रहादरिशिरोमणिना यदुक्तं
> तत्सत्यमित्यभवदुक्तमपीह तेन ॥४९॥

निर्लज्ज सर्कारको किसी तरह लज्जा आयी। इसने अपने किये हुए उस पापका निरीक्षण किया और यह भी कहा कि सत्याग्रहि-शिरोमणि-श्रीमहात्माजीने जो* कहा था वही सत्य था ॥ ४९ ॥

> आगत्य मामलतदार उवाच वाचं
> श्रीमन्महात्ममविधे विनये न नम्रः ।
> दीयेत शक्तकृषकैर्यदि राजदेयं
> दीना विलम्बितकरार्पणका भवन्तु ॥५०॥

* इस वर्ष चौथाईसे कम फसल हुई है, श्रीमहात्माजीके इस कथनको सर्कारने भी पीछेसे स्वीकार कर लिया।

मामलतदारने श्रीमहात्माजीके पास * आकर विनयनम्र हो कर कहा कि यदि जो किसान राजदेय-सर्कारी कर देनेमें समर्थ हैं वह यदि अपना कर दे दें तो गरीबोंका कर इस वर्ष अवश्य ही मुल्तवी रख दिया जायगा ॥ ५० ॥

> खेडाजिलावसतिभिः कृषकैः समस्तैः
> रभ्यर्थितं प्रथमतो नृपतेरिदं तु ।
> दृष्ट्वा तत समधिगम्य विजेतृवर्या
> व्यस्मार्षुरेव सकलं विपदां निधानम् ॥५१॥

खेडाजिलेके सब किसान भी सर्कारके पाससे पहिले ही यही चाहते थे। अत वह विजयी सत्याग्रही अपनी वाञ्छित वस्तुको पाकर सब दुःखोंको भूल गये ॥ ५१ ॥

> दुःखस्य नाशमखिलस्य कृषीवलानां
> सम्पाद्य तेन समरेण महानुभावः ।
> सन्तोष्य सर्वजनतां स्वयमप्यतीव
> तुष्टो बभूव स हि भारतपारिजातः ॥५२॥

इस युद्धके द्वारा सब किसानोंके दुःखोंका अन्त करके, वह महानुभाव तथा भारत-कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी सब जनताको सन्तुष्ट करके स्वयं भी सन्तुष्ट हो गये ॥ ५२ ॥

> †श्रीमद्योगिप्रमुख पार च कृत्वा प्रयत्नै
> मर्यान्दु खाम्बुधेरापन्नान्कृपापारिधि मः ।

---

* श्रीमहात्माजी जिस समय उत्तरसण्डागाँवमें गये थ, उस समय वहाँ ही मामलतदार उनसे मिलनेके लिये आये थ ।

† मन्दाक्रान्ता छन्द ।

बन्धुर्दैन्यश्रितानां श्रीमान्स्वयं चापि तस्मा-
दायात्स्वस्याश्रम तं प्राप्ताधिमान समोद ॥५३॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
अष्टम सर्ग

गीतोक्त कर्मयोगियोंमे श्रेष्ठ दयासागर और दीनबन्धु श्रीमहात्माजी प्रयत्नोंके द्वारा—समस्त दु खियोंको दु खसागरसे पार करके, वहाँसे सुन्दर मान प्राप्त करके, अहमदाबादमें अपने आश्रममें आनन्दके साथ आ गये ॥ ५३ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते अष्टम सर्ग



नवमः सर्गः

रोगादकस्मादभिपीडितोऽपि निरन्तरं कार्यविधानरक्तः।
निजाश्रमे क्षीणशरीरशक्तिः स एकदाऽसेवत मृत्युशय्याम् ॥१॥

एक समय श्रीमहात्माजी अपने सत्याग्रह आश्रममें अकस्मात् रोगग्रस्त हो गये क्योंकि निरन्तर वह कार्यमें लगे रहते थे। शरीर क्षीण हो गया था। बीमारी बढ़ गयी और मृत्युशय्यापर पड़ गये ॥ १ ॥

एका व्यवस्था निरधारि तस्मिन्काले ब्रिटिश्शासनकेन तीक्ष्णा।
समाख्यया सा किल राउलेटविलित्यदोदेशविपत्प्रणेत्री ॥२॥

उसी समय सर्कारने राउलेट बिल इस नामसे प्रसिद्ध एक बिल तैयार किया। वह बिल तीक्ष्ण और महाभयङ्कर था ॥ २ ॥

❀ आन्दोलनं यत्र भवेत्स्वदेशसन्तापसम्मार्जनसाधनाय।
भवेयुरासम्मिलिताश्च तस्मिन्ये ते हि दण्ड्या नृपतेर्विरुद्धाः ॥३॥

उस राउलेट बिलका स्वरूप वर्णन करते हैं। स्वदेशके दुःखको दूर करनेकेलिये जहाँ कोई आन्दोलन हो उसमें जो जरा भी सम्मिलित होवे, वह राजविरुद्ध समझा जाकर दण्डका पात्र होगा ॥ ३ ॥

आरोपितः स्यादभियोग एष यस्योपरि स्वं परिरक्षितुं नो।
शक्नोत्युपायं कमपीह कर्तुं भवेददण्ड्योऽपि स दण्ड्य एव ॥४॥

जिसके ऊपर कोई अभियोग लगा दिया जाय वह अपने बचावके-लिये कोई भी उपाय नहीं कर सकता है। वह यदि दण्डके योग्य न हो तो भी वह दण्डनीय ही है ॥ ४ ॥

न दण्डिता केऽपि पुनर्विचारं तद्दण्डने कारयितुं समर्थाः।
सोढव्य एवास्तु स योऽपि कोऽपि शिरीकृतः स्यादथ दण्ड एष्य ॥५॥

❀ यहाँसे ९ वें श्लोकतक राउलेट बिलका संक्षिप्त वर्णन है।

जो दण्डित हो चुके वह उस दण्डकेलिये फिरसे हाईकोर्ट आदिमें विचार नहीं करा सकते—अपील नहीं कर सकते। उनकेलिये जो दण्ड निश्चित हो गया हो उसे तो सहना ही पड़ेगा ॥ ५ ॥

यः क्रान्तिकारीतिपदाभिधेयो महापराधी गणितो भवेत्सः।
स्थानान्तरं गन्तुमसौ न शक्तो भवेद्विना शासकशासनेन ॥६॥

जो क्रान्तिकारी होंगे वह महान् अपराधी माने जायँगे। वह सर्कारी नौकर—मैजिष्ट्रेट आदिकी आज्ञा बिना किसी अन्य स्थानमें नहीं जा सकते ॥ ६ ॥

आचारशुद्ध्यै प्रतिभूत्वमस्य, भवेद्गृहीतं तु यदृच्छयैव।
देशे च काले नियते सदा स्याद्देया निजोपस्थितिसूचनाऽपि ॥७॥

सर्कारी मर्जीके अनुसार उन क्रान्तिकारियों या महापराधियोंसे नेकचालचलनेकेलिये जमानत ली जायगी। और रोज नियत स्थानपर और नियत समयर हाजिरी देनी पड़ेगी ॥ ७ ॥

नृपानुशिष्टेः परिपालने स्या द्यस्यापि वैमुख्यमुदारवृत्तेः।
नेतुं वशं तं निजदेशभक्तं सर्वेऽप्युपाया हि विमुक्तबन्धाः ॥८॥

सर्कारकी आज्ञाके पालनमें जिस किसी भी उदारमनवालेकी विमुखता होगी उस देशभक्तको वशमें करनेकेलिये सब उपाय खुले रहेंगे अर्थात् किसी भी उपायसे उस देशभक्तको सर्कारी आज्ञाका पालन करनेकेलिये विवश किया जायगा ॥ ८ ॥

इमां व्यवस्थामनुसृत्य कार्यं कुर्वन्कदाचिद्यदि कोऽपि कुर्यात्।
दुष्कृत्यराशीनपि राजभृत्यो दण्ड्यो भवेन्नैव कदापि सोऽत्र ॥९॥

इस राउलेट * ऐक्टके अनुसार कार्य करता हुआ यदि कोई भी

* जब तक कोई विषय विचाराधीन होता है तबतक उसे बिल कहते हैं। जब वह बिल सर्वानुमतिसे या बहुमतिसे पास होकर कायदा बन जाता है तब उसे ऐक्ट कहते हैं।

राजकर्मचारी अनुचितकार्य—अपराध भी कर ले तो उसे कभी भी दण्ड नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

एता अनीतीरिह कर्तुमेषा सर्वत्र भूपेन निजार्थलाभात् ।
प्रवर्तिता भारतवर्षमध्ये तन्मोहनस्याभवदत्यसह्यम् ॥१०॥

इन अत्याचारोंको करनेकेलिये और अपने लाभकेलिये ही सर्कारने इस ऐक्टको समस्त भारतमें प्रचलित कर दिया। यह बात श्रीमहात्माजीको असह्य हो गयी ॥ १० ॥

यदा व्यवस्थेयमभूद्विचार्या शश्वत्स्वदेशाहितमाकलय्य ।
कार्यं किमत्रेति विचारसिन्धौ ममज्ज रोगव्यथितोऽपि धीरः ॥११॥

जिस समय यह व्यवस्था विचाराधीन थी उसी समय अपने देशकी होनेवाली बुराई—हानिका विचार करके, इस समय इस विषयमें क्या करना चाहिये, इस विचारसागरमें, रोगसे पीडित श्रीमहात्माजी डूब गये ॥ ११ ॥

निर्धारितं तेन च राउलेटबिलस्यादवश्यं यदि संविधानम् ।
अपहवायास्य विधेर्मयापि सत्याग्रहोऽवश्यमिहास्ति कार्यः ॥१२॥

श्रीमहात्माजीने निश्चय कर लिया कि यदि राउलेटबिल क़ायदा बन जायगा तो उसे नष्ट करनेके लिये मैं अवश्य सत्याग्रह (युद्ध) करूँगा ॥१२॥

एकं व्यवास्थापयदेव सद्यः स सज्जीकृतवान्महात्मा ।
सदःप्रवेशाय दृढप्रतिज्ञापत्रं तदङ्गीकृतमेव सर्वैः ॥१३॥

श्रीमहात्माजीने शीघ्र ही एक सभा स्थापित की और उस सभामें प्रवेश करनेकेलिये एक दृढ—प्रतिज्ञापत्र तैयार किया। उसे सब लोगोंने स्वीकार किया ॥ १३ ॥

*स्वतन्त्रताया भुवि जन्मभाजां नृणामथ न्यायभुवः परस्याः ।
प्राणान्हरेदेतदपास्तशङ्कं मन्तव्यपत्रं यदि लब्धसत्तम् ॥१४॥

* जो प्रतिज्ञापत्र तैयार किया गया वह यहाँसे १८वें श्लोक तक वर्णित है।

मनुष्योंकी जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है, और जो न्यायका मूल तत्त्व है, उन दोनोंका ही यह राउलेट ऐक्ट निस्सन्देह प्राणघातक है ॥ १४ ॥

समेत्य यानेव समाज-राज्यरक्षा भवेदत्र यथाकथञ्चित् ।
अद्याधिकारान्यत राउलेटमन्तव्यपत्रं विनिहन्ति तांस्तु ॥१५॥

जिन अधिकारोंको लेकर समाज और राज्यकी रक्षा किसी प्रकारसे हो सकती है उन्हीं अधिकारोंको यह राउलेट बिल, निश्चय ही मार रहा है ॥ १५ ॥

अस्य प्रणाशः सततं हि काम्यः शान्त्या विधिं क्वापि दुरन्तमेतम् ।
सम्मानयिष्यामि न सर्वथा त्वमूं प्रतिज्ञां विदधेऽहमद्य ॥१६॥

जब तक इस कायदेका समूल नाश नहीं होता तब तक मैं शान्तभावसे इसका आदर नहीं करूँगा, आज मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ ॥ १६ ॥

अन्यान्विधींश्चापि सदोनिषिद्धान्न पालयिष्यामि कदापि शान्तः ।
एतां प्रतिज्ञामपि चारुचारु विचार्य गृह्णामि सुबुद्धबुद्धिः ॥१७॥

सब जागरित बुद्धिसे-होशियारीसे, बहुत सुन्दर रीतिसे विचार करके मैं यह भी प्रतिज्ञा लेता हूँ कि यह सभा अन्य जिन कायदोंका निषेध करेगी उनको शान्त होकर मैं कभी भी पालन नहीं करूँगा ॥१७॥

भ्रष्टो भविष्यामि न सत्यमार्गात्कचित्करिष्ये न परार्थहानिम् ।
परासुपीडामपि नो करिष्यामीतिप्रतिज्ञामहमाभजामि ॥१८॥

मैं सत्यमार्गसे कभी भी विचलित नहीं बनूँगा। अन्योंकी हानि कभी न करूँगा तथा अन्योंको प्राण—पीडा भी नहीं करूँगा, मैं यह प्रतिज्ञा लेता हूँ ॥ १८ ॥

एतत्प्रतिज्ञादलमाशु तेन प्रकाशनार्थं प्रहितं समेषु ।
पत्रेषु कर्तुं विदितार्थतत्त्वान्सर्वांस्तथा राजनरान्प्रसह्य ॥१९॥

इस प्रतिज्ञापत्रको श्रीमहात्माजीने सब पत्रोंमें प्रकाशित करनेके-

लिये शीघ्र ही भेज दिया; जिससे कि सब जनता और राजकर्मचारो भी इस कार्यके तत्त्वको जान जायँ ॥ १९ ॥

एतद्धलेनैव सहैव धीमान्प्रकाशयामास पुनस्तदानीम् ।
कृती समस्तेषु च वृत्तपत्रेष्विमां प्रवृत्तिं भ्रमवारणार्थम् ॥२०॥

बुद्धिमान श्रीमहात्माजीने उसी समय इस प्रतिज्ञापत्रके साथ ही सब पत्रोंमें, सबके भ्रमको निवारण करनेकेलिये, यह * समाचार भी छपवाया:—॥ २० ॥

जानामि नूनं शपथग्रहोऽयं भयङ्करोऽस्त्येव मया तथापि ।
ससम्भ्रमं वेदप्रबोधपूर्वं कार्यं कृतं नेति विदन्तु सर्वे ॥२१॥

मैं जानता हूँ कि निश्चय ही यह शपथग्रहण बहुत भयङ्कर है तथापि यह कार्य न तो शीघ्रतामें किया गया है और न बिना विचारे किया गया है, यह बात सबको जान लेना चाहिये ॥ २१ ॥

आरात्रि निद्रामपहाय दीर्घं विचारितोऽयं विषयः समन्तात् ।
पुनः पुना रौलटगोष्ठिकाया निवेदनस्यामननं व्यधायि ॥२२॥

निश्चय ही सारी रात जागकर, सब प्रकारसे इस विषयपर मैंने विचार किया है एवं च रौलेट कमेटीके निवेदनका भी मैंने पुनः पुनः मनन किया है ॥ २२ ॥

वेदम्येतदप्येव न भारतेऽस्मिन्नराजकत्वप्रसरो यदुत्र ।
शान्तिप्रिया भारतवासितुल्याः प्रजाः पृथिव्यां न हि संभवेयुः ॥२३॥

मैं यह भी जानता हूँ कि भारतमें सर्वत्र अराजकताका प्रचार नहीं है। पृथिवीपर भारतवासि—प्रजाके समान दूसरी शान्तिप्रिय प्रजा नहीं मिल सकती है ॥ २३ ॥

यतोऽधिकारा इह राउलेटऐक्टेन राज्याय समर्प्यमाणाः ।
भयङ्कराः सन्त्वनियन्त्रिताश्च ततोऽभ्युपायोऽद्य मया गृहीतः ॥२४॥

*यह समाचार नीचे २१ से २४ श्लोक तक वर्णित है ।

इसलिये—भारतमें सर्वत्र अराजकता नहीं है—इसलिके राउलेट-ऐक्ट सर्कारको जिन अधिकारोंको दे रहा है वह अनियन्त्रित और भयङ्कर हैं। अत एव मैंने सुन्दर उपायका ग्रहण किया है ॥ २४ ॥

कर्णे कृतं नैव विरोदनं तत्क्रूरेण राज्येन कदापि किञ्चित्।
उपद्रवायाथ बिलं तदाभूद्विधानमेवास्पदमापदां तत् ॥२५॥

क्रूर सर्कारने इस रोदनको जरा भी कानमें नहीं लिया। आपत्तियोंका घर वह राउलेट बिल विप्लवकारी क़ानून बन गया ॥ २५ ॥

ग्रहेश्वराङ्केशमिते खिरिस्तसंवत्सरे मार्चं उपप्लवाढ्ये।
अष्टादशे हन्त तिथावियं साऽमवद्व्यवस्था तु विधानमेव ॥२६॥

१९१९ ई० के मार्चमासकी १८ वीं तारीखको यह बिल क़ानूनके रूपमें परिणत हो गया ॥ २६ ॥

महामनाः श्रीयुतमालवीयः सभ्यास्तदन्येऽपि च तत्सभायाः।
पदं परित्यज्य विनिर्गतास्तद्बहिर्विरोधो बहुलो बभूव ॥२७॥

महामनाः श्रीयुत पण्डित मदनमोहन मालवीयजी तथा दूसरे सदस्य भी अपना अपना पद छोड़कर कौंसिलसे अलग हो गये। अतः बाहर बहुत विरोध बढ़ गया ॥ २७ ॥

श्रीकर्मचन्द्रात्मज एष तर्हि देशे निजाज्ञां प्रथयांचकार।
षष्ठ्यां तिथावेप्रिलमासि शान्तैर्जनैः समस्तैरिति कार्यमेव ॥२८॥

उस समय श्रीमहात्माजीने सारे भारतवर्षमें अपनी आज्ञा जारी कर दी कि ता० ६ अप्रैल १९१९ को समस्त भारतीयोंको * इतने काम करने ही चाहियें—॥ २८ ॥

न भोजनं ग्राह्यमथो न वारि पेयं न पण्येषु गतिः स्थितिर्वा।
सर्वत्र शोकः परिपालनीयः सभा विधेयास्त्वतिशान्तभावैः ॥२९॥

* वह आज्ञा २९ वें श्लोकमें वर्णित है।

उस दिन न तो भोजन करना चाहिये, न जल पीना चाहिये और न दूकानोंमें जाना और बैठना चाहिये। सर्वत्र शोक मनाया जावे और शान्तिके साथ सभा की जाय ॥ २९ ॥

आज्ञा मुनेरस्य तदा समस्ते श्रीभारते सर्वजनैरमानि ।
कस्मै स्वकल्याणवचो विशुद्धमनःसमेताय हि रोचते नो ॥३०॥

उस समय श्रीमहात्माजीकी इस आज्ञाको भारतवर्षमें सब लोगोंने मान लिया। क्योंकि ऐसा कौन पवित्रात्मा है जिसे अपने कल्याणकी बात न रुचे ? ॥ ३० ॥

सर्वत्र शान्त्या† स तिथिर्व्यतीतः परन्तु पञ्चापवसुन्धरायाम् ।
बभूव तदस्य निवेदनाय दधाति शक्तिं न च गीर्न चाहिः ॥३१॥

भारतमें सर्वत्र वह तिथि (६ अप्रैल १९१९) शान्तिके साथ बीत गयी। परन्तु पञ्जाब प्रान्तमें ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कहनेके लिये न सरस्वतीके पास शक्ति है और न शेषके पास ॥ ३१ ॥

गांधेः प्रभुत्वं कथमस्तु सह्यं दुष्टेन राज्येन ततोऽतिनीचः ।
नरैर्जनानामभिभञ्जनाय आयाति शान्तेर्व्रत राजकीयैः ॥३२॥

दुष्ट सर्कारको श्रीमहात्माजीका प्रभुत्व सह्य कैसे हो सकता था ? अतः शान्तिभङ्ग करनेकेलिये सर्कारने राजकीय पुरुषों द्वारा—अत्यन्त नीच प्रयत्न करना शुरू किया ॥ ३२ ॥

श्रीसत्यपालोऽमितसत्यपालः श्रीकीचलुर्स्थिरपलसम्मनीषः ।
सर्वप्रजैक्यस्य विवर्धनात्तौ राज्येन देशाद्बहिरक्रियेताम् ॥३३॥

यहाँसे ५५ श्लोक तक अमृतसरमें किये गये अत्याचारोंका वर्णन शुरू होता है।

महान् सत्यके पालन करनेवाले डाक्टर सत्यपाल और स्थिर बुद्धि-

† तिथि शब्द पुल्लिङ्ग भी है।

वाले डाक्टर किचलूको भारतीय समस्त प्रजाओंमें एकता बढ़ानेके कारण सर्कारने देशसे निकाल दिया ॥ ३३ ॥

तन्मोचनार्थं जनता विपन्ना कमिश्नरं प्रार्थयितुं जगाम ।
परं नियोगाद्गुलिकाप्रहारैर्हता प्रविद्धा व्यपमानिता सा ॥३४॥

उन दोनों देशनेताओंको दण्डसे छुडानेके निमित्त कमिश्नरसे प्रार्थना करनेकेलिये वहाँ की दुःखित प्रजा गयी। परन्तु (ऊपरके अफसरोंकी) आज्ञासे वह गोलियोंकी मारसे मारी गयी, बींधी गयी और अपमानित हुई ॥ ३४ ॥

राज्यौपधागारनिवेशनाय नाज्ञापितास्ते गुलिकाप्रविद्धाः ।
केदारनाथस्य तदौपधानां प्रवेशितास्ते सकला निशान्तम् ॥३५॥

जो गोलियोंसे बींधे गये थे उन्हें सर्कारी अस्पतालमें भरती करनेकी आज्ञा नहीं दी गयी । डाक्टर केदारनाथ के निजी अस्पताल में भोर होते-होते सभी पहुँचाये गये ॥ ३५ ॥

तत्राबलानामभवच्चिकित्साशाला तदध्यक्षतया नियुक्ता ।
ईसडन् प्रदग्धान्विजहास दृष्ट्वा वैश्वानरास्त्रैरथ भारतीयान् ॥३६॥

अस्पताल के व्यवस्थापक द्वारा नियुक्त औपचारिकों द्वारा अबलाओं की चिकित्सा की गयी। * ईसडन् गोलियोंसे जले हुए भारतीयोंको देखकर हँसने लगी ॥ ३६ ॥

---

* मकबूल मुहम्मद सिविल हॉस्पिटलमें जाकर डाक्टर धनपतरायको ले आये । घायलोंको उठा ले जानेकेलिये डोलियाँ लायी गयीं । किन्तु कहा जाता है कि पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० प्लोमरने कहा कि "घायल सर्कारी अस्पतालमें न पहुँचाए जायँ । लोग अपना बन्दोबस्त आप करलें ।" तब कुछ घायल डाक्टर केदारनाथके निजी अस्पतालमें पहुँचाये गये । वहाँ ही पासमें जनाना अस्पताल भी है। वहाँ की स्त्री डाक्टर मिसेज् ईसडन हँस पड़ी और जोरसे कहा कि "हिन्दु मुसलमानोंको योग्य पारितोषिक मिल गया" । (पंजाबका भीषण नरहत्याकाण्ड)

तयोक्तमेतद्विकलान्प्रबोध्य सर्वांश्च युष्माभिरवाप्त एव।
योग्यः पुरस्कार इहाद्य नूनमार्यैरनार्यैः सकलैः सहेति ॥३७॥

उस ईसडनने सब दुःखित घायलोंको सम्बोधन करके यह भी कहा कि तुम आर्य-हिन्दू, अनार्य-अहिन्दू सबोंने साथ ही आज योग्य पुरस्कार प्राप्त किया है ॥ ३७ ॥

निशम्य तां व्यङ्ग्यगिरं वितप्ता दुःखेन लोका विकला बभूवुः।
तां प्राणमुक्तां हि विधातुकामाः सर्वे द्रुताः किन्तु तदा न साप्ता ॥३८॥

उसकी इस विषसिक्त-ज़हरीली वाणीको सुनकर लोग दुःखसे व्याकुल हो गये। सब लोग उसे प्राणमुक्त=प्राणोंसे अलग करनेकेलिये-मारडालनेकेलिये दौडे किन्तु वह मिली नहीं ॥ ३८ ॥

क्रुद्धैस्तदा वीरभुवः सुपुत्रैर्भस्मीकृतं नेशनलबैङ्कमिद्धम्।
प्रबन्धकं चास्य ततः स्टुअर्टं स्काटं च तेऽघ्नंस्तमसा परीताः ॥३९॥

वीरभूमि—पंजाब के सुपुत्रोंने क्रुद्ध होकर बडे प्रसिद्ध नेशनल बैंक को जला दिया। उसके मैनेजर स्टुअर्ट और स्काट्को भी क्रोधसे ही भरे होनेके कारण मार डाला ॥ ३९ ॥

राबिन्सनं टामसनं तथैव रौलैण्डमार्ता व्यसुमेव चक्रुः।
गौराङ्गकान्यायशतेन चैवमुपद्रवोऽजायत खेदकोऽयम् ॥४०॥

राबिन्सन, टामसन और रौलैण्ट इन तीन गोरोंको भी लोगोंने मार डाला। गोरोंके ही अन्यायसे यह दुःखद उपद्रव होने पाया था ॥४०॥

ततः परं शान्तिपरायणांस्तान्कर्तुं मृतानां परिदाहकर्म।
महाप्रयत्नैर्नगराधिपालो व्यधादनुज्ञामधमोऽधमानाम् ॥४१॥

इसके बाद लोग शान्त हो गये। मरोंकी दाहक्रिया लोग करना चाहते थे। हाकिमने बडे प्रयत्नोंके बाद उन्हें जलानेकी आज्ञा दी ॥४१॥

विना फलेनैव दुरन्तकेन राज्येन तस्यां पुरि योजितानि।
हिन्दूमुसल्मानजनापमानं कर्तुं तदा सैनिकशासनानि ॥४२॥

प्रतोलिकायां शिखुड्वि यस्यामाधातिता हन्त तदाननाग्रे ।
संस्थापिते काष्ठफले मनुष्यान्प्राहारयद्वञ्जुलकैः प्रबध्य ॥५१॥

जिस गलीमें उस शेखुडके ऊपर किसीने प्रहार किया था उसीके मुखभागपर लकड़ीकी टिकठी बाँध दी गयी थी। उसपर लोगोंको बाँधकर वेतोंसे मारा जाता था ॥ ५१ ॥

येन व्यधाय्याक्रमण च तस्यामुद्घाटनं चर्मण एव तस्य ।
दुरात्मना राक्षसडायरेण समीहितं किन्तु स नाप्त एव ॥५२॥

जिसने शेखुडपर आक्रमण किया था उसके शरीरपरसे चमड़ा खींच लेनेकी उस राक्षस डायरकी इच्छा थी परन्तु वह आदमी ही उसे नहीं मिला ॥ ५२ ॥

षड्बालकान्काष्ठफले निबध्य त्रिंशत्प्रहारान्विदुरैर्निकृष्टः ।
स कारयामास गतांश्च मूर्छां प्रबोध्य भूयोऽपि तथाऽतनिष्ट ॥५३॥

उस टिकठी पर छः लड़कोंको बाँधकर उस नीचने ३० बेंत लगवाये थे। जब वह लड़के बेहोश हो गये तो उन्हें होशमें लाकर पुनः उन्हें बेंत लगवाये ॥ ५३ ॥

प्रतोलिकायां यदि कोपि कार्यां गतिं विधातुं च यवाञ्छ तस्याम् ।
रिङ्गन्स गन्तुं जठरेण शक्तस्तत्रेत्यनुज्ञा सफला बभूव ॥५४॥

उस गलीमें यदि कोई किसी कार्यसे जाना चाहे तो पेटके बल रेंगता हुआ जा सकता है, डायरकी यह आज्ञा सफल हुई थी। अर्थात् आने जानेका काम तो सबको पड़ता ही था अतः सबलोग पेटसे रेंगकर जाते आते थे ॥ ५४ ॥

तुन्देन तस्यां सरतां प्रतोल्यां पुरो जनानां च कपोतकायाः ।
निषूदिता दीनपतत्रिणोऽपि मनोव्यथां कारयितुं समेषाम् ॥५५॥

उस गलीमेंसे जो कोई पेटसे सरक कर=रेंगकर जाते थे उनके आगे

कबूतर आदि ग़रीब पक्षी इसलिये मारे जाते थे कि जानेवालोंको छद्र (?) प्रतीत हो ॥ ५५ ॥

ये† प्राड्विवाको नियिता गृहीतास्ते कारिता दण्डधरा शठेन।
अतृप्त एवास्त स दुष्टराज कृत्वाप्यनीतीरपि दुष्प्रतर्क्याः ।५६॥

उस शठ डायरने जिन वकीलोंको पकड़ा था उन सबको सिपाही बना लिया था। अर्थात् उनसे सिपाहीका काम लिया जाता था। वह दुष्टधिराज, जिनका विचार भी नहीं किया जा सकता था ऐसे ऐसे अत्याचारोंको भी, करके अतृप्त ही था। अथात् इतने अत्याचारोंसे उसकी तृप्ति नहीं हुई थी ॥ ५६ ॥

अमृतसरस्यैवमियं कथाऽऽसीह्लाहौरपुर्या अपि तां दुरन्ताम्।
श्रोतुं समापीड्य भवेत सज्जा उरः स्वकीयं दृषदा दृढेन ॥५७॥

यह कथा तो केवल अमृतसरकी है। अब लाहौर शहरकी दुःखद कथाको सुननेके लिये छातीको भारी पत्थरसे दबाकर तैयार हो जाओ ॥ ५७ ॥

ओड्वायरो भोगपतिस्तदानीं महात्मवर्यं प्रविशन्तमाशु।
पञ्चापदेशं स निशम्य तीव्र क्रोधाग्निजज्वाल यमानुजातः ॥५८॥

उस समय पञ्जाबका गवर्नर ओडवायर था। शीघ्र ही श्रीमहात्माजीका पञ्जाबमें पहुँचना सुनकर यह दुष्टबुद्धि क्रोधसे जलने लगा ॥ ५८ ॥

---

६. लोगोंको दुःखित और अपमानित करनेका यह भी एक उपाय मान लिया गया था अतएव रेलगाड़ीके आगे पक्षी मारे जाते थे।

† संस्कृत साहित्यमें एक शब्द प्राड्विवाक है। उसका अर्थ न्यायाधीश होता है। यहाँ इस श्लोकमें प्राड्विवाक शब्द है। इसका अर्थ वकील या बैरिस्टर होता है।

यद्यपि आवश्यकता नहीं थी तो भी, उस ❀ अमृतसरमें सर्कारने हिन्दुओं और मुसल्मानोंका अपमान करनेकेलिये फौजी कानूनकी घोषणा कर दी ॥ ४२ ॥

प्रत्येकमङ्ग्रेजमलुप्यहत्यामुद्दिश्य लक्षं यवनांश्च हिंदून् ।
हन्तुं तथा तानवमन्तुमेव तैः साधितेयं घृणिता व्यवस्था ॥४३॥

एक एक अंग्रेजकी हत्याकेलिये लाखों हिन्दुओं और मुसल्मानोंका वध करनेकेलिये तथा उनका अपमान करनेकेलिये ही गोरोंने—अधिकारियोंने यह व्यवस्था—फौजी शासनकी व्यवस्था की थी ॥ ४३ ॥

जल्यानवालेत्यभिधानवोध्ये बृहत्तमे चोपवने सभायाम् ।
नराधमो डायरनामकोऽसद्गौराङ्गजो वह्निचयं ववर्ष ॥४४॥

नराधम डायरनामवाले दुष्ट अंग्रेजने ÷ जलियानवाला नामक बडे बागमें एक सभाके ऊपर अग्निकी वर्षा की ॥ ४४ ॥

सेनां गृहीत्वा निभृतं जगाम स डायरस्तत्र वने दुरात्मा ।
द्वारावरोधं विरचय्य तत्र शतानि लोकान्निजघान हिंस्रः ॥४५॥

वह डायर एक सेना लेकर चुपचाप उस जलियानवाला बागमें गया (उस समय वहाँ सभा हो रही थी) । उस हिंसकने रास्ता रोककर सैकडों लोगोंको मार डाला ॥ ४५ ॥

❀ यद्यपि यहाँ श्लोकमें अमृतसरका नाम नहीं है तथापि इस प्रकरणके अन्तमें ५६ वें श्लोकमें नाम आया है। वहाँ लिखा है कि यह कथा तो अमृतसरकी है और लाहोरकी अब सुनो। इससे स्पष्ट है कि यह वर्णन अमृतसरका ही है।

÷ इस बागको अब कांग्रेसने खरीद लिया है। अमृतसरके यात्रियोंकेलिये यह बाग अब तीर्थधाम हो गया है। प्रत्येक नया आदमी अमृतसरमें जाकर इसे अवश्य देखता है।

परस्सहस्रा गुलिकाः प्रहृत्य वृद्धाब्भिशून्स्त्रीः सरुजश्च यूनः ।
विना विचारेण निहत्य लोकान्स साधयामास हि वैरशुद्धिम् ॥४६॥

उस डायरने हजारों गोलियोंका प्रहार करके वृद्ध, बालक, स्त्री, रोगी, जवान सभी लोगोंको बिना किसी विचारके ही मारकर, वैरशुद्धि-बदला चुकाया ॥ ४६ ॥

हस्तात्पदान्नेत्रपुटादपिचण्डात्पृष्ठान्नसः कण्ठतटाच्च शीर्षात् ।
हताहतानामदयैर्जनानामसृक्प्रवाहाः शतधाः प्रसस्रुः ॥४७॥

दुष्ट सैनिकों द्वारा जो लोग मारे गये थे या घायल हुए थे उनके हाथसे, पैरसे, नेत्रसे, पेटसे, पीठसे, नासिकासे, गलेसे और शिरसे रक्तकी सहस्रों धाराएँ बह रही थीं ॥ ४७ ॥

विच्छिद्य निःसृत्य च मांसखण्डैः शरीरतस्तत्र हताहतानाम् ।
इतस्ततः सम्पतितैस्तदानीं धरा बभूवामिषनिर्मितेव ॥४८॥

वहाँ पर मारे गये हुए और घायलोंके शरीरोंमेंसे फटकर निकलकर इधर उधर पड़े हुए मांसके लोथोंसे ऐसा मालूम होता था कि मानो पृथिवी मांसकी ही बनी हुई है ॥ ४८ ॥

हाहेतिशब्दैर्निखिलं वनं तद्व्याप्तं तदानीमधिदुःखभाजाम् ।
निशम्य तानश्मचयोऽप्यरोदीत्का स्यात्कथा मानवमानसानाम् ॥४९॥

वह सम्पूर्ण बाग उस समय अत्यन्त दुःखित स्त्रीपुरुषोंके हा हा-शब्दसे व्याप्त हो गया था। उन शब्दोंको सुनकर पत्थर भी रोते थे-मनुष्योंकी तो कथा ही क्या ! ॥ ४९ ॥

श्वेताङ्गनायामथ शेरवूडनाम्न्यां चकाराक्रमणं च कश्चित् ।
प्रतिक्रियां तस्य जघन्यरीत्या दधार रक्षोधिपतिस्तदानीम् ॥५०॥

शेरवुड नामकी किसी गोरी औरतपर किसीने हमला कर दिया था। राक्षसराज डायरने उसका बदला अत्यन्त निकृष्ट रीतिसे चुकाया ॥ ५० ॥

आज्ञां गृहीत्वा स विना विलम्बं रोद्धुं मुनिं वाइसरायतस्तम् ।
पञ्चापभूमौ यमिनां वरस्य निषेधयामास गतिं शुभान्ताम् ॥५९॥

ओडवायरने वाइसरायसे मुनि—श्रीमहात्माजीको रोकनेकी आज्ञा लेकर परमेश्वर—परम समर्थ श्रीमहात्माजीका पंजाब प्रान्तमें प्रवेश निषिद्ध कर दिया ॥ ५९ ॥

समादिदेशापि स तस्य बन्धं निवर्तयामास च तं गृहीत्वा ।
वृत्तं परिज्ञाय च वृत्तपत्रादेतत्प्रतप्ता जनता बभूव ॥६०॥

श्रीमहात्माजीकी गिरफ्तारीकी भी आज्ञा हो गयी थी। उनको पकड़कर सर्कारने लौटा दिया। समाचारपत्रोंसे इस समाचारको जानकर जनता और व्याकुल हो गयी ॥ ६० ॥

प्रधाननेतृग्रहणेन दीना लोकाः स्वहट्टान्पिहितान्वितेनुः ।
संभूय ते मोचयितुं तमाराद्गन्तुं समैच्छन्ननु शासकाभ्यम् ॥६१॥

अपने प्रधाननेता (श्रीमहात्माजी) के पकडेजानेसे लोगोंने दुःखित होकर अपनी अपनी दुकानें बंद कर दीं। श्रीमहात्माजीको शीघ्र छुडानेके-लिये लोगोंने गवर्नरके पास जानेकी इच्छा की ॥ ६१ ॥

वृत्तं सपद्येव निबुध्य शास्ता समादिदेशानलवर्षणानि ।
क्षणेन लोका बहवो निरस्त्रा निपातिताः संनिहताश्च तत्र ॥६२॥

गवर्नरने इस समाचारको सुनकर फौरन् अनलवर्षण—गोलीचलानेकी आज्ञा दे दी। क्षणभरमें ही निरस्त्र बहुतसे लोग वहाँ गिरा दिये गये और मार डाले गये ॥ ६२ ॥

न घातितास्तत्र बभूवुरर्प्यास्तेषां च सम्बन्धिषु राज्यभृत्यैः ।
सम्प्रार्थितैर्नेतृवरैरपीतिक्रोधानलो भीष्मतरो बभूव ॥६३॥

बड़े बड़े पञ्जाबीनेताओंकी प्रार्थनापर भी राजकर्मचारियोंने मरे हुओंको उनके सम्बन्धियोंको देनेसे इन्कार कर दिया। इस कारणसे लोगोंका क्रोधाग्नि और भी भयङ्कर हो गया ॥ ६३ ॥

श्रीदूनिचन्द्रं हरिकृष्णलालं श्रीचौधुरीरामभजं विवास्य।
देशाच्च तत्रापि गवर्नरोऽसौ न्ययूयुजत्सैनिकशासनानि ॥६४॥

गवर्नरने लाला दूनीचन्द, श्रीहरिकृष्णलाल, पण्डित राम भजदत्त चौधुरी आदिको देशनिकाला देकर लाहौरमें भी फौजी कानून घोषित कर दिया ॥ ६४ ॥

तच्छासनस्याधिपतित्वमासीद्वत्वेऽर्पितं कर्नलजान्सनस्य।
तिलादनूनः खलदाशयात्स क्रूरेषु कृत्येषु दुराशयेषु ॥६५॥

मार्शललॉ—फौजीकानूनकी बागडोर कर्नलजान्सनके अधिकारमें सौंप दी गयी। यह कर्नल दुष्ट और क्रूर कार्य करनेमें, दुष्ट आशयसे तिलभर भी कम नहीं था ॥ ६५ ॥

अश्वा रथा अष्ट शतानि तेन स्वीयाधिकारे विधृतास्तदानीम्।
तथा रथा मोटरनामधेया: बलाद्गृहीता निखिलाः प्रजाभ्यः ॥६६॥

कर्नल जानसेनने ८०० घोड़ागाडियोंको अपने अधिकारमें ले रखा था। एवं हिन्दुस्तानियोंके पास वहाँ जितनी मोटरें थीं सब उसने ले ली थीं ॥ ६६ ॥

निराश्रयाणां च हिताय तत्र प्रवर्तिता अभ्यवहारशालाः।
तेन न्यषिध्यन्त निजाधिकारे कृतानि शस्त्राण्यपि सज्जनानाम् ॥६७॥

लाहोरमें गरीबोंकेलिये लङ्गर—अन्नक्षेत्र खुले हुये थे। उन सबको उसने बन्द करा दिये। वहाँ के सज्जनोंके भी सब शस्त्र उसने छीन लिये ॥ ६७ ॥

कशाप्रहाराच्छतमष्ट चापि षट्षष्टिलोकेष्वनघेषु तावत्।
प्राहारयद्दीनदयस्तथान्यान्कठोरदण्डैर्विविधैरदास्तः ॥६८॥

उसने निरपराध ६६ आदमियोंको प्रत्येकको १०८ कोड़े लगवाये थे।

तथा अन्य अनेक गरीबोंको विविध प्रकारके दण्डोंसे दण्डित किया था ॥ ६८ ॥

प्रतिष्ठितानामथ भारतानां नृणां प्रतिष्ठाविलयाय नूनम् ।
कृतं समस्तं विगतत्रपेण निशाचरत्वेन जितेन तेन ॥६९॥

राक्षसतासे जीते गये हुए—वशमें किये हुए—उस निर्लज्ज कर्नलने प्रतिष्ठित भारतीय जनोंकी प्रतिष्ठाका अपहरण करनेकेलिये, सबकुछ किया ॥

हण्टर्समित्याः पुरतो बभाषे चमूपतिर्जानसनोऽभिमानात् ।
न्यायादपेता न कृतिर्ममेयं कार्या पुनः साऽवसरे मया तु ॥७०॥

हण्टर समितिके सामने कर्नल जान्सनने अभिमानके साथ कहा था कि यह मेरा कृत्य जरा भी अन्याययुक्त नहीं है । समय पडने पर मैं पुनः यही कार्य करूँगा ॥ ७० ॥

गुजरानवाला नगरे सिताङ्गैरग्न्यस्त्रवर्षाः खगतैर्विमानैः ।
कृता मृतास्तत्र नराश्च नार्यो बालाश्च निष्पापतमा अबोधाः ॥७१॥

गुजराँवाला शहरमें भी अंग्रेजोंने हवाईजहाजोंसे गोले बरसाये थे । वहाँ अनेक निरपराध स्त्री, पुरुष और अबोध बच्चे मारे गये थे ॥ ७१ ॥

चतुष्पथे स्थापित एव पुर्यां कसूरनाम्न्यामपमृत्युमञ्चः ।
महाप्रयत्नेन जनैस्ततोऽसौ पौरैस्तदन्यैरपसारितोऽभूत् ॥७२॥

कसूर शहरमें चोराहे पर ही फाँसी देनेका मचान बनाया गया था । नगरनिवासियोंने तथा अन्योंने भी बडी कोशिश करके उसे वहाँसे हटवाया ॥ ७२ ॥

श्रीमोतिलालो द्विजवंशवीरः प्रयत्नतो मर्त्यवधं न्यवारीत् ।
तथाप्यनेके सितकायहस्तैर्मृतिं गता भारतभूसुपुत्राः ॥७३॥

ब्राह्मणवंशके वीर पण्डित श्रीमोतीलालनेहरूजीने प्रयत्नकरके मनुष्यों-की फाँसीको बन्द कराया । तथापि अनेक भारतीय गोरोंके हाथोंसे मारे गये थे ॥ ७३ ॥

* क्रोधप्लुष्टैर्मतिविभ्रमतो भ्रष्टतामेत्य दुष्टै-
रन्यायैस्तामबलजनतां निर्घृणैर्दैत्यरूपैः ।
नानाशस्त्रैरनलगुलिकासम्प्रहारैर्हतां स
श्रुत्वा शोकानलपरिवृतश्चिन्तितोऽभून्महात्मा ॥७४॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकश्रीस्वामिभगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते नवमः सर्गः

क्रोधसे जलते हुए, बुद्धिसे भ्रष्ट हुए, निर्दय, दैत्यसमान दुष्टोंसे पञ्जाबकी अबल जनताको—जिसके पास कोई फोज नहीं थी उसको—तरह तरह के शस्त्रों और गोलियोंके प्रहारोंसे मारी गयी सुनकर वह श्रीमहात्माजी शोकाकुल और चिन्तित हो गये ॥७४॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते नवमः सर्गः

---

* मन्दाक्रान्ता छन्द ।

दशमः सर्गः

अथापराधशून्यानां स्त्रीणां पुंसां विलोक्य तम्।
वधं बालगणस्यापि तदीयं हृद् व्यकम्पत ॥ १ ॥

अपराधके बिना ही स्त्रियों, पुरुषों और बालकोंका वध देखकर श्रीमहात्माजीका हृदय काँप उठा ॥ १॥

सन्दिदेश स दीनेशः सम्राजं जार्जपञ्चमम्।
महदन्याय्यमाचेरुस्त्वदीया भारते जनाः ॥ २ ॥

दीनोंके स्वामी श्रीमहात्माजीने सम्राट् पञ्चमजार्जको सन्देश दिया कि तुम्हारे आदमियोंने—राजकर्मचारियोंने भारतमें बडे बडे अन्याय किये हैं ॥ २ ॥

एते च शास्त्रमाश्रित्य दण्डनीया इति प्रभुः।
स सन्देशमिमं मोहात्कृतवानश्रुत श्रुतम् ॥ ३ ॥

श्रीमहात्माजीने यह भी सन्देश भेजा कि कानूनके अनुसार इन सबको दण्ड देना चाहिये। प्रभुः सः—राजा—पञ्चमजार्जने इस सन्देशको * सुना न सुना बना दिया ॥ ३ ॥

शान्तरूपोऽपि धर्मात्मा महात्मा सत्यभावनः।
साम्राज्याय तदात्यन्तं कुप्यति स्म कृपानिधिः ॥ ४ ॥

सत्यचिन्तक श्रीमहात्माजी धर्मात्मा, दयालु और शान्त हैं तो भी उस समय सर्कारके प्रति उन्हें क्रोध हो आया ॥ ४ ॥

---

* किसी बातको सुनकर भी उधर ध्यान न दिया जाय तो वह सुनी हुई बात भी न सुनी हुई के बराबर ही होती है उसी भावको "सुना न सुना" शब्दसे प्रकट किया गया है

सर्वानेव विचार्याथ भारतीया-समादिशत् ।
विच्छेत्तु सर्वसम्बन्ध साम्राज्येनाविवेकिना ॥ ५ ॥

श्रीमहात्माजीने विचारकरके, अविवेकी साम्राज्यके साथ सब सम्बन्धों को तोड डालनेकेलिये सब भारतवासियोंको आज्ञा दे दी ॥ ५ ॥

महात्मन इमामाज्ञा मूर्ध्ना समवहन्मुदा ।
भारतीयास्ततोऽङ्ग्रेजैर्युयुजेऽनीतिपुञ्जकम् ॥ ६ ॥

समस्त भारतवासियोंने उनकी इस आज्ञाको प्रसन्नतासे सिरपर चढाया । अत अग्रजोंने अन्यायोंका पुञ्ज शुरू कर दिया ॥ ६ ॥

यथा यथा सिताङ्गानामन्यायोऽवर्धताऽनिशम् ।
भारतीया प्रजा भूता शक्तिमत्यस्तथा तथा ॥ ७ ॥

ज्यों ज्यों अग्रेजोंका जुल्म बढता गया त्यों त्यों भारतीयप्रजा शक्ति सम्पन्न बनती गयी ॥ ७ ॥

मोतीलालश्च तत्पुत्र शान्ताकारो जवाहिर ।
चित्तरञ्जनदासश्च देशबन्धु सुखाकर ॥ ८ ॥
अबुल्कलाम आजादो महाशक्तिसमन्वित ।
लाला लाजपतराय श्रीमान्पञ्जाबकेसरी ॥ ९ ॥
रावगङ्गाधर श्रीमान्पाण्डेयोपाह्व एव च ।
अन्येऽपि बहवो वीरा प्रस्तुता देशरक्षणे ॥१०॥

श्रीपण्डित मोतीलाल नेहरू, शान्तमूर्ति पण्डित जवाहिरलाल नेहरू, देशबधु श्रीचित्तरञ्जनदास, मौ० अबुलकलाम आजाद, पञ्जाबकेसरी लाला लाजपतराय, रावगगाधर पाण्डेय और अन्य भी बहुतसे वीर देशरक्षा करनेके लिये तैयार हो गये ॥ ८।९।१० ॥

देशरक्षापरावेत कारां नीता परदृशावा ।
सुधियो भारताखेन भूपप्रतिमुया तदा ॥ ११ ॥

विवेकहीन सर्कारने देशरक्षारूप अपराधके कारण सैकड़ों उन बुद्धिमान् देशरक्षकोंको जेलमें भर दिया ॥ ११ ॥

शुक्रे शुक्ले त्रयोदश्यां फाल्गुने मासि वैक्रमे ।
वस्त्रृषिग्रहचन्द्राब्दे रात्रौ सत्याग्रहाश्रमे ॥ १२ ॥
अतिक्रान्ते सार्धदशहोरे कुमुदबान्धवः ।
ग्रस्तोऽभूत्स महात्माऽपि सितकायेन राहुणा ॥ १३ ॥

वि० सवत् १९७८, माघ मास, शुक्लपक्ष, त्रयोदशी तिथि, शुक्रवारको रात्रिमें १०॥ बजे श्रीमहात्माजीरूप चन्द्रमाको सर्कारूपराहुने सत्याग्रह-आश्रम साबरमतीमें पकड़ लिया ॥ १२।१३ ॥

चैत्रे कृष्णे च पञ्चम्यां वस्वृष्यङ्कधरायुते ।
वैक्रमेऽब्दे शनौ वारे नीतो न्यायालयं यतिः ॥ १४ ॥

वि० १९७८, चैत्र मास, कृष्णपक्ष, पञ्चमी तिथि और शनिवारको श्रीमहात्माजीको ⊛ कचहरीमें लाया गया ॥ १४ ॥

यङ्गेण्डियागतैर्लेखैः कैश्चित्त्रिभिरयं मुनिः ।
राजद्रोहापराधेन दूषितो घोषितोऽभवत् ॥ १५ ॥

÷ यङ्गइण्डियामें लिखे गये हुए × किन्हीं तीन लेखोंके कारण राजद्रोहके अपराधसे श्रीमहात्माजीको दोषी ठहराया गया ॥ १५ ॥

भवति स्थापितं दोषं स्वीकरोति भवानपि ।
कामयतेऽभियोगं वा पप्रच्छेति यतिं जजः ॥ १६ ॥

⊛ शाहीबाग़ (अहमदाबाद) में स्पेशल कोर्ट बैठी थी ।

+ "यङ्गइण्डिया" इस नामका अंग्रेजीमें एक साप्ताहिक-पत्र अहमदाबादसे निकलता था । उसके सम्पादक श्रीमहात्माजी ही थे ।

× उन तीनों लेखों के शीर्षक (हेडिङ्ग) ये थे-"राजद्रोह" (य० इ० २ अक्टूबर १९२१), "वाइसरायकी व्याकुलता" (य० इ० १५ डिसेंबर १९२१) और "हुंकार" (य० इ० २३ फर्वरी १९२२)

जजने श्रीमहात्माजीसे पूछा कि आपके ऊपर जो दोष सर्कारने लगाया है उसे आप भी स्वीकार कर लेते हैं या, मुकदमाका चलना पसन्द करते हैं? ॥ १६ ॥

अङ्गीकरोमि तं दोषमित्याह स मुनीश्वरः ।
ऐडवोकेटजनरलमित्युवाच जजस्तत. ॥ १७ ॥

श्रीमहात्माजीने कहा कि मैं उस अपराधको स्वीकार करता हूँ। तब जज ऐडवोकेट जनरलसे बोले कि :— ॥१७॥

स्वीकरोति स्वयं दोषमभियुक्तोऽयमात्मनः ।
तथापि विध्यनुष्ठानं किमस्त्यावश्यकं पुनः ॥ १८ ॥

यह अभियुक्त अपने उस दोषको कबूल कर रहा है, क्या तो भी कार्यवाई का करना जरूरी है? ॥ १८ ॥

* ऐडवोकेटजनरल स्वीयां गिरमकम्पयत् ।
दण्डं नियन्तुसत्यर्थमभियोगस्तु युज्यते ॥ १९ ॥

ऐडवोकेटने कहा कि सजाका निश्चय करनेकेलिये केस तो चलाना ही चाहिये ॥ १९ ॥

त्रयाणामेव लेखानां दोषोऽसौ लेखनात्मकः ।
अपराधयुजैतेन समपादि न केवलम् ॥ २० ॥

इस अपराधीने केवल तीन लेखोंके लिखनेका ही अपराध नहीं किया है—॥ २० ॥

किं तु स्पष्टं सनियमं राज्येन सह योधनम् ।
उपक्रान्त यदनेन तस्यैषोंऽशोऽस्ति कश्चन ॥ २१ ॥

प्रत्युत इसने तो राज्यके साथ खुल्लमखुल्ला युद्ध शुरू कर दिया है। यह लेख तो उसी लड़ाईका कोई एक अंश है ॥ २१ ॥

* यहाँसे २८ वें श्लोक तक ऐडवोकेट जनरलका बयान है।

अथ तुल्यापराधेषु प्रभूतेषु जनेष्वपि ।
दृष्टान्तार्हेण दण्डेन दण्ड्यो मुख्योऽपराधभाक् ॥ २२ ॥

यदि बहुत मनुष्य एक ही अपराध कई बार करें तो उनमेंसे प्रधान अपराधीको ऐसी सज़ा देनी चाहिये कि जो दृष्टान्तस्वरूप हो सके। अर्थात् जिस सज़ाको देखकर दूसरे डर जायँ ॥ २२ ॥

नेताऽयं सर्वलोकानां मान्यस्तत्त्वविदां वरः ।
अनेन लिखितस्यास्य प्रभावोऽपि विचिन्त्यताम् ॥ २३ ॥

यह सब लोगोंका माननीय और परमविद्वान् नेता है। इसके लिखे हुए लेखका क्या प्रभाव पड़ता है इसका विचार करना चाहिये ॥ २३ ॥

यद्यप्येतस्य लेखेषु सर्वमैत्रीपरायणा ।
अहिंसैव सदा धत्ते प्राधान्यमिति वेद्म्यहम् ॥२४॥
तथापि चेत्सनियममप्रीतिः स्यात्प्रसारिता ।
वृथाऽहिंसोपदेशः स्याद्वेष्ठीस्वपि समन्ततः ॥ २५ ॥

यद्यपि इस अभियुक्तके लेखोंमें सदा सबके साथ मैत्री करानेवाली अहिंसाकी ही प्रधानता रहती है, यह मैं जानता हूं। तथापि मैं यह भी जानता हूं कि यदि सदा नियमपूर्वक अप्रीति-द्वेषका प्रचार किया जाय तो अहिंसाका उपदेश व्यर्थ हो जायगा ॥ २४ ॥ २५ ॥

मौम्बय्यं चापि माद्रासं चौरीचौरं च सर्वथा ।
जनतावधकाण्डं तन्मत्पक्षस्य समर्थकम् ॥ २६ ॥

बम्बई, मद्रास और चौरीचौरेके हत्याकाण्ड इस मेरे वचनका समर्थन करते हैं ॥ २६ ॥

अन्योऽयमपराधी तु लेखमुद्रणलक्षणम् ।
स्वल्पमेवाकरोद्दोषं शङ्करलालबैङ्करः ॥ २७ ॥

और इस दूसरे अपराधी शङ्करलाल बैङ्करने तो लेखोंके छापनेका ही थोड़ासा अपराध किया है ॥ २७ ॥

* परं धनसमृद्धोऽसौ विद्यते प्रार्थये ततः ।
पुष्कलानि हिरण्यानि दण्ड्य एष इति ब्रुवे ॥ २८ ॥

परन्तु यह (शङ्करलालबेङ्कर) बहुत धनवान् आदमी है अतः मेरी प्रार्थना है कि इसे खूब अधिक रुपयोंका अवश्य दण्ड देना चाहिये ॥२८॥

अभियोगो मयाऽत्रैव नीयते चरमां भुवम् ।
घोषणा दण्डनस्यावशिष्टेत्युक्तं जजेन च ॥ २९ ॥

जजने कहा कि अभियोगको तो मैं यहाँ ही समाप्त करता हूँ । केवल सज़ा सुनाना ही बाकी रह जाता है ॥ २९ ॥

परं श्रोतुं तदिच्छामि वक्तव्यं यत्किमप्यथ ।
दण्डस्य विषये नूनमभियुक्तेन चेदिति ॥ ३० ॥

परन्तु यदि दण्डके बारेमें अभियुक्त कुछ कहना चाहता हो तो मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥ ३० ॥

महामना महाबोद्धा महायोद्धा महायशाः ।
महाधीरो महावीरः स महात्मेत्यवोचत ॥ ३१ ॥

महान् मनवाले, महान् ज्ञानी, महान् योद्धा, महान् यशस्वी, महान् धैर्यशाली महावीर श्रीमहात्माजी — इस प्रकारसे बोले ॥३१॥

ऐडवोकेटजनरल् विद्वांस्तु यदवोचत ।
मया स्वीक्रियते सर्वमक्षरशो मुदा भटैः ॥ ३२ ॥

विद्वान् एडवोकेट जनरलने जो कुछ कहा है उसे मैं हर्षके साथ एक एक अक्षर स्वीकार करता हूँ ॥ ३२ ॥

नाहं संगोप्तुमिच्छामि किञ्चिदप्यत्र शासकम् ।
अभिप्रायं फराप्यसाद्विस्पष्टं विनिवेदये ॥ ३३ ॥

---

* यहाँतक सर्कारी वकील—ऐडवोकेट जनरलका बयान है ।
— यहाँसे ५२ श्लोक तक महात्माजीका मौखिक निवेदन है ।

मैं अपना कोई भी अभिप्राय छिपाना नहीं चाहता हूँ अतः स्पष्ट कहता हूँ ॥ ३३ ॥

वर्तमानाऽथ यास्यत्र भारते राजपद्धतिः ।
तां प्रत्यप्रीतिमाधातुं सोत्कण्ठं हि मनो मम ॥ ३४ ॥

भारतमें जो राजनीति चल रही है उसके प्रति अप्रेम फैलानेकेलिये निश्चय ही मेरा मन उत्कंठित रहता है ॥ ३४ ॥

अत्यन्तं दुःखदं कृत्यं मदर्थमिदमिष्यते ।
किन्तु स्वोत्तरदायित्वं वीक्ष्यैवेदं करोम्यहम् ॥ ३५ ॥

मेरेलिये ऐसा करना, है तो बहुत दुःखद वस्तु; परन्तु अपनी जवाबदारीको विचारकर ही मैं ऐसा करता हूँ ॥ ३५ ॥

मुम्बय्यादौ प्रवृत्तानां कलहानां भरोऽर्पितः ।
मयि मूर्ध्ना वहाम्येव सादरं तं तवाग्रतः ॥ ३६ ॥

बम्बई, मद्रास, चौरीचौरा आदिमें जो झगडे हुए हैं उनका भार मुझपर डाला गया है । उसे मैं आदरके साथ आपके समक्ष स्वीकार करता हूँ ॥ ३६ ॥

बह्वी रात्रीर्विचार्यैव विधिस्योद्यावरं पुनः ।
अङ्गीकरोमि तान्दोषानोन्मत्तांश्चात्यमानुषान् ॥ ३७ ॥

अनेक रात्रियां मेरी इसी विचारमें बीत गयी हैं । पूर्वापरका विचार करके ही इन उन्मत्तवृत तथा अमानुषीय दोषोंको मैं स्वीकार कर रहा हूँ ॥ ३७ ॥

निखिलाः परिणामास्ते मद्बुद्धौ रूमवस्थिताः ।
आसन्नासीच विज्ञातं क्रीडामि सह वह्निना ॥ ३८ ॥

इस युद्धके सब परिणाम मेरी बुद्धिमें उपस्थित थे । मुझे मालूम था कि मैं अग्निके साथ खेल रहा हूँ ॥ ३८ ॥

परन्तु ज्ञपयामीत्थमद्य मुक्तो भवामि चेत् ।
पुनस्तदेव कर्तव्यं कर्तव्यं मेऽस्ति निश्चितम् ॥ ३९ ॥

परन्तु मैं आपको बता देता हूँ कि यदि मैं आज छूट जाऊँ तो पुनः अवश्य ही मैं इसी कार्यको करूँगा ॥ ३९ ॥

यद्वदामि सुखेनात्र वदिष्यामि न चेदहम् ।
भविष्यामि च्युतो धर्मादेवं प्रातर्विचारितम् ॥ ४० ॥

प्रातःकाल मैंने विचार किया कि, इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे यदि (आपके सामने) न कहूँ तो मैं अपने धर्मसे च्युत हो जाऊँगा * ॥ ४० ॥

अशान्तिमपहर्तुं मे कामना जायते सदा ।
संविधातुं तथैवाहं कामयेऽद्यापि वस्तुतः ॥ ४१ ॥

अशान्तिको दूर करनेकेलिये सदा मेरी इच्छा होती रहती है । वस्तुतः मैं आज भी वैसा ही करना—अशान्ति दूर करना चाहता हूं ॥४१॥

अहिंसा मम धर्मस्य मन्त्रो मूर्धनि तिष्ठति ।
मन्येऽहमन्तिमं चापि मन्त्रमनं स्वजीवने ॥ ४२ ॥

अहिंसारूप मन्त्र मेरे धर्मके अग्रभागमें रहता है । अर्थात् मेरा सर्वश्रेष्ठधर्म अहिंसा है । इसीको मैं अपने जीवनका अन्तिम मन्त्र भी मानता हूँ ॥ ४२ ॥

स्वदेशस्य दशां मत्तो निशम्य क्रोधधारिभिः ।
भारतीयसुतैः सर्वं कृतं सह्यं मया भवेत् ॥ ४३ ॥

मेरे मुखसे अपने देशकी दशा सुनकर, क्रोधी बने हुए भारतीय बन्धु जो कुछ करेंगे, वह सब कुछ मुझे सहना चाहिये ॥ ४३ ॥

---

* कोर्टमें आनेसे पूर्व ही श्रीमहात्माजीने निश्चय कर लिया था कि मुझे कोर्टमें अमुक अमुक बात स्पष्टरूपमें कह देनी चाहिये । न कहनेसे मैं अपने धर्मसे च्युत बनूँगा ।

अथवा दोषपूर्णाया एतस्या राजपद्धतेः
वशवर्तित्वमेव स्यात्स्वीकर्तव्यं मयाऽरुचि ॥ ४४ ॥

अथवा दोषोंसे भरी हुई इस राजपद्धतिकी अधीनता मुझे भी स्वीकार कर लेनी चाहिये ॥ ४४ ॥

प्रेयांसो बहुकृत्वोऽथ भारता मम बान्धवा. ।
अकुर्वन्नन्यकर्तव्यमित्येतदपि वेद्म्यहम् ॥ ४५ ॥

अनेकोंबार मेरे प्रिय भारतीय बन्धुओंने, न करने योग्य कार्योंको भी किया है, इस बातको भी मैं जानता हूँ ॥ ४५ ॥

तदर्थं दुःखमप्यासीद्बहुल मानसे मम ।
याचे तदर्थमेवात्र कठिनं दण्डमात्मने ॥ ४६ ॥

उसकेलिये मेरे मनमें दुःख भी बहुत था। इसीलिये तो मैं अपने लिये, यहाँ कठिन दण्ड मांग रहा हूँ ॥ ४६ ॥

नाहं भिक्षे दयां त्वत्तो दोषाणामपि या त्वया ।
मयि प्रकल्प्यमानानामौन्यं तर्केर्न कामये ॥ ४७ ॥

मैं आपके पाससे न तो दया मागता हूँ और न दलीलोंसे उन अपराधोंमें कमी कराना चाहता हूँ, जो अपराध मुझपर लगाये गये हैं ॥ ४७ ॥

नागराणां परं कृत्यं यदासीत्तन्मया कृतम् ।
तद्धि चेद्राजनीतौ ते दोष. स्यादस्तु तत्तथा ॥ ४८ ॥

नागरिकोंका जो कर्तव्य था उसे मैंने किया है। यदि वह मेरा कर्तव्य आपकी राजनीतिमें दोषयुक्त माना जाता हो तो वह भले माना जाय ॥ ४८ ॥

तदर्थं दण्डमादातुं कठिनात्कठिनं परम ।
अहमत्र स्थितोऽस्म्यद्य क्रियतां स्वेच्छया त्वया ॥ ४९ ॥

इसकेलिये कठिनसे कठिन दण्ड ग्रहण करनेकेलिये मैं आज यहाँ उपस्थित हूँ। जो इच्छा हो कीजिये ॥ ४९ ॥

इदानीमेव लिखितं श्रावयिष्यामि चोत्तरम्।
मया निर्देक्ष्यते तत्र कर्तव्यं तावकं द्वयम् ॥ ५० ॥

मैं अभी ही अपना लिखित उत्तर सुनाऊँगा। वहाँ मुझे कहना है कि आपके दो कर्तव्य हैं ॥ ५० ॥

दूषितोऽयं स नियमो यस्त्वयाऽनुयियासितः।
इति चेत्त्वं विजानासि त्वमैतत्पदमञ्जसा ॥ ५१ ॥

जिस कायदेका आप अनुसरण करना चाहते हैं वह दूषित है—बुरा है, ऐसा यदि आप समझते हों तो शीघ्र ही इस पदको आप छोड़ दें ॥ ५१ ॥

मदीयं चेत्कृतं कर्म मन्यसे देशहानिकृत्।
स्वेच्छयैव तदा दण्डं देहि मे कठिनं परम् ॥ ५२ ॥

दूसरी बात। यदि आप मेरे किये गये कर्मको देशकेलिये हानिकारक मानते हों तो स्वेच्छासे मुझे कठिनसे कठिन दण्ड दीजिये ॥ ५२ ॥

एतदुक्त्वा महातेजा विस्पष्टं न्यायसद्मनि।
लिखितं श्रावयामास स्ववक्तव्यं स निर्डरः ॥ ५३ ॥

महातेजस्वी महात्माजी निर्भय होकर, न्यायालयमें ऐसा कहकर अपने लिखित वक्तव्यको विशेषरूपसे सुनाने लगे ॥ ५३ ॥

प्रजानामाङ्गलीयानां मनस्तोषाय केवलम्।
अभियोगोऽयमारब्धो मुख्यत्वेनास्ति साम्प्रतम् ॥ ५४ ॥

अंग्रेजीप्रजा—गोरोंको—सन्तुष्ट करनेकेलिये ही, खास करके आज यह अभियोग शुरू किया गया है ॥ ५४ ॥

तदर्थं भारतार्थं च स्वयमं ध्यायता मया।
राजद्रोहविधानस्य वक्तव्यं धारणं प्रतान ॥ ५५ ॥

उस गोरीप्रजाकेलिये और भारतकेलिये मेरे कर्तव्यका विचार करते हुए मुझे इस राजविद्रोह करनेका कारण अवश्य ही कह देना चाहिये ॥ ५५ ॥

वह्नयङ्कवसुचन्द्राख्ये खिस्ताब्दे विषमस्थितौ ।
दक्षिणीयाफ्रिकायां मे प्रवृत्तं कार्यमादिमम् ॥ ५६ ॥

सन् १८९३ ई० में दक्षिण अफ्रिकामें, एक विषम स्थितिमें सबसे पहिला मेरा कार्य आरम्भ हुआ ॥ ५६ ॥

तस्मिन्देशे तदानीं तु सत्तया ब्रिटिशाख्यया ।
नासीत्सुखाय किंचिन्मे प्राथमिकः समागमः ॥ ५७ ॥

उस समय उस देशमें बृटिश सत्ताके साथ जो मेरा प्रथम समागम हुआ वह ज़रा भी मेरेलिये सुखद नहीं था ॥ ५७ ॥

अनुभूतं मयैतद्यन्मनुष्यत्वेन तद्भुवि ।
भारतीयतया चासीदधिकारो न कोऽपि मे ॥ ५८ ॥

मैंने अनुभवकिया कि मनुष्यताके नातेसे अथवा हिन्दुस्तानी होनेके नाते से वहाँ मेरा कोई अधिकार ही नहीं था ॥ ५८ ॥

प्रत्युतेति मया ज्ञातं भारतीयोऽस्मि तेन मे ।
मानवीयोऽधिकारोऽपि भवत्येव प्रणाशितः ॥५९॥

प्रत्युत मैंने तो यह समझा कि मैं भारतीय हूं अतः मेरा मनुष्योचित अधिकार भी नष्ट हो रहा था ॥ ५९ ॥

नाहं नैराश्यमारूढो मनस्येवं व्यचारयम् ।
भारतीयेषु राज्यस्य व्यवहारो विशोध्यताम् ॥६०॥

मैं निराश नहीं हुआ। मैंने विचारा कि केवल भारतीयोंके साथ सर्कारके व्यवहारको शुद्ध करना चाहिये ॥ ६० ॥

यदा यदा हि राज्यस्य दोषा दृष्टौ समागताः ।
दूरीकर्तुं समस्तांस्तान्कृतो यत्नो मया तदा ॥६१॥

राज्यके दोष जब जब मेरी दृष्टिमें आये हैं तब तब मैंने उनको दूर करनेकेलिये प्रयत्न किया है ॥ ६१ ॥

एवं ब्रिटिशराज्येन सर्वथा हितमिच्छता।
शुद्धेन हृदयेनैव सहयोगो मया कृतः ॥६२॥

इस प्रकारसे हित चाहते हुए मैंने ब्रिटिशराज्यके साथ शुद्ध हृदयसे सहयोग किया है ॥ ६२ ॥

अङ्काङ्कवाणेन्दुमिते ख्रिस्तीयवत्सरे।
योधने बोवरे राज्ञः साहाय्यं कृतवानहम् ॥६३॥

ई० सन् १८९९ में मैंने बोवरयुद्धके समय राज्यकी सहायता की थी ॥ ६३ ॥

आहतानां च सर्वेषां सेवार्थं स्थापिता मया।
विषमे समये तस्मिन्स्वयंसेवकमण्डली ॥६४॥

उस कठिन समयमें सभी घायलोंकी सेवा करनेकेलिये मैंने एक स्वयंसेवक समाजकी स्थापना की थी ॥ ६४ ॥

लेडीस्मिथं परित्रातुं संवृत्तेष्वाहवेषु च।
सर्वं तत्तन्मयाऽकारि कर्तुं यद्धि पारितम् ॥६५॥

युद्धके छिड़जानेपर लेडीस्मिथको बचानेकेलिये मैंने वह सबकुछ किया था जो कुछ कि कर सकता था ॥ ६५ ॥

ऋत्वाभ्राशाङ्कनेत्राब्दे ईसवीये च वत्सरे।
जुलुसंघर्षकालेऽपि साहाय्यं कृतवानहम् ॥६६॥

सन् १९०६ ई० में जुलू युद्धके समय भी मैंने ऐसी ही सहायता की थी ॥ ६६ ॥

तदानीन्तनयोरेवं कार्ययोरुभयोः कृते।
पदकं दत्तमप्यासीच्छासनेन मुदा स्वयम् ॥६७॥

उस समयके इन दोनों कार्योंके लिये प्रसन्न होकर सर्कारने भी मुझे पदक दिया था ॥ ६७ ॥

राजकीये च विज्ञप्तिपत्रे तस्मिन्ननेहसि
आसीच्चर्चा विशेषेण कार्यस्यैतस्य मे क्वचित् ॥६८॥

उन दिनों सर्कारी गज़टमें विशेषरूपसे मेरे इस कार्यकी चर्चा रहा करती थी ॥ ६८ ॥

कैसरेहिन्दमित्याख्यं सौवर्णं पदकं शुभम् ।
अवाप्तमाफ्रिकामध्ये लार्डहार्डिञ्जतस्तदा ॥६९॥

उस समय लार्ड हार्डिंजसे कैसरे हिन्दका स्वर्णपदक भी मैंने आफ्रिकामें प्राप्त किया था ॥ ६९ ॥

वेदविध्वङ्कचन्द्राख्ये ख्रिस्ताब्दे च भयावहम् ।
जर्मनीङ्गलण्डयोर्जन्यमजायत जनार्दितम् ॥७०॥

ई० सन् १९१४ में जर्मनी और इङ्गलैण्डमें जब बड़ा भारी भयङ्कर युद्ध हुआ था—॥ ७० ॥

सर्वेषां भारतीयानां छात्रप्राधान्यसभृताम् ।
लन्दने वसतां सङ्घो निरमायि मया तदा ॥७१॥

उस समय लन्दनमें रहनेवाले भारतीयोंका–जिनमें विशेषरूपसे छात्र ही थे–मैंने एक सघनिर्माण किया था ॥ ७१ ॥

प्रशंसार्हा कृता सेवा तेन सङ्घेन सर्वथा ।
प्रमाणं तत्र स्वीकारपत्रं राज्याधिकारिणाम् ॥७२॥

उस संघने सब प्रकारसे प्रशंसनीय सेवा की थी। इस विषयमें राजकर्मचारियोंका स्वीकारपत्र ही प्रमाण है ॥ ७२ ॥

अर्वेन्द्वङ्कशशाङ्काख्ये ईसवीये च वत्सरे ।
अभवद्युद्धपरिषद्धस्तिनापुरपत्तने ॥७३॥

ई० सन् १९१७ में हस्तिनापुर—दिल्लीमें युद्धपरिषत् हुई थी ॥

लॉर्डेन चेम्सफोर्डेन सैनिकोपचयाय च ।
सामहं प्रार्थनाऽकारि तस्यां सङ्ग्रामसंसदि ॥७४॥

उस युद्धपरिषद्में लॉर्ड चेम्सफोर्डने सैनिकोंकी भरती करनेकेलिये आग्रहपूर्वक मुझसे प्रार्थना की थी ॥ ७४ ॥

स्वास्थ्यानपेक्षया तर्हि सैनिकानां प्रपूर्तये ।
खेडाप्रान्ते कृतो यत्नो यावच्छक्यं मया महान् ॥७५॥

सैनिकोंकी भरतीकेलिये मैंने खेडाजिलेमें यथाशक्ति, अपने स्वास्थ्यकी परवा न करके भी, महान् यत्न किया ॥ ७५ ॥

सेवेयती कृता या तु केवलं साऽऽशयाऽनया ।
राज्ये मद्देशबन्धूनां समत्वं सम्भविष्यति ॥७६॥

इतनी सेवा मैंने सिर्फ इसी आशासे की थी कि राज्यमें मेरे देश-बन्धुओंको भी बराबरीका हक मिलेगा ॥ ७६ ॥

अस्यामाशालतायां मे प्रथमं सर्वतोऽपतत् ।
राउलेट् ऐक्ट इत्याख्यो वज्रः संहारकारकः ॥७७॥

मेरी इस आशालतापर सबसे पहिले, संहार करनेवाला राउलेट-ऐक्ट-रूप वज्र पड़ा ॥ ७७ ॥

आन्दोलनमतीवोग्रं तद्विरोधाय तत्क्षणम् ।
देशकालावनुसृत्य धीरेणाकारि तन्मया ॥७८॥

उस ऐक्टके विरोधमें मुझे देश और कालके अनुसार अत्यन्त उग्र आन्दोलन करना पड़ा ॥ ७८ ॥

प्रावर्तिष्ट च पञ्जाबे नरहत्या परम्परा ।
जल्यान्वालेतिविख्यात उद्याने जनहिंसनम् ॥७९॥

उसके पश्चात्, पञ्जाबमें घोर हत्याकाण्ड हुआ । जल्यानवालाबाग (अमृतसर) में प्राणिहिंसा-मनुष्योंका वध हुआ ॥७९ ॥

सकलव्यवहर्तव्ये महत्यध्वनि निर्दयम्।
कशया ताडनं जातं नृणामनपराधिनाम् ॥८०॥

जहाँ सब लोग आते जाते रहते थे ऐसे पब्लिक रोडपर-महामार्गपर निर्दयताके साथ बेकसूर लोगोंको कोड़ोसे पीटा गया ॥ ८० ॥

आज्ञया क्रूरया जातमुदरेण प्रचालनम्।
नृणामन्यान्यकृत्यानि वर्णनीयेतराण्यपि ॥८१॥

कठोर-क्रूर आज्ञाके द्वारा मनुष्योंको पेटके बलसे रेंगाया गया। अन्य भी ऐसे अकृत्य हुए जिनका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ८१ ॥

तुर्कीमिस्लामतीर्थानि न स्पृशामि कदाचन।
प्रतिज्ञेति प्रधानस्य प्रायो मिथ्या विलोकिता ॥८२॥

बडे प्रधानने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं टर्कीको और किसी भी मुसलमानी तीर्थ—पवित्रस्थानको हाथ नहीं लगाऊँगा-बर्बाद नहीं करूँगा, वह भी प्रायः मिथ्या ही देखनेमें आयी ॥

जानन्नप्येतदखिलं मैत्रीं राज्येन रक्षितुम्।
माण्टेगुचैम्सफोर्डीयसमाधानाय यायतम् ॥८३॥

यह सब मैं जानता था तो भी सर्कारके साथ मित्रताकी रक्षा करनेके लिये माण्टेगु—चैम्सफोर्ड सुधारको मानलेनेके लिये मैंने प्रयास किया था॥८३॥

यवनेभ्यः प्रतिज्ञातं भारतीयेभ्य उत्तरम्।
अपि नाम भवेद्रक्ष्यं राज्येनेति स्पृहा मम ॥८४॥

भारतीय मुसल्मानोंके लिये मुख्य कण्ठसे सर्कारने जो प्रतिज्ञा की थी, मुझे लोभ था कि शायद उसका पालन किया जायगा ॥ ८४ ॥

पञ्चानदेशवासीनां व्यथाः सर्वा अरुन्तुदाः।
भवेयुर्विगतप्राणा आसीदाशेति मे तदा ॥८५॥

पञ्जाब के भाइयोंकी मर्मभेदी पीड़ाएँ शायद दूर कर दी जायँगी, उस समय मुझे ऐसी आशा थी ॥ ८५ ॥

समाधानं च उत्सर्वलोकासन्तोषकारकम् ।
मया स्वीकारितं सर्वैस्तत्तथाप्यनयाऽऽशया ॥८६॥

वह माण्टेगु चैम्सफोर्ड समझौता यद्यपि सबको असन्तोषकारक था तथापि इसी (उपर्युक्त) आशासे मैंने इसे स्वीकार कराया ॥ ८६ ॥

परन्त्वाशा समस्ता मे समूलं नाशमाश्नुत ।
खिलाफतस्य विषये प्रतिज्ञातं न पालितम् ॥८७॥

परन्तु वह मेरी आशा समूल नष्ट हो गयी । खिलाफतके बारेमें की गयी प्रतिज्ञा पाली नहीं गयी ॥ ८७ ॥

पञ्जाबनरहत्याया गोपनं सुतरामभूत् ।
तत्रापराधकर्तारो दण्डिता नाभवन्कचित् ॥८८॥

पञ्जाबके हत्याकाण्डको छिपा दिया गया । उसके अपराधियोंको दण्ड नहीं दिया गया ॥ ८८ ॥

राज्यभृत्या च ये दण्ड्या आसंस्तेपि निजे पदे ।
स्थित्वा भारतकोषाच लभन्ते वृत्तिमीप्सिताम् ॥८९॥

उस हत्याकाण्डमें जो राजकर्मचारी दण्डनीय थे वह भी अपने पदपर रहकर भारतके खजानेमेंसे वृत्ति पा रहे हैं ॥ ८९ ॥

राज्यं तत्कर्मभिस्तुष्टं भारतस्यैव कोषतः ।
तेभ्योऽनिदुष्टकर्मभ्यो दत्तवत्पारितोषिकम् ॥९०॥

इस सरकारने उन हत्यारोंके किन्हीं कार्योंसे सन्तुष्ट हो कर भारतके ही खजानेसे उन्हें इनाम दिया था ॥ ९० ॥

समाधानमिषेणैव यत्र आसीत्स नूतन. ।
धनानां हृतये वृद्ध्यै पारतन्त्र्यस्य नः खलु ॥९१॥

' वह माण्टेगु चैम्सफोर्ड सुधार भी हमारे धनका हरण करनेकेलिये और हमारी परतन्त्रताकी वृद्धिके लिये एक नया उपाय था ॥ ९१ ॥

इदं चापि मया ज्ञातं राजनैतिक आर्थिके ।
ब्रिटिशशासनतोऽपूर्वं पारवश्यं प्रवर्तितम् ॥९२॥

मैंने यह भी समझा कि हमारे राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्धमें इसब्रिटिशराज्यने अपूर्व पराधीनता पैदा कर दी है ॥

निःशस्त्रं भारतं वर्षं सशस्त्रान्प्रतिपक्षिणः ।
अवरोद्धुं न शक्नोति राज्येऽस्मिन्नादृशे कचित् ॥९३॥

इसब्रिटिश राज्यमें शस्त्रहीन भारतवर्ष अपने सशस्त्र शत्रुओंको रोक नहीं सकता है ॥ ९३ ॥

एतेन पारवश्येन बहुभिः पुरुषोत्तमैः ।
स्वराज्यं बहुभिर्वर्षैरेष्यतीति विचार्यते ॥९४॥

इसी परतन्त्रताके कारण बहुतसे माननीय सज्जन यह मानते हैं कि स्वराज्यप्राप्तिकेलिये बहुत वर्ष चाहिये ॥ ९४ ॥

भारतं वर्षमेवावदौर्बल्यं प्राप्तवद्यत ।
दुष्कालस्य निवृत्तौ तत्सर्वथाऽशक्तितां गतम् ॥९५॥

भारतवर्ष इतना निर्बल बन गया है कि अकाल—दुष्कालको दूर करनेकेलिये भी सर्वथा अशक्त हो गया है ॥ ९५ ॥

ब्रिटिशागमनात्पूर्वं लक्षेपूटजेषु तत् ।
चर्कं चालयन्नित्यं वयद्वस्त्राण्यभूत्सुखि ॥९६॥

ब्रिटिशराज्यके आनेसे पूर्व यह भारतवर्ष लाखों झोपडियोंमें चर्खा चलाकर, कपडे बुनकर सुखी था ॥ ९६ ॥

कृषिकर्मणि संजातां हानिं रीत्याऽनयैव तत् ।
सुख्यासीत्पूरयत्सर्वां सर्वशो न्यायवर्जितम् ॥९७॥

यदि खेतोंमें कुछ कमी होती थी तो उसको इस रीतिसे—चर्खा चलाने और कपडा बुननेसे—पूरा करके भारतवर्ष, सब दुखोंसे मुक्त हो कर, सुखी था ॥ ९७ ॥

भारतस्य गृहोद्योग आङ्गलैरेवाङ्गलसाद्विकम् ।
क्रूरोपायं समाश्रित्य नाशितः स किलाद्भुतः ॥९८॥

भारतके घरेलू उद्योग-धन्धोंको अंग्रेजोंने—जिसके गवाह अङ्ग्रेज ही हैं—ऐसे जिस क्रूर—निर्दय उपायका आश्रय लेकर बर्बाद किया है वह उपाय भी सचमुच विचित्र है ॥ ९८ ॥

अर्धोदरं हि भुञ्जाना मध्यमा भारतप्रजाः ।
मृतप्राया भवन्तीति ज्ञायते नागरैर्न तत् ॥९९॥

मध्यम श्रेणीकी भारतीय प्रजा आधापेट भोजन करके मुर्दा जैसी बन रही है, तत्—इदम् = इस बातको शहरी प्रजा नहीं जानती है ॥९९॥

सांसारिकविलासेषु क्षुद्रेषु प्रसिता नराः ।
नागरा नैव जानन्ति रहस्यमिदमद्भुतम् ॥१००॥

क्षुद्र सांसारिक ऐश आराममें फँसे हुए शहरी लोग इस अद्भुत रहस्यको जानते ही नहीं हैं ॥ १०० ॥

वैदेशिकधनाढ्यानां भारतप्राणहारिणाम् ।
गृहप्रपूर्तये द्रव्यैः साधयन्त्यत्र ते श्रमम् ॥१०१॥

वह क्षुद्रविलासपरायण नागरिक जन, भारतके प्राणहरनेवालों—विदेशीय धनवानोंके घरको द्रव्योंसे भर देनेकेलिये ही श्रम करते हैं ॥ १०१ ॥

तस्य श्रमस्य सम्प्राप्तं दलालित्वेन यद्धनम् ।
विलासः क्षणिकोऽसौ तैस्तेनाल्पेनापि भुज्यते ॥१०२॥

उसी मेहनतकी दलालीसे जो धन उन्हें प्राप्त होता है। उसी थोड़े धनसे भी वह लोग क्षणिक विलासका भोग कर रहे हैं ॥ १०२ ॥

वैदेशिकानां च दलालीद्रव्यसेविनाम् ।
लाभपोषमध्य आपत्य चूषिता मध्यमाः प्रजाः ॥१०३॥

विदेशीयों और उपर्युक्त दलालीखोरोंके (दो) लामोंके बीचमें दैवात् पड़कर भारतीय प्रजाका मध्यमवर्ग चूस लिया गया है ॥ १०३ ॥

नागरास्ते न जानन्ति सरीतिस्थापितामिमाम् ।
भारतीयप्रजाहन्त्रीं ब्राटिशीं राजपद्धतिम् ॥१०४॥

ये नागरिक कायदेके साथ स्थापित की गयी हुई इस ब्रिटिश-राज-पद्धतिको नहीं समझते हैं कि वह भारतीयप्रजाका नाश करनेवाली है ॥ १०४ ॥

ग्रामटिकासु सर्वासु यां दशामस्थिपञ्जरैः ।
आख्याति भारतं स्वीयां संगोप्तुं सा न शक्यते ॥१०५॥

सभी गावोंमें अपने अस्थिपञ्जरोंकेद्वारा-हड्डियोंकी ठठरियोंके द्वारा भारतवर्ष अपनी जिस दशाको बता रहा है वह छिपायी नहीं जा सकती है ॥ १०५ ॥

मन्ये कश्चिद्यदीशोऽस्ति पुरस्तात्तस्य निश्चितम् ।
अस्य पापस्य महतो ब्रिटिशैर्देयमुत्तरम् ॥१०६॥

मैं मानता हूँ कि यदि जगत्का रक्षक कोई ईश्वर है तो उसके सामने अंग्रेजोंको इस महान् पापका अवश्य उत्तर देना पड़ेगा ॥१०६॥

भारतं हन्तुकामानां हिताय श्वेतचर्मणाम् ।
नियमाः संप्रयोज्यन्ते भारतेऽत्रेति निश्चितम् ॥१०७॥

यह निश्चित है कि भारतको मारडालनेकी इच्छावाले अंग्रेजोंके हितकेलिए ही भारतमें कायदे बनाये जाते हैं ॥१०७॥

पञ्चाबस्याभियोगेषु तटस्थेन मया मुहुः ।
कृतमन्वेषणं तेन परिणामोऽयमागतः ॥१०८॥
सर्वेष्वेव मनुष्येषु प्राप्तदण्डेषु सर्वथा ।
शतातपञ्चनवत्यास्तु येषां दुष्टं हि दण्डनम् ॥१०९॥

पञ्जाबके अभियोगोंमें मैंने तटस्थ रह कर खूब अन्वेषण किया है

और परिणाम यह आया है-॥ दण्ड पाये हुए मनुष्योंमेंसे १०० मेंसे ९५ का दण्ड केवल अन्याय है ॥१०९॥

दण्डितानामभीयोगे भारते राजनीतिके।
दशभ्यो नव निर्दोषाः सदोषा देशभक्तितः ॥११०॥

भारतवर्षमें राजनैतिक अभियोगोंमें जो जो दण्डित हुए हैं उनमेंसे १० मेंसे ९ निर्दोष ही थे। वह केवल देशभक्तिसे अवश्य दूषित थे॥११०॥

श्वेतत्वचां विरोधेऽस्मिन् भारते न्यायमन्दिरे।
शतान्नहि नवत्याऽपि न्यायः संप्राप्यते जनैः ॥१११॥

भारतके न्यायालयोंमें अंग्रेजोंके विरुद्ध अभियोगोंमें १०० मेंसे ९० आदमियोंको न्याय नहीं मिलता है ॥ १११ ॥

दौर्भाग्यं तु महच्चैतद्यदेते राजकर्मिणः।
मदुक्तमेनः कुर्वाणानात्मनो न विदन्ति ते ॥११२॥

बड़े दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि मैं जिस गुनाहकी बात कर रहा हूँ उसी गुनाहको करते हुए भी राजकर्मचारी यह नहीं मानते कि यह गुनाह कर रहे हैं ॥ ११२ ॥

प्रजानां भारतीयानां प्रतीकारविधायिनी।
आत्मरक्षाकरी चापि शक्तिर्व्यपहृताऽधुना ॥११३॥

भारतीय प्रजाका प्रतीकार करनेमें और आत्मरक्षा करनेमें समर्थ, शक्तिका आज अपहरण हो गया है ॥ ११३ ॥

ब्रिटिशराज्याभिचारेण प्रजासु क्लीवताऽऽगता।
पामरत्वं च दम्भश्च प्रसृतस्तासु सर्वथा ॥११४॥

ब्रिटिश राज्यके अभिचारसे-मारणमन्त्रसे-प्रजामें नपुंसकता आ गयी है, पामरता, और दम्भ भले प्रकारसे प्रजामें बढ़ गये हैं ॥ ११४ ॥

नियमेनाद्य येनाहमपराधितया मतः ।
स्वतन्त्रतापहर्तृणां नियमानां मुखं हि सः ॥११५॥

जिस कायदेके अनुसार मैं आज अपराधी माना गया हूँ वह कायदा स्वतन्त्रताके हरनेवाले सब कायदोंमेंसे मुख्य है ॥ ११५ ॥

प्रीतिर्न चोदनाजन्या न वा धारानुवर्तिनी ।
तस्मात्तस्या विचाराय नास्ति मार्गो धृतस्त्वया ॥११६॥

प्रीति न तो कानूनसे पैदा होती है और न कानूनके नियन्त्रणमें रहती है । अतः उसके विचारकेलिये यह मार्ग नहीं है जिसे सर्कारने ग्रहण कर रखा है ॥ ११६ ॥

हिंसावृत्तिविरक्तानां कस्मिन्नपि च वस्तुनि ।
अप्रीतेऽप्रीतिसंचारे सर्वेषामधिकारिता ॥११७॥

जिस वस्तुमें जिस किसीका प्रेम न हो उस अप्रिय वस्तुके विषयमें अप्रीति-सञ्चार करनेमें-अप्रीति-प्रदर्शन करनेमें, हिंसावृत्तिसे रहित सब किसीको अधिकार है ॥ ११७ ॥

परं शङ्करलालेऽस्मिन्मयि चापि कृतेन तु ।
एतेनाद्याभियोगेन हता माऽप्यधिकारिता ॥११८॥

परन्तु शङ्करलालके ऊपर और मेरे ऊपर जो यह अभियोग किया गया है उससे तो उस अधिकारका भी नाश होता है ॥११८॥

अनेके जनतामान्या महान्तः पुरुषा इह ।
दण्डिताः सन्त्यनेनैव नियमेन सहस्रशः ॥११९॥

इसी १२४ वीं धाराके अनुसार बड़े बड़े अनेक प्रजामान्य महापुरुष, अनेकवार दण्डित हो चुके हैं ॥ ११९ ॥

अनेन नियमेनाद्याऽपराधित्वेन सम्मतः ।
प्रतिष्ठां वर्धितां नूनं स्वकीयां वेद्म्यहं परम् ॥१२०॥

उसी कायदेके अनुसार आज मैं अपराधी माना गया हूँ। इससे तो मैं अपनी प्रतिष्ठाकी वृद्धि ही मानता हूँ ॥ १२० ॥

कस्मिन्नपि न मेऽप्रीतिर्विद्यते कर्मचारिणि।
वैयक्तिकी कथं सा स्यात्सुतरां भूमिपालके ॥१२१॥

किसी कर्मचारीमें भी मेरी व्यक्तिगत अप्रीति नहीं है तो भला राजामें तो वह हो ही कैसे सकती है? ॥ १२१ ॥

परं राज्येन येनेहाभूतपूर्वं ह्रितेतरत्।
अकारि तद्विरुद्धं स्यादप्रीतिः सद्गुणाय मे ॥१२२॥

परन्तु जिस सर्कारने इस भारतमें अभूतपूर्व हानि की हो उसके विरुद्ध अप्रीति तो अवश्य सद्गुण ही है ॥ १२२ ॥

विलोपोऽभूतपूर्वोऽत्र ब्राटिशे शासनेऽनये।
समपद्यत शौर्यस्य वर्षादस्माद्धि भारतात् ॥१२३॥

इस ब्रिटिश राज्यमे भारतवर्षसे वीरताका तो ऐसा लोप हुआ है जैसा कि कभी भी नहीं हुआ था ॥ १२३ ॥

विद्यते सुतरां मेऽद्य निश्चिता मतिरीदृशी।
ईदृशे राजतन्त्रे स्यात्प्रीतिः पापाय केवलम् ॥१२४॥

आज तो मेरी यह अत्यन्त निश्चित राय है कि ऐसे राजतन्त्रमें प्रेम करना केवल पाप ही है ॥ १२४ ॥

त्रयाणामपि लेखानां लेखने शक्तिमानहम्।
अभूवं तेन सौभाग्यंपरं मन्येऽहमात्मनः ॥१२५॥

ऊपर बताये हुए तीनों लेखोंके लिखनेमें मैं शक्तिमान् हो सका इससे तो मैं अपने सौभाग्य को श्रेष्ठ मानता हूँ ॥१२५॥

भारतस्येङ्गलैण्डस्याप्याधिपस्याः स्थितेर्मदा।
निर्गमाय महामार्गोऽसहयोगः प्रकल्पितः ॥१२६॥

भारत और इङ्गलेण्ड दोनों देशोंको अस्वाभाविक स्थितिमेंसे निकल आनेकेलिये मैंने असहयोगरूप एक मुख्यमार्ग तैयार किया है ॥ १२६ ॥

सुकर्मणि यथा धर्मः सहयोगः प्रकीर्तितः ।
दुष्कर्मणि तथा धर्मोऽसहयोगोपि मे मतः ॥१२७॥

जैसे सत्कर्मके साथ सहयोग करना धर्म है वैसे ही बुराईके साथ असहयोग करना भी मेरे मतमें धर्म ही है ॥ १२७ ॥

अपकर्तृविरोधायाऽसहयोगप्रदर्शनम् ।
अद्यावधि क्षितावासीद्धिंसापूर्वकमादृतम् ॥१२८॥

बुराई करनेवालोंके साथ असहयोग करना अभीतक पृथिवीपर, हिंसापूर्वक था । अर्थात् जो लोग किसीसे असहयोग करते थे वह उसका खून करना भी चाहते थे ॥१२८॥

सहिंसोऽसहयोगोऽस्ति दुर्गुणाहृत्यपेक्षया ।
दोषाणां वृद्धये चास्त्रमित्येवावोध्यते मया ॥१२९॥

हिंसासहित असहयोग, दुर्गुणोंकी आहृति—नाश करनेकी अपेक्षा बुराइयोंके बढनेकेलिये एक अस्त्र है, यही मैं सदा आवोध्यते = समझाता रहता हूँ—लिखता रहता हूँ ॥१२९॥

दोषाणां वृद्धये सैषा हिंसा परमसाधनम् ।
तस्माद्दोषाञ्जिहासूनां हेया सा स्यादशेषतः ॥१३०॥

निश्चय ही, हिंसा दोषोंको बढानेकेलिये परम साधन है । अतः दोषोंको छोडनेकी इच्छावाले लोगोंको हिंसाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥१३०॥

अनयाऽहिंसया वृत्त्याऽसहयोगपरायणैः ।
सोढव्या आपदः सर्वा आयन्त्यदद्यागता. सदा॥१३१॥

इस अहिंसावृत्तिसे असहयोग करनेवालोंको हर्षके साथ आयी हुई और आनेवाली आपत्तियोंको सदा सहन करना चाहिये ॥१३१॥

मत्वा सद्धर्म इत्येव कृतं यज्ज्ञानतो मया।
अधर्मस्तत्कथंकारं भवतीद् न वेद्मि तत् ॥१३२॥

जिस कार्यको मैंने सद्धर्म मानकर ही किया है वह अधर्म किस रीतिसे हो गया, मैं इसे नहीं समझ सकता हूँ ॥१३२॥

राज्यानुशासनाच्चेत्तद्दूषणं परिगण्यते ।
कठिनात्कठिनो दण्डो दीयतां मह्यमञ्जसम् ॥१३३॥

और यदि राज्यके कानूनके अनुसार यह मेरा कृत्य दूषण—दोष गिना जाता हो तो उसकेलिये कठिनसे कठिन दण्ड आप बिना किसी शर्मके मुझे दीजिये ॥१३३॥

शासनं दोषि निर्दोषोऽहमस्मीति च वेत्सि चेत्।
न्यायासनं परित्यज्य कल्याणपथगो भव ॥१३४॥

यदि आप यह मानतेहों कि शासन—कायदा दूषित है और मैं निर्दोष हूँ तो इस न्यायासन—जजके पदको छोड़कर कल्याणमार्गके यात्री बन जाइये ॥ १३४ ॥

अहं दोषी च निर्दोषं शासनं त्विति ते मतिः।
यदि स्यात्स्वेच्छया दण्ड देहि मे कठिनं परम् ॥१३५॥

और यदि आपकी बुद्धि ऐसी हो कि मैं दोषी हूँ और शासन निर्दोष है तो मुझे अत्यन्त कठिन दण्डसे दण्डित किया जाय ॥ १३५ ॥

महात्मनो वचः श्रुत्वा निर्भयं प्रस्फुटाक्षरम्।
निरीक्ष्याथ स्वकर्तव्यं व्याजहार जजस्तदा ॥१३६॥

श्रीमहात्माजीके निर्भय और स्पष्ट वचनको सुनकर और अपने कर्तव्यकी ओर देखकर जज बोले ॥ १३६ ॥

त्वयाङ्गीकुर्वता दोषं काठिन्यं मे व्यपोहितम्।
किन्तु दण्डविधानं ते सरलं न प्रतीयते ॥१३७॥

आपने दोषको अङ्गीकार करके मेरी कठिनताको दूर कर दी है। परन्तु आपको सजा देना मुझे सरल काम नहीं प्रतीत होता है ॥ १३७ ॥

नाहं मन्ये कदाप्येवं जज्जग्यान्यस्य कस्यचित् ।
ईदृशं कठिनं कार्यं कर्तुं स्यात्काल आगतः ॥१३८॥

मैं नहीं मानता हूँ कि किसी दूसरे जजको भी, इतना कठिन कार्य करनेका काल—समय आया हो ! ॥ १३८ ॥

उत्कृष्टोऽयमनुत्कृष्टोऽयमित्येव भिदा नहि ।
राज्यानुशासनैर्दृश्या भवतीह कदाचन ॥१३९॥

यह उत्कृष्ट—श्रेष्ठ है और यह अनुत्कृष्ट-निकृष्ट है, इस प्रकारके भेदको क़ानून कभी नहीं देखता है ॥ १३९ ॥

अद्यावधि परं चाग्रे येषामेवाभियोगिकः ।
कृतः करिष्यते वापि निर्णयस्त्वं ततोऽधिकः ॥१४०॥

परन्तु आज तक जिनके मुक़द्दमोंका मैंने फैसला किया है और भविष्यमें जिनका फैसला करूँगा उन सबसे आप श्रेष्ठ हैं ॥ १४० ॥

बहूनां चैव कोटीनां नराणां नायको भवान् ।
तेषां दृष्टौ महानस्ति देशभक्तो गुणोत्तमः ॥१४१॥

बहुत करोड़ों मनुष्योंके आप नायक—नेता हैं। इन करोड़ोंकी दृष्टिमें आप महान् गुणी देशभक्त हैं ॥ १४१ ॥

राजनीतिषु ये त्वत्तो विरुद्धाः प्रतिपक्षिणः ।
तेऽप्यपूर्वं महात्मानं त्वां विदन्ति सदाशयम् ॥१४२॥

जो लोग—आपकी राजनीति के सम्बन्धमें विरुद्ध और प्रतिपक्षी हैं वह भी आपको अपूर्व महात्मा और सत्यप्रतिज्ञ मानते हैं ॥ १४२ ॥

लौकिकत्वं त्वयि श्रेष्ठ निषेधन्ति न केवलम् ।
त्वां महापुरुषं मत्वा पूजयन्त्यपि ते सदा ॥१४३॥

वे लोग—आपकी राजनीतिके विपक्षीलोग आप जैसे श्रेष्ठ पुरुषमें केवल लौकिकताका ही निषेध नहीं करते प्रत्युत आपको महापुरुष मानकर सदा पूजते भी हैं। अर्थात् उन सबकी दृष्टिमें आप केवल अलौकिक पुरुष ही नहीं प्रत्युत महापुरुष और अतएव पूजनीय हैं॥ १४३॥

एतत्सर्वं विजानामि तत्त्वतस्तत्त्ववित्परम् ।
शंसितुं निन्दितुं वा मे कर्तव्यं नास्ति साम्प्रतम्॥१४४॥

हे तत्त्ववित्! यह सब बातें मैं ठीक-ठीक जानता हूँ। परन्तु इस समय आपकी प्रशंसा या निन्दा करनेका मेरा कर्तव्य नहीं है॥ १४४॥

यन्महद्दूषितं कृत्यं शासनेऽस्मिन्मतं च तत्।
शासनोल्लङ्घनं नाम स्वयमङ्गीकृतं त्वया॥१४५॥

इस राज्यमें जो कृत्य सबसे अधिक दूषित माना जाता है उसी आज्ञाभङ्गरूप अपराधका आपने स्वयं स्वीकार किया है॥ १४५॥

एतादृशेन दोषेण नियमाधीनतां गतम्।
त्वामधुना विचार्यैव कार्यो मे निर्णयस्तव॥१४६॥

ऐसे अपराधसे आपको कानूनके भीतर प्राप्त समझकर ही मुझे आपका निर्णय करना है॥ १४६॥

हिंसां च विप्लवं कर्तुं प्रतिषिद्धं त्वयानिशम्।
बहुशोऽकारि मन्येऽहमुपद्रवनिवारणम्॥१४७॥

आपने सदा हिंसा और तूफान करनेका निषेध किया है। मैं मानता हूँ कि आपने बहुत बार उपद्रवोंको रोका भी है॥१४७॥

उपदेशोपदेश्यानां स्वरूपमखिलं त्वया।
अधिगत्यापि शान्त्याशा न जानेऽकारि ही कथम्॥१४८॥

आपने, अपने उपदेश और उस उपदेशके लेनेवाले प्रजाजन—इन दोनोंके स्वरूपको सर्वथा जानकर भी, शान्तिकी आशा कैसे की, आश्चर्य है कि मैं इसे नहीं जानता हूँ॥ १४८॥

कस्यापि शासनस्यैव तत्र मोक्षः सुदुस्सहः।
त्वयाऽऽपादितया स्थित्या खेदः सर्वस्य जायते ॥१४९॥

कोई भी हुकूमत आपकी इस प्रकारकी स्वतन्त्रताको सह नहीं सकती है। आपने जो परिस्थिति पैदा कर दी है उससे सबको खेद हो रहा है ॥ १४९ ॥

त्वयि दण्डविधानेऽस्मादनुसर्तुं मयेष्यते।
द्वादशवर्षतः पूर्वमभियोगः स तैलकः ॥१५०॥

अतः आपको दण्ड देनेके विषयमें मैं १२ वर्ष पहिले जो तिलक महानुभावका अभियोग हुआ था उसका अनुसरण करना चाहता हूँ ॥१५०॥

तिलकाह्वस्य बालस्य विद्वद्वर्यस्य चेदिह।
श्रेण्या त्वा स्थापयिष्यामि नानौचित्य भवेत्तव ॥१५१॥

यदि मैं आपको विद्वद्वर्य श्रीगङ्गाधर तिलककी श्रेणीमें रक्खूँ मान हूँ तो आपको अनुचित नहीं प्रतीत होगा ॥ १५१ ॥

कारावासस्ततः षड्भिर्वत्सरैरश्रमं त्वया।
भुज्यतां तिलकेनेव दण्डरूपतया सता ॥१५२॥

अतः श्रीमान् तिलकके समान आप भी, छ वर्षोंतक अपरिश्रम कारावास—आसान कैदको दण्डके रूपमें भोग कीजिये ॥ १५२ ॥

भारते शान्तिरेव स्यात्ततो मुक्तिश्च वै यदि।
अथवान्यं भवेद्दण्डे प्रसादो मे परो भवेत् ॥१५३॥

यदि भारतमें शान्ति हो जाय और उसके कारण आपको छुटकारा मिले या सजामें कमी कर दी जाय तो मुझे सबसे अधिक आनन्द होगा ॥ १५३ ॥

यैद्धूरं शङ्करं मुद्राः सहस्रं धन्यनाडये।
पर्यपासं ब्रूमफील्डोऽदण्डयद्वियशोऽय सः ॥१५४॥

इसके पश्चात् भी शङ्करलाल बेङ्करको एक हज़ार रुपये जुर्माना और एक वर्षकी जेलकी सज़ा–जज–ब्रूमफ़ील्डने लाचार होकर दी ॥ १५४ ॥

*श्रीमन्महामहिमपूज्यवरेण सार्धं
मां तोलयंस्तु तिलकेन भवानिदानीम्।
मानोन्नतं प्रणयति स्म जजेति वाच–
मूचे नयाधिपतिमेष महीमहार्घ्यः ॥१५५॥

पृथिवीभरके परमपूजनीय श्रीमहात्माजीने जजसे कहा कि हे न्यायाधीश ! महान् महिमावाले परमपूज्य श्रीमान् लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलकके साथ मेरी तुलना करके आपने मेरे मानको बढा दिया॥१५५॥

यः कोऽपि मां नयसदोऽधिपतिश्च येन
दण्डेन शासनपराभवकारिमुख्यम्।
अल्पेन शक्त इह दण्डयितुं भवेच्चे–
द्दण्डः स एव भवतापि कृतोऽस्ति मेऽद्य ॥१५६॥

शासनभङ्ग करनेवालोंमेंसे मुख्य मुझको जो कोई भी न्यायाधीश जितना अल्प दण्ड दे सकता था उतना ही अल्पदण्ड आपने भी मुझे दिया है ॥ १५६ ॥

सम्पादितो ऽस्ति नयपाल ममाभियोगे
सम्यक्त्वया विनय इत्यहमस्मि तुष्टः।
अस्मात्परो न हि भवेत्स मयाभिलष्य
इत्यप्यवोचत यतिक्षितिभृन्महात्मा ॥१५७॥

यतिराज श्रीमहात्माजीने यह भी कहा कि हे न्यायाधीश ! मेरे अभियोगमें अच्छी तरहसे विनयका पालन किया गया है इससे अधिक विनयका अभिलाष मैं नहीं कर सकता॥ १५७ ॥

* इस सर्गके अन्ततक अब वसन्ततिलका छन्द है।

न्यायालयेऽथ बहिरप्यमिता मनुष्या-
स्तद्दर्शनाय मिलिता अभवंस्तदानीम्।
शोकाकुलाश्च विगलद्बहुलास्रनेत्रा-
स्तं सादरं यतिवरं परितुष्टुवुस्ते ॥१५८॥

यह सब होजानेके बाद, कचहरीमें और उसके बाहर भी असंख्य मनुष्य महात्माजीके दर्शनके लिये इकट्ठे हुए थे। वह शोकाकुल होकर, आँखोंमें आँसू भरकर महात्माजीकी स्तुति करने लग गये ॥ १५८ ॥

आङ्ग्लैः करालकरवालशिखण्डिपर्शु-
भल्लादिशस्त्रसहितैर्महतीह युद्धे।
शस्त्रैर्विनैव विजयो नियतो हि यस्य
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१५९॥

भयङ्कर तरवार, तोप, धारिया, भाला आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित अंग्रेजोंके साथ इस महायुद्धमें बिना शस्त्रके ही जिनका विजय नियत है वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीवित रहें ॥ १५९ ॥

यस्याधिकाधिकतपःपटलप्रभावा-
ज्ञातं पुनस्तदिह भारतमिद्धतेजः।
वन्द्यो गुणैकनिलयः परमस्तपस्वी
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६०॥

जिनके अधिकाधिक तपःपुञ्जके प्रभावसे भारतवर्ष पुनः अपने तेजको प्राप्त कर सका है वह वन्दनीय, परमगुणवान्, परमतपस्वी और भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीवित रहें ॥ १६० ॥

दृष्ट्वैव भारतभुवो बहुशोऽपमान-
माङ्ग्लैः कृतं हृदयमर्मभिदं महान्तम्।
शोकाकुलस्तमपनेतुमनामहात्मा
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६१॥

अंग्रेजोंद्वारा भारतभूमिके अनेकोंवार किये गये हुए मर्मभेदी महान् अपमानको देखकर ही जो शोकाकुल होकर उसके दूरकरनेकी इच्छावाले हैं, वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकाल तक यहाँ जीवित रहें ॥ १६१ ॥

यः पारतन्त्र्यमखिलं सततं समूलं
श्रीभारतस्य परिलोपयितुं सयत्नः ।
कारागृहे वसति सम्प्रति यो महात्मा
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६२॥

जो भारतवर्षकी परतन्त्रताको समूल नष्ट करनेकेलिये सदा यत्नवान् हैं और जो इस समय कारागृहको पवित्र कर रहे हैं वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीवित रहें ॥ १६२ ॥

उत्पाद्य यं नरमणिं सुरपालकाभं
जाता ध्रुवं सपदि भारतभूः कृतार्था ।
अर्च्यः सतां शमवतां महता च मान्यो
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६३॥

देवताओं जैसी शक्तिसे युक्त जिस नर—पुङ्गवको उत्पन्न करके भारतभूमि निश्चय ही कृतार्थ हो गयी है वह सज्जनों और शम–शान्तिवालों-के पूज्य तथा महापुरुषोंके माननीय भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकाल तक यहाँ जीवित रहें ॥ १६३ ॥

यद्दर्शनेन सहसा हृदयेषु नृणां
नित्यं समुल्लसति शान्तिमहापयोधिः ।
कौपीनमात्रपरिधान उदारचेता
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६४॥

जिनके दर्शन करते ही सदा, मनुष्योंके हृदयोंमें शान्तिमहासागर तरङ्गित होने लग जाता है वह उदारचित्तवाले, कौपीनमात्र धारणकरनेवाले, भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीवित रहें ॥ १६४ ॥

यस्मिन्महामनसि सत्पुरुषाग्रगण्ये
सच्छ्रद्धया ब्रिटिशवह्निमुखे जनौघाः ।
जुह्वत्यहर्निशमिहाखिलमात्मवस्तु
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६५॥

महामनवाले, सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ जिन महात्माजीमें सत् श्रद्धा होनेके कारण सब मनुष्य अंग्रेजरूप अग्निके मुँहमें रातदिन अपना सब कुछ होम रहे हैं वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकाल तक यहाँ जीवित रहें ॥ १६५ ॥

आसीच्चिरं पतित एव विलीनबोधो
दुःखोदधौ महति भारतदेश एषः ।
उद्धर्तुमद्य तमरीव कृतप्रतिज्ञो
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६६॥

यह भारतवर्ष चिरकालसे नष्टज्ञान होकर—बेहोश होकर महान् दुःखसागरमें पड़ा हुआ था। उसके उद्धार करनेकेलिये प्रतिज्ञा करनेवाले भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकाल तक यहाँ जीवित रहें ॥१६६॥

स्वर्गं गते च तिलके परमे प्रशस्ते
नाभूदनाथमिव भारतवर्षमेतत् ।
यस्मिन्स्थिते महति नेतरि पूज्यवर्ये
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६७॥

परमगुरु श्रीतिलक महाराजके स्वर्ग चलेजानेपर भी जिन महान् और पूजनीयतम नेताके रहते हुए यह भारतवर्ष अनाथ जैसा नहीं हो गया वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकाल तक यहाँ जीवित रहें ॥१६७॥

पश्चात्तपत्यनुदिनं य उदारचेता
अन्यैः कृते लघुनि वा महतीह पापे ।
योऽस्मत्कृते तपति तीव्रतरां तपस्यां
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६८॥

उदारचित्तवाले जो दूसरेके किये हुए छोटे या बड़े पापके लिये रातदिन पश्चात्ताप करते रहते हैं और जो हमारेलिये अत्यन्तकठिन तपस्या कर रहे हैं वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीवित रहें ॥ १६८ ॥

न क्वापि यः स्वमनसाऽपि परापराधं
संचिन्तयत्यखिलमङ्गलमूलहेतुः ।
लोकोत्तरप्रतिभया विबुधाधिमान्यो
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१६९॥

जो कभी अपने मनसे भी दूसरोंकी बुराई करनेका विचार नहीं करते हैं और जो समस्त मङ्गलके मूलकारण हैं तथा जो अपनी लोकोत्तर-प्रतिमाके कारण समस्त विद्वानोंके माननीय हैं वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीते रहें ॥१६९॥

यस्यात्मशक्तिममलां बहुलं च धैर्यं
बुद्धिं परां च दृढतां परमां च शान्तिम् ।
आश्रित्य भारतमचिन्त्यसमृद्धिमाप
जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१७०॥

जिनकी पवित्र आत्मशक्ति, अतुलधैर्य, परा बुद्धि, परम दृढता और शान्तिका आश्रय लेकर भारतवर्ष अचिन्त्य समृद्धिको प्राप्त हुआ है वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीते रहें ॥ १७० ॥

यस्यैव बुद्धिमनुसृत्य च भारतीया
पारं लभेत जनता परतन्त्रताब्धेः ।
मान्यः सतां जगति शश्वदजातशत्रु-
र्जीयाच्चिरं स इह भारतपारिजातः ॥१७१॥

जिनकी ही बुद्धिकाविचारका अनुसरण करके भारतीय जनता परतन्त्रतारूप समुद्रके पार अवश्य जा सकेगी, जो जगत्के सभी सत्पुरुषोंके

माननीय हैं और जिनका कोई शत्रु नहीं है वह भारतके कल्पवृक्ष श्रीमहात्माजी चिरकालतक यहाँ जीते रहें ॥१७१॥

सम्मान्य सर्वजनतां प्रणतां पुरस्ता-
त्सङ्गत्य भारतविभिन्नविभागऽतोपि ।
तत्रागतान्बहुविधान्विबुधांश्च नेतॄन् ,
कारामियाय जयघोषसमाहतोऽसौ ॥१७२॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
दशमः सर्गः

सामने जनता प्रणाम कर रही थी उसका सत्कारकरके भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे आए हुए विविध विद्वान् ॐ नेताओंसे मिलकर, जयघोषसे सत्कृत होकर, श्रीमहात्माजी जेल चले गये ॥१७२॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारत राष्ट्रभाषाटीका सहिते
भारतपारिजाते दशमः सर्गः



ॐ उन्हीं दिनों सत्याग्रह आश्रममें राष्ट्रीय महासभाकी वर्किंग कमेटीकी बैठक हो रही थी अतः प्रायः प्रसिद्ध प्रसिद्ध सभी नेता उस दिन कोटमें उपस्थित थे ।

❀ एकादशः सर्गः

कारागृहं सोऽधिवसन्यरोडापुरे शरीरेण बभूव रुग्णः।
ततोऽवधेः पूर्वमभूद्विसृष्टो राज्येन निन्दाभयविह्वलेन ॥१॥

वह महात्माजी यरोडाके कारागारमें निवास करते हुए शरीरसे रोगी हो गये। अतः अवधिसे पूर्व ही राज्यने निन्दाके भयसे उन्हें छोड दिया ॥ १ ॥

वसन्महात्मा स उदारवृत्तिर्निजाश्रमे साभ्रमतीतटस्थे।
शनैः शनैर्भारतिनां विशुद्धे मनःपटेऽचित्रयताप्यहिंसाम् ॥२॥

उदारवृत्ति श्री महात्माजी साबरमतीके तटपर अपने सत्याग्रह आश्रममें निवास करते हुए धीरे धीरे भारतीयोंके पवित्र मनोरूप पटके ऊपर अध्यहिंसा अत्यन्त अहिंसाको चित्रित कर दिया ॥ २ ॥

तिथौ च मासे प्रथमे खकाल्प्रहेशयुक्तेऽथ खिरिस्तकाब्दे।
लाहौरपुर्यामधिवेशनंतन्महासभायाः समपादि तज्ज्ञैः ॥३॥

महासभाके सचालक विद्वानोंने ईसाके १९३० सन् के जनवरी मासकी पहिली तारीखको लाहौर नगरमें राष्ट्रिय महासभाका वह प्रसिद्ध अधिवेशन किया ॥ ३ ॥

जवाहिरोऽसौ मिहिरप्रतीको जग्राह राष्ट्राधिपतित्वमत्र।
पिता च पुत्रे निखिलाधिकारान्समार्पयत्सर्वमतानुमानी ॥४॥

सूर्य समान वर्तमान पण्डित जवाहिरलाल नेहरूने अध्यक्ष पदको स्वीकार किया। पिता पण्डित ❀ मोतीलाल नेहरूजीने सबके मतका

❀ इस सर्गमें उपजाति छन्द है।

❀ लाहारसे पूर्व जब कांग्रेसका अधिवेशन कलकत्तेमें हुआ था, उसके सभापति श्रीमान् पण्डित मोतीलाल नेहरूजी ही थे। दूसरे वर्ष

यह बात तो तुम लोग बहुत दिनोंसे जानते हो कि सत्याग्रह एक ऐसा तीव्र और अव्यर्थ शस्त्र है कि जिसके सामने बड़ी बलवती सेना भी टिक नहीं सकती है ॥ १३ ॥

पश्यामि राज्येन निरङ्कुशां तां संहारिणीं भारतवर्षकस्य ।
प्रवर्तितां क्रूरतरां च हिंसां दैनन्दिनं तेन ममातिदुःखम् ॥१४॥

मैं देख रहा हूं कि सर्कारने भारतवर्षको नाश करनेवाली निरङ्कुश अत्यन्त दुष्ट हिंसाको प्रतिदिन चला रही है इससे मुझे अत्यन्त दुःख होता है ॥ १४ ॥

तदादधात्येव ममाधिराशिं यत्तां निराकर्तुमुदग्रचित्ताः ।
अन्येऽपि हिंसापथमेव तीव्रमादाय सज्जाः इह भारतेऽद्य ॥१५॥

उस हिंसाका निवारण करनेके लिए जो महानुभाव उद्यत हुए हैं वह भी तीव्र हिंसाका मार्ग लेकर ही, यह देखकर तो मुझे और भी असह्य पीडा होती है ॥ १५ ॥

मन्येऽहमद्योभयथा प्रवृत्तां हिंसां विजेतुं नितरां समर्था ।
भवेदहिंसैव ततः पवित्रां तां सम्प्रयोक्तुं व्रत निश्चिनोमि ॥१६॥

मैं मानता हूं कि दोनों ओरसे प्रवृत्त इस हिंसाको सर्वथा जीतनेके लिए "अहिंसा" ही समर्थ है। अतः मैं आज उसी अहिंसाका प्रयोग करनेकेलिए निश्चय कर रहा हूं ॥ १६ ॥

ततो व्यवस्थां लवणस्य पूर्वं कृतां च राज्येन विनिन्दनीयाम् ।
अन्यायपूर्णामपमानराशिप्रसूतिमेतां विभनज्मि दुष्टाम् ॥१७॥

अतः नमककेलिए अन्यायपूर्ण, अपमानकी इच्छासे बनाया गया दुष्ट और निन्दनीय जो सर्कारका कानून है मैं पहिले उसे ही * तोड़ूंगा ॥१७॥

* अहिंसाका प्रयोग अत्याचार और अत्याचारीके साथ ही किया जा सकता है। अतः जब नमककानून तोड़ा जायगा तो सर्कार अत्याचार

श्वेताङ्गसाम्राज्यधुरन्धरेण हिंसाप्रधानां दधता च वृत्तिम् ।
चमू चमत्कारनिदर्शनाय नियोजिता स्याद्वशेन तत्र ॥१८॥

अङ्गरेजी राज्य के धुरन्धर (वाइसराय)–जो कि हिंसा-प्रधान वृत्तिको धारण करनेवाले हैं–अवश्यही चमत्कार दिखाने के लिए जहाँ नमकका कानून तोड़ा जायगा—वहाँ सेनाको नियुक्त करेंगे ॥ १८ ॥

मत्ताश्च सैन्यास्तदभिप्रयुक्ता जनाहनिष्यन्ति तदा मदीयान् ।
दण्डैश्च भल्लैरसिभिश्च शल्यैः परश्वधैर्मुद्गरतोमरैश्च ॥१९॥

उस समय मतवाले सैनिक डण्डे, भाले, तलवार, शल्य, फरसे, मुंगरी और तोमरसे मेरे सैनिकोंको मारेंगे ॥ १९ ॥

कोपानलोत्तापपरीतचित्ता मत्ताः प्रयोक्ष्यन्ति च लोहनाडीः ।
महाशतघ्नीशतकैर्विमूढाः संहारयिष्यन्ति निरस्त्रलोकान् ॥२०॥

क्रोधरूप अग्निसे जब उनका मन गर्म होगा तब वे मतवाले बन्दूकका प्रयोग करेंगे । तोपोंसे भी यह मूर्ख निरस्त्र जनताका संहार करेंगे ॥ २० ॥

एवं महारक्तनदप्रवाहैरक्ता भविष्यत्यथ भारतोर्वी ।
जानन्भविष्यद्व्यथितव्यमेतद्युद्धाय योधान्प्रतिबोधयामि ॥२१॥

इस प्रकारसे रक्तकी नदियाँ बहेंगी और भारतभूमि लाल हो जायगी । यह सब भविष्य में होगा, यह जानता हुआ ही मैं योद्धोंको तैयार कर रहा हूँ ॥ २१ ॥

* सर्वंसहापप्रतिनिधिपुरस्तादहस्ते समर्प्यं मम पत्रमेकम् ।
मद्युद्धरूपप्रतिबोधनार्थं तत्सम्प्रदातुं नियतो मदीयः ॥२२॥

मेरे इस युद्धका स्वरूप बता देनेके लिए राजाके प्रतिनिधि— किये बिना रह ही नहीं सकती । और तब अहिंसाका प्रयोग मैं कर सकूँगा, ऐसा भी महात्माजीका यहाँपर भाव है ।

* सर्वंसहा = पृथिवी । सर्वंसहाप = राजा ।

आदर करके सभाके सब अधिकार अपने पुत्र—राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरूको सौंप दिये। अर्थात् पण्डित मोतीलालजीके पश्चात् ही पण्डित जवाहिरलाल राष्ट्रपति नियुक्त हुए ॥ ४ ॥

महासभाऽघोषयदत्र पूर्णस्वराज्यमेवेष्टमतः परं मे।
श्रीमानयं मान्यवरो महात्माऽप्यलं बलेनानुमतिं व्यधत्त ॥५॥

अत्र = लाहोर में महासभाने घोषणाकी कि अतःपरम् अबसे नः = भारतवासियोंको पूर्णस्वराज्य ही इष्ट है। श्रीमान् मान्यवर्य महात्माजीने भी भारपूर्वक उसमें अपनी अनुमति दे दी ॥ ५ ॥

ततः परस्ताद्विविधासुराणां विनर्तकोऽमित्रसरीसृपाणाम्।
दुरन्तकाचारतरुं समूलं छेत्तुं स राज्यस्य समीहते स्म ॥६॥

उसके बादसे नाना प्रकारके असुरों और अहितरूप सर्पोंको नचानेवाले श्री महात्माजी सर्कारके अत्याचारस्वरूप वृक्षको जड़ सहित उखाड़नेकी इच्छा करने लग गये ॥ ६ ॥

विवेकधारापरिधौतचेताः सर्वान्समाहूय तदाश्रमस्थान्।
स मर्तुकामान्निजजन्मभूमेरुद्धारहेतोः समितिं चकार ॥७॥

विवेककी धारासे पवित्रमनवाले श्री महात्माजीने अपनी जन्मभूमि—भारतभूमिके उद्धारकेलिए मरनेवाले सभी आश्रमवासियोंको बुलाकर एक सभा की ॥ ७ ॥

स तां समज्यां जनतामुपेतामपारहर्षोत्कलितोत्कचित्ताम्।
स्थितां प्रशान्त्या जगदेकवंद्यः समादिदेशेति गभीरवाचा ॥८॥

अपार हर्षसे युक्त और उत्सुक मनवाले, शान्तिके साथ बैठे हुए उस

लाहौरमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। उसके सभापति पण्डित जवाहिरलाल नेहरू थे। इस रीतिसे पिताने अपने अधिकारको = राष्ट्रपतिके अधिकारको अपने पुत्र-तत्कालीन राष्ट्रपति जवाहरलालको सौंप दिया ॥

सभाके उपस्थित जनसमाजको श्रीमहात्माजीने गम्भीर वाणीसे इस प्रकार-का उपदेश दिया ॥ ८ ॥

साम्राज्यदोषानपनेतुकामैरस्माभिराशक्ति महाप्रयत्नः ।
सम्पाद्य एवेति समागतोऽसौ कालोऽथ यूयं भवताधिसज्जाः ॥९॥

साम्राज्यके दोषोंको दूर करनेकी इच्छावाले हम लोगोंको अपनी शक्तिभर प्रयत्न करना ही चाहिये। अब वह समय आ गया है। अतः तुम लोग तैयार हो जावो ॥ ९ ॥

स्वराज्यमस्माभिरुपार्जनीयमाहोस्विदायोधनमाचरद्भिः ।
देहः समाप्यो व्रतमेतदत्र सुखाद्धरीतुं समुपस्थिताः स्मः ॥१०॥

हम लोगोंको या तो स्वराज्य प्राप्त कर लेना है और या तो लड़ते लड़ते अपने शरीरको समाप्त कर देना है, इस व्रतको सुखसे लेनेकेलिए हमलोग यहाँ एकत्रित हुए हैं ॥ १० ॥

ये केऽपि युष्मासु तनुप्रियाः स्युः कार्यान्तरे व्यग्रधियोऽपि वा स्युः।
ये गन्तुकामा गृहमेव नैजमभ्यर्थनीया न मयाऽद्य तेऽत्र ॥११॥

तुममेंसे जिन लोगोंको शरीर प्रिय हो, या जो किसी दूसरे काममें लगे हुए हों या जो घर चले जाना चाहते हों उनके प्रति मेरा यह वक्तव्य नहीं है ॥ ११ ॥

येषां सदीहा हृदये विरूढा स्वदेशदुःखज्वलदग्निहेतिम् ।
यथाकथंचिच्छमनेव नेतुं तेभ्यो वचः किञ्चिदिदं गृणामि ॥१२॥

जिनके हृदयमें स्वदेशकी दुःखज्वालाको चाहे जिस प्रकारसे शान्त करनेकी इच्छा दृढ बनी हुई हो उन्हींके प्रति मैं यह कुछ शब्द कह रहा हूँ ॥ १२ ॥

सत्याग्रहस्तीव्रममोघशस्त्रं स्थातुं न शक्नोति पुरश्च तस्य ।
अनीकिनी कापि महाबलापीत्येतत्तु जानीथ चिरेण यूयम् ॥१३॥

वाइसरायके हाथमें मुझे एक पत्र पहुँचाना चाहिये। यह मेरा सदाका नियम है॥ २२॥

यः शत्रुसंहारमनीषयैव रणाङ्गणेष्वागमनात्तु पूर्वम्।
न बोधयेच्छत्रुमनूनवृत्तं स पापभाक्स्यादिति धर्मशास्त्रम्॥२३॥

जो आदमी शत्रुके संहारकरनेकी इच्छासे रणभूमिमें आनेसे पहिले, अपने शत्रुको पूरी पूरी खबर नहीं देता है वह पापी है, ऐसा धार्मिक नियम है॥ २३॥

अतः प्रहेष्यामि दलं च दिल्ल्यां साम्राज्यरक्षापतितां दधाने।
प्रत्युत्तरं चेन्न लभेऽवधौ तद्युद्धाय यात्रैव विनिश्चिता स्यात्॥२४॥

अतः मैं दिल्ली, साम्राज्यकी रक्षाका स्वामित्व धारण करनेवाले वाइसरायके पास पत्र भेजूँगा। जो अवधि मियाद मैं दूँगा उस समयतक यदि उत्तर मुझे नहीं मिलेगा तो युद्धकेलिए यात्राका ही निश्चय कर दिया जायगा॥ २४॥

पत्रं च यद्वाइसरायहस्ते समर्पणीयं लिखितं बुधेन।
तदाशयोऽधोऽक्षरराशिनैव संवेदितव्यो मतिमद्वरिष्ठैः॥२५॥

श्रीमहात्माजीने वायसरायको भेजनेकेलिए जो पत्र लिखा था उसका आशय विद्वान् लोग नीचेके अक्षरसमूहसे-श्लोकोंसे समझ लें॥ २५॥

꙳ अंग्रेजराज्यं मम सम्मतावस्त्यापत्तिरेका महती प्रपन्ना।
तत्पद्धतिः सर्वविनाशसन्नासमूहनोद्योगपरायणाऽस्ति॥२६॥

मेरी सम्मतिमें अंग्रेजीराज्य एक बड़ी भारी आई हुई आपत्ति है। इस राज्यकी पद्धति, सर्वनाश करनेके लिए सदा उद्योग करती रहती है॥ २६॥

꙳ यहाँसे लेकर ६६ वें श्लोक तक यह पत्र है जो वायसरायके पास २-३-३० को श्रीमहात्माजीने भेजा था।

अनेन राज्येन हि राजकीयदृष्ट्या समस्ता अपि भारतीयाः ।
दासस्थितिं सर्वत एव नीता नित्यं मनस्तेन ममास्ति दूनम् ॥२७॥

राजकीय दृष्टिसे इस राज्यने सभी भारतवासियोंको गुलामकी स्थिति में पहुँचा दिया है। अतः यह वस्तु मेरे मनको अत्यन्त दुःख देती रहती है ॥ २७ ॥

मूलं सदा भारतसंस्कृतीनामुत्खातुमेतद्यतते नितान्तम् ।
प्रजा निरस्त्राः सकला विधाय मानुष्यमस्माकमहन्नतीव ॥२८॥

भारतवर्षकी संस्कृतिकी जड़ खोदनेकेलिए यह राज्य सदा प्रयास करता रहता है। प्रजाओंको निरस्त्र बनाकर हमारी मनुष्यताका भी इस राज्यने वधकर दिया है ॥ २८ ॥

आसीत्समेषामिव मेऽपि याशा प्राप्तुं स्वराज्यं परिपूर्णमेव ।
तथा परं वर्तुलसंसदापि भग्नैव सा त्वद्वचसापि मित्र ! ॥२९॥

सबकी तरह मुझे भी पूर्णस्वराज्य प्राप्त करनेकी जो आशा थी उसे तो गोलमेज़ी परिषद्ने तथा आपके वचनने भी भग्न ही कर दिया है ॥ २९ ॥

वाणिज्यजातस्य विवर्धितस्य श्वेतत्वचां क्वामपि हानिमत्र ।
सोढुं न शक्ताः सितचर्मभाजश्चिन्तास्ति तेषां न हि भारतस्य ॥३०॥

भारतमें जो अङ्गरेजोंका यह व्यापार चल रहा है उसकी हानिको अङ्गरेज नहीं सह सकते। उनको हिन्दुस्तानकी हानिकी तो चिन्ता नहीं है ॥३०॥

प्रवृत्तमन्यायमिमं महान्तं परासितुं शासनभञ्जनादिम् ।
परीक्षितुं शुद्धमुपायमेकं वार्ताऽपि तेऽसह्यतरा प्रवृत्ता ॥३१॥

इस चलते हुए महान् अन्यायको नष्ट करनेकेलिए आज्ञाभंगरूप एक शुद्ध उपायकी परीक्षा करनेकेलिए चर्चा भी आपको अत्यन्त असह्य हो जाती है ॥ ३१ ॥

सत्याग्रहेत्यक्षरराशिमीपच्छ्रुत्वैव संप्रार्थयसे धनाढ्यान्।
साहाय्यमाराक्कुरुत व्यवस्थारक्षार्थमित्यादिवचश्चयेन ॥३२॥

सत्याग्रह शब्दको सुनते ही आप धनिकों की प्रार्थना करने लग जाते हैं कि कायदे-कानूनकी रक्षाकेलिए शीघ्र ही तुम लोग मेरी मदद करो॥ ३२॥

परन्तु यां त्वं मनुषे व्यवस्थां सैवाद्य देशस्य तु भारतस्य।
करोति सम्पेषणमिङ्गलैण्डस्वार्थाधिसिद्ध्या अतिदुष्टरूपा ॥३३॥

परन्तु आप जिसे क़ायदे कानून कहते हैं वही तो दुष्ट, आज इगलैंडकी स्वार्थसिद्धिकेलिए भारतको पीस रहा है॥३३॥

महाश्रमेणापि भवेत्स्वतन्त्रं चेद्भारतं हन्त तथापि तत्स्यात्।
राज्यस्य नीत्या परिशुष्ककायं प्रतिक्रिया चेन्न भवेदिदानीम् ॥३४॥

यदि इस समय प्रतीकार न किया जाय तो, यदि महान् श्रम करनेपर भारत स्वतन्त्र हो जाय तो भी राज्यकी नीतिसे वह निर्माल्य अवश्य बन जायगा॥ ३४॥

विचार्य चैतन्निखिलं प्रजाभ्यः स्वतन्त्रतायाः परिशुद्धमर्थम्।
यते सदा शिक्षयितुं बहुभ्यः कालेभ्य एवाहमतिश्रमेण ॥३५॥

यह सब विचार करके, स्वतन्त्रताके शुद्ध-सत्य अर्थको प्रजाको सिखानेके लिये, बहुत दिनोंसे, परिश्रमके साथ, मैं यत्न करता रहता हूँ॥ ३५॥

राज्येन या पद्धतिराश्रिता भूशुल्कं महीतुं परितो विनिन्द्या।
प्रजाऽसुसंशोषपटुश्च साशु समूलनाशं नितरां प्रणाश्या ॥३६॥

जमीनके महसूल ग्रहण करनेकी राज्यने जिस निन्दनीय पद्धतिका आश्रय लिया है वह प्रजाके प्राणको चूसनेमें समर्थ है। अतः शीघ्र ही वह जिस प्रकारसे निर्बीज हो सके उस प्रकारसे, उसका नाश करना चाहिये॥ ३६॥

नित्योपयोज्येषु परं प्रधानं क्षारं समेषामिति निर्विवादम्।
निस्स्वप्रजाभिर्बहुलं प्रयोज्यं तच्छुल्कभारो व्यथकोऽस्ति तासाम्॥३७॥

यह बात निर्विवाद है कि सबके नित्यके उपयोग आनेवाली चीजों-मेंसे नमक मुख्य चीज है। ग़रीब प्रजा उसका अधिक उपयोग करती है। और निश्चय ही इसके टैक्सका भार उन ग़रीब प्रजाओंके लिए दुःखद है॥ ३७॥

अनामयं सर्वजनातिकाम्यं शीलं च यन्नाशयति प्रजानाम्।
तन्मादकं द्रव्यमनारतं ही प्रचारितं स्वायविवृद्धिलोभात्॥३८॥

जो मादकद्रव्य–शराब, बीड़ी आदि वस्तुएँ सबकेलिये अति-वाञ्छनीय आरोग्य और, प्रजाकी नीतिका नाश करती हैं उनका भी, अपनी आयको बढ़ानेके लोभसे, हमेशा प्रचार किया गया है। यह आश्चर्य है॥ ३८॥

लब्धप्रतिष्ठं ननु भारतीयप्रजासु कर्पासजसूत्रचक्रम्।
प्रजाभ्य आच्छिद्य विनिर्मितास्ता दारिद्र्यदुःखाय सितासृतन्त्रैः॥३९॥

पहिले हिन्दुस्तानियोंमें चर्खेकी प्रतिष्ठा थी। इस राज्यने उसे प्रजासे छीनकर, प्रजाको दरिद्रताका दुःख भोगनेकेलिए छोड़ दिया॥ ३९॥

ऋणं च राज्येन धृतं मदधद्देशाधिरक्षामिषतोऽप्यसह्यम्।
न्याय्यं कियत्तत्र कियच्च दूरं न्याय्यादिति न्याय इहास्त्यपेक्ष्य॥४०॥

हिन्दुस्तानकी रक्षाके बहानेसे सरकारने जो बड़ा भारी क्षत एव असह्य ऋण लिया है वहाँ भी न्यायकी अपेक्षा है कि उस ऋणमें कितना उचित है और कितना अनुचित॥ ४०॥

शतानि सप्त प्रतिमासरं ही मुद्राः प्रदेशास्तव वेतनाय।
दीनप्रजाभ्यः परिगृह्य नितान्तमेवं व्ययाधिक्यमनीतिपूर्णम्॥४१॥

७०० रुपये दीन ग़रीब प्रजासे प्रेत्तर आपको आपकी तनख्वाहके देने पड़ते हैं। इतना बड़ा खर्च अन्यायपूर्ण है॥ ४१॥

न पारतन्त्र्यव्यथया प्रदूना हैन्दाः समर्थाः परिवर्तनाय ।
साम्राज्यतन्त्रस्य कदाचनेति प्रायेण सर्वैरवबुद्धमेतत् ॥४२॥

परतन्त्रता की पीड़ासे पीड़ित भारतीय राज्यतन्त्रके बदलनेमें कभी भी समर्थ नहीं हैं, इस सत्य वस्तु को प्राय: सभी जानते हैं ॥ ४२ ॥

कृते विरोधेऽपि धनापहारं विलुण्ठनं चापि न भारतस्य ।
त्यक्तुं समिच्छन्ति सितत्वचस्ते धनार्जनालोभपरीतचित्ताः ॥४३॥

जो अंग्रेज भारतके धनको अपहरण करनेमें प्रवृत्त हुए हैं वह मुझे मालूम होता है कि लोभके बढ़ जानेसे ही, मना करनेपर भी–रोकनेपर भी, लूटना बन्द नहीं करते हैं ॥ ४३ ॥

तद्भारतीयप्रकृतीर्विपद्भ्यो न चेत्समुद्धारयितुं प्रयत्नः ।
कृतो भवेत्तेन तु तद्विनाशकालोऽयमग्रे भ्रमतीव तात ॥४४॥

अतः यदि भारतीय प्रजाका दुःखमेंसे उद्धार करनेकेलिए प्रयत्न न किया जाय तो भाई ! उसके नाशका समय सामने ही उपस्थित है॥४४॥

न प्रार्थना दैन्यनिदर्शनं नो वाचां विलासो न दधाति शक्तिम् ।
अन्यायवृद्धेः परिरोधनेऽतो युद्धावकाशो हठतः प्रवृत्तः ॥४५॥

इस अन्यायकी वृद्धिको रोकनेमें प्रार्थना या दीनताका प्रदर्शन करना या दलील समर्थ नहीं है। अतः अगत्या युद्धकी बात करनी पड़ती है ॥ ४५ ॥

श्वेताङ्गिनां स्वार्थविमोहितानामनीतिकार्यप्रतिरोधनाय ।
जागर्ति हिंसा प्रबला च शक्तिर्देशे त्वया साऽविदिता न चास्ति॥४६॥

स्वार्थी अंग्रेजोंके अन्यायका निरोध करनेकेलिये देशमें हिंसा शक्ति विद्यमान है, यह आपसे छिपा हुआ नहीं है ॥ ४६ ॥

तद्धिंसकानामथ मे समानं ध्येयं ततो नात्र विवादभूमिः ।
तदर्पिता मुक्तिरलं न पश्येत्येतद्विरोधावसरः परं मे ॥४७॥

उन हिंसकोंका और मेरा ध्येय समान ही है, इसमें तो विवाद ही नहीं है। परन्तु हिंसकोंकी दी हुई स्वतन्त्रता अत्यन्त हितकारक नहीं होगी, सिर्फ इसलिये मैं उनका विरोध करता हूँ ॥ ४७ ॥

जाने बहूनां मनसि प्रबुद्धां देशव्यथानाशसमुत्सुकानाम्।
यूनां विशुद्धे नितरामहिंसाऽवमानना तेन न मेऽस्ति चित्रम् ॥४८॥

भारतकी व्यथाके नाशकेलिये उत्साही बहुतसे नौजवानोंके पवित्र मनमें अहिंसाके प्रति अपमान बुद्धि है, इसे मैं खूब जानता हूँ; परन्तु इससे मुझे आश्चर्य नहीं होता है ॥ ४८ ॥

अहिंसया साधयितुं च शक्यं तद्यन्न साध्यं जनहिंसयाऽद्य।
इति प्रतीतिं प्रतिवासरं मे श्रद्धाऽतिवृद्धिं नयतीति मन्ये ॥४९॥

"जो काम आज हिंसासे नहीं हो सकता है उसे अहिंसा अवश्य कर सकती है' मेरी श्रद्धा प्रतिदिन इस विश्वासको बढा रही है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ४९ ॥

न जानता कस्यचनापि जन्तोर्निर्मन्थनं कर्तुमिहास्ति शक्यम्।
मया पुनः किं नरहिंसनाय प्रवृत्तिरिष्टाऽस्तु विजानतो मे ॥५०॥

जानबूझकर मेरेलिये किसी जन्तुकी भी हिंसा करना शक्य नहीं है तो जानते हुए ही, मनुष्यकी हिंसाकेलिए प्रवृत्तिको मैं स्वीकार कैसे कर सकता हूँ ? ॥ ५० ॥

निर्धारितं तेन मया स्वशस्त्रमहिंसनं नाम महाहवेऽस्मिन्।
प्रयोक्तुमस्मात्प्रतिघातनं स्याद्रुद्धं नराणामिति नास्ति शङ्का ॥५१॥

अतः मैं इस भविष्यमें होनेवाली लडाईमें अहिंसारूप अस्त्रका प्रयोग करना ही अपनेलिये निश्चय किया है। इससे मनुष्योंकी हिंसा रुक जायगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥

यावद्ध हस्ते मम सर्वजीवकल्याणसिद्ध्यै विदितं महास्त्रम्।
विद्येत तावद्यदि मौनिता मे पापाय सा स्यादिति निश्चयो मे ॥५२॥

जबतक मेरे हाथमें सर्व जीवोंके कल्याणको सिद्ध करनेकेलिये प्रख्यात अस्त्र मौजूद है तबतक यदि मैं मौन रहूँ तो मुझे निश्चय है कि मुझे पाप लगेगा ॥ ५२ ॥

तद्वयञ्जनाय प्रथमं कृतः स्याद्याज्ञाविभङ्गो विनयेन राज्ञः ।
मया मदीयाश्रमवासिभिश्चधर्मं पुरस्कृत्य तु मानवीयम् ॥५३॥

उस अहिंसा—अस्त्रको प्रकट करनेकेलिये सर्कारकी आज्ञाका, मैं और मेरे आश्रमके निवासी, मनुष्यधर्मके साथ, भङ्ग करेंगे ॥ ५३ ॥

अतः परं ये निजजन्मभूमिभक्ता मदीयान्नियमान्समस्तान् ।
अङ्गीकरिष्यन्ति च तेऽपि तस्मिन्युद्धे भविष्यन्तिसुखं निविष्टाः ॥५४॥

इसके पश्चात् जो कोई भी स्वदेशभक्त मेरे सब नियमोंको स्वीकार करेंगे वह भी उस लड़ाईमें भर्ती होंगे ॥ ५४ ॥

यद्यप्यहिंसात्मकयुद्धयुद्धआरम्भणे साहसमुग्रमेव ।
तथापि नैतद्विधसाहसेन विना कदाचिद्विजयेत सत्यम् ॥५५॥

यद्यपि अहिंसात्मक, युद्ध, युद्धके आरम्भ करनेमें बड़ा भयङ्कर साहस है तथापि इस प्रकारके साहसके विना कभी सत्यका विजय नहीं होता है ॥ ५५ ॥

महाप्रजास्त्वतिमनोज्ञकीर्तीरतीव संस्कारितया जगत्याम् ।
ख्यातिं गताः सर्वमहत्तरा यास्ता भारतीयप्रकृतीरुदाराः ॥५६॥
ये स्वार्थसिद्ध्यै व्यथयन्ति नित्यमनाद्रियन्ते च पदे पदे ताः ।
तेषां मनः शोधयितुं विगाढं सर्वं भयं साहसमप्यलर्थम् ॥५७॥

जो प्रजा अत्यन्त उत्कृष्ट और मनोहर कीर्तिवाली है, अपनी संस्कारितासे जगत्में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है और जो सबसे बड़ी प्रजा है उस उदार भारतीय प्रजाको जो प्रजा अपने स्वार्थोंकी सिद्धिकेलिये हमेशा हैरान करती है और पग पगपर उसका अनादर करती है उस

प्रजाके मनको शुद्ध करनेकेलिये सब भय और महान् साहसका अवलम्ब करना ही चाहिये ॥५६-५७॥

न कामयेऽहं सितदेहभाजां क्षतिं कदाचित्समुपात्तहिंसः ।
सदैव हैन्दानिव तानपीच्छा सदादरान्मे परिषेवितुं स्यात् ॥५८॥

मैं अहिंसक हूँ अतः अंग्रेजोंकी हानि कभी नहीं चाहता हूँ। सदा ही हिन्दुस्तानियोंके समान ही उनकी भी सेवाकरनेकी इच्छा मेरे मनमें रहा ही करती है ॥ ५८ ॥

शस्त्रस्य यस्याभ्यवकर्षणं मत्प्रेष्ठेषु सम्बन्धिषु चाप्यकार्षम् ।
तदेव चाङ्ग्लेष्वपि वीतशङ्कः प्रयुक्तवांस्तद्धितकामतोऽहम् ॥५९॥

अपने परमप्रिय सम्बन्धियोंके सामने भी मैंने जिस हथियारको खींचा है वही हथियार निश्शङ्क होकर, अंग्रेजोंके सामने भी, उन्हींकी भलाईकेलिये मैंने चलाया है ॥ ५९ ॥

प्रजाः समस्ताः खलु भारतीया अस्मिन्रणे मे सहयोगदानात् ।
अभिद्रुतं क्रूरतरं मनोऽपि विधातुमीशा न भजेऽत्र शङ्काम् ॥६०॥

इस युद्धमें समस्त भारतीय प्रजा मेरा सहयोग देगी और उससे अत्यन्त क्रूर मनको भी पिघलानेमें समर्थ बनेगी, इसमें मैं शङ्का नहीं करता हूँ ॥ ६० ॥

सत्याग्रहोऽसावनुशासनानां भङ्गेन राज्यानयवत्प्रवृत्तीः ।
दूरीकरिष्यत्यखिला अवश्यमित्येवमाशा बलिनी मदीया ॥६१॥

यह सत्याग्रहयुद्ध, कानून तोड़नेके द्वारा, सरकारके अन्यायपूर्ण सर्व प्रवृत्तियोंको अवश्य दूर करेगा, यह मेरी बलवती आशा है ॥ ६१ ॥

त्वामादरेणैव सखेऽहमद्य ब्रवीमि तत्त्वं शृणु तावकानाम् ।
कृता अनीतीर्महतीर्जनानां भवापनेतुं मतिमान्सुसज्ज ॥६२॥

मित्र ! मैं आदरके साथ ही आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप

अपने आदमियोंके द्वारा किये गये अन्यायोंको स्वीकार कर लीजिये और उन्हें दूर करनेकेलिये तैयार होइये ॥ ६२ ॥

वाचो मदीया अपमानिताश्चेत्त्वयाभ्युपायो न च वीक्षितश्चेत् ।
सत्याग्रहास्त्रं निशितं गृहीत्वा युद्धाय दाँडीं व्रजितास्मि योधैः ॥६३॥

यदि यह मेरी बात ठुकरा दी जायगी और कोई सुन्दर उपाय आपकी ओरसे विचारा नहीं जायगा तो मैं तीक्ष्ण सत्याग्रह अस्त्रको लेकर युद्ध करनेकेलिये अपने सैनिकोंके साथ दाँडी जाऊँगा ॥ ६३ ॥

अन्याय्यमेतल्लवणस्य राजस्वं मे महद्दीनदशा विभाति ।
तस्माद्रणारम्भणमस्य भङ्गैः करिष्यते भारतरक्षणाय ॥६४॥

नमककरा जो यह अन्याययुक्त टैक्स है वह गरीबोंकी दृष्टिसे मुझे बहुत बड़ा प्रतीत हो रहा है। अतः भारतकी रक्षाकेलिये मैं इस सत्याग्रहयुद्धका आरम्भ नमककानून तोड़नेसे ही करूँगा ॥ ६४ ॥

सदाश्रमस्यैव निवासिसभ्यानादाय सर्वान्समरे प्रवीरान् ।
ध्मास्यामि शंखं भुवमम्बरं च निनादयन्मातृधराहिताय ॥६५॥

मातृभूमिके हितकेलिये मैं, अपने आश्रमके निवासी सभ्य वीरोंको ही लेकर, समरभूमिमें भूमि और आकाशको गुँजाता हुआ शंख बजाऊँगा ॥ ६५ ॥

* निगृह्य मां त्वं यदि बन्धपस्त्वे बन्दीकरिष्यस्यथ नास्ति चिन्ता ।
लक्षाधिका भारतभूमिपुत्राः सम्पादयिष्यन्ति मदिष्टसिद्धिम् ॥६६॥

यदि आप मुझे पकड़कर जेलमें बन्द करेंगे तो भी चिन्ता नहीं है। लाखों भारतके लाल मेरी इच्छाको पूर्ण करेंगे ॥ ६६

* यहाँतक श्री महात्माजीका वह पत्र है जिसे उन्होंने वाइसराय के पास भेजा था। जहाँतक हो सका है प्रायः सभी मुख्य विषय उस पत्रमेंसे ले लिये गये हैं।

एकेन यूनाङ्गलभुवः सुतेन स्वीकुर्वता धर्म्यमिदं हि युद्धम् ।
ईशप्रदत्तेन सहैतदात्मदलं त्वयि प्रेष्यत आत्मनीनम् ॥६७॥

इस युद्ध को धर्म युद्ध स्वीकार करने वाले इस नवयुवक अंग्रेज के साथ, जिसे कि ईश्वर ने मेरे पास भेजा है, मेरा यह पत्र आप के पास भेजता हूँ ॥ ६७ ॥

तदायुवानं स च रेजिनल्डरेनोल्ड्‌समाहूय मनःपवित्रम् ।
प्रदाय तस्मै दलमेतदाशु सम्प्रैषयद्वाइसरायपार्श्वे ॥६८॥

श्रीमहात्माजीने ✢ श्रीरेजिनल्ड रेनोल्ड्‌ज नामवाले एक पूतात्मा युवाको बुलाकर, उसे यह पत्र सौंपकर वाइसरायके पास भेजा ॥ ६८ ॥

ख्रिस्ताब्दके पत्रमिदं खकालग्रहेश्वरे तेन च मार्चमासे ।
तिथौ तृतीये नरपालप्रतीर्विन्येकात्मना प्रैष्यत युद्धवर्णम् ॥६९॥

ई० सन् १९३० के मार्चकी तीसरी तारीखमें श्रीमहात्माजीने राजाके प्रतिनिधि ईर्विनके पास युद्धवर्णन करनेवाले अपने पत्रको भेजा ॥ ६९ ॥

❀ अथ विदितविभावः प्रेष्य त्वारं तु दिल्ल्यां
समुपगतजनांस्तानाश्रमस्थान्विसृज्य ।

✢श्रीरेजिनल्ड रेनोल्ड्‌ज यह एक अंग्रेज नवयुवक है। शायद इसे दीनबन्धु श्री एन्ड्रूजसाहेबने ही श्री महात्माजीके पास भेजा था। इस नवयुवकके बारेमें श्रीमहात्माजीने इसी पत्रमें वाइसरायको लिखा था कि "इस पत्रको मैं एक अंग्रेज युवकके द्वारा आपके पास पहुँचानेका खास मार्ग लेता हूँ। यह नौजवान इस भारतीय युद्धको न्यायसंगत मानता है। अहिंसामें इसकी पूर्णश्रद्धा है। मानो ईश्वरने ही इसे मेरे पास भेजा हो।

❀ मालिनी छंद।

व्यथितजनिधरायाभारहारप्रयाणे
व्यवसितधिषणान्स स्वास्थ्यमीषत्प्रपेदे ॥७०॥

इति सर्वतन्त्रस्वतंत्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते एकादशः सर्गः

दिल्लीकेलिये अपने दूतको बिदाकरके, और अपनी मातृभूमिके भारको हरण करनेकेलिये प्रयाण करनेमें जिनकी बुद्धि लगी हुई थी उन आये हुए आश्रमवासियों को भी बिदाकरके प्रसिद्धप्रभाववाले श्रीमहात्माजीने थोड़ीसी शान्ति प्राप्त की ॥७०॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते एकादशः सर्गः



❀ द्वादशः सर्गः

गते च सन्देशहरे सपद्ये दिल्लीं महात्मा सहसा व्यजानात् ।
श्रीवल्लभ राजनरैर्गृहीतं बन्दीकृतं रासपुरे पवित्रे ॥१॥

जब रेजिनल्ड रेनोल्ड्ज पत्र लेकर दिल्ली वाइसरायके पास गये उसी समय श्रीमहात्माजीको मालूम हुआ कि पवित्र रास गाँवमें पुलिसने श्रीवल्लभभाईको पकड़ लिया है ॥ १ ॥

स्वीकार एषोऽस्ति विघोषितस्य मया रणस्येति सता वरिष्ठः ।
मेने महात्मा मुदितान्तरात्मा सर्वाभिसारः कृतवांस्तदाऽसौ ॥२॥

श्रीमहात्माजीने यह समझ लिया कि उन्होंने जिस युद्धकी घोषणा की है, श्रीवल्लभभाई को पकड़कर, सर्कारने उसे स्वीकार कर लिया है। इससे श्रीमहात्माजी बहुत + प्रसन्न हुए। उन्होंने सबको एकत्रित किया ॥ २ ॥

मार्चस्य मासस्य तिथौ पवित्र एकादशे भारतरक्षणाय ।
उपक्रमः सम्भविताऽऽहवस्येत्यसावगत्या प्रकटीचकार ॥३॥

श्रीमहात्माजीने लाचार होकर यह प्रकट कर दिया कि मार्च मासकी ११ वीं तारीखके दिन इस युद्धका आरम्भ होगा ॥३॥

परस्सहस्रा अवगत्य वार्तामितां जना साभ्रमतीतटिन्या ।
उपस्थिता पूर्वदिनेऽधिसन्ध्य तटयां यतेर्दर्शनमाप्तुकामा ॥४॥

इस समाचारको सुनकर १० वीं तारीखको ही सायंकाल श्रीमहात्माजी

❀ इस सर्गमें उपजाति छन्द है।

+ प्रसन्न इसलिए हुए कि अहिंसा धर्मके प्रचारका उनको अवसर मिला।

का—दर्शन करनेकेलिए साबरमती नदी के तटपर हजारों आदमी एकत्रित हुए ॥ ४ ॥

राज्यस्य दुष्टामभितः प्रसिद्धां नीतिं विचार्यापि महात्मनस्ते ।
दार्ढ्यं च सत्याग्रहिणः स्ववाचि तदन्तिमं दर्शनमित्यजानन् ॥५॥

दर्शनकेलिये आनेवाले लोगोंने, सर्कारकी प्रसिद्ध दुष्टनीतिको विचारकर, इस दर्शनको आखिरी दर्शन समझा ॥ ५ ॥

क्रूरेण राज्येन भवेदयं चेद्बन्दीकृतः सर्वविमोक्षहेतुः ।
सुदुर्लभं पावनदर्शनं स्यादस्येति मत्वा जनता व्यधावत् ॥६॥

यदि यह निर्दय सर्कार, सबको मोक्ष दिलानेवाले इन महात्माजीको क़ैद कर ले तब इनका पवित्र दर्शन ही दुर्लभ हो जायगा, ऐसा समझ कर जनता (आश्रमकी ओर) दौड़ी ॥ ६ ॥

वार्धक्यमेतत्क च तस्य चैष क शासनानामसतां विभङ्गः ।
सह्या भवेयुः कथमापदस्ता इत्यार्तचित्ता जनता बभूव ॥७॥

कहाँ तो यह बुढापा और कहाँ दुष्ट क़ानूनोंका भङ्ग ! यह आपत्ति महात्माजीको कैसे सही जायगी, यह विचारकर सब दुःखी हो गये ॥ ७ ॥

* सद्यः परित्यज्य स मृत्युशय्यां कथंकथंचिद्भुवि पादपद्मे ।
समार्पिपत्तत्स कथं सहेत दुर्यातना बन्धनिकेतनस्य ॥८॥

अभी ही तो किसी किसी तरहसे मृत्युशय्यासे उठकर श्रीमहात्माजीने जमीनपर पैर रखे हैं। वह जेलके कष्टोंको कैसे सहन करेंगे ? ॥ ८ ॥

कदाचिदेष प्रसरत्प्रतापोऽसहिष्णुताक्ष्वेडविमूर्छितेन ।
दुःशासनेनेह गृहीत एव मोक्षाध्वनः स्यादुपदेशकः कः ॥९॥

---

* यहाँसे १५ वें श्लोक तक लोगोंके भिन्न भिन्न तर्क और विचारोंका वर्णन है।

असहिष्णुता–अदेखाई = ईर्ष्यारूप विषसे मूर्छित इस दुष्ट सर्कारने यदि महान् प्रतापी श्री महात्माजीको गिरफ्तार कर लिया तो अब मोक्षमार्गका उपदेश कौन करेगा ! ॥ ९ ॥

महात्मना तेन मनोबलेन श्रद्धाबलेनापि निबन्धदुःखम् ।
सोढव्यमेतन्निखिलं क्षणेन भविष्यतीत्येव च केचिदूचुः ॥१०॥

किन्हींने तो यह कहा कि श्री महात्माजी अपने मनोबलसे और श्रद्धाबलसे जेलके समस्त दुःखोंको क्षणेन = उत्साहके साथ सहन कर लेंगे ॥ १० ॥

ज्ञात्वैव यद्दुःखमुपार्जितं स्यात्कथं च दुःखाय भवेत्तदद्धा ।
समीहितं कण्ठविकर्तनं चेद्दुःखाय न स्यात्तदपीति सत्यम् ॥११॥

जान करके जो दुःख उठाया जाता है वह दुःखदायी कैसे हो सकता है ? यदि किसीको अपना गला कटवाना इष्ट हो तो गला कटने पर भी उसे दुःख नहीं हो सकता, यह सत्य वार्ता है ॥ ११ ॥

वार्धक्यमेतस्य समीक्ष्य राज्यं बन्धं समीहिष्यत एव नास्य ।
केचिद्दयार्द्रान्तरवृत्तिभाजः सश्रद्धमेतां गिरमाद्रन्त ॥१२॥

श्री महात्माजीके बुढ़ापेको देखकर सर्कार इनको क़ैद नहीं करेगी । इस प्रकारसे भी कुछ दयालुजन श्रद्धाके साथ बात कर रहे थे ॥ १२ ॥

आजन्म येनास्य दुरर्थकस्य राज्यस्य सेवा समपादि तस्य ।
तत्केन तन्निग्रहणं विधाय कृतघ्नतादोषमुपाददीत ॥१३॥

यहाँसे १२ वें श्लोकका सम्बन्ध १६ वें श्लोकके "एवं वदंस्तत्र" के साथ है । कुछ लोग कहते थे कि—जिन श्रीमहात्माजीने जिन्दगीभर इस दुष्ट सर्कारकी सेवा की है वह सर्कार उनको गिरफ्तार करके कृतघ्नता-का दोष कैसे ले सकती है ? ॥ १३ ॥

स्वार्थान्धवृत्तिमयथार्थचिताना प्राणार्पणेनापि विपत्पदेऽपि ।
महोपकारोऽपि कृतश्च केचिन्मनःप्रसादाय न धोभयीवि ॥१४॥

स्वार्थसे अन्धी बनी हुई वृत्तियोंके समूहसे जो पूजित हैं अर्थात् जो स्वार्थसे अन्धे हो रहे हैं उनकी विपत्तिमें भी, प्राण अर्पण करके भी कुछ उपकार कोई करे तो, वह भी उन स्वार्थान्धोंको प्रसन्न नहीं कर सकता–कुछ लोग इस प्रकारसे बात कर रहे थे ॥ १४ ॥

राज्यं यदीदं सुमहोपकारांस्तेनाऽऽहितान्स्वस्मृतितो निरस्य ।
तं निग्रहीष्यत्यथ भारतीयास्तन्मार्गगाः स्युर्हि परस्सहस्राः ॥१५॥

श्रीमहात्माजीके किये हुए उपकारोंको स्मृतिमेंसे दूर करके=भुलाकर, यदि यह सर्कार उनको पकड लेगी तो हजारों आदमी श्रीमहात्माजीका अनुगमन करेंगे अर्थात् अपनेको पकड़ावेंगे–कोई इस तरहसे बोल रहे थे ॥ १५ ॥

एवं वदंस्तत्र सुधीसमाजः समाजगामाश्रमभूमिभागम् ।
शान्तः सचिन्तः सततार्तचित्त उपाविशद्भावितदीनभावः ॥१६॥

इस प्रकारसे (८ वें श्लोकसे १५ वें श्लोक तक) बोलते हुए समझदार लोग श्रीमहात्माजीके आश्रममें गये। जानेवाले सभी शान्त थे, चिन्तित थे, दुःखित हृदयवाले थे और दीन हो रहे थे। सब वहाँ बैठे ॥ १६ ॥

सम्बोध्य नारीश्च नरांश्च सर्वाञ्श्रीमान्महात्मोपदिदेश सायम्।
उपासनासद्मनि शान्तमूर्तिरुपासितश्रीभगवांस्तदानीम् ॥१७॥

सायङ्काल उपासनाभवनमें भगवान्की उपासना करके शान्तमूर्ति श्रीमान् महात्माजीने उस समय सभी स्त्रियों और पुरुषोंको सम्बोधन करके उपदेश दिया ॥ १७ ॥

विचारितं किं जगदीश्वरेण किं शासनेनाथ मदर्थमद्य ।
कस्तद्विजानातु परस्य वस्तु विचारितं वेद्मि मया स्वयं तु ॥१८॥

भगवान्ने और सरकारने आज मेरे लिये क्या विचार किया है, इसको कौन जाने ! यह तो परायी वस्तु है। परन्तु मैंने स्वयं जो विचार किया है उसे मैं जानता हूँ ॥ १८ ॥

सम्भाव्यते त्वेतदपि प्रभाते राज्ञो नियोगान्मम निग्रहः स्यात् ।
अनुग्रहो वा गमनाय सेव्यो भवेच्च राज्येन मयि प्रणुत्यः ॥१९॥

यह भी संभव है कि प्रातःकाल सर्कार मुझे पकड़ ले। यह भी सम्भव है कि सर्कार जाने देनेकेलिये मुझपर प्रशंसनीय = दया करे ॥ १९ ॥

त्यक्तेश्वरत्रासमथाङ्गलराज्यं यदृच्छयैवाचरतात्परन्तु ।
स्यादन्तिमं भाषणमेतदेव तीरे तटिन्या इह साभ्रमत्याः ॥२०॥

ईश्वरसे न डरनेवाला यह अंग्रेजी राज्य अपनी इच्छाके अनुसार जो करना हो करे—चाहे मुझे पकड़ ले और चाहे जाने दे—परन्तु यह तो निश्चय है कि साबरमती नदीके इस किनारेपर यह अन्तिम भाषण है ॥ २० ॥

आजन्मकाराभवनाधिवासदण्डेन दण्ड्यो यदि वा भवेयम् ।
तदाऽस्तु मद्भाषणमेतदेव नातः परं मे वचसां प्रसारः ॥२१॥

अथवा मुझे आजन्म कारावासकी सज़ा मिलेगी तब तो यही मेरा (मेरे जीवनमें) अन्तिम भाषण होगा। इसके बाद मेरी वाणीका प्रसार बन्द हो जायेगा ॥ २१ ॥

अहं तथैते सहयायिनो मे नीता यदि स्याम निरोधशालाम् ।
तथापि दाँडीगमनक्रमोऽयं भजेदखण्डत्वमिति स्पृहा मे ॥२२॥

और यदि मैं और मेरे यह सभी साथी जेलमें भेज दिये जायँ तो भी मेरी इच्छा यह है कि दाडी कूच बन्द न रहे ॥२२॥

क्रमेण सर्वे यदि बन्दिशालां नीता भवेयुर्न हि कापि चिन्ता ।
प्रपीडितानामथ पीडकानां शक्तेः प्रमाणं परिकल्पितं स्यात् ॥२३॥

क्रमसे यदि सभी (सत्याग्रही) जेलमें भेज दिये जायँ तो भी कोई चिन्ता नहीं है। हैरान किये गये हुओंकी और हैरान करनेवालोंकी शक्तिका माप हो जायगा ॥ २३ ॥

कुर्यादकर्तव्यमधर्मशालि सुयोधनेऽस्मिन्न कदापि कोपि ।
सन्देश एष प्रतिमानवं मे व्याप्नोत्वशेषां शिवभारतोर्वीम् ॥२४॥

इस युद्धमें कभी कोई अधर्मयुक्त अ-कर्तव्य न करे । यह मेरा सन्देश समस्त भारतमें प्रतिमनुष्यके पास पहुँचे ॥ २४ ॥

गते च कारां मयि बन्धवो मे महासभां तामनुयात यूयम् ।
यथाकथंचिज्जनिभूमिरक्षा कार्येति युष्माकमभीप्सितं स्यात् ॥२५॥

भाइयो ! मेरे जेल चलेजानेपर तुम सब लोग राष्ट्रिय महासभा—काँग्रेसकी आज्ञाके अनुसार काम करना । "जिस किसी प्रकारसे भी भारतभूमिकी रक्षा करनी चाहिये" इतना ही तुम्हारा मनोरथ होना चाहिये ॥ २५ ॥

निर्माय विक्रीय च लावणानि सिन्धोस्तटान्वा परितः स्थितानि ।
करं विना तानि सुखं गृहीत्वा राज्यस्य शिष्टिः परिभाविता स्यात् ॥२६॥

नमक बनाकर और बेंचकर अथवा समुद्रके किनारे ढेरके ढेर पड़े हुए नमकको टैक्सके विनाही लेकर सरकारकी आज्ञाका अपमान कराया या किया जा सकता है ॥ २६ ॥

राज्यानुशिष्टेरवमाननार्थं सर्वाञ्जनानाज्ञपयामि नम्रः ।
भङ्गोऽत्र शान्तेर्न कदापि कार्यः सत्यं सदा प्राणपणेन रक्ष्यम् ॥२७॥

सरकारी आज्ञाका अपमान करनेकेलिये अवश्य ही मैं सब किसीको आज्ञा देता हूं । परन्तु शान्तिका भङ्ग तो कभी भी नहीं करना चाहिये । तथा सत्यकी रक्षा प्राणकी होड़ लगाकर भी करनी चाहिये ॥ २७ ॥

महासभानेतृगणाज्ञयैव सर्वं विधेयं मयि संनिबद्धे ।
दृढप्रतिज्ञस्य जनस्य कस्याप्याज्ञानुकूलं व्यवहार्यमार्यम् ॥२८॥

मेरे गिरिफ्तार होनेपर महासभा के नेताओंकी आज्ञाके अनुकूल उचित और उत्तम व्यवहार करना ॥ २८ ॥

आत्मप्रतीतिर्दृढता विरक्तिरितित्रयं स्वात्मनि यो दधीत ।
नेता स एवास्ति समस्तशिष्टगुणाश्रयत्वान्निखिलप्रजानाम् ॥२९॥

आत्मविश्वास, दृढता और वैराग्य यह तीन गुण जिस मनुष्यमें होंगे वही सम्पूर्ण उत्तमगुणोंवाला होनेके कारण समस्त प्रजाका नेता है ॥ २९ ॥

लक्षाधिकस्त्रीपुरुषप्रकाण्डनिकाय आङ्ग्लैस्तु निगृह्यते चेत् ।
श्रेयः समाराधयितुं स्वजन्मभूमेरनेके कुशलाः मिलेयुः ॥३०॥

यदि लाखों स्त्री और पुरुषोंके एक बड़े भारी समुदायको अंग्रेजोंने पकड़ लिया तो मातृभूमिके कल्याणको सिद्धकरनेकेलिये दूसरे अनेक कुशल स्त्रीपुरुष वहाँ जायँगे ॥ ३० ॥

न नायकाः सन्ति गुणावदाता न सत्सहायाः सकलप्रतीताः ।
कार्यं च किं केन यथा कियद्वेत्येषा विधेया न कदापि चिन्ता ॥३१॥

इस तरहकी चिन्ता तुम लोग कभी नहीं करना कि अच्छे अच्छे गुणी नेता नहीं हैं या प्रामाणिक सज्जन सहायक नहीं हैं, अतः क्या करूँ, कैसे करूँ, कितना करूँ ! ॥ ३१ ॥

जवाहिरेऽशेषगुणाधिभूपाविभूषिते यूनि विनायकत्वम् ।
अस्त्येव चान्येष्वपि किन्तिवदानीं नापेक्ष्यते तस्य विचारणापि ॥३२॥

समस्तगुणरूप आभूषणसे भूषित जवान जवाहिरलालमें नेताके सब गुण और धर्म हैं, अन्योंमेंभी हैं परन्तु आज इस विचारकी आवश्यकता ही नहीं है ॥ ३२ ॥

भीतिर्महापापमितिप्रतीतिर्न जातु हेया समरप्रवीरैः ।
मृत्योर्जितायां भियि सर्वकाले स्यादेव सर्वत्र महाञ्जयो वः ॥३३॥

भय सबसे बड़ा पाप है, इस विश्वासको, योद्धाओंको कभी नहीं छोड़ना चाहिये । मृत्युके भयके जीते जानेपर तुम्हारा सदा और सर्वत्र महान् जय होगा ही ॥ ३३ ॥

सम्पादनीयं प्रहरित्वमेव सुरालयं प्राप्य महाघसद्म।
वैदेशिकांश्चैलचयान्सुखेन कृत्वाग्निसाद्भारतमर्चनीयम् ॥३४।

शराबकी दूकानोंपर—जो कि महान् दोषका केन्द्र है—जाकर पिकेटिंग करना चाहिये-धरना देना चाहिये। तथा विदेशीय वस्त्रोंके ढेरके ढेर आगमें फूँककर भारतकी सेवा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

क्रीणीत खादीं परिधत्त खादीं मा दत्त राज्याय करं तदिष्टम्।
ये प्राड्विवाचो विजहत्वजस्रं ते तत्त्वमर्थार्जितरिक्थसंघा ॥३५॥

खादी ही खरीदो और खादी ही पहिनो। सर्कारको सरकारकी मर्जीके अनुसार टैक्स मत दो। जो वकील हैं वह आज तत्त्वम्—वकालत को छोड़ दें। वह बहुत धन इकट्ठा कर चुके हैं ॥ ३५ ॥

नैराश्यराशिं विजहीत नित्यं जहीत राज्यस्य भुजिष्यभावम्।
दास्यं परित्यज्य किमस्तु कार्यमित्येतयाऽलं बहुचिन्तयात्र ॥३६॥

निराशाका त्याग करो। सर्कारी नौकरियोंको छोड दो। नौकरी छोड़कर (जीविकाके लिये) क्या करूँगा यह चिन्ता करना व्यर्थ है ॥ ३६ ॥

लक्षाणि पञ्चैव नरोऽद्य राज्ये नियोजिता सन्ति भृतिप्रदानैः।
अन्येऽधिजीवन्ति यथा तथैव युष्माभिरप्यत्र हि जीवितव्यम् ॥३७॥

राज्यमें लगभग ५ लाख ही आदमी तो वेतन पा रहे हैं। बाकी बचे हुए लोग जिस तरहसे जीते हैं उसी तरहसे तुमको भी जीना चाहिये ॥ ३७ ॥

दास्यस्य दाढ्याय विरोपितानि बीजानि विद्यार्थनिकेतनानाम्।
सुता सुतान्बन्धुजनांश्च तेभ्यस्तस्माद्विनिस्सारयतातिशीघ्रम् ॥३८॥

गुलामीकी मजबूतीके लिये ही भारतवर्षमें सर्कारी स्कूल और कॉलेज बने हुए हैं। अतः अतिशीघ्र उन विद्यालयोंसे लड़कियोंको, लड़कोंको अन्य सम्बन्धियोंको निकाल लो ॥ ३८ ॥

स्वगौरवं यैः समभीप्सितं स्याच्चिन्ताविषाण्यौदरिकाणि जित्वा ।
जिजीविषिष्यन्ति हि ते स्वकीयं प्राणाधिकं गौरवमेव हृद्यम् ॥३९॥

जिन लोगोंको अपना गौरव-मान इष्ट होगा वह लोग पेटसम्बन्धी चिन्ताविषको जीतकर जीनेकी इच्छा करेंगे क्योंकि गौरव, ही प्राणसे भी अधिक प्रिय वस्तु है ॥ ३९ ॥

आस्कन्दनेऽस्मिन्पुरुषा इवस्युः स्त्रियोऽपि बाला अपि दत्तचित्ताः ।
इदं मदीयं न भवेत्कदापि वचोऽन्तिमं विस्मरणीयमर्घ्यम् ॥४०॥

इस यद्धमें पुरुषोंके समान ही स्त्रियाँ और बच्चे भी भाग ले सकते हैं। यह मेरी बात कभी भुलानी नहीं चाहिये; क्योंकि यह मेरी आख़िरी बात है ॥ ४० ॥

जाते प्रभाते प्रधनस्य नूनमुपक्रमोऽस्येह भविष्यतीति ।
विश्वस्य युष्मासु मया कृतस्याऽऽयतौ फलं स्याच्छमदं हि वोऽस्य॥४१॥

प्रातःकाल होनेपर अवश्य ही इस युद्धका यहाँ आरंभ होगा। तुम लोगोंका विश्वास करके मैं जो यह लडाई लडने जा रहा हूं, परिणाममें अवश्य ही तुम लोगोंको शुभ फल प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

अस्यां महासंयति साधनानां ध्येयस्य चाप्यस्ति विशुद्धिरिद्धा ।
साहाय्यमीशोऽपि करिष्यते वो जयश्च तस्मान्नियतो नितान्तम् ॥४२॥

इस महायुद्धमें साधनोंकी और ध्येयकी भी अत्यन्त शुद्धि है। भगवान् भी सहायता करेगा। तुम्हारा विजय तो अत्यन्त निश्चित ही है ॥ ४२ ॥

एतत्त्रयं यत्र कदापि तत्र पराजयो नास्ति महारणेऽपि ।
निर्बन्धना यापि सबन्धना वा जयन्ति सत्याग्रहिणः सदैव ॥४३॥

यह तीनचीजें—साधनशुद्धि, ध्येयशुद्धि और ईश्वरकृपा जहाँ रहेंगी वहीं महायुद्धमें भी—चाहे छूटे रहें और चाहे जेलमें रहें—सत्याग्रहियोंका सदा विजय ही होता है ॥ ४३ ॥

मया यदुक्तं यदि पालितं तद्भवेद्भवेदेव शिवाय वस्तत्।
अतः परं मे जनताहितार्थं किञ्चिन्न वक्तव्यमिहावशिष्टम् ॥४४॥

मैंने जो कुछ कहा है उसका यदि पालन किया जायगा तो तत् = वह पालन तुम लोगोंके कल्याणकेलिये ही होगा। इसके बाद अब मुझे जनताके हितकेलिये कहना कुछ बाकी नहीं है ॥ ४४ ॥

धैर्येण गीष्पतिसमप्रतिभो महात्मा
सर्वानुपस्थितजनानुपदिश्य धर्म्यम्।
कर्तव्यमार्तजनतार्तिहरो विसृज्य
तानाजगाम वसतिं स निजां तदानीम् ॥४५॥

आर्तजनताके दुःखोंको हरनेवाले और बृहस्पतिके समान प्रतिभावाले वह श्रीमहात्माजी धैर्यके साथ उपस्थित उन सब भाइयों और बहिनोंको धर्मयुक्त कर्तव्यका उपदेश देकर, उनको विदा करके अपने निवासस्थानमें आ गये ॥ ४५ ॥

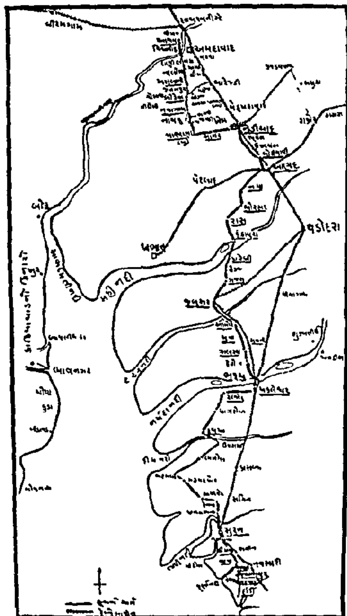
* लोकास्तदन्तिममुखाब्जविलोकनाय
स्पर्शेन तच्चरणयोः स्वकृतार्थतायै।
नद्यास्तटेषु विमलेषु च सैकतेषु
निन्युर्निशामविकलां हरिकीर्तनेन ॥४६॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकश्रीस्वामिभगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
द्वादशः सर्गः

श्रीमहात्माजीके अन्तिम दर्शनकेलिये और उनके चरणोंका स्पर्श करके अपनी कृतार्थताकेलिये, सब लोगोंने वहीं ही साबरमतीके किनारे रेतीमें भजनकीर्तन करते हुए सारी रात बिता दी ॥ ४६ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीभगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते द्वादश सर्ग

* वसन्ततिलका छन्द।



અમદાવાદ
વડોદરા
મહી નદી
ભાવનગર
નર્મદા નદી
સુરત

❀ त्रयोदशः सर्गः

अथ गता रजनी विजनीभवद्यतिवराश्रम एव नृणां सताम् ।
दिवि च भास्करभाः प्रसृताः शनैरुपसृता वसुधावसुधातले ॥१॥

खाली हो जानेवाले सत्याग्रह आश्रममें ही उन सज्जनोंकी रात बीत गयी। आकाशमें और धीरे धीरे अनेक द्रव्योंके धारणकरनेवाली पृथ्वी पर सूर्यकी प्रभा फैल गयी ॥ १ ॥

सुरपतिप्रतिभेन निभेन संज्वलदुषर्बुधकेन महात्मना ।
सुरवनोपम आश्रम एषकोऽस्यचपलेन पलेन विहास्यते ॥२॥

इन्द्रसमान तथा जलते हुए अग्निसमान तेजस्वी दृढव्रत श्रीमहात्माजी नन्दनवनके समान इस आश्रमको एक पलमें ही अब छोड देंगे ॥ २ ॥

इति विचार्य तदार्यहृदालये परमशोकविलोकितभावना ।
समुदिताऽविदितावधिकेऽधिकेरितवियोगविपत्तिदवानले ॥३॥

ऐसा विचारकर, उनश्रेष्ठ जनोंके हृदय मन्दिरमें—जिसमें कि अधिक-उत्पन्न वियोगदु खदावानल पहिलेसे ही सुलग रहा था और कब तक सुलगेगा, ऐसी जिसकी अवधि नहीं थी—परमशोकयुक्त भावना उदय हुई ॥ ३ ॥

अहह यच्चरणार्पणभासिताऽवनिरियं जगतीतलविश्रुता ।
स नितरां परिहाय सतां चरो वरमतामपि तामथ यास्यति ॥४॥

अहो, जिनके चरणार्पणसे यह भूमि सारे जगत्में प्रसिद्ध हो गयी थी वह सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीमहात्माजी, सज्जनोंसे सम्मानित इस भूमिको छोडकर चले जायँगे ! ॥ ४ ॥

❀ इस सर्गमें द्रुतविलम्बित छन्द है ।

कथमयं गदपीडितविग्रहः परहितो रहितो बलशस्त्रकैः ।
युधि समेधितवीर्यसुधासुधायुवसादि प्रहरिष्यति शात्रवम् ॥५॥

बढ़ी हुई वीर्यरूप सुधासे प्राणधारण करनेवाले अर्थात् बलधारण करनेवाले जवान भी जहाँ थक जाते हैं—लाचार हो जाते हैं उसी युद्धमें रोगसे पीडितशरीरवाले तथा सेना और शस्त्रसे रहित यह परोपकारी श्रीमहात्माजी शत्रुओंपर किस रीतिसे प्रहार करेंगे ? ॥ ५ ॥

इति बहुव्यथितान्तरनिर्गलद्वचनसद्वदनप्रतिभाभुजा ।
जनतयोपनतव्यथयाऽऽर्तया कलकलोऽविकलः किल शुश्रुवे ॥६॥

इस प्रकारसे बहुत दुःखित मनसे निकलती हुई वाणीसे उदासमुखकी कान्तिको धारण करनेवाली अर्थात् उदासमुखवाली, आई हुई आपत्तिसे आर्त बनी हुई प्रजाने बहुत स्पष्ट कलकल-शब्दको सुना ॥ ६ ॥

गमनकाल उपस्थित एषको यतिवरो नियतान्निजसैनिकान् ।
उपदिशन्निति तैः सकलैर्जनैरसदृशः कृपणैः परिवीक्षितः ॥७॥

लोगोंने देखा कि गमनकाल उपस्थित होनेपर नियत किये गये हुए अपने सैनिकोंको अनुपम श्रीमहात्माजी इस प्रकारसे उपदेश कर रहे हैंः-॥ ७ ॥

*परिनिपात्य हि वः परतन्त्रतां रणभुवि प्रतिदर्श्य पराक्रमम् ।
मृतिमथाप्य तु यूयमिहाश्रमे प्रभवथागमनाय न चान्यथा ॥८॥

रणभूमिमें अपना पराक्रम दिखाकर, अपनी परतन्त्रताको नष्ट करके ही अथवा मरकरके ही तुम लोग इस आश्रममें आ सकते हो, अन्यरीतिसे नहीं ॥ ८ ॥

युदियमेतु च मासि समापनं शरदि वा शरदां च गणेऽपि वा ।
अवगणय्य न तामथ कोऽपि वः कथमपीह समेष्यति वत्सकाः ॥९॥

* यहाँसे १९ वें श्लोकतक उसी उपदेशका वर्णन है ।

हे वत्सक=मेरे अत्यन्त प्रिय बच्चो ! यह लडाई चाहे एक महीनेमें समाप्त हो, चाहे एक वर्षमें समाप्त हो और चाहे वर्षके वर्ष लग जायँ परन्तु इस लडाईको छोडकर तुममेंसे कोई भी किसी रीतिसे भी इस आश्रममें नहीं आवेगा ॥ ९ ॥

अधिगृहं वसतां स्वकुटुम्बिनां विपदुदेतु मृतिर्वरमेतु वा ।
भवतु वा भवनं दहनाशितं न हि परागमनं भविताऽत्र वः ॥१०॥

घरमें रहनेवाले अपने कुटुम्बी चाहे दुःखी हों और चाहे भले मर जायँ और घर भी चाहे आगसे भस्म हो जाय लेकिन तुम्हें पीछे नहीं लौटना होगा ॥ १० ॥

नियतमेतदखंडितवीर्यवद्व्रतमुपासितुमस्ति च आ मृतेः ।
नहि परिग्रहहानतपस्विते भवति कोऽपि विहातुमिह क्षमः ॥११॥

आमरणान्त तुम लोगोंको इस अखण्डित प्रतापवाले व्रतकी उपासना करनी होगी । परिग्रहहान—अपरिग्रह और तपस्विता—संयमको कोईभी छोड़ नहीं सकेगा ॥ ११ ॥

अयमथास्ति महासमरस्तथा त्रिभुवनस्य हिताय महाध्वरः ।
नहि ऋते च इयं खलु वेदिभूरभिलषत्यपराः सुभगाहुतीः ॥१२॥

यह महासमर त्रिलोकीके हितकेलिये एक महान् यज्ञ है । इस यज्ञकी वेदिभू-वेदी तुम लोगोंके सिवा दूसरी आहुति नहीं चाहती है ॥ १२ ॥

यदि च यूयमपोढबला स्थ तत्प्रथमतोऽपसृतिं भजताधुना ।
समरभूमिगता विनिवृत्य मां कुरुत नैव कदापि विलज्जितम् ॥१३॥

और अगर तुम लोग निर्बल हो तो अभी प्रथमसे ही चले जाओ । समरभूमिमें जाकर, लौटकर मुझे लज्जित कभी न करना ॥ १३ ॥

प्रकृतिकोप उदेष्यति सेत्स्यति स्वजनवंशवधः समितावि‍ह ।
निरपराधजनातिनिकन्दनप्रभवशोणितशैवलिनी वहेत् ॥१४॥

इस युद्धमें अपने आदमियोंका वध होगा, प्रजा क्रुद्ध होगी, और निरपराध लोगोंकी हत्यासे रक्तकी नदीभी बहेगी ॥ १४ ॥

समुदिताध्यवसायपरायणैर्युधि इतश्च तथापि पलायनम्।
नहि भविष्यति साधितमुद्यमैरवध एव भविष्यति पालितः ॥१५॥

तो भी जो निश्चय किया जा चुका है उसमें लगे हुए तुम लोगोंको युद्धसे भागना नहीं पड़ेगा और प्रयत्नके साथ अवध—अहिंसाका पालन करना होगा ॥ १५ ॥

निजजनैर्यवनैरथ हिन्दुभिः परजनैरपि या निहता वयम्।
मरणमेत्य पवित्रमहिंसनव्रतमतीव समुज्ज्वलयामहे ॥१६॥

अपनेही आदमियोंसे—चाहे वह हिंदू हों या मुसलमान् हों—, या शत्रुओंके आदमियोंसे मारे गये हुए हम लोग, मरकर पवित्र अहिंसाव्रतको अधिक उज्ज्वल—यशस्वी बनावेंगे ॥ १६ ॥

यदि गृहे जनके जननीपदे सुतसुतादिषु वा वनितामुखे ।
रतिरुदेष्यति वः प्रिय आश्रमे जननिषेवणशक्तिरपक्षयेत् ॥१७॥

यदि घरमें, मातापितामें, बालबच्चोंमें, स्त्रीमें और इस प्रिय आश्रममें यदि तुम लोगोंका प्रेम उत्पन्न होगा तो जनसमाजकी सेवा करनेकी शक्तिका नाश होगा ॥ १७ ॥

बहुलचारुविचारविलोडनैः परिणतां परिणद्धयथार्थिकाम् ।
व्यवसितिं चरमां परमामिमां न परिहासदृशा परिपश्यत ॥१८॥

बहुत सुन्दर विचारोंके मन्थन करनेसे निकले हुए शुद्धतत्त्ववाले इस महान् अन्तिम निश्चयको परिहासकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये ॥ १८ ॥

गमनमिच्छति सत्यपि यत्पती सह मया न परन्तु तदङ्गना ।
समभिवाञ्छति तद्गमनं पृथक्कृत इहैव भविष्यति सम्प्रति ॥१९॥

यदि कोई पति मेरे साथ चलना चाहता है परन्तु उसकी स्त्रीकी इच्छा उसको जानेदेनेकी नहीं है तो वह अभी ही और यहाँ ही पृथक् कर दिया जायगा ॥ १९ ॥

इति विबोध्य बुधाननुयायिनोऽमृतदृशा सकलानवलोकयन् ।
चलितुमेव समान्समुपादिशन्नुदजहान्निजमासनमाशु सः ॥२०॥

अपने समझदार अनुयायियोंको इस प्रकार समझाकर, अमृतमयी दृष्टिसे सबको देखते हुए और चलनेकेलिये सबको आदेश देते हुए श्रीमहात्माजीने अपने आसनको छोड़दिया ॥ २० ॥

जय जयेति सदक्षरसंसरत्प्रमदुर्धरसिन्धुसमादृतः ।
जनतया स्तुतया परिवेष्टितो यतिपतिर्निरियाय तदाश्रमात् ॥२१॥

"जय-जय" इन सुन्दरअक्षरोंसे बहता हुआ जो आनन्दका दुर्धर्ष सागर था उससे आदृत होकर प्रतिष्ठित जनतासे घिरे हुए परमसंयमी श्रीमहात्माजी अपने आश्रमसे बाहर निकले ॥ २१ ॥

पुरतः स्थित एव महामनाः स्थितिमतां क्रमशः सहयायिनाम् ।
अथ च ते क्रमशोऽक्षतकुङ्कुमैस्तिलकिताः सकला ललनाकुलैः ॥२२॥

जितने अनुयायी थे—सैनिक थे क्रमसे-एक लाइनसे निकलकर खड़े हुए । श्रीमहात्माजी सबके आगे खड़े थे । बहिनोंने सबको क्रमसे अक्षत और कुङ्कुमसे तिलक किया ॥ २२ ॥

परमसाधुशिरोमणिरेषको व्रजति शासनदूषितनीतिभिः ।
चरमयुद्धमुपासितुमित्यतो नगरतो निरगुर्वत नागराः ॥२३॥

परमसाधुओंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीमहात्माजी सरकारके अन्यायके साथ आखिरी युद्ध करनेकेलिये जा रहे हैं, ऐसा सुनकर, जानकर, विचारकर सभी नगरनिवासी-अहमदाबादवासी नगरसे निकले ॥ २३ ॥

समवलोकितुमेतमपूर्वताविरचिताखिलसैन्यमनोहरम् ।
विरलमानवमानिनपाद्दिनीपतिमशेषजना अभिदुद्रुवुः ॥२४॥

अपूर्वताके साथ रची हुई अपनी सारी सेनासे सबके मनोंको हरनेवाले, थोडेसे मनुष्योंसे मानित—युक्त सेनाके पति श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये सब लोग दौड़ पड़े ॥ २४ ॥

वसनयन्त्रनिकेतनकाधिपा अगणिता अपरेऽपि धनेश्वराः ।
उपययुर्निजदारसुतासुतैः समवलोकितुमस्य शुभाननम् ॥२५॥

कपडोंकी मिलोंके मालिक और दूसरे भी अगणित सेठ साहूकार अपने अपने बालबच्चों के साथ श्रीमहात्माजीके पवित्र मुखका दर्शन करनेकेलिये गये ॥ २५ ॥

नयनवारिचयं च सुलोचना नयनयोरधिरुध्य बलादपि ।
उपनता जनता मुदमुरिसता कथमपि प्रससार सताम्पतिम् ॥२६॥

आयी हुई सुन्दर-पवित्र—नेत्रोंवाली जनताने अपने नेत्रोंके आँसुओंको किसी प्रकारसे बलात्कारसे नेत्रोंमेंही रोक कर हर्ष और शोकसे बँधी हुई होकर, साधुशिरोमणि महात्माजीके पास गयी ॥ २६ ॥

परमवैष्णवशुद्धपरम्पराप्रथममेनमवेक्ष्य हि निर्भरम् ।
निजकुलं च निजं च कृतार्थतामुपगता उपनेतुमसंख्यकाः ॥२७॥

परमवैष्णवोंकी शुद्धपरम्परामें सर्वश्रेष्ठ श्रीमहात्माजी का दर्शन करके अपनेको और अपने कुलको अत्यन्त कृतार्थ बनानेलिये असंख्य आदमी वहाँ गये ॥ २७ ॥

विविधचित्रनिदर्शनयन्त्रिणो विविधवृत्तविकासनपत्रिणः ।
विविधदोषनिरीक्षणदृष्टयः प्रथमतः परितोऽत्र वितस्थिरे ॥२८॥

तरह तरह के चित्र खींचनेवाले—फोटोग्राफर, तरह तरहके समाचार छापनेवाले पत्रकार—सम्पादक, और तरह तरहके दोष निहारनेवालेभी पहिलेसेही आकर चारोंओर खडे हो गये थे ॥ २८ ॥

समवलोक्य चमूं च चमूपतिं हृदयवेदनयोत्पुलकावलिः ।
इति मिथोवचसां परिवर्तनं रचयति स्म तदा जनताऽऽकुला ॥२९॥

सेना और सेनापति दोनोंको देखकर, हृदयकी वेदनासे रोमाञ्चित होकर व्याकुल, भरी हुई जनता आपसमें इस प्रकार बातें करने लग गयी ॥ २९ ॥

⊛ अगणितैः प्रबलैः कपिभल्लुकैः प्रविचिता रघुनाथवरूथिनी ।
गतवती लघुराज्यवसुन्धरापतिजयाय समुद्रविलङ्घिनी ॥३०॥

एक छोटेसे राज्यके राजाको–रावणको जीतनेकेलिये समुद्रको पार करनेवाली जब श्रीरामकी सेना चली थी तो उसमें बड़े बड़े बलवान् अगणित वानर और भालु खचाखच भरे हुए थे ॥३०॥

इदमनीकमयेति ‡ च कीकसैस्त्वगभिवेष्टितकैस्तु विनिर्मितम् ।
अहह साभिजगत्प्रभुनास्फुरन्नरपतेरनयं परिमार्जितुम् ॥३१॥

और यह सेना आधे संसारके प्रभुत्वसे प्रकाशमान राजाके अन्यायको दूर करनेकेलिये जा रही है; परन्तु इस सेनाका शरीर कैसा है ! केवल हड्डियोंके ऊपर चमड़ा मढ़ा हुआ है । अतः आश्चर्य है ॥ ३१ ॥

निशिचराधिपतेर्विजिघांसया परमकोपभरेण विकम्पितः ।
रघुपतिर्न दशाब्दसमासिद्धाऽपि शासनप्रतदीक्षितभूभुजः ॥३२॥

राक्षसराज रावणके वध करनेकी इच्छासे क्रोधके मारे काँपते हुए श्रीराम दश दिनमें अभिमानकी दीक्षासे दीक्षित भूपालोंके सरदार श्रीमहारानीजीकी, बराबरी नहीं कर सकते ॥३२॥

अपि च युद्ध इदानु कथं स्थितो भयभयातिनिपीडितमानसः ।
मरणहेतुरभीतिनिशातमया निरिपरे नियसंगरसे चिरम् ॥३३॥

संसारके भयसे जिनका मन अत्यन्त पीड़ित था, जो मरणबन्धनको दूर करनेकी इच्छासे तपस्या करते हुए पहाड़ोंमें—पर्वतगिरिमें निवास

⊛ यहाँसे ३४ वें श्लोकतक [illegible] है ।
‡ [illegible] ।

करते थे वह युद्ध तो श्रीमहात्माजीके सामने खडे ही कैसे हो सकते हैं ? ॥ ३३ ॥

तदुपमो न स कृष्ण उपाश्नुते समितिनीतिमनीतिसभामृताम् ।
अनुसरन्नव एव जगत्त्रये निरुपमोऽस्य बभूव स निष्क्रमः ॥३४॥

अनीतिसभा = अनीतिसमुदायको धारण करनेवाले राजाओंकी युद्धनीतिका अनुसरण करनेवाले भगवान् कृष्ण भी श्रीमहात्माजी की उपमा नहीं पा सकते । अत एव यह निष्क्रमण * निराला ही था ॥ ३४ ॥

निरसरद्यतिरेष यदाश्रमात्तदभिदर्शनकामनयाऽऽगताः ।
उभयतः सरणिं समुपस्थिता विकलिता, पुरुषा अथ योषितः ॥३५॥

जिस समय श्रीमहात्माजी आश्रमसे बाहर निकले उस समय उनके दर्शनकेलिये यहाँ आये हुए स्त्री पुरुष व्याकुल होकर मार्गके दोनों ओर खडे थे ॥ ३५ ॥

प्रतिपदं जनता घृतदीपकं ज्वलितमस्य पुरः समदर्शयत् ।
शिरसि चाक्षतवृष्टिमवर्षयत्सुकुसुमानि तथा समवाकिरत् ॥३६॥

जब महात्माजी चलने लगे तो पग पग पर लोग घृतका दीपक जलाकर उन्हें दिखाते थे अर्थात् उनकी आर्ती उतारते थे । मस्तकपर अक्षत और फूलोंकी वर्षा करते थे ॥ ३६ ॥

* कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण इन दो अवतारोंने भी शत्रुसंहार किया है और शत्रुसंहार करनेकेलिये इन दोनों महाविभूतियोंको भी अभिनिष्क्रमण करना पडा है। परन्तु दोनों ही हिंसावृत्तिको धारण करनेवाले थे। श्रीमहात्माजीने भी शत्रुसंहार किया है परन्तु यह संहार लोकोत्तर है और उसका साधन अहिंसा-शस्त्र भी लोकोत्तर ही है। अतः इस विषयमें किसीकी उपमा महात्माजीके इस महाभिनिष्क्रमणसे नहीं दी जा सकती। भगवान् बुद्धका निष्क्रमण और प्रकारका था।

न हि सुराः सुरलोकत आकिरन्सुरतरुद्रुमपुष्पचयान्यतः।
इममपूर्वमवेक्ष्य विनिष्क्रमं विचकिता न किमप्यभिसस्मरुः ॥३७॥

इस समय स्वर्गसे देवताओंने कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा नहीं की। इसका कारण यह था कि इस अपूर्व अभिनिष्क्रमणको देखकर वह सब आश्चर्य में पड़ गये थे और उनको कुछ स्मरण नहीं रहा ॥ ३७ ॥

परित एलिससेतुमुदाशयाः सुरभिवारिघटैरसिचन्पथः।
नयनहृद्रचनापरिकल्पितं समसृजन्महदेव सुगोपुरम् ॥३८॥

* एलिसब्रिजके चारों ओर उदार आशयवाले = उदार विचारवाले भाइयोंने चारों ओर सड़कोंपर सुगन्धित जलोंसे छिड़काव कर रखा था। और तरह तरहके शृङ्गारोंसे सजाकर एक बड़ा भारी ×गोपुर बनाया था ॥ ३८ ॥

अगणितानि शतानि नृणां ययुः प्रकृतिदुःस्थितिदुःखविलोडितैः।
नरवरैः सह तैः परिभुग्नहृद्गलितकान्यनकानि च योजनम् ॥३९॥

प्रजासी खराब स्थितिके दुःखसे दुःखित उन नरवरोंके साथ = श्री महात्माजी और उनके सैनिकोंके साथ, दुःखसे व्याकुल हृदयकमलवाले हजारों आदमी प्रसन्न होकर चार चार माइलतक गये ॥ ३९ ॥

उपगतान्सकलानुपचण्डुलं प्रतिनिवर्तयितुं यतिनायकः।
मृदुगिरोपदिदेश च पद्यया तदनुकम्पितया प्रजितुं मुदा ॥४०॥

साथमें आये हुए लोगोंको पीछे लौटनेकेलिये श्रीमहात्माजीने चण्डुल—चण्डोला तालाबके पास, कोमल—प्रेमभरे वचनोंसे उपदेश

---

* अहमदाबाद शहरके बीचमें हो कर साबरमती नदी बहती है। उसीपर एक पुल है। उसका नाम एलिसब्रिज है। एलिस एक अंग्रेज था। ब्रिजका अर्थ पुल है। उसी एलिसके नामपर यह पुल बना था।

× गोपुर = नगरका महाद्वार अथवा द्वारमार्ग।

दिया और उनके ग्रहण किये हुए मार्गपर चलनेका भी उपदेश दिया ॥ ४० ॥

प्रतिनिधौ प्रहितं च मया दलं सिततनोर्नरपस्य तदुत्तरम् ।
हृदयवेधकमागतवत्ततो न हि भवेदत उत्तमयोजना ॥४१॥

अंग्रेज राजाके प्रतिनिधि = वाइसरायके पास मैंने पत्र भेजा था। उसका उत्तर आया है और वह बहुत हृदयवेधक है। अतः इससे उत्तम योजना (दूसरी) नहीं है ॥ ४१ ॥

भवति वाइसरायथ यत्प्रजाप्रतिनिधिर्नहि सा विदिता भुवि ।
नमयितुं सुखतस्तत एव मत्परिगृहीतपथेन च गम्यताम् ॥४२॥

किंच, वाइसराय जिस प्रजाके प्रतिनिधि हैं वह प्रजा पृथिवीपर आसानीसे झुकनेकेलिये प्रसिद्ध नहीं है अर्थात् आसानीसे झुकायी नहीं जा सकती। इसलिये मेरे ग्रहण किये गये हुए मार्ग पर तुम सब लोग चलो ॥ ४२ ॥

* आश्वास्याग्रे सकलनयनान्संस्थितान्मानवांस्तान्
सर्वानेव व्यथितहृदयान्बोधयित्वा महात्मा ।
दुर्दम्यानां प्रसरबलिनां निष्कृपाणां प्रमादं
दूरीकर्तुं जगदघहरः सानुकम्पो ययौ सः ॥४३॥

सामने खडे हुए—जिनके हृदय व्यथित थे और जिनकी आँखोंमें आँसू थे—लोगोंको इस प्रकारसे उपदेश देकर, आश्वासन देकर, दुर्दम्य, महाबलवान् और निर्दय लोगोंके प्रमादको दूर करनेके लिये जगत् के पापोंके हरनेवाले, दयालु श्रीमहात्माजी वहाँसे आगे गये ॥ ४३ ॥

आसीत्तस्य प्रथमदिवसे यानभङ्गोऽसलाल्यां,
यतंव्यस्तत्तदभिवदनः सेनया सम्परीतः ।

* मन्दाक्रान्ता छन्द ।

वाचा दृष्ट्या प्रतिपदमथागण्यलोकानशोकान्,
कुर्वञ्श्रीमत्परमयमिराट् ÷ लङ्घनं प्राप सुस्थः ॥४४॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
त्रयोदशः सर्गः

श्रीमहात्माजीको पहिले दिन असलाली गाँवमें पड़ाव डालना था अतः अपनी सेनाके साथ उधरको ही चल दिये। मार्गमें सर्वत्र अगणित लोग खड़े थे। सबको वाणी और दृष्टिसे शान्त करते हुए परम संयमी श्रीमहात्माजी सुखपूर्वक पड़ावमें असलाली ग्राममें पहुँच गये ॥ ४४ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते त्रयोदशः सर्ग.

÷ लङ्घनम् = पड़ाव ।

चतुर्दशः सर्गः

अथ ग्रामनियुक्तेन सेवकेन प्रबोधिताः ।
युवानो बालका वृद्धाः स्त्रीपुंसाः सुव्यवस्थिताः ॥१॥

जब श्रीमहात्माजी असलाली ग्रामके निकट पहुँचे तो, समाचार देनेकेलिये जो आदमी ग्राम की ओरसे नियुक्त किया गया था उसने सबको सूचना दे दी। जवान, बालक, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सुव्यवस्थित होकर—॥ १ ॥

हर्षोन्मादसमायुक्ताः सत्कर्तुं तं परन्तपम् ।
सद्गानवादनैरभ्रं नादयन्तः प्रतस्थिरे ॥२॥

हर्षके उन्मादसे युक्त होकर, काम क्रोधादिशत्रुओंको तपानेवाले श्रीमहात्माजीका स्वागत करनेकेलिये गाने और बाजेके शब्दोंसे आकाशको गुँजाते हुए चले ॥ २ ॥

अर्धगव्यूतिमध्वानं प्राप्य ग्रामजनाः समे ।
चिदात्मानं महात्मानं ददृशुस्तं तपस्विनम् ॥३॥

सभी ग्रामवासी जनोंने दो माइल दूर तक जा कर उन चिदात्मा, तपस्वी श्रीमहात्माजीका दर्शन किया ॥ ३ ॥

देवराजमिवायान्तं सैन्यैर्युक्तं सुरैरिव ।
नयनातिथितां नीत्वा सं नात्मनि ममुश्च ते ॥४॥

देवोंके समान सैनिकोंसे युक्त, देवराज–इन्द्रसमान तेजस्वी श्रीमहात्माजीका दर्शन करके ग्रामवासी लोग अपनेमें नहीं समाये ॥ ४ ॥

सजदैः कलशैर्भद्राः सुभगाक्षसुलोचनाः ।
अस्वाछोयोषितः सर्वा अतिथिं पर्यवारिषुः ॥५॥

सुभगाक्ष—सौभाग्यशील आँखोंसे—इसीसे सुन्दर आँखोंवाली

अलालीकी कल्याणपूर्णा स्त्रियोंने जलसहित ※ घड़ोंको लेकर अतिथि-श्रीमहात्माजीको घेर लिया ॥ ५ ॥

विधाय स्वागतं तस्य सेनायाश्च मधुस्वराः ।
गीतिकाभिः प्रवृत्ताभिरात्मप्रेम न्यदर्शयन् ॥६॥

श्रीमहात्माजीका और उनकी सेनाका स्वागत करके मीठे स्वरवाली उन बहिनोंने गीत गाकर अपना प्रेम प्रकट किया ॥ ६ ॥

अक्षतानि च पुष्पाणि सहस्रैः करवारिजैः ।
युगपद्युगनाथस्य मस्तके ताः प्रचिक्षिपुः ॥७॥

उन बहिनोंने हजारों करकमलोंसे वर्तमानयुगके स्वामी श्रीमहात्माजी-के मस्तकपर अक्षत और पुष्पोंकी एक साथ ही वर्षाकी ॥ ७ ॥

केचित्प्रणामान्साष्टाङ्गान्कृत्वा स्वान्बहुमानयन् ।
केचित्तत्पादपाथोजपरागान्मस्तके न्यधुः ॥८॥

पुरुषोंमेंसे किन्हीने साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपनेको धन्य माना और किन्हींने श्रीमहात्माजीके चरणकमलकी धूरिको अपने मस्तकपर धारण किया ॥८॥

तत्पादन्याससम्पूतरजांसि निजचक्षुषोः ।
अञ्जयन्तः परं केचिदमाङ्क्षुर्मङ्क्षु सुन्निधौ ॥९॥

कोई तो उनके चरण कमलके पड़नेसे पवित्र हुई धूरिको अपनी आँखोंमें लगाते हुए आनन्दसागरमें तत्काल मग्न हो गये ॥ ९ ॥

निमेषरहितैरेते हिनैरसुहितैस्तदा ।
भूयो भूयः पिबन्ति स्म तं विलोचनसम्पुटैः ॥१०॥

※ गुजरातकी प्रथा है कि किसी महान् पुरुषका स्वागत करनेके-लिये बहिनें कोसों दूर तक धातुके कलशोंमें जल लेकर जाती हैं ।

उन ग्राम्यबन्धुओंने बिना पलक गिराये, अत एव हितकारक अतृप्त नेत्रसम्पुटोंसे बार बार श्रीमहात्माजीको पी रहे थे, उनका दर्शन कर रहे थे ॥ १० ॥

आतपेऽवस्थितस्यास्य मुखे प्रस्वेदबिन्दवः ।
तान्प्रयातुं त्वरां कर्तुं प्रेरयामासुरुद्गताः ॥११॥

धूपमें खडे रहनेके कारण श्रीमहात्माजीके मुखपर प्रस्वेदबिन्दुओंने ग्रामके लोगोंको चलनेकेलिये शीघ्रता करनेकी प्रेरणा की ॥ ११ ॥

साहस्रैश्च कुलस्त्रीणां सहस्रैः सन्नृणां तथा ।
जङ्गमाश्रमनाथोऽसौ परीतः परितो ययौ ॥१२॥

सहस्रों कुलीन बहिनों और सहस्रों सत्पुरुषोंसे घिरे हुए वह जङ्गम-आश्रमके स्वामी श्रीमहात्माजी गाँवकी ओर गये ॥ १२ ॥

रथ्याभिरतिरथ्याभिर्वर्जिताभिर्मलीमसैः ।
अर्चिताभिः पताकाभिरसलाली व्यशोभत ॥१३॥

अतिरथ्या-जिनमें रथ वगैरः जासकते थे ऐसी, पताकाओंसे सुशोभित निर्मल-स्वच्छ गलियोंसे असलाली ग्राम शोभित हो रहा था ॥ १३ ॥

दूरतो दर्शनं कृत्वा निवेशनपुरस्य सत् ।
प्रसादोपचयं लेभे चेतोवृत्तिर्महात्मनः ॥१४॥

निवेशनपुर-ठहरनेकी जगह-पडाव-का-असलाली गाँवका दूरसे ही दर्शन करके श्रीमहात्माजीके सत्-पवित्र हृदयने प्रसन्नता प्राप्त की-अर्थात्-श्रीमहात्माजी उस गाँवको दूरसे ही देखकर प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥

पुरानुज्ञामनुसृत्य सोऽसलालीमहाजनः ।
प्रबन्धमखिलं चक्रे सैन्याहारविहारयोः ॥१५॥

पुरानुज्ञा=गाँवकी आज्ञाके अनुसार ही असलालीके महाजनने

श्रीमहात्माजीकी सेनाके भोजन और विश्रामस्थानका सब प्रबन्ध कर रखा था ॥ १५ ॥

सेनायां शिबिरस्थायां स्वस्थायां श्रान्तिभञ्जनात् ।
कृतस्नानाशनाद्यायामधितस्थौ स वेदिकाम् ॥१६॥

जब सेना स्नान, भोजन आदि सब क्रिया कर चुकी, थकावटके दूर हो जानेसे जब शिविरमें स्वस्थ हुई तब श्रीमहात्माजी वेदीपर–व्याख्यानवेदीपर जा विराजे ॥ १६ ॥

महात्मा परितः स्वं तान्स्थितान्ग्राम्यजनांस्तदा ।
उद्दिश्याथोपदेशाय स्वभावेनोपचक्रमे ॥१७॥

अपने चारों ओर बैठे हुए ग्रामीण बन्धुओंको सम्बोधन करके, स्वभावतः ही, उपदेश देनेकेलिये श्रीमहात्माजीने आरम्भ किया ॥ १७ ॥

सप्तदश शतानीह सन्ति ग्रामेऽत्र मानवाः ।
तथापि खादिवस्त्राणामभावो मम खेदकः ॥१८॥

इस गाँवमें १७०० आदमी बसते हैं तो भी खादीके अभावसे मुझे दुःख हो रहा है ॥ १८ ॥

वैदेशिकानि वस्त्राणि समर्प्य ज्वलितेऽनले ।
तन्तून्सृष्ट्वा स्वहस्तेन तथोत्वा परिधत्त च ॥१९॥

विदेशी वस्त्रोंको जलती आगमें डालकर, अपने हाथसे सूत बनाकर, बुनकर उसे तुम लोग धारण करो ॥ १९ ॥

एतावतैव कार्येण मन्यध्वं नो कृतार्थताम् ।
कर्तव्यानां परा काष्ठा नेदानीं विद्यते खलु ॥२०॥

इतना ही कार्य करके कृतार्थता मत समझ लेना । आज करनेकेलिये जितने काम आगे पड़े हैं उनकी, सचमुचमें, सीमा नहीं है ॥ २० ॥

खादीवार्तां समाप्यैव लवणप्रवणोऽभवत् ।
लवणस्य करार्थं स्फोटयामास सुव्रतः ॥२१॥

रादीकी बातको समाप्त करके श्रीमहात्माजी नमककी ओर झुके उन्होंने टैक्सकी क्रूरताका स्पष्टतया वर्णन किया ॥ २१ ॥

> राज्यमानेन च मणाश्चत्वारि हि शतानि च ।
> क्षाराणामुपयोज्यन्त आस्लालैः प्रतिवत्सरम् ॥२२॥

अस्लाली गाँवके निवासी तुम लोग सर्कारी मापसे ४०० मन नमक प्रतिवर्ष अपनेलिये खर्च करते हो ॥ २२ ॥

> मणः शतं हि सार्धंकमूनादूनं चतुष्पदाम् ।
> हेतोरपेक्ष्यते तस्य विद्यते नात्र संशय. ॥२३॥

और कमसे कम पशुओंकेलिये उसी सर्कारी मापसे १५० मन नमक चाहिये, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥

> चर्मकाराः प्रयुञ्जीरंस्तच्चेच्चर्मविशोधने ।
> कृषिकारैर्यदि क्षेत्रे प्रक्षेप्तुं तद्ध्यपेक्ष्यते ॥२४॥

यदि चमारलोग चमडेको शुद्ध करनेकेलिये-कमानेकेलिये नमकका प्रयोग करते हों और यदि किसान खेतमें डालनेकेलिये नमक चाहते हों तो—॥ २४ ॥

> एवं युष्माभिरब्देन तावल्लवणहेतवे ।
> अष्टौ शतानि दीयन्ते पृथ्वीपालाय रूप्यकाः ॥२५॥

इस प्रकारसे इतने नमककेलिये तुम लोग एक वर्षमें ८०० रुपये सरकारमें भरते हो ॥ २५ ॥

> एतस्मिन्भारते वर्षे सप्त प्रतिदिनं पणाः ।
> आयः प्रतिजनं हन्त दुर्भिक्षोपप्लुते परम् ॥२६॥

इस दुर्भिक्षपीडित भारतवर्षमें प्रत्येक आदमीकी प्रतिदिन की आय केवल सात पैसे हैं ॥ २६ ॥

कियन्त्येव कुटुम्बानि भिक्षान्नैः प्राणधारणम् ।
कुर्वन्ति येनकेनापि दुर्भाग्ये भारतेऽधुना ॥२७॥

आज इस हतभाग्य भारतमें कितनेही परिवार भीख माँग कर किसी किसी प्रकारसे प्राणरक्षा कर रहे हैं ॥ २७ ॥

भिक्षान्नस्याप्यलाभेन म्रियन्ते केचन क्षुधा ।
उचितं तद्भवेद्तद्राजस्व लावणं कथम् ॥२८॥

कितनोंको तो भीख भी नहीं मिलती और भूखसे मर जाते हैं। तब नमकका इतना अधिक कर कैसे उचित हो सकता है ? ॥ २८ ॥

सार्धाणकेन पत्प्राप्यं पञ्जावे लवणं मणः ।
गुर्जरादिप्रदेशेषूत्पाद्यतेऽधिकमेव यत् ॥२९॥
तदेव निर्धनैर्दत्त्वा सार्धकं रूप्यकं यदि ।
क्रेतुं न शक्यते तर्हि शासकेन विनाश्यते ॥३०॥

पञ्जाबमें जो नमक डेढ़ आनेमें एक मन मिलता है और जो नमक गुजरात आदि-काठियावाड आदिमें अधिक परिमाणमें तैयार होता है—उसी नमकको यदि डेढ रुपया देकर गरीब आदमी नहीं खरीद सकते हैं तो उस नमकको सरकार * नष्टकर देती है ॥ २९ ॥ ३० ॥

एवं कठोरतापूर्णं शासनं सम्प्रवर्तते ।
तस्य नाशाय सामग्री संचेया सर्वभारतैः ॥३१॥

इस तरहसे निर्दयतापूर्ण राज्य चल रहा है। इसका नाश करनेकेलिये एवं भारतवासियोंको सामग्री-संग्रह करना चाहिये ॥ ३१ ॥

भूपप्रतिनिधौ कर्तुं विनष्टं लावणं करम् ।
प्रहितं प्रार्थनापत्रं मया नैवाग्रणोदरौ ॥३२॥

* नमकको बिगाड़ देनेकेलिये सरकार पैसा देकर नौकर रखती है। यह नौकर उस नमकमें मिट्टी वगैरह मिला देते हैं जिससे कि वह किसीके उपयोगमें न आवे।

इस नमस्करको हटादेनेकेलिये मैंने बादशाहके प्रतिनिधि वाइसराय (लार्ड इर्विन) को प्रार्थनापत्र भेजा परन्तु उन्होंने उधर ध्यान नहीं दिया ॥ ३२ ॥

यासां प्रजानां सम्वत्ते प्रातिनिध्यमसौ न ताः ।
साधनीयाः सुखेनैव नैष्कारुण्यपरायणाः ॥३३॥

यह वाइसराय जिस प्रजाके (अंग्रेजी प्रजाके) प्रतिनिधि हैं वह प्रजा बडी निर्दय है और सुखसे वशमें नहीं की जा सकती ॥ ३३ ॥

पश्चात्तपन्ति न क्वापि सम्पाद्याघमपीह ताः ।
न शृण्वन्ति न पश्यन्ति दीनवाणीश्च दीनताम् ॥३४॥

वह अंग्रेजी प्रजा पाप और अपराध करके भी पश्चात्ताप नहीं करती। वह न तो दीनोंकी आवाज़को सुनती है और न गरीबीकी ओर देखती है ॥ ३४ ॥

मुष्टीमुष्टि त्विमाः क्रीडां शक्नुवन्ति निरीक्षितुम् ।
घटिकां प्रहरं वापि लोकोद्वेगप्रदायिनीम् ॥ ३५ ॥

वह प्रजा एक घण्टेतक अथवा एक पहरतक मुक्का और घूसा मार मार कर खेलेजानेवाले खेलको देखती रह सकती है जबकि दूसरोंको उस खेलसे व्याकुलता पैदा होती है ॥३५॥

अस्थिभञ्जनिकां क्रीडां कान्दुकीमपि ताः सदा ।
अत्युद्वेगकरीं दृष्ट्वा नैव तृप्यन्ति कर्हिचित् ॥३६॥

वह प्रजा हड्डी तोडनेवाले गेंदके खेलको–जो कि अत्यन्त उद्वेग करनेवाला है–भी, सदा देखकर भी कभी तृप्त नहीं होती ॥ ३६ ॥

एवं याः कठिनाः क्रूराः सदा स्वार्थपरायणाः ।
वाभ्यः प्रतिनिधेरेषा नाद्भुता मद्वचोऽश्रुतिः ॥३७॥

जो प्रजा इतनी कठिन, क्रूर और स्वार्थी है उसका प्रतिनिधि यदि मेरी बातको न सुने तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ३७ ॥

इदं तु निश्चितं ज्ञेयं भारते लावणः करः ।
अवश्यं मरणायत्तोऽपरे ये केऽपि तादृशाः ॥३८॥

यह तो निश्चित ही समझना चाहिये कि भारतवर्षमें यह नमकका कर अब मरणाधीन हो है। उसी प्रकारके जो दूसरे कर हैं उनकी भी वही दशा है ॥ ३८ ॥

एतादृशः करो योऽन्यो बाध्यः सोऽपि प्रजाजनैः ।
यदि शक्तिस्तथा कर्तुं नास्ति साध्या हि साऽधुना ॥३९॥

इस तरहका कोई दूसरा भी (अन्यायी) कर हो तो प्रजाको चाहिये कि उसका भी नाश करे। यदि नाश करनेकी शक्ति प्रजामें न हो तो आज उसे पैदा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

अदेया यत्र बाध्येरञ्शासने निखिलाः कराः ।
नीतिविद्भिस्तु तद्राज्यं प्रजासत्ताकमुच्यते ॥४०॥

जिस राज्यमें न देने योग्य कर हटा दिये जाते हैं उसी राज्यको नीतिज्ञ लोग प्रजासत्ताक राज्य कहते हैं ॥ ४० ॥

कदा कुत्र च किं वस्तु देयं नादेयमेव वा ।
निश्चीयते प्रजाभिस्तु तद्राज्यं प्राजमुच्यते ॥४१॥

जिस राज्यमें कब, कहाँ और कौनसी वस्तु दी जा सकती है और कब, कहाँ और कोनसी वस्तु नहीं दी जा सकती इसका निश्चय प्रजा ही करती है वह राज्य प्रजासत्ताक राज्य कहा जाता है ॥ ४१ ॥

प्रजाना प्रातिकूल्येन जनो नैकोऽपि यत्र च ।
बन्दित्वं नीयते कोऽपि तद्राज्यं प्राजमुच्यते ॥४२॥

जिस राज्यमें प्रजाके प्रतिकूल—प्रजामतके विरुद्ध, किसी एक आदमीको भी कैदी नहीं बनाया जा सकता उसे प्रजासत्ताक राज्य कहते हैं ॥ ४२ ॥

प्रजासु च विरुद्धासु शासनेन न शक्यते ।
यत्र किञ्चिद्बलाद्धर्तुं तद्राज्यं प्राजमुच्यते ॥४३॥

जिस राज्यमें प्रजाके विरुद्ध हो जानेपर सरकार बलात्कारसे कोई भी वस्तु नहीं ले सकती है उसे **प्रजासत्ताक राज्य** कहते हैं ॥ ४३ ॥

एतादृशं हि सौराज्यं स्वराज्यापरनामकम् ।
संस्थापनीयमस्माभिर्धार्मिकेणैव वर्त्मना ॥४४॥

इस प्रकारका सुन्दर राज्य—जिसका दूसरा नाम स्वराज्य है—*हम लोगोंको धर्मयुक्त मार्ग से स्थापित करना चाहिये ॥ ४४ ॥*

अन्याय्यशासनोद्भङ्गं कर्तुमेव समुत्सुकाः ।
दाँडीं यामो महाधाम सम्प्रबोध्यैव शासनम् ॥४५॥

अन्यायपूर्वक कायदोंका भङ्ग करनेकेलिये ही उत्सुक होकर, सरकारको खबर देकर हम लोग महाधाम—तीर्थसमान—दांडीके लिये जा रहे हैं ॥ ४५ ॥

लवणं सर्जयिष्यामो भक्षयिष्यामहे च तत् ।
नेष्यामश्चापि लोकेभ्यस्तद्विक्रेष्यामहे तथा ॥४६॥

यहाँ हम लोग निर्भय होकर नमक बनावेंगे और खावेंगे। नमकको लोगोंको बेचेंगे और लोगोंसे खरीदेंगे भी ॥ ४६ ॥

यदि बन्दिगृहं गन्तुं प्राप्स्यतेऽवसरस्तदा ।
तत्रापि च गमिष्यामो विस्रैतन्निश्चितं हि नः ॥४७॥

यदि जेल जानेका समय आवेगा तो जेल भी हम जायेंगे। बस, यही हम लोगोंका निश्चय है, उसे ठीक समझ लो ॥ ४७ ॥

लक्षाणि नरसिंहाश्र गुर्जरेषु निवासिनः ।
विद्वांसो धार्मिकाः शूराः सत्यव्रतपरायणाः ॥४८॥

इस गुजरातमें ९० लाख विद्वान्, धर्मात्मा, शूर और सत्यव्रतवान् लोग रहते हैं ॥ ४८ ॥

अनायासेन संप्राप्स्यन्ति त्रिंशल्लक्षाणि मानवाः।
कारां गन्तुं तथा सोढुं विपत्तीनां परम्पराम् ॥४९॥

इनमेंसे ३० लाख मनुष्य जेल जानेकेलिये और तरह तरहकी विपत्तियोंको सहनेकेलिये सहजमें ही मिल जायँगे ॥४९॥

त्यक्त्वाश्रमा वयं सर्वे गच्छामः स्वेष्टसिद्धये।
परित्यज्य मृतेर्भीतिं जीवितेषु स्पृहामपि ॥५०॥

हम सब लोग सत्याग्रह आश्रमको छोड़कर अपनी इष्ट सिद्धिकेलिये, मृत्युका भय और जीवनका लोभ छोड़कर जा रहे हैं ॥ ५० ॥

तावत्यः सन्ति नो कारा शासनेन विनिर्मिताः।
यत्र वासयितव्याः स्युस्त्रिंशल्लक्षाणि मानवाः ॥५१॥

सर्कारने इतने जेलखाने नहीं बनाये हैं कि जहाँ ३० लाख आदमी रखे जा सकें ॥ ५१ ॥

गुलिकास्त्रप्रहारेण स्थानाभावे च बन्दिनः।
भवेयुर्निहताः सर्वे शासनेन कलङ्किना ॥५२॥

यदि जेलोंमें जगह नहीं होगी तो सब कैदियोंको यह कलङ्की सर्कार गोलियोंसे मार सकती है ॥ ५२ ॥

आश्रमाद्य समारभ्य मयाऽऽचण्डोलमेव यः।
सम्मर्दो योषितां पुंसां दृष्टः सोऽस्तु शुभाय नः ॥५३॥

सत्याग्रह आश्रम साबरमतीसे लेकर चण्डोलतालाब तक— ७ माइल मैंने बहिनों और भाइयोंकी जिस भीड़को देखी है वह भीड़ हमारा कल्याण करेगी ॥ ५३ ॥

योषितां तावतीनां च पुरुषाणां च तावताम्।
नेत्रामृतेन सिक्ताङ्गा न बिभीमो मृतेर्वयम् ॥५४॥

उतनी बहिनों और उतने भाइयोंकी आँखोंके अमृतसे हम लोगोंका शरीर सींचा गया है। अतः हम लोग मृत्युसे नहीं डर रहे हैं ॥ ५४ ॥

यदि सूर्यप्रकाशः स्यान्मिथ्येन्दुः स्याद्‌शीतलः।
अधीरेयं धरा चेत्स्यात्तदा व्यर्थास्तदाशिषः ॥५५॥

यदि सूर्यका प्रकाश मिथ्या हो जाय, चन्द्रमा उष्ण हो जाय और यह पृथिवी अपने धैर्यको छोड़ दे, यदि यह सब अनहोनी बातें हो जायँ तभी उन बहिनों और भाइयोंका आशीर्वाद मिथ्या हो सकता है ॥ ५५ ॥

अन्याय्याच्छासनादद्य सर्वथा लवणालयान्।
स्वायत्तीकृत्य निश्चिन्ता भवेमाऽरुन्तुदा हि ते ॥५६॥

आज इस अन्यायी सरकारसे नमकके कारखानोंको अपने अधिकारमें करकेही हम लोग निश्चित होंगे क्योंकि यह कारखाने हम लोगोंको दुःख दे रहे हैं ॥ ५६ ॥

अधिकाराच्च राज्यस्य तानाच्छिद्य सदाग्रहात्।
लवणीयः करो नाश्यो यावच्छक्यं मयाऽऽशु सः ॥५७॥

सत्याग्रहके द्वारा राज्यके अधिकारमें उन नमक-कारखानोंको छीनकर यथाशक्ति शीघ्र ही नमकके करको मैं नाश करूँगा ॥ ५७ ॥

लवणस्य करस्याशु विप्रणाशोऽद्य मन्मतौ।
स्वप्राप्यस्य स्वराज्यस्य सोपानं प्रथमं मतम् ॥५८॥

जिस स्वराज्यको हम लोग लेना चाहते हैं उसकेलिये, मेरे मतमें, नमकके करका नाश, पहिली सीढ़ी है ॥ ५८ ॥

एषा महात्मनो वाणी मानिना मानभञ्जनी ।
पञ्चदश सहस्राणि जनचेतांसि आविशत् ॥५९॥

मानियोंके मानको नष्ट कर देनेवाली यह श्रीमहात्माजीकी वाणी १५ सहस्र मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश कर गयी ॥ ५९ ॥

सर्वे गद्गदया वाचा जयघोषमुदैरयन् ।
महात्मनस्तदा तस्य सत्यस्येव शरीरिण ॥६०॥

श्रीमहात्माजी ऐसे थे मानों साक्षात् सत्य ही शरीर धारण करके आया हो । लोगोने गद्गदवाणीसे श्रीमहात्माजीका जयघोष किया ॥ ६० ॥

इति जनताहृदये प्रतिष्ठिता
सिततनुराज्यकलङ्कभावनाम् ।
उचितगिरैव विधाय सद्व्रतो
मधुरमुखो विरराम शान्तये ॥६१॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकश्रीस्वामिभगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजात
चतुर्दश सर्ग

इस प्रकारसे मधुरभाषी श्रीमहात्माजी उचित उपदेश के द्वारा जनताके हृदयमें अंग्रेजी राज्यके कलङ्ककी भावनाको स्थापित करके शान्तिकेलिये चुप हो गये ॥ ६१ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञकृतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते चतुर्दश सर्ग

❀ पञ्चदशः सर्गः

ब्राह्मे मुहूर्ते नियमानुसारमुपास्य सर्वैः सह रामभद्रम् ।
अथ प्रभातां रजनीं स वीक्ष्य स्वसेनया सार्धमभिप्रतस्थे ॥१॥

ब्राह्ममुहूर्त में, नियमानुसार सबके साथ भगवान् रामको उपासना करके, प्रातःकाल हुआ देखकर, अपनी सेनाके साथ वहाँसे श्रीमहात्माजी प्रस्थित हुए ॥१॥

पथा जगामाथ स येन येन तत्र स्थितान्बद्धपरम्परान्सः ।
दूरेत्यलोकानपि शान्तमय्या वाचापि तुष्टान्कृतवाननन्तान् ॥२॥

श्रीमहात्माजी जिस जिस मार्ग से गये उस मार्ग में दूरदूरसे आये हुए असंख्य लोक लाइन बाँधकर खडे थे। महात्माजीने (दर्शन देकर तो सबको सन्तुष्ट किया ही था परन्तु) शान्तिपूर्ण वाणीसे सबको सन्तुष्ट किया ॥ २ ॥

यदोपशल्ये सगणो महात्मा वारेजनाम्नोऽवसथस्य चाप ।
तरङ्गितं तं जनतासमुद्रं दूरादपश्यद्विहसन्नघारिः ॥३॥

जब महात्माजी अपनी सेनाके साथ वारेजा ग्रामके पासमें आये तो दूरसेही तरङ्गित-मानवमहासागरको हँसते हुए देखा ॥ ३ ॥

स्नानाशनादीनि स दीनबन्धुः कृत्यानि सम्पाद्य च बोधयित्वा ।
लोकानगम्यस्य यथार्थबोधो धर्मस्य तत्त्वं प्रययौ ततोऽग्रे ॥४॥

दीनबन्धु श्रीमहात्माजी स्नान, भोजन आदि सब नित्य कर्मोंको करके अगम्य धर्मके तत्त्वको सबको समझाकर वहाँसे आगे चले ॥ ४ ॥

❀ इस सर्गमें उपजाति छन्द है ।

सायं नवागाममवाप्य धीरः स प्रार्थनायाः समये जनौघम् ।
धर्मोपदेशेन विधाय शुद्धं सुखेन तत्रैव निशां निनाय ॥५॥

धीर श्रीमहात्माजीने सायङ्काल नवागाममें आकर, प्रार्थनाके समय जनताको धर्मोपदेशके द्वारा शुद्ध बनाकर वहीं ही रात्रि बितायी ॥ ५ ॥

प्रातर्विधेयानि समाप्य सर्वान्सन्तोष्य वार्ता परिवर्तनेन ।
स वासणां गन्तुमदम्यशक्तिसम्परीतेन गणेन यातः ॥६॥

प्रातःकालके सब कृत्योंको समाप्त करके, सबके साथ वार्तालाप करके अदम्यशक्तियुक्त अपनी सेनाके साथ वासणा जानेके लिये गये ॥ ६ ॥

स वासणां प्राप्य निरीक्षणेन मुदा जनानां समवस्थितानाम् ।
समर्च्यचर्यो हृदये प्रसादं परं दधानो निरतः क्रियासु ॥७॥

पवित्र कृत्यवाले श्रीमहात्माजी वासणा पहुँचकर, वहाँ प्रसन्नताके साथ सबको बैठे हुए देखकर हृदयमें प्रसन्न हुए और अपने कामोंमें लग गये ॥ ७ ॥

प्रस्थाय तस्मात्स च मातरारव्ये ग्रामे निवासं कृपया विधाय ।
तद्दर्शनात्स्यैव समाप्तकामान्सन्तर्पयामास वचोऽमृतेन ॥८॥

वासणासे चलकर श्रीमहात्माजीने मातर गाँवमें निवास किया। वहाँके लोग तो दर्शनसे ही कृतार्थ हो चुके थे परन्तु आपने अपने वचनामृतसे भी उन्हें तृप्त किया ॥ ८ ॥

लक्षाधिकान्ग्राम्यजनान्पथिस्थान्स्वदर्शनेनैव कृतार्थयित्वा ।
डभाणतोऽसौ नडियादमागात्सुतोरणद्वारविवृद्धशोभम् ॥९॥

मार्गमें खड़े हुए लाखों ग्राम-बन्धुओंको अपने दर्शनसे कृतार्थ करते हुए डभाण गाँवमें होकर सुन्दर तोरणयुक्त द्वारसे अतिशय शोभावाले नडियाद में श्रीमहात्माजी पहुँचे ॥ ९ ॥

तदागमोदन्तबहिःसमेतस्त्रीपुंसपूर्णे कलितातिशोभे ।
श्रीसन्तरामीय उदात्तकीर्तौ देवालयेऽसौ वसतिं चकार ॥१०॥

श्रीमहात्माजीके आनेके समाचारसे बाहरसे आये हुए स्त्री और पुरुषोंसे पूर्ण, शोभायुक्त, अत्यन्त प्रसिद्ध श्री सन्तरामजीके मन्दिरमें उन्होंने निवास किया ॥ १० ॥

अहम्मदाबादत आगतेन श्रीमन्महादेवदिसायिना सः ।
आवश्यकांस्तान्विषयान्विलोड्य जवाहिरेच्छामकृत प्रपूर्णाम् ॥११॥

अहमदाबादसे श्रीयुत महादेव देसाईजी भी वहाँ आये। उनके साथ श्रीमहात्माजीने आवश्यकीय विषयोंपर बातचीत करके पण्डित श्रीजवाहिरलालनेहरूकी ❀ इच्छा पूर्ण की ॥ ११ ॥

विद्वान्समागादपि तत्र दत्तात्रेयः स कालेलकरः सपुत्रः ।
सोऽरक्षि मानः किल शङ्करेणेत्युक्त्वैष तत्स्वागतमाततान ॥१२॥

विद्वान् श्रीदत्तात्रेय कालेलकर (श्रीकाकासाहेबजी) भी अपने पुत्र — शङ्करके साथ वहाँ आये। श्रीमहात्माजीने, "शङ्करने प्रतिष्ठा रख ली" कहकर शङ्करका स्वागत किया ॥ १२ ॥

❀ पण्डित जवाहिरलालका एक तार, महासभाकी कार्यकारिणी समिति कहाँ बुलायी जाय, इस जिज्ञासाकेलिये अहमदाबाद आया था। उस तारको श्रीमहादेवभाई लेकर श्रीमहात्माजीके पास आये थे। श्रीनेहरूजी उत्तर चाहते थे। महात्माजीने उत्तर देकर उनकी इच्छा पूर्ण की।

— काकासाहेबके दो लड़के हैं। शङ्कर और बाल। बाल तो आश्रमसे ही साथमें सैनिक होकर आये थे परन्तु शङ्कर नहीं। शङ्कर फर्ग्युसन कॉलेजमें पढ़ते थे। अध्ययन उत्तम रीतिसे चलता था। उन्हें दो छात्रवृत्तियाँ मिल रही थीं। बम्बई युनिवर्सिटीकी सीमरी सर्वोत्तमवृत्ति पानेकी यह तैयारी कर रहे थे। एक ओर उनकी परीक्षा आ गयी और दूसरी ओर गांधीजीने देशकी परीक्षा शुरू की। शङ्कर

जनातिसम्मर्दमवेक्ष्य तत्र प्रासादपीठेऽर्धसहस्रलोके।
महाप्रभुः सायमुपासनान्ते गोपानसीमेत्य मुदाधितष्ठौ ॥१३॥

×वहाँ मनुष्योंकी भारी भीड़ देखकर, छतके ऊपर ही, जहाँ कि लगभग ५०० मनुष्य बैठे थे, सायङ्कालकी प्रार्थना करके, गोपानसी=छज्जेमें आकर प्रसन्न होकर श्रीमहात्माजी बैठ गये ॥१३॥

नीचैःस्थितास्तद्वदनेन्दुशोभां दिदृक्षमाणास्तमवेक्ष्य तत्र।
उपार्धलक्षं निविषेविरेऽद्धा निरशब्दतामेकपदे सभायाम् ॥१४॥

कालेजकी परीक्षा छोड़कर देशकी परीक्षामें दौड़ आये। अहमदाबादमें आकर अपने पिता काकासाहेबके चरणोंमें पड़ गये। पिताके आनन्दका अन्त नहीं था। परन्तु उनकी अपेक्षा भी अधिक आनन्द गांधीजीको ही था। शङ्करको अपनी सेनामें स्वीकार करते हुए गांधीजीने कहा कि "मुँहके आगे आये हुए पके फलका त्याग करनेवाले तुम्हारे जैसे पड़े हैं तो हमको स्वराज्य अवश्य मिलेगा।" शङ्कर ने प्रतिज्ञा यथा ली" इस घटनेका गांधीजीका तात्पर्य यह था कि जन्मदाता पिता और धर्मपिता दोनोंकी लाज शङ्करने रख ली। —श्रीमहादेवभाई देसाई।

× नडियादमें लगभग १० हजार आदमी इकट्ठे थे। प्रार्थना छतपर ही हुई। क्योंकि इतने आदमियोंको यदि प्रार्थनामें सम्मिलित किया जाय तो प्रार्थना हो ही नहीं सकती थी। लगभग ५०० आदमी ऊपर पहिलेसे ही बैठे थे। उन्हींके साथ प्रार्थना पूरी की गयी। अब भाषणका समय था। इतने आदमियोंको श्रीमहात्माजीका भाषण कैसे सुनाया जाय, इसकी सबको चिन्ता हो रही थी। श्री महात्माजीने उपाय सोच लिया। छतोंके बाहर एक छोटासा छज्जा था। यहीं ही उन्होंने कुर्सी रखा ली और बैठकर सबको भाषण सुनाया। जिन्होंने १९२१ ई० में बम्बईकी जुमामस्जिदके ऊपरकी छतसे हजारों आदमियोंको उपदेश सुनाया था उनकेलिये अब भी यह कार्य करना कठिन न मालूम हुआ।

नीचे बैठे हुए करीब-करीब आधे लाख मनुष्य—श्रीमहात्माजीके मुखचन्द्रकी शोभा देखना चाहते थे—उनका दर्शन करना चाहते थे। दर्शन करके सभामें सब लोग एकदम निःशब्द होकर बैठ गये ॥ १४ ॥

प्रेमामृतं सोऽथ निपीय तेषां स्ववाक्सुधां तानपि पाययित्वा।
श्रान्तो महात्मा विरराम तेऽपि लोका निशां तत्र हि नीतवन्तः ॥१५॥

श्रीमहात्माजी सब भाईबहिनोंके प्रेम-अमृतका पान करके और उन लोगोंकोभी अपने वचनामृतका पान कराकर चले गये क्योंकि थके हुए थे। लोगोंने वहाँ ही रात्रि व्यतीत की ॥१५॥

उत्थाय कल्ये स उपासनान्ते स्वसैनिकेभ्योऽनुदिदेश सम्यक्।
कार्पासतन्तुप्रतिसर्जनाय यथाकथञ्चिद्व्यथितो महात्मा ॥१६॥

प्रातःकाल उठकर, उपासना—प्रार्थनाके बाद * व्यथितमनवाले श्रीमहात्माजीने सैनिकोंको चाहे जैसे भी, सूत कातनेकेलिये अच्छी तरहसे आज्ञा दी ॥ १६ ॥

एषाऽस्ति यात्रा किल धर्मयात्रा कालव्ययो मास्तु निरर्थकोऽत्र।
अस्माभिरेव स्वहिताय नित्यं संरक्षणीया नियमाः कृता ये ॥१७॥

वह आज्ञा यहथी—"निश्चय ही समझो कि यह यात्रा धर्मयात्रा है। इस धर्मयात्रामें निरर्थक समय नहीं बीतना

* बेचारे सैनिक १२ से १५ माइल तक रोज चलते थे। नहानेधोने, खानेपीनेमें भी समय जाता था। उसपरभी श्रीमहात्माजीने सब सैनिकोंको भिन्न भिन्न काम सौंप दिया था। किसीको रसोईमें मदद करनेका काम, किसीको ग्राम-अनुभव इकट्ठा करनेका काम, किसीको बीमारोंकी सेवा का काम और किसीको भेटमें आती हुई रकमोंके हिसाबका काम सौंपा रखा था। घण्टे पूरे नहीं मिलते थे। तकलीपर २१२ गज सूत कातनेमें २॥ घण्टे जाते थे। कोई भाई पूरा नहीं कात सकते थे। इसीसे उन्हें दुःख था।

चाहिये। जिन नियमोंको हम लोगोंने ही बनाया है, उनका, अपने हितकेलिये, हमें नित्य पालन करना चाहिये ॥ १७ ॥

श्रीशङ्करः खड्गबहादुरोऽपि सैन्यं प्रविष्टाविति लोकनाथः।
एकाधिकाशीतिमभिन्नचित्तानादाय वीरान्स ततः प्रतस्थे ॥१८॥

श्रीशङ्कर और ॐ खड्गबहादुर भी सेनामें प्रविष्ट हो चुके थे अतः कुल मिलाकर, एक विचारवाले ८१ वीरोंको लेकर श्रीमहात्माजी वहाँसे चले ॥ १८ ॥

विश्रम्य सैन्यैः सह बोरियाख्यामानन्दमायाद्विदुषामधीशः।
यथैव मार्गेषु तथैव चात्र जनाननन्तांश्चकितो ददर्श ॥१९॥

परमविद्वान् श्रीमहात्माजी बोरियावींमें अपनी सेनाके साथ विश्राम करके आनन्द आये। वहाँपरभी आपने, जैसा कि मार्गमें देखा था, वैसा ही अनन्त जनसमुदाय को देखा ॥ १९ ॥

पातुं स्थितानां जननायकस्य वाणीसुधां तत्र महाजनानाम्।
सन्तोषणायैव विदां वरेण्यः प्रारब्धवान्वक्तुमुदारचेताः ॥२०॥

अपने नेताके वचनामृतका पान करनेकेलिये वहाँ उपस्थित महान्-जनोंके सन्तोषकेलिये ही विद्वद्वर्य श्रीमहात्माजीने भाषण देना शुरू किया ॥ २० ॥

× वयं च सत्याग्रहिणः स्थिताः स्मः प्रेम्णः परार्धेऽध्वनि सावधानाः।
जेतुं कठोरं कुलिशादपीह मनो दधानान्महतोऽपि शत्रून् ॥२१॥

हम लोग सत्याग्रही हैं। वज्रसे भी कठोर मनवाले महान् शत्रुओंको जीतनेकेलिये हम प्रेमके सर्वोत्कृष्ट मार्गमें सावधानीके साथ स्थित हैं ॥ २१ ॥

ॐ खड्गबहादुरके परिचयकेलिये परिशिष्टमें बाँचना चाहिये।

× यहाँसे ५९ वें श्लोकतक वहाँका भाषण है।

राज्यव्यवस्थापितमार्गभङ्गे प्रेमैव हेतुर्नहि किञ्चिदत्र।
परन्तु सन्दर्शयितुं न शक्यमेतद्धवैयद्‌धृदयेऽतिगूढम् ॥२२॥

राज्यसे व्यवस्थापित कानूनके भङ्ग करनेमें भी प्रेमके अतिरिक्त अन्य कुछ भी कारण नहीं है। परन्तु उस प्रेमको प्रकट नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह हृदयमें अत्यन्त छिपा हुआ है ॥ २२ ॥

परान्प्रदग्धुं ज्वलतीह वैरभावाश्रयाशो हि निजाश्रयं सः।
अनन्तकालावधिकैर्महाघैः संयोजयत्येव च दुष्प्रणाशैः ॥२३॥

शत्रुतारूप अग्नि दूसरोंको भस्म करनेकेलिये जलता है और अपने आश्रयको अर्थात् शत्रुता करनेवालेको ऐसे महापापोंसे युक्त कर देता है जो अनन्तकालतक टिकनेवाले होते हैं और जिनका नाश बड़े परिश्रमसे हो सकता है ॥ २३ ॥

प्रेमाश्रयाशस्तु निजाश्रयाणां महात्मनां विद्वदपश्चिमानाम्।
निरन्तरं दाहसमर्पणेन तेषां परान्पूततमान्विधत्ते ॥२४॥

* और प्रेमरूप अग्नि तो अपने आश्रयको अर्थात् प्रेमीको जो कि महात्मा और समझदार होते हैं—निरन्तर जलाता है और उनके = महात्मा—प्रेमियोंके शत्रुओंको पवित्र करता है ॥ २४ ॥

प्रेमा यदा स्वोग्रतनुं समग्रां प्रकाशयेत्पावकतामुपैति।
तथापि शैत्यं सहजन्म तस्य क्षणेन सर्वैः कलनीयमेव ॥२५॥

* प्रेम जब अपने समग्र उग्रस्वरूपको धारण करता है तब

---

* २४ और २५ श्लोकका तात्पर्य। वैर और प्रेम दोनोंकी ही उपमा अग्निसे दी जा सकती है। अन्तर दोनोंमें इतनाही है कि वैररूप अग्नि वैर करनेवाले और जिससे वैर किया जाय उसे—दोनोंको जलाता है और प्रेमरूप अग्नि प्रेमी—आशिकको जलाता है और प्रिय-माशूकको पवित्र बनाता है—सुखी बनाता है।

अग्निके समान प्रचण्ड हो जाता है। तथापि उसके साथ ही जो शीतलता पैदा होती है उसका सबलोग सुखके साथ अनुभव कर सकते हैं ॥ २५ ॥

दृढप्रतिज्ञोऽयमतान्यकामः सङ्घोऽयमह्नाय निजां प्रतिज्ञाम्।
प्राणार्पणेनापि जगद्धिताय प्रपूरयिष्यत्यविगीतकीर्तिः ॥२६॥

यह संघ—यह सेना दृढप्रतिज्ञावाली है। इसने दूसरी बातोंको भुला दी है। अतः शीघ्रही अपनी प्रतिज्ञाको, अपने प्राणोंकी आहुति देकर भी, जगत्—कल्याणकेलिये पूर्ण करेगी और संसारमें पवित्र यश प्राप्त करेगी ॥ २६ ॥

विघातितोऽपीह तिरस्कृतोऽपि विश्वासघातेन विडम्बितोऽपि।
न यस्स्वचित्ते भजते विकारं प्रेमाश्रयीति प्रथितः स लोके ॥२७॥

मारे जानेपर भी, तिरस्कृत होनेपर भी और विश्वासघात द्वारा हैरान किये जानेपर भी जो अपने चित्तमें विकार नहीं होने देता वही संसारमें प्रेमी कहा जाता है ॥ २७ ॥

यदीह धर्म्येण पथा सताऽयं प्रेमानुसृत्यानुसरन्स्वकृत्यम्।
उपैतु सत्याग्रहियोग्यमृत्युं प्रेमप्रतिष्ठा जगदाततां स्यात् ॥२८॥

अगर धर्मयुक्त सन्मार्गसे यह प्रेमी प्रेमके अनुसार अपने कर्तव्यको करता हुआ सत्याग्रहियोंके योग्य मृत्युको प्राप्त करे तो जगत्में प्रेमकी प्रतिष्ठा बढ़ जाय ॥ २८ ॥

जगत्स्वजन्वैरिकृपाणघातैर्हतोऽपि वैरिण्यनभीष्टभावम्।
भजेत चेद्यो नहि तस्य मृत्युं मन्येमि सत्याग्रहियोग्यमृत्युम् ॥२९॥

शत्रुकी तलवारसे मारे जानेपर यदि मरणको प्राप्त होता हो तो भी मृत्युके समयमें—यदि शत्रुके प्रति अनिष्ट भाव पैदा न हो तो उस मृत्युको सत्याग्रहीकी मृत्यु मैं कहता हूं ॥ २९ ॥

क्षणे क्षणे चेदुदयोऽस्ति मन्यो. शत्रुष्वनास्था परिवृद्धिमेति ।
लोके कलङ्कस्यभियैवमिथ्या शान्त्यास्तु मृत्युर्नमदीप्सितस्स्यात् ॥३०॥

यदि किसीको क्षण क्षणमे क्रोध होता हो और शत्रुओंके प्रति असद्भाव बढ़ता रहता हो और केवल लोकमे कलङ्कके भयसे मिथ्या शान्ति दिखाकर जो मरणको प्राप्त होता है वह मृत्यु मुझे पसन्द नहीं है-वह मृत्यु सत्याग्रहीका मृत्यु नहीं है ॥ ३० ॥

शक्तिं समग्रां बिभृमोऽस्य मृत्योरालिङ्गनायेति न वक्तुमद्य ।
शक्ता वयं स्याम परीक्षितास्तु मृत्यो. परस्तादपरैर्मनुष्यैः ॥३१॥

सत्याग्रहीके इस मृत्युका आलिङ्गन करनेकेलिये हमारे पास पूर्ण शक्ति है या नहीं इसे हम आज नहीं कह सकते। मृत्युके पश्चात् दूसरे लोग हमारी परीक्षा करेंगे ॥ ३१ ॥

इयं पुरी विश्रुतपाटिदारज्ञातेर्महाकेन्द्रतया प्रतीता ।
अयं प्रदेशोऽमिनमोतिभाई श्रीवल्लभादेर्बहुमानभूमिः ॥३२॥

यह आनन्द गाँव प्रख्यात पाटीदार—कूर्मीय जातिका महान् केन्द्र है। इस प्रदेशकेलिये अमीन श्रीमोतीभाई और श्रीवल्लभभाईको बहुत मान है ॥ ३२ ॥

अत्रैव सत्कीर्तितकीर्तिपुञ्जसन्मण्डले सन्ति महाप्रसिद्धाः ।
चरोतरीया अपरेऽपि धीराः प्रजाहितार्थं तपसि प्रलीना ॥३३॥

प्रतिष्ठित लोग भी जिसका गुणगान करते हैं उस इस प्रान्तमें चरोतरके दूसरे भी बहुत से वीर हैं जो प्रजाहितकेलिये तपस्या कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

एवं महोदारपरामवाप्य न चेदहं मन्मनसोऽधिभायम् ।
प्रकाशये शुद्ध च तत्प्रकाशयोग्याऽपरा भूः परिमार्गणीया ॥३४॥

ऐसी पवित्र और उदारभूमिमें आकर भी यदि मैं अपने मनके

उन भावोंको प्रकट न करूँ तो उनके प्रकट करने योग्य दूसरी जगह मैं कहाँ ढूँढूँ ? ॥ ३४ ॥

लोभावृतोऽहं सबलः समागामस्यां सुपुर्यामभिभिक्षितुं वः ।
अपेक्षिता द्रव्यमयी न भिक्षा सा प्राप्यते भूरिरभिक्षिताऽपि ॥३५॥

मैं लोभी हूँ। इस नगरमें भिक्षा माँगनेकेलिये ही सेना सहित आया हूँ। यह भिक्षा द्रव्यकी नहीं है। द्रव्यकी भिक्षा तो माँगे विना भी बहुत मिल जाती है ॥ ३५ ॥

शूरास्तपस्यानिरताश्च पाटीदारा महोदारगुणाः सुबोधाः ।
लोके सुलोकैरिति गीयते तत्परीक्षणायावसरोऽत्र लब्धः ॥३६॥

लोकमें सबलोग बखान करते हैं कि पाटीदार लोग = कूर्मीय लोग बड़े शूर, तपस्वी, गुणवान् और समझदार होते हैं। इसकी परीक्षाका आज समय आया है ॥ ३६ ॥

अहम्मदाबादगतस्य विद्यापीठस्य शिष्टाः गुरवस्तथैव ।
छात्रा अपि त्यागपरायणत्वं स्वीकृत्य युद्धाय विनिर्गतास्ते ॥३७॥

अहमदाबादके विद्यापीठके सभी अध्यापक और सभी छात्र त्यागमार्गको स्वीकार करके युद्धकेलिये * बाहर निकल चुके हैं ॥ ३७ ॥

उदात्तवित्तव्ययसाधितानां विद्यार्थिनां सैनिकताग्रहेण ।
शिक्षालयस्यास्य सुमानितस्य साफल्यमापद्द्रविणव्ययोऽद्य ॥३८॥

बहुत बड़े व्ययसे तैयार किये हुए इन छात्रोंके सेनामें भर्ती हो जानेसे इस प्रतिष्ठित विद्यालयका—विद्यापीठका सब धनव्यय सफल हो गया है ॥ ३८ ॥

---

* विद्यापीठ अहमदाबादके छात्रोंकी एक टुकड़ी श्रीमहात्माजीकी सेनासे आगे आगे चल रही थी। निश्चय यह हुआ था कि जिस जगह महात्माजीकी सेना पकड़ी जाय वहींसे ही यह टुकड़ी कूँचीरूप शुरू कर दे।

यौष्माक एषोऽवसरः स्वदेशसेवाव्रतं पुण्यतमं ग्रहीतुम्।
छात्राः परित्यज्य ततः स्वविद्यामोहं च युद्धाय भवेत सज्जाः ॥३९॥

हे विद्यार्थियो! पवित्र स्वदेशसेवाके व्रतको ग्रहण करनेकेलिये तुम्हारेलिये यह अवसर है। अतः अपनी विद्याके मोहको छोड़कर युद्धकेलिये तैयार हो जाओ ॥ ३९ ॥

पर्याप्तमद्यास्ति न केन्द्रमेकं युद्धस्य तस्मान्निखिलेऽपि देशे।
भवन्तु केन्द्राणि बहूनि किन्तु हेया न कुत्रापि कदाप्यहिंसा ॥४०॥

आज युद्धका एक ही केन्द्र पर्याप्त नहीं है। अतः सारे देशमें केन्द्र बन जाने चाहियें। परन्तु कहीं भी हिंसा न हो ॥ ४० ॥

मासत्रयात्पूर्वमयो न भातः कालोऽनुकूलो नृपशासनस्य।
भङ्गाय तस्मात्समयानुसारि तदुक्तवान्यन्मम योग्यमासीत् ॥४१॥

तीन महीनेसे पहिले मुझे सर्कारी आज्ञाके भङ्ग करनेकेलिये अनुकूल समय नहीं प्रतीत हुआ था। अतः समयानुसार, मुझे जो योग्य था, उसे मैंने तुम्हें उपदेश दिया है ॥४१॥

वात्यद्य वायुः परमोऽनुकूलः शुभो मुहूर्तोऽपि च सद्य एव।
शुभानि भान्यद्य विभान्ति नानाविधानि चिह्नानि शुभानि सन्ति ॥४२॥

आज अनुकूल वायु बह रहा है। आज ही शुभ मुहूर्त है। आज ही शुभ नक्षत्र है। नानाप्रकारके शुभचिह्न भी आज ही प्रतीत हो रहे हैं ॥ ४२ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते नृपशासनानां कृतस्य भङ्गस्य न चास्ति भङ्गः।
उत्तिष्ठताऽतः परिजागृतातस्तन्द्राविभङ्गो-प्यधुनैव कार्यः ॥ ४३ ॥

इस मुहूर्तमें यदि सर्कारी कानूनको तोड़ा जायगा तो फिर वह कभी पुनर्जीवित नहीं हो सकता है। अतः उठो, जागो और आजही आलस्य छोड़ दो ॥ ४३ ॥

रोदित्ययं भारतभूरिदानीं रुदन्ति सर्वत्र च भारतीयाः।
क्षुत्क्षामकण्ठा नहि शोभतेऽतो युष्माकमद्याप्ययनप्रवृत्तिः ॥४४॥

अरे, आज भारतभूमि रो रही है। सर्वत्र भारतवासी भी भूखसे सूखे कण्ठवाले होकर रो रहे हैं। अतः तुमको आज यह पढ़ना शोभा नहीं देता है ॥ ४४ ॥

यूयं युवानो जननीयमद्य वृद्धाऽऽतुरा स्वार्थिभिरर्दिता च।
अस्याः परित्राणमथो विधातुं विधत्त सङ्कल्पमनल्पमेव ॥४५॥

तुम लोग जवान हो। यह भारतमाता वृद्ध और दुखिनी है। स्वार्थियोंने इसे पीडित कर रखा है। अतः तुमलोग इसकी रक्षाकेलिये महान् सङ्कल्प धारण करो ॥ ४५ ॥

पुरा मयोक्तं त्यजतास्य पाठशालाः कुराज्यस्य च राष्ट्रशालाः।
निर्मात संरक्षत ता प्रयत्नैस्तत्रैव यूयं नितरामधीध्वम् ॥४६॥

पहिले मैंने कहा था कि इस दुष्ट सर्कारके स्कूलों—कालेजोंको छोड़ दो। राष्ट्रीय शालाएँ बनाओ। प्रयत्नपूर्वक उनकी रक्षा करो और उन्हींमें पढ़ो ॥ ४६ ॥

ब्रवीमितस्माद्विपरीतमद्य सर्वाणि विद्याभवनानि यूयम्।
त्यक्त्वाद्य युद्धाय विधाय बुद्धिमुद्धारमस्या भुव आतनुध्वम् ॥४७॥

आज मैं उससे उलटा बोल रहा हूँ। सब विद्यालयोंको छोड़कर, युद्धकेलिये विचार करके, इस भारतभूमिका तुमलोग उद्धार करो ॥ ४७ ॥

भूमौ च युद्धस्य समुत्कचित्ता आयात संभूय भुवो जनन्याः।
उद्धारमारातनितुं प्रवीरा न शोचतान्यज्जहिताऽन्यचिन्ता. ॥४८॥

भारतभूमि—माताके शीघ्र उद्धार करनेकेलिये, उत्साही चित्तसे युद्धभूमिमें तुम लोग इकट्ठा होकर आ जाओ। और कुछ मत सोचो। सब चिन्ताओंको छोड़ दो ॥ ४८ ॥

वहन्ति ये शासनकिंकरत्वं न्यायालये ये परियन्ति तस्य।
साहाय्यमस्याऽदधते कथञ्चि च्चे ते स्वदेशाहितमाचरन्ति ॥४९॥

जो लोग सर्कारकी नौकरी करते हैं, उसकी कचहरीमें जाते हैं और किसी प्रकारसे उसकी सहायता करते हैं वह स्वदेशका अहित कर रहे हैं ॥ ४९ ॥

न भोजनाच्छादनयोस्तु चिन्ता कार्या कथञ्चित्प्रविदारणेऽस्मिन्।
सर्वस्य दाता परमेश्वरोऽस्ति दास्यन्त्यसंख्येयजनाश्च तद्व ॥५०॥

इस युद्धमें भोजन-वस्त्रकी चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये। भगवान् सबका अन्नदाता है। असख्य लोग तुमको अन्नवस्त्र देंगे ॥ ५० ॥

ओजस्विता स्वं पदमादधीत सर्वेषु चेद्भारतमानवेषु।
समे यदीशपतिशासनानां भङ्गं प्रकुर्युस्तदभीष्टसिद्धिः ॥५१॥

यदि भारतके सब मनुष्योंके हृदयोंमें ओजस्विता पैदा हो जाय और सबलोग यदि सविनय आज्ञाभङ्ग करने लग जावें तो उस अभीष्टकी सिद्धि हो सक्ती है-भारतकी रक्षा हो सक्ती है ॥ ५१ ॥

त्रिंशच्च कोट्यः किल भारतीयाः सिताङ्गकाः सन्ति च लक्षमेकम्।
तत्कल्पितायाः परतन्त्रताया भवेद्विमोक्षे तु कियान्विलम्बः ॥५२॥

३० करोड भारतवासी हैं और एकलाख अंग्रेज हैं। एक लाख अंग्रेजोंके द्वारा रची गयी हुई परतन्त्रतासे छुटकारा पानेमें कितनी देर लग सक्ती है ? ॥ ५२ ॥

राज्ये सहस्राणि च सप्ततिस्ते सिताङ्गकाः सैनिकतां भजन्ते।
आर्या अनार्या यवनाश्च माहाराष्ट्राश्च सिक्खा अपरेऽपि वीराः ॥५३॥

राज्यमें ७० सहस्र अंग्रेज फौजमें सिपाही हैं और दूसरे भी हिन्दु, मराठे, सिक्ख, मुसलमान आदि हैं ॥ ५३ ॥

सेनाबलेनैव पुराज्यमेतद्धृतात्रसज्ञानवशाननीशान्।
स्वार्थान्धतामिश्रमयं भृताय विनर्तयत्येव नितान्तमस्मान् ॥५४॥

स्वार्थरूप-अन्धकारमय और पापी यह दुष्टराज्य हमलोगोंके अस्त्रशस्त्रोंको छीनकर, विवश और असमर्थ बनाकर, सेनाके बलसे ही हमको नचा रहा है ॥ ५४ ॥

युष्माकमोजोदहने निपत्य स्वयं पतङ्गोपमका इमे ते।
भस्मावशेषान्निजसत्त्वराशीन्करिष्यन्ति शङ्कावसरोऽत्र कोऽसौ ॥५५॥

तुम लोगोंके ओजस्-सामर्थ्यरूप अग्निमें यह सब पतङ्गसमान अंग्रेज़ स्वयं पड़कर समस्त बलको भस्म कर देंगे, इसमें सन्देहकेलिये अवकाश ही क्या है ? ॥ ५५ ॥

किं चैषमो राष्ट्रपतिर्युवैव जवाहिरोऽसौ मिहिरोपमोऽस्ति।
ततोऽपि युष्मासु हि भारतोतेर्भारोऽतिधर्म्यो युवसु प्रपन्नः ॥५६॥

किंच, इस वर्ष सूर्यसमान तेजस्वी पण्डित जवाहिरलाल राष्ट्रपति हैं और वह भी जवान ही हैं। इसलिये भी तुम जवानोंके ऊपर भारतकी रक्षाका धर्मयुक्त भार आ पड़ा है ॥ ५६ ॥

जयेऽविलम्बो ह्यथवा विलम्बो वीरेषु युष्मास्ववलम्बितः स्यात्।
अहिंसनास्त्रेण विजित्य शत्रून्देशप्रतिष्ठां सुदृढीकुरुध्वम् ॥५७॥

युद्धमें विजय प्राप्त होनेमें शीघ्रता अथवा विलम्ब यह दोनों बातें तुम वीरोंपर ही अवलम्बित हैं। अहिंसारूप अस्त्रसे शत्रुओंको जीतकर देशकी प्रतिष्ठाको दृढ बनाओ ॥ ५७ ॥

मनोबलेनैव महाहवेऽस्मिंल्लँब्धुं जयं शक्नुथ नात्र शङ्का।
मनोबलेनैव च वाचि मेऽस्या विश्वासमाधातुमपि स्थ शक्ताः ॥५८॥

मनोबलके द्वाराही इस महासमरमें जय प्राप्त कर सकते हो, इसमें सन्देह नहीं। और मनोबलके द्वाराही मेरी इस बातमें विश्वास भी कर सकते हो ॥ ५८ ॥

मनोबलं बुद्धिबलाद्विधत्ते श्रैष्ठ्यं समन्तादिति भावयेत।
यत्रास्ति बुद्धिर्न मनोबलं चेत्पराभवस्तत्र विधेर्विधानम् ॥५९॥

बुद्धिबलकी अपेक्षा मनोबल सब प्रकारसे श्रेष्ठ है, ऐसा समझो। जहाँ बुद्धि हो परन्तु मनोबल न हो तो वहाँपर पराजय होना ब्रह्माका अमिट लेख है ॥ ५९ ॥

प्राचीनर्षिः परमकरुणः स्त्रीबालकान्यौवने
शुद्धं धर्मं विहरणपरानादिश्य पापघ्नः।
अन्तस्तत्त्वे सकलसुधियां वाणीप्रकाशं परं
संस्थाप्यैष श्रमशमनमाधातुं स्ववासं ययौ ॥६०॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
पञ्चदशः सर्गः

परमदयालु, पापहारी, प्राचीनऋषि, श्रीमहात्माजी स्त्रियोंको, बालकोंको और जवानोंको इस प्रकार शुद्धधर्मका आदेश देकर, सब समझदारोंके अन्तःकरणमें वाणीके प्रकाशको स्थापित करके श्रम दूर करनेकेलिये अपनी वासभूमिको चले गये ॥ ६० ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते पञ्चदशः सर्गः



❀ षोडशः सर्गः

लक्षाधिकैः परिवृतो मनुजैर्महात्मा
तत्रैव रात्रिमतिवाह्य बलेन साकम् ।
प्रातर्जगाम मुनिनायक एव नापां
तस्माच्च बोरसदमाप तमीमुखाग्रे ॥१॥

लाखों आदमियोंसे घिरे हुए श्रीमहात्माजी सेनाके साथ वहीं रात्री बिताकर प्रातःकाल नापा गये और वहाँसे सायङ्काल बोरसद पहुँचे ॥१॥

दूरात्पथो हृदयनाथदिदृक्षया वा
वाणीसुधास्वदनकामनयोपयातान् ।
लोकांश्च बोरसदवासिजनानतर्प्सी-
द्वाचामृतेन स हि विश्वसतत्त्वदश्वा ॥ २ ॥

हृदयनाथ—श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये अथवा उनके उपदेश सुननेकेलिये जो लोग दूरसे आये थे—और जो लोग बोरसदके ही थे—समस्ततत्त्वोंके जाननेवाले श्रीमहात्माजीने अपनी वाणी-अमृतसे सबको तृप्त किया ॥ २ ॥

आसीत्कदापि सुभगः समयः स यर्हि
राज्ये प्रतीतिमधिकामधिकं च हार्दम् ।
हृन्मन्दिरे मम सदाऽपुपमेव पश्चा-
ज्ज्ञातं मयाऽस्य हृदयं दुरितातिदुष्टम् ॥ ३ ॥

यह भी कभी एक समय था कि जब मैं सर्कारके प्रति अधिक विश्वास और अधिक प्रेम अपने हृदयमें सदा रखता था। पीछे मुझे मालूम हुआ कि सर्कारका हृदय पापोंसे अत्यन्त मलिन है ॥ ३ ॥

❀ इस सर्गमें वसन्ततिलका छन्द है ।

तत्प्रेम मे बहुमले विमला प्रतीती
राज्येऽथ सा शुभमनोरथमालिकाऽपि ।
नूनं वृथा समभवन्भ्रमयामिनी सा
प्राभात्ततो मम मनः परिवृत्तिमापत् ॥४॥

इस दोषपूर्ण राज्यमें मेरा वह प्रेम, वह निर्मल विश्वास और वह शुभ मनोरथ सब व्यर्थ चले गये। वह भ्रमकी रात बीत गयी और मेरा मन बदल गया ॥ ४ ॥

नास्त्येव राज्यमिदमुद्वहदार्तिभाजा-
मापत्तिहेतुमनिशं सहयोगपात्रम् ।
ये स्वार्थमेव परिपालयितुं विदन्ति
नो वा परार्थमिह ते परमा जघन्याः ॥ ५॥

यह राज्य सहयोगका पात्र नहीं है; क्योंकि इस राज्यमें दुःखितोंके-लिये सदा दुःखके कारण मौजूद हैं। जो लोग स्वार्थका ही संरक्षण करना जानते हैं और परमार्थका रक्षण करना नहीं जानते वह अत्यन्त नीच जन हैं ॥ ५ ॥

अस्यां च राज्यसरणावधुना नितान्तं
द्रोहं परं परिवहामि सुमानसेन ।
अन्यानपि प्रतिदिनं परिबोधयामि
राज्यद्रुहो भवितुमेव महाश्रमेण ॥ ६ ॥

अब मैं इस राज्यपद्धतिमें पवित्रमनसे अत्यन्त द्रोहबुद्धि रखता हूँ। औरोंको भी मैं बड़े परिश्रमसे राजद्रोही बननेको सिखाता रहता हूँ ॥६॥

कायेन वापि वचसा मनसाऽपि तस्य
साहाय्यमस्ति किल पातकपुञ्जपोषि ।
तस्मादसंख्यजनताऽहितनाशनाय
तद्द्रोह एव परमो विमलोऽस्ति धर्मः ॥ ७ ॥

शरीरसे या वाणीसे या मनसे, किसी प्रकारसे भी इस राज्यकी सहायता करनेसे पाप-पुञ्ज बढता ही है। अतः असंख्य लोगोंकी बुराईका नाश करनेकेलिये, राजद्रोह ही परम पवित्र धर्म है ॥ ७ ॥

शक्यं न यद्गणयितुं द्रविणं तदेतद्
हृत्वैव राज्यमथ भारततः स्वदेशम्।
किञ्चिद्ददाति न ददाति यदि च्छलेन
हर्तुं परं धनमिमानि पटच्चराणि ॥८॥

गिना नहीं जा सके, इतना धन, यह राज्य भारतवर्षसे अपने देशमे ले जाकर, (भारतको) कुछभी नहीं देता है। यदि देता भी है तो केवल यह चिथड़ा! सो भी अधिकाधिक धनहरण करनेकेलिये ही ॥ ८ ॥

ऊरीकृता यदि भवेदथ राजनीति-
रेषा भविष्यति ननु स्वजनापराधः।
भाग्यादहं तु बहिरस्मि ततोऽपराधा-
दस्मात्पृथग्भवत यूयमपि प्रसह्य ॥९॥

यदि इस राजनीतिको मैं स्वीकार कर दूँ तो यह भारतवासियोंका एक अपराध होगा। भाग्यसे मैं इस अपराधसे पृथक् हो चुका हूँ। तुम लोग भी हठात् इस पापसे अलग हो जाओ ॥ ९ ॥

युद्धं विधातुमहमद्य मलीमसेन
राज्येन भारतरिपुप्रवरेण सार्धम्।
हिंसातिरिक्तबलशालि बलं महार्घ्य-
मादाय यामि जलधेः पुलिनेषु दाँडीम् ॥१०॥

भारतके सबसे बडे शत्रु इस पापी राज्यके साथ युद्ध करनेकेलिये मैं अहिंसा-बलसे शोभमान इस महनीय सेनाको लेकर समुद्रके किनारे दांडी जा रहा हूँ ॥ १० ॥

श्रान्ताः स्म एव वयमद्य विपह्य पार-
तन्त्र्याघमस्य मनुजेतरमानसस्य ।
तस्मादयं शुभमुहूर्त उपस्थितोऽस्ति
तत्पातकं निरसितुं शुभवर्त्मनैव ॥११॥

इस अमानुषीय हृदयवाले राज्यके परतन्त्रतारूप पापको-दुःखको सहन करके अब हम थक गये हैं। अतः पवित्रमार्गसे ही इस पापको दूर करनेकेलिये यह शुभ मुहूर्त उपस्थित है ॥ ११ ॥

शुभ्रं स्वराज्यमधिगन्तुमनन्तमान-
ग्लानिक्रमास्तु भवितार उपेक्षणीयाः ।
यद्यद्धि सङ्कटमिहापतति प्रसह्य
सह्यं हि तत्सकलमद्य गृहीतजिह्वैः ॥१२॥

उज्ज्वल स्वराज्यको प्राप्त करनेकेलिये मान-ग्लानि=मानहानि अनेक प्रकारसे होगी और उन सब प्रकारोंकी ओर ध्यान नहीं देना होगा। जो जो सङ्कट आवें सबको जीभ दबाकर सह लेना ही पडेगा ॥१२॥

किं च स्वराज्यमिति सर्वजनाभिलभ्यं
तन्नापगच्छतितरामधिकारिता नः ।
धर्म्यं हि वस्तु परिलब्धुमयं प्रयत्न-
स्तस्मादयं न समरः समपेतधर्मः ॥१३॥

किंच, स्वराज्य यह तो मनुष्यमात्रके प्राप्तकरनेकी चीज़ है। अतः इसकेलिये हमलोगोंका अधिकार भी जाता नहीं है-रह जाता है। धर्मयुक्त वस्तुको प्राप्त करनेकेलिये ही यह युद्धरूप प्रयत्न है। अतः यह युद्ध अधार्मिक युद्ध नहीं है ॥ १३ ॥

यः स्वप्रजाहितविनाशमनिद्रमिच्छे-
द्राजाऽधमः स इति सन्ततमाकलय्य ।
विद्रोह एव मम धर्मतया प्रतीत-
स्तस्मादयस्यमिदमस्ति च धर्मयुद्धम् ॥१४॥

जो रातदिन अपनी प्रजाका अहित चाहता है वह अधम राजा है, ऐसा सर्वदा विचार करके यह विद्रोह = राजविद्रोह, मुझे धर्म प्रतीत हुआ है और अतएव यह युद्ध अवश्य धर्मयुद्ध है ॥ १४ ॥

इच्छामि नाशमनिशं ननु राजनीतेः
सर्वप्रजाहितलिपिः समुपस्थिताया ।
रोमापि नैव विकलं नृपतेर्विधातुं
जागर्ति नो मनसि कश्चिदपीह कामः ॥१५॥

सर्व प्रजाके हितको नष्ट करनेवाली इस वर्तमान राजनीतिका मैं अवश्य ही सदा नाश चाहता हूँ। परन्तु राजाके = बादशाहके एक बालको भी बाँका करनेकी जरा भी इच्छा हमारे मनमें नहीं है ॥ १५ ॥

राजा स्वधर्मपतित. परित. समेति
पातित्यमेव तत एव स नोऽवमान्य. ।
यः सत्करोति वचसाऽप्यधमान्मनुष्या–
न्सोऽपि व्रजत्यधमतामिति निर्विवादम् ॥१६॥

राजा यदि अपने धर्मसे पतित होता है तो वह सर्वथा पतित हो जाता है। अत एव वह लोगोंकेलिये अपमान करने लायक ही होता है। जो मनुष्य अधमजनोंका वाणीमात्रसे भी सत्कार करता है वह भी अधम बन जाता है, यह सर्वमान्य वस्तु है ॥ १६ ॥

यूयं ततः शृणुत सद्वचनं मदीयं
साहाय्यकस्य करणेन कुशासनस्य ।
यः संचित. प्रबलपापचयोऽद्य याव–
त्तन्नाशनव्रतमुपेत मुदाचिरेण ॥१७॥

इसलिये तुम लोग मेरे सत्यवचनको सुनो । इस दुष्ट राज्यकी सहायता करनेसे जो प्रबल पाप आजतक इकट्ठे किये गये हैं उनके नाश करनेके व्रतको शीघ्र ही स्वीकार करो ॥ १७ ॥

भङ्गो भविष्यति परं लवणोपयोगे
निर्बन्धकस्य नियमस्य कृतस्य पूर्वम् ।
पश्चात्ततोऽन्यविपदङ्घ्रिविधूननाय
यातस्य हेयपदवीं नियमस्य स स्यात् ॥१८॥

पहिले सिर्फ उस नियमका भङ्ग किया जायगा जो नमकके उपयोगमें बन्धनकारक है। उसके पश्चात् जो अन्य त्याज्य नियम = कायदे हैं उन सभों का भी, अन्य दुःखोंको दूर करनेकेलिये, भङ्ग किया जायगा ॥ १८ ॥

एवं विरोधमभितः प्रबलं विधाय
राज्यं निरङ्कुशमिदं स्ववशे प्रणीय ।
दारिद्र्यवारिनिधिमानविभञ्जनाय
स्थाप्यं स्वराज्यममलं नितरामगस्त्यः ॥१९॥

इस प्रकारसे सब ओरसे प्रबल विरोध करके इस निरङ्कुश राज्यको अपने वशमें ले आकर, दरिद्रतारूप समुद्रके मानभञ्जन करनेकेलिये अगस्त्यसमान निर्मल—निर्दोष स्वराज्यकी स्थापना करनी चाहिये ॥ १९ ॥

राज्यस्य रक्षणमिषेण च दुर्मदान्धाः
शस्त्रापगोरमसुरा नयवर्त्महीनाः ।
अस्मासु शस्त्ररहितेषु सदा निशङ्काः
स्फारं प्रहारमदयं नियतं प्रकुर्युः ॥२०॥

यह दुर्मदान्ध अन्यायी असुर, राज्यकी रक्षाके बहानेसे शस्त्र उठाकर, निःशस्त्र हमलोगोंपर निश्शङ्क होकर निर्दयतापूर्ण कठोर प्रहार सदा, अवश्यही करेंगे ॥ २० ॥

नीत्यापराधरहितानपि भारतीया-
न्द्वेषाङ्कपा वधभुवं मर्दयितुला नः ।
प्राणान्तदण्डनविधानपि निर्दयत्वं
सन्दर्शयेयुरधिकाधिकमर्थलुब्धाः ॥२१॥

यह अंग्रेज मतवाले और धनके लोभी हैं। निरपराध हिन्दुस्तानियोंको भी पकड़कर यह फाँसीके तख्तेपर ले जायँगे और प्राणदण्ड देनेमें भी यह अपनी नईसि बड़ी निर्दयता दिखावेंगे ॥२१॥

मन्येऽहमेतदपि सत्यमिमेऽपि सन्ति
कङ्कालरक्तपलल्लादियुता मनुष्या ।
अस्मादृशस्तदिह मानवताविरोधि
कृत्य प्रणेतुमवशाश्चितुयुस्त्रपा ते ॥२२॥

मैं यह भी मानता हू कि सचमुच यह भी हमारे समान ही मनुष्य हैं। हड्डी, लोहू, मास आदिसे यह भी बने हुए हैं। अत मनुष्यताविरोधी कार्य करनेमें इ हें भी लज्जा आवेगी ॥२२॥

यस्या स्थितौ निपतिता इह सम्भजन्ते
य क्रूरभावमवदातशरीरभाज ।
एते वय यदि भवेम हि तद्दशाया
नून तमेव वयमप्यवशा भजेम ॥२३॥

यह गोरे जिस स्थितिम पडकर जिस क्रूर भावको धारण करते हैं, यदि उसी स्थितिमें हम भी हों, तो अवश्य ही हम भी उसी क्रूरताको धारण कर सकते हैं ॥ २३ ॥

नोदेति शक्तिरखिलेषु जनेषु ताव-
त्सर्वांत्तु ह्यवसरेऽस्ति च सत्यमेतत् ।
शक्ति समर्पयति तेषु स वर्तमान-
स्तस्मान्नितान्तमिह ते न भवन्ति दूष्या ॥२४॥

यह सत्य है कि सब मनुष्योंमें अवसरपर बर्ताव—व्यवहार करनेकी शक्ति नहीं होती है। वह वर्तमान अवसर ही मनुष्योंमें शक्ति प्रदान करता है। अत इसम अग्रजोंका बहुत दोष नहीं है अर्थात् अवसर पहिचाननेकी शक्तिके अभावसे ही यह अन्याय कर रहे हैं। जब उनमें

समय पहिचाननेकी शक्ति आजायगी तो उनका अन्याय भी बन्द हो जायगा ॥ २४ ॥

नो रोचतेऽस्य विगुणस्य दुरन्तनीती
राज्यस्य तां तदपनेतुमियं प्रवृत्तिः ।
ऊरीकृता बहु विचार्य मया मयि स्या-
च्छक्तिर्यदि प्रलयमद्य नयाम्यहं ताम् ॥२५॥

परन्तु इस विपरीतगुणवाले राज्यकी यह दुःखदनीति हमें पसन्द नहीं है अतः इसको दूर करनेकेलिये, बहुत विचार करके इस प्रवृत्तिको मैंने स्वीकार किया है। यदि मुझमें शक्ति होती तो मैं आज ही इसका सर्वथा नाश करता ॥२५॥

इच्छन्नहं श्वसिमि निःश्वसिमि प्रकामं
तन्नाशमेव नियतं परिशुद्धचित्तः ।
कारागृहे निगडितोऽथ भवामि मुक्त-
स्तस्याः प्रणाश उपकल्पित एव सद्यः ॥२६॥

मैं शुद्धचित्तसे इस दुष्टनीतिके नाशकी इच्छा करता हुआ ही श्वास-प्रश्वास ले रहा हूँ। मैं चाहे जेलमें रहूँ और चाहे बाहर रहूँ, उसका नाश तो अब नियत ही है ॥ २६ ॥

आक्रन्दनं जगदधीश्वरपादयोर्य-
च्छ्रद्धपतिप्रतिनिधावपि दीनवाचा ।
पूर्वं विनिश्चयपुरस्सरमर्पितं त-
त्सत्यं परं विवदते न हि कोऽपि तत्र ॥२७॥

भगवान्के चरणोंमें और वाइसरायके पास मैंने पूर्व निश्चय करके, दीनवाणीसे जो कुछ कहा है वह सर्वथा सत्य ही है। इसमें किसीको भी विवाद नहीं है ॥२७॥

सेनाव्ययो लवणशुल्कतदन्यशुल्का
मद्यादिफेनविषवीटिकृते व्यवस्थाः ।

एतेषु कस्यचिदपि प्रतिकूलतायां
संशेरते न सितचर्मभृतोऽपि जातु ॥२८॥

सेनाका खर्च, नमककर और दूसरे कर, शराब, अफ़ीम, तम्बाकू आदिकेलिये जो कानून हैं, इनमेंसे किसीकी भी प्रतिकूलतामें (यह कर और कायदे अन्यायी हैं इस विषयमें) अंग्रेजोंको भी कभी सन्देह नहीं होता है। अर्थात् सर्वसम्मतिमें यह सब चीजें अन्याय पूर्ण हैं ॥२८॥

सर्वेऽपि ते सविनयार्पितदोषपुञ्जं
मिथ्या वदन्ति न परन्तु समर्थयन्ते।
कुर्युश्च किं परवशा द्रविणस्य लुब्धा
द्रव्यं न चेद्भवतु न प्रकृतिप्रपीडा ॥२९॥

विनयपूर्वक जिन दोषोंको मैंने उनके सामने रखा है, उन्हें वह अंग्रेज लोग भी मिथ्या नहीं बताते, समर्थन ही करते हैं। परन्तु पराधीन और धन-लोभी वह क्या करें? यदि द्रव्य न हो तो प्रजाको कष्ट भी न हो ॥२९॥

ये रक्षिकार्यनिरता पुरुषाश्च केचि—
त्संयोजिता अधिकृता लवणाधिकारैः।
ते नो न चेन्निगडितानिह भावयेयुः
स्यात्क्लीवतेति कथितो नवकोऽपराधः ॥३०॥

जो पुरुष वहां सिपाहीके काममें, नमकके अधिकारोंके साथ नियुक्त और अधिकृत किये गये हैं वह यदि हम लोगोंको गिरफ़्तार न करें तो उनपर "नपुंसकता" का नया अपराध लगाया जायगा ॥३०॥

पश्येच्च कोऽपि यदि नः प्रहरी तदानीं
क्षारं जलेन परिकल्पयतो महाब्धेः।
आज्ञापितो दुरितशासनतोऽवशोऽसौ
शक्नोति नो निगडितुं सहसाप्यपापान् ॥३१॥

हम लोगोंको समुद्रके जलसे नमक बनाते हुए यदि कोई सिपाही देख ले तो दुष्ट सर्कारकी आज्ञासे, विवश होकर वह हम लोगोंको पकड सकता है, यद्यपि हम निरपराधी ही होंगे ॥३१॥

पात्रं जलेन परिपूर्णमथानलस्थं
पश्येत्तदैव तदमत्रमपाहरेत ।
पानीयमप्यखिलमेष महोदधेस्त—
द्दृष्टो विचाररहितो विनिपातयेत ॥३२॥

यदि जलसे पूर्ण पात्रको अग्निपर रखा हुआ देखे तो वह सिपाही हमारे पात्रको भी छीन सकता है। वह विचारहीन असभ्य समुद्रके उस सारे जलको गिरा भी सकता है ॥ ३२ ॥

सज्जीकृतं च लवणं महता श्रमेण
लोकोपकारकरणाय मयाऽपरैश्च ।
एकेन किङ्करजनेन समेत्य तत्तु
शक्येत हर्तुमथवा विकरीतुमद्य ॥३३॥

मैंने अथवा और अन्य किसीने भले बडे परिश्रमसे नमक तैयार कर रखा हो और वह लोकोपकारके लिये ही हो, परन्तु एक ही सिपाही, आकर आज उस सब नमकको छीन सकता है या बिखेर सकता है॥३३॥

आस्ते निरर्थक उपप्लुतको लमुन्द्रे
क्षाराकरः कपडवञ्जसमीप एव ।
शक्यं न कैरपि दृशाऽपि निरीक्षितुं य—
न्नित्यं रजांसि निहितानि भवन्ति तत्र ॥३४॥

कपडवजके पास समुद्रमें निरर्थक नमककी खान भरी पडी है। उसे कोई आँखसे भी नहीं देख सकता है क्योंकि रोज उसपर धूर डाली जाती है ॥ ३४ ॥

अन्याय एष नहि शक्य उपेक्षितुं स्या-
देषोऽपराध उदगाच्च बहिर्दयायाः।
एषाऽऽसुरी भवति नीतिरनीतिपूर्णा
ध्वंस्या क्षणेन सकलैरपि भारतीयैः ॥३५॥

यह अन्याय उपेक्षा करने योग्य नहीं है। यह अपराध दयाके बाहर चला गया—दया करनेयोग्य नहीं है। यह नीति आसुरी है और अत एव अन्यायपूर्ण है। सब भारतवासियोंको चाहिये कि इसे जल्द से जल्द नष्ट कर दें ॥ ३५ ॥

युष्माभिरप्युपहृता धनभस्त्रिकैषा
तस्याः कृते स्वहृदये बहु धारयामि।
तोषाय न प्रभवतीह परं ममैषा
याचेऽहमन्यदपि तेन सुखाय युष्मान् ॥३६॥

तुम लोगोंने भी मुझे यह रुपयोंकी थैली दी है। इसकेलिये मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं। परन्तु इस थैलीसे मुझे सन्तोष नहीं होगा। अतः मैं तुम्हारे पास कुछ और भी माँगता हूँ ॥ ३६ ॥

आरब्ध एष भगवानयमद्य यज्ञो
युष्माभिरप्यनलकाहुतयः प्रदेयाः
अध्यापकाः कुशलमाणवका भगिन्यः
सर्वे सुखं स्वयमिहाभिलिता भवन्तु ॥३७॥

इस यज्ञ भगवान्का आज आरम्भ किया गया है। इसमें तुम लोगोंको भी आहुति देनी होगी। अध्यापक, बड़ी उम्रके विद्यार्थी, बहिनें, सब अपने आप प्रेमसे इस यज्ञमें शामिल हों ॥ ३७ ॥

अस्मिंश्च धर्मसमरे न पराणि सन्ति
शस्त्राणि सत्यमिति केवलमर्थ्यमस्त्रम्।

तद्वाप्यहिंसनमुरुक्रममीडितौजः
शस्त्रद्वयेन कुरुताद्य शिवं स्वकीयम् ॥३८॥

इस धर्मयुद्धमें दूसरे अस्त्र नहीं हैं। केवल पवित्र अस्त्र सत्य तथा पराक्रमी और प्रख्यात बलवाला अहिंसा यही दो अस्त्र हैं। इन्हीं दोनोंसे आज अपना कल्याण बनाओ ॥ ३८ ॥

योग्योऽस्ति नो समय एष उपार्जनाय
विद्यागृहेऽक्षरचयस्य निरर्थकस्य।
तस्माद्विहाय तरसा सकलं प्रपञ्चं
स्वःश्रेयसं जनिभुवोऽस्य विधत्त वीराः ॥३९॥

घरमें निरर्थक अक्षरज्ञान पैदा करनेका यह योग्य समय नहीं है। अतः हे वीरो! इस सब प्रपञ्चको छोड़कर जन्मभूमिकी मुक्ति प्राप्त करो ॥३९॥

वाचो ममाद्य यदि वो हृदये स्थिताः स्युः
कल्याणमेव लभतामुदयं च आशु।
नोचेद्गतेऽवसरेषु समे मनुष्या
देशद्रुहोऽहहह वः परिकीर्तयेयुः ॥४०॥

यदि आज मेरी बात तुम्हारे हृदयमें स्थान पा सके तो शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण हो जावे। अन्यथा, समयके बीत जानेपर सब लोग तुम्हारी गणना देशद्रोहियोंमें करेंगे ॥ ४० ॥

श्रीवल्लभोऽस्ति यदि नायकवर्य एष
कारागृहे निगडितः सितराज्यपालैः।
नैतद्भवेदुचितमत्र हि यूयमद्य
विद्यालये क्षणमपि स्थिरतां विधत्त ॥४१॥

यदि वल्लभभाई जैसे प्रतिष्ठित तुम्हारे नेताको सर्कारने जेलमें बन्द कर दिया है तो अब उचित नहीं है कि तुम क्षणभर भी विद्यालयोंमें—स्कूलों और कालेजोंमें रहो ॥ ४१ ॥

अस्मिन्मृधे न मिलिता यवनाः खिरिस्ति—
लोका यहूदिन इति प्रवदन्ति केचित् ।
मिथ्यैव तां गिरमवेत यतो हि तेषा-
मप्यस्ति नित्यमुपयोज्यमिहाक्षिवं तत् ॥४२॥

कितने ही लोग कहते हैं कि इस लड़ाईमें मुसल्मान, ईसाई और यहूदी शामिल नहीं हैं। उनके इस कथनको मिथ्या ही समझो। क्योंकि नमक तो उन्हें भी सदा उपयोग करनेकेलिये चाहिये ही ॥ ४२ ॥

यस्मात्करान्न वृषभा महिषा न माहा
मुक्ता न वत्सतरका अपि तर्णका नो ।
मुक्ता भवन्तु मनुजाः किमिवाथ तस्मा—
न्मुक्ता भवन्तु कुत एव रणाच्चदस्मात् ॥४३॥

जिस नमकके करमेंसे बैल, भैंस, गायें, छोटे छोटे बछड़े और तुरन्तके पैदा हुए बछड़े भी नहीं छूट सकते उस करमेंसे मनुष्योंमें जिनकी गिनती है वे लोग कैसे छूट सकते हैं? और यदि उस करमेंसे नहीं छूट सकते तो इस युद्धमेंसे वह कैसे छूट सकते हैं? ॥ ४३ ॥

अस्मात्करादहयितुं निखिलान्समर्थाः
साष्टाङ्गिकाः प्रणतयो यदि मत्कृताः स्युः ।
सज्जोऽस्म्यहं रचयितुं किल यत्र तत्र
वाराञ्शतं वहुविधा अपि ता नितान्तम् ॥४४॥

यदि मेरे किये हुए साष्टाङ्ग प्रणाम, सबको इस करमेंसे छुड़ा सकते हों तो मैं चाहे जहाँ सैकड़ोंवार प्रणाम करनेको सदा तैयार हूँ ॥ ४४ ॥

राज्ये कृता विनतयो लिखितश्च पत्र—
राशिर्विवेकवचनानि समर्पितानि ।
नैराश्यमेत्य सकलेभ्य उपायकेभ्य.
पन्थानमेतमहमद्य समागतोऽस्मि ॥४५॥

सर्कारसे मैंने प्रार्थनाएँ कीं। पत्र लिखे। विवेकपूर्ण वचन अर्पण किये। सब उपायोंसे निराश होकर आज मैंने इस मार्गको पकड़ा है॥४५॥

जातोऽस्मि शासनविभङ्गविधानसज्जो
राज्यद्रुहां मुखरतां प्रतिपन्न एव।
कृत्वैतदद्य कथमप्यतिदुःखपूर्णः
शान्तं करोमि विरसं मम तान्तमन्तः॥४६॥

राजद्रोहियोंमें मुख्य बनकर आज मैं कानून भङ्ग करनेके लिये तैयार हुआ हूँ। इतना करके किसी प्रकारसे अपने नीरस और व्याकुल अन्तःकरणको शान्त बनाता हूँ॥ ४६॥

यूयं प्रशान्तिपथगे प्रविदारणेऽस्मि-
न्सर्वेऽपि भारतविपत्तिविपन्नचित्ताः।
सङ्गत्य निर्मलधियो युधमाभजेत
क्षारः करः क्षरणमेष्यति सद्य एव॥४७॥

भारतके दुःखसे दुःखित चित्तवाले होकर यदि तुम सब लोग भी इस शान्त—युद्धमें शामिल होकर, निर्मल बुद्धिसे युद्ध करो तो यह नमकका कर तो अभी नष्ट होता है॥ ४७॥

युष्मासु पौरुषमुदेतु यदि प्रकृष्टं
स्थायि प्रनष्ट इव सैष करोऽस्ति नूनम्।
दुर्दर्शनीयनृपनीतिरियं च सर्वा
आपत्तयोऽप्युपगता विलयं भजेयुः॥४८॥

यदि तुममें पुरुषार्थ पैदा हो जाय और स्थायी बना रहे तो यह नमकके करको तो नाश हुआ ही समझो। नहीं देखी जा सके ऐसी यह—वर्तमान राजनीति और सभी आपत्तियाँ विलयको प्राप्त हो जायँ॥४८॥

साक्ष्यं विधाय निखिलागमवेद्यसर्व-
भूताधिनाथपरमात्मन एव युद्धे।

आमन्त्रयेऽहमखिलानपि वस्ततोऽद्य
साक्षं कुरुध्वममलं विनिवेदनं मे ॥४९॥

सर्व धर्मपुस्तकोंसे जाननेकेयोग्य—सर्व प्राणियोंके स्वामी परमात्मा-को साक्षी रखकर इस युद्धमें तुमलोगोंको मैं निमन्त्रण दे रहा हूँ। अतः आज मेरे इस निर्मल—विशुद्ध निवेदनको तुम लोग सार्थक बनाओ ॥४९॥

सन्देहि नाल्पमपि यत्समुदायकेऽस्मि—
न्श्वेताङ्गका अपि बलं मम वर्धयेयुः।
अन्यायमेकमभिपातुमनीश्वरास्ते
नान्यायपुञ्जदहनं ज्वलयेयुरद्धा ॥५०॥

मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि इस युद्धमें अंग्रेज भी मेरे बलको बढावेंगे। हे अनघाः = निर्दोष बन्धुओ! एक अन्यायकी रक्षाकेलिये अनेक अन्यायरूप अग्निको वे लोग नहीं प्रज्वलित करेंगे ॥ ५० ॥

अस्याः पुरः स्थित इवास्ति कुराजनीते-
र्नाशो न संशयितुमर्हथ यूयमत्र।
वीर्यं प्रदर्शयत वीरजनोचितं चे—
त्कामं फलिष्यति सुखेन व ईहितार्थः ॥५१॥

इस राजनीतिका नाश तो अब मानो सामने ही खड़ा है। इस विषयमें अब तुम्हें सन्देह नहीं करना चाहिये। वीरजनोचित वीरताका प्रदर्शन करो, कराओ। सुख के साथ तुम्हारा मनोरथ अत्यन्त सफल होगा ॥ ५१ ॥

स्वतन्त्रता महाप्रसादमेत्य शीतलानना
गृहीतमालिका करेण भारतार्तिहारिणी।
समीपमेति विह्वला न चास्तु नः पलायनं
समीहितं चिरेण पूर्तिमाशु नः प्रयातु तत् ॥५२॥

शीतलमुखवाली, भारतके दुःखको हरण करनेवाली स्वतन्त्रता (देवी)

हाथमें माला लेकर विह्वल होकर हमारे पास आ रही है। हम लोग भागें नहीं। चिरकालका मनोरथ शीघ्र अब पूर्ण होगा ॥ ५२ ॥

पथ्यमेतदुपदिश्य सद्वचाः
कामपि श्रियमपूर्विकां दधत् ।
शर्वरीमुपनयन्कृतार्थतां
तां सुपेण इह सप्रगे ययौ ॥५३॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकश्रीस्वामिभगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
षोडशः सर्गः

सत्यवादी श्रीमहात्माजी इस हितकारक वस्तुका उपदेश करके किसी अपूर्व शोभाको धारण करते हुए, उस रात्रिको कृतार्थ करके शान्तिपूर्वक प्रातःकाल सेनासहित चले गये ॥ ५३ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते षोडशः सर्गः



※ सप्तदशः सर्गः

एष बोरसदवासिमानवास्तद्धितार्थमुपदिश्य सत्कृतः ।
सत्प्रयाणमकरोच्च मानवैः प्रेमनिस्सृतजलाधिलोचनैः ॥ १ ॥

श्रीमहात्माजीने बोरसद वासियोंको उनके हितका उपदेश करके लोगोंसे आदृत होकर वहाँसे प्रयाण कर दिया। उस समय लोगोंकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भरे हुए थे।

वर्त्मसंस्थितजनान्समुत्सुकान्मन्दहास्यमभिदर्श्य मानयन् ।
धर्मयुद्धरचनाचिकीर्षया सेनया सह ययौ जवेन सः ॥ २ ॥

दर्शनकेलिए रास्तेमें बैठे हुए लोगोंको अपने मन्दहास्यसे सम्मानित करते हुए, धर्मयुद्धकी रचना करनेकी इच्छासे सेनाके साथ बिना विलम्ब चले गये ॥ २ ॥

संजगाम स च रासनामकं ग्राममुत्प्रथितकीर्तिपुञ्जकम् ।
यत्र वल्लभ इहेन्द्रकिङ्करैः प्रापितो बत निगृह्य बन्दिताम् ॥ ३ ॥

श्रीमहात्माजी बहुत कीर्तिवाले रास गाँवमें पहुँचे। जहाँ कि बादशाहके नौकरोंने—राजकर्मचारियोंने श्रीवल्लभभाईको पकड़कर क़ैदी बनाया था ॥ ३ ॥

दर्शनाय महतां महीयसो दूरतोऽपि जनता समागता ।
सा तुतोष समवेक्ष्य सत्प्रहं सन्तुतोष स च तां धयन्दृशा ॥ ४ ॥

श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये दूरदूरसे भी लोग आये हुए थे। लोग श्रीमहात्माजीको देखकर और श्रीमहात्माजी लोगोंको देखकर सन्तुष्ट हुए ॥४॥

पाणिभागमथ सा क्षणे क्षणे व्युत्थितं हि विरचय्य तं मुनिम् ।
चारणाङ्गुलिपु भारमात्मनो विग्रहस्य विनिधाय चैक्षत ॥ ५ ॥

इस सर्गमें रथोद्धता छन्द है।

सा = वह जनता अपनी एँडीको ऊँची करके, और अपने शरीरका सब भार पैरोंके पञ्जेपर रखकर, उन श्रीमहात्माजीका दर्शन करने लगी। अर्थात् उचक उचक कर लोग उन्हें देखने लगे ॥ ५ ॥

श्रान्तिमेष पथि सङ्गता महाशान्तिभूमिपतिराश्वपानयत्।
स्नानभोजनकृतिं च सत्कृती संवृतो जनतया समापयत् ॥ ६ ॥

सत्कृती और परम शान्त श्रीमहात्माजीने, मार्गकी थकावट को शीघ्र ही दूर कर दिया। जनतासे घिरे हुए ही उन्होंने स्नान और भोजनकी क्रियाको समाप्त किया ॥ ६ ॥

उच्चकैर्विरचितात्सुमञ्चकात्प्रस्फुरद्द्युतिविशोभिताननः ।
चारुसञ्चितविचारसुन्दरः सुन्दरं वचनमाजहार सः ॥ ७ ॥

एक ऊँचा सिंहासन बनाया गया। उसपर बैठकर, देदीप्यमान मुखवाले और सुन्दर विचारवाले श्रीमहात्माजी सुन्दर उपदेश करने लग गये ॥ ७ ॥

* एतदेव विलसन्महामहो मण्डलं स सरदारवल्लभः।
जग्मिवान्सपदि यत्र वाञ्छितां वन्दितां परमवीरपूजितः ॥ ८ ॥

यह वही महान् तेजस्वी प्रान्त है जहाँपर बडे बडे वीरोंसे पूजित श्रीसरदार वल्लभभाईने अपनी चाही हुई कैदको प्राप्तकी है ॥ ८ ॥

अस्ति मण्डलमिदं प्रतिष्ठितं यत्र पूर्वमतिगर्वितामिमाम्।
राजनीतिमभिजित्य संगरे वल्लभो विजयमापदुज्ज्वलम् ॥ ९ ॥

यह वही प्रतिष्ठित प्रान्त है जहाँ पहिले श्रीवल्लभभाईने इस अभिमानपूर्ण राजनीतिको ×युद्धमें जीतकर, उज्ज्वल विजयको प्राप्त किया था ॥९॥

---

* यहाँसे महात्माजीका भाषण शुरू होता है।

× सन् १९२४ ई० में इसी तालुकेमें श्रीवल्लभभाईने एक असहयोग युद्ध किया था जिसमें सर्कारको अपनी भूल कबूल करनी पड़ी थी।

तद्धि कार्यमधुना मयेह वा तद्भवेद्य करणीयमद्य वः ।
वल्लभस्य विजयार्चितस्य यन्मानसस्य परितोषमावहेत् ॥ १० ॥

इस समय मुझे भी वह कार्य करना चाहिये और तुम लोगोंको भी वही कार्य करना चाहिये जिससे कि विजयी श्रीवल्लभभाईके हृदयको सन्तोष प्राप्त हो ॥ १० ॥

ते प्रशस्यपदवीमुपागता ये जहुर्निजमुखित्यमर्थकृत् ।
किन्तु सन्ति बहवः परेऽपि ये न त्यजन्ति धनलोभबन्धनम् ॥११॥

मुखीपना केवल अर्थ धन हरण करनेकेलिए ही होता है । जिन्होंने इस मुखीपनेको छोड दिया है वह प्रशसाके पात्र हैं । परन्तु अभी तो दूसरे बहुत मुखी हैं जो धनके लोभरूप बन्धनको नहीं छोड रहे हैं ॥ ११ ॥

वेतनाय मुखितां न ते क्वचिद्धारयन्ति मुखिताधिकारिणः ।
केवलं तदधिकारलोभतस्तत्र तैः स्वहितमेव साध्यते ॥१२॥

वेतनकेलिये कोई भी मुखीपनेको स्वीकार नहीं करता । वह सभी मुखिता—मुखीपनेके अधिकारी हैं । अर्थात् मुखी बननेसे अनेक प्रकारकी अन्यायपूर्ण स्वतन्त्रताएँ मिलेंगी । केवल अधिकारके लोभसे ही लोग मुखी बनते हैं और उस अधिकारके मिलनेपर सब अपना ही हित साधते हैं ॥ १२ ॥

राजनीतिरियमद्य भारतं लुण्ठितुं रचितनिश्चितिस्ततः ।
देशनाशनविधौ न दीयतां शासनाय भवतां सहायता ॥१३॥

आज इस राजनीतिने भारतको लूटनेका निश्चय कर रखा है। अतः तुम लोग देशके नाश करनेमें राज्यको कोई भी अपनी सहायता मत दो॥१३॥

ग्रामभाग इह ये तलाटिनो येऽभिषन्ति मुखिनोऽथ रक्षिणः ।
तान्विधाय निजसाधनं महद्राजनीतिशकटं प्रचाल्यते ॥१४॥

ग्रामोंमें जो तलाटी हैं, जो मुखी हैं और जो सिपाही हैं, उन सबको अपना एक बडा भारी साधन बनाकर इस राजनीतिके गाडेको चलाया जा रहा है ॥ १४ ॥

कर्म किञ्चन न चेत्प्ररोचते नैव कार्यमिह कैश्चिदेव तत् ।
कैश्चिदप्यथ भयैः क्रियेत तत्कारकांश्च दुरितं समाश्रयेत् ॥१५॥

जो कार्य किसीको पसन्द न हो उसे नहीं करना चाहिये। किसी प्रकारके भयसे यदि वह कार्य किया जाय तो करनेवाले को पाप ही लगता है ॥१५॥

एतदान्तरभयप्रणाशने सक्त एव सरदारवल्लभः ।
राक्षसार्हनयपालनोद्यतैर्बन्दिसद्मनि निधीयतेऽधुना ॥१६॥

इसी आन्तरिक भयको नष्ट करनेकेलिये श्रीसरदार वल्लभभाई लगे हुए थे। उन्हें इस राक्षसीनीतिकी रक्षामें लगे हुए राजकर्मचारियोंने जेलमें रख छोड़ा है ॥ १६ ॥

तेन न प्रवचनं कचित्कृतं नोदपादि खलु कोऽप्युपद्रवः ।
धिक्तथापि नरपामरैर्महान्नायको विनिगृहीत एष तैः ॥१७॥

उन्होंने-वल्लभभाईने न तो कहीं कोई व्याख्यान दिया और न कोई उपद्रव किया। तथापि, धिक्कार है, कि नीचपुरुषोंने उन्हें पकड़ लिया ॥१७॥

आजगाम स च यच्चिकीर्षया वल्लभोऽत्र गुजरातवल्लभः ।
तत्तु सर्वविदितं पुराऽभवद्गोपितं किमपि तेन नो सता ॥१८॥

गुजरातके वल्लभ सर्वप्रिय, श्रीवल्लभभाई जिस कामको करनेकी इच्छासे यहाँ आये थे वह तो पहिले ही सबको विदित था। उन्होंने कुछ छिपा नहीं रखा था ॥ १८ ॥

सत्यवर्त्मनि रतोस्ति यो नरस्तस्य गोप्यमिह किञ्चनास्ति नो ।
आगमत्स कृपया कृपापरो मार्गमार्जनकृते ममोद्धुरः ॥१९॥

जो मनुष्य सत्यमार्गमें लगा हुआ हो उसके पास छिपाने योग्य कोई वस्तु नहीं होती है। वह तो कृपाकरके मेरे मार्गको साफ़ करनेके लिये ही आये थे ॥ १९ ॥

चारशासनविभञ्जनं परं मत्सहायकगणेन या मया ।
कार्यमत्र न परप्रयोजना योजनेयमुररीकृताऽभवत् ॥२०॥

नमककानूनका तोडना या तो मेरे द्वारा हो या मेरे साथियों-सैनिकोंके द्वारा हो। इस कार्यमें दूसरोंकी आवश्यकता नहीं है; इस तरहकी योजना बनायी गयी थी ॥ २० ॥

संस्तुता न निखिला भवन्ति वो ये मया सह समागता इह।
एषु सन्ति बहवो गुणाश्रया वल्लभस्य सुधियः सुसेवकाः ॥२१॥

ये जो लोग मेरे साथ आये हैं यह सब तुम लोगोंके परिचित नहीं हैं। इनमें बहुत से तो सुधी श्रीवल्लभभाईके सेवक हैं ॥ २१ ॥

अल्पमेव परिदण्डयच्च तं शासनं गतमति व्यलज्जयत्।
स्वं च तं च नरतल्लजं कुतो बुद्धिरस्तु जडतापताडिते ॥२२॥

इस निर्बुद्धि सर्कारने उनको थोडा सा ही दण्ड करके अपने को और उनको भी लज्जित किया है। जडतासे मारे गये हुएको अक्ल कहाँसे हो? ॥ २२ ॥

देशबाह्यकरणं च मस्तकच्छेदनं च गुलिकाभिमर्जनम्।
दण्डनं यदि तु मादृशामिदं शोभतेऽपि न हि तद्विशोभते ॥२३॥

मेरे जैसोंको तो देशनिकाला, या सिरकाटना, या गोलियोंसे मरवाना, यह सब दण्ड—शोभा देता है। वह दण्ड—तीन महीनेकी जेलकी सजा—नहीं शोभा देता ॥ २३ ॥

द्रोहणं दुरितशासनाय मे सम्मतं परमधर्मवर्धनम्।
शिक्षयामि नितरामहं प्रजा धर्ममेतमथ मोक्षसाधनम् ॥२४॥

दुष्ट सर्कारके प्रति द्रोह करना मेरी सम्मतिमें परम धर्मवृद्धिका कार्य है। इसी धर्मको मैं प्रजाको सदा सिखा रहा हूँ। यही धर्म मोक्षका—स्वतन्त्रताका साधन है ॥ २४ ॥

यच्च शासनमहर्दिवं प्रजापीडनानि निखिलेषु निर्दयम्।
क्षारशुल्करचनां च दुर्व्ययं सैनिकादिषु करोति सर्वदा ॥२५॥

जो सर्कार रातदिन प्रजाको पीडित कर रही है और सबपर—गरीब

और अमीरपर-नमकवा कर रख रही है, और जो फौज आदिकेलिये निरर्थक व्यय सदा कर रही है ॥ २५ ॥

यच्च पञ्चभिरहो सहस्रकैर्वेतनं गुणितमेव यच्छति।
भूपतिस्थितिभुजेऽधिकं सदा भारतीयजनतायतोऽत्रपम् ॥२६॥

जो वाइसरायको भारतीय जनताकी आयसे ५ हजार गुणा अधिक वेतन सदा देती रहती है ॥ २६ ॥

पञ्चविंशतिमथापि वार्षिकीं यच्च कोटिमहिफेनमद्यतः।
मुद्रिका जयति षष्टिकोटिं यद्भिन्नदेशवसनक्रयादपि ॥२७॥

जो सर्कार २५ करोड रुपये प्रतिवर्ष अफीम और शराबसे पैदा करती है और अरे रे ! जो सर्कार ६० करोड रुपये विदेशी कपडोंसे पैदा करती है ॥ २७ ॥

संघशो मनुजनीनहर्दिवं संस्थितानिह च जीविकां विना।
यन्न पश्यति दरिद्रतामहाराज्यमत्र वितर्त समन्ततः ॥२८॥

जो सर्कार, जिन को जीविका नहीं मिल रही है ऐसे उन असख्य मनुष्योंको भी नहीं देखती है और जो चारोंओर फैले हुए दारिद्र्यको भी नहीं देखती है ॥ २८ ॥

शासनस्य बत तस्य दुर्दशो नाशनाय सततं समुत्सुकः।
द्रोहमेव जनतापकारके धर्ममद्य परमं प्रवेद्म्यहम् ॥२९॥

उस दुर्विचारवाली सर्कारका नाश करनेकेलिये मैं सदा उत्सुक हूँ। उस घातक सर्कारके साथ द्रोह करना मैं परम धर्म मानता हूँ ॥ २९ ॥

शासनेन सहसेति वीक्षित वन्दितां हि गमितेऽद्य वल्लभे।
भारतीयजनता भविष्यति प्रेक्ष्य दुःखमतिभीपराहता ॥३०॥

इस दुष्ट सर्कारने तो विचारा होगा कि श्रीवल्लभभाईको जेलकी सजा दे देनेपर, उस दुःखको देखकर भारतीय जनता भयभीत हो जायगी ॥ ३० ॥

भूतमद्य विपरीतमेव यन्निर्भयत्वमधिगत्य सर्वथा।
श्रोतुमत्र मम हार्दिकं वचो धर्मभावगति यूयमागताः ॥३१॥

परन्तु हुआ उलटा ही। जिससे कि आज तुमलोग अधिक निर्भय होकर मेरे हार्दिक और धार्मिक वचनको सुननेकेलिये यहाँ आये हो ॥ ३१ ॥

शासनं च यदि बन्धनेन मां योजयेदखिलसेनया सह।
एष वोऽस्तु परमोत्सवः परं कार्यमग्रिममतोऽवधार्यताम् ॥३२॥

यदि सर्कार मेरी सारी सेनाके साथ मुझे जेल भेज दे तो यह तुम लोगोंकेलिये आनन्दकी बात होनी चाहिये। और तब भविष्यकेलिये कर्तव्य निश्चित कर लेना ॥ ३२ ॥

शीघ्रमेव विजहीत बन्धवः शासनेन परिकल्पितां भृतिम्।
देशदु:खरजनीविनाशने व्यापृता भवत भारतारुणाः ॥३३॥

भाइयो! राज्यकी दी हुई नौकरीको शीघ्र छोडदो। देशकी दु:ख-रात्रिको नाश करनेमें, हे भारतके अनेक सूर्यो! तुम तल्लीन हो जाओ॥३३॥

एष तिष्ठति ढसाधरापतिस्त्यागमूर्तिरिव वो दृगङ्गने।
गृह्यतां नरपतेरतः सदा साहसं परतरोऽपरिग्रहः ॥३४॥

यह ढसा राज्यके राजा श्रीमान् गोपालदासभाई साक्षात् त्यागमूर्तिके समान तुम्हारी आँखोंके आगे बैठे हुए हैं। इन—राजासे साहस और महान्—अपरिग्रहका ग्रहण करो ॥ ३४ ॥

दत्तमेव धनमद्य मेऽधिकं नाधुना तदधिकं मयेष्यते।
कामये युधि कृतं समर्पणं तत्समं यदिह वोऽस्तु साम्प्रतम् ॥३५॥

तुम लोगोंने आज मुझे बहुत धन दिया है। अब उससे अधिक मैं धन नहीं चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हारा जो कुछ हो, वह सब इस लडाईमें अर्पण कर दो ॥ ३५ ॥

सन्तु ते सुतसुतादयोऽपि च. प्रार्पिता इह सुधर्मकर्मणि।
यूयमद्य गतकल्मषा मुदा. स्वात्मनो जुहुत युद्धपावके ॥३६॥

तुम्हारे उन—प्रिय बालबच्चोंको भी इस सुन्दर धर्मकार्यमें अर्पण कर दो। पवित्र और दृढनिश्चयी बनकर अपनेको भी इस युद्धाग्निमें होम कर दो ॥ ३६ ॥

अत्र कस्यचिदपि प्रवर्तते हिंसनं न वचसापि संयुगे।
दुःखमेव परिषह्य सर्वशः शासनं समुपदिश्यतां शठम् ॥३७॥

इस युद्धमें किसी की वाणीसे भी हिंसा नहीं की जायगी। केवल दुःखको ही सर्वथा सहन करके इस सर्कारको उपदेश देना है ॥ ३७ ॥

विश्वमद्य निखिलं समीक्षतां भारतीयजनतासहिष्णुताम्।
अन्ततो विपरिवर्तितं भवेच्छासनस्य हृदयं विनिष्ठुरम् ॥३८॥

आज सारे जगत्‌को भारतवर्षकी प्रजाकी सहनशक्तिको देखने दो। अन्तमें सर्कारका अत्यन्त कठोर हृदय परिवर्तित हो जायगा ॥ ३८ ॥

यद्यपि प्रतिपलं समेधते क्रूरताद्य निखिलेऽपि शासने।
नाशया विरहितो भवामि तन्निर्मलं स भगवान्विधास्यते ॥३९॥

यद्यपि सम्पूर्ण राज्यमें इस समय प्रतिक्षण निर्दयता बढती ही जा रही है; तथापि मैं निराश नहीं हो रहा हूँ। भगवान् उसे अवश्य पवित्र करेंगे ॥ ३९ ॥

क्रन्दनं जनतया कृतं महत्सत्वरं समधिगत्य सर्वथा।
रक्षितुं हि भवितव्यमुद्यतैः शासकैर्विदितसङ्कटामिमाम् ॥४०॥

जनताके क्रन्दनको सुनकर, उसके सङ्कटोंका पता लगाकर शासकोंको उसकी शीघ्र रक्षा करनेकेलिये तैयार हो जाना चाहिये ॥ ४० ॥

शासनेन परमेतकेन तद्दुःखवृद्धिरभिवाञ्छिता सदा।
इङ्गलैण्डपरिपोषणाय तत्सर्वथा प्रयतते दुराननम् ॥४१॥

परन्तु इस सर्कारने जनता के दुःखकी वृद्धिकी ही सदा इच्छा की है। यह दुर्मुख सर्कार इङ्गलैण्डके पोषण करनेकेलिये ही सर्वथा प्रयत्न करती है ॥ ४१ ॥

भारतस्य सुखसम्पदागमः शासनाय नहि रोचते मनाक् ।
नैव पामरजनो विचारयेत्स्वार्थहानिमपरस्य चोन्नतिम् ॥४२॥

भारतकी सुख-सम्पत्तिका आगम इस सर्कारको जरा भी अच्छा नहीं लगता है। ठीक ही है, पामरजन स्वार्थकी हानि और परायी उन्नतिको नहीं विचारते ॥ ४२ ॥

त्रासमेतदभिवर्धते सदा वर्त्म तेन हि मया विमार्गितम् ।
राजशासनविभञ्जनात्मकं सर्वदा सुरति सार्वकामिकम् ॥४३॥

यह त्रास सदा बढ़ता ही जा रहा है अतः मैंने राज्यकी आज्ञाके भङ्ग करनेका, सुन्दर और सर्व कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, मार्ग ढूँढ़ निकाला है ॥ ४३ ॥

क्षारशुल्कनियमस्य भञ्जनाद्बन्धनाप्तिमपि सोढुमुद्यताः ।
धन्यवादसहितं सहामहे ताडनानि च कशाशतैरपि ॥४४॥

नमक क़ानूनको तोड़नेसे यदि जेल भी मिले तो उसे सहनेकेलिये हम तैयार हैं। यदि हमको सैकड़ों कोड़ोंकी भी सज़ा मिले तो हम धन्यवाद सहित उसे सहेंगे ॥ ४४ ॥

प्राणदण्डनभिया न शक्यते सङ्गराद्द्रचयितुं पलायनम् ।
आपदामवचयं निपातितं शासनेन शिरसा वहामहे ॥४५॥

प्राणदण्डके भयसे हम लोग रणभूमिसे भाग नहीं सकते। सर्कारकी ओरसे डाली गयी हुई आपत्तियोंके ढेरको हम शिरपर चढ़ावेंगे ॥ ४५ ॥

शासकैर्विरचितासु भारते यावदेव नहि राजनीतिषु ।
धीयते सुपरिवर्तनं वयं नोपरन्तुमभिकामयामहे ॥४६॥

भारतमे प्रचलित राजनीतिमें जबतक शासकगण सुन्दर परिवर्तन नहीं करें तबतक हम लोग उपराम लेना नहीं चाहते हैं ॥ ४६ ॥

षोडशाब्दिकवयोयुवोऽतिगान्बालकानपि जरातुरानपि ।
यौवने वयसि संस्थितानहं प्रार्थयेऽवतरितुं रणाङ्गने ॥४७॥

१६ वर्ष से अधिक आयुवाले बालकोंको भी, बूढोंको भी और जवानोंको भी मैं रणभूमिमें उतरनेकी प्रार्थना करता हूँ ॥४७॥

योपितामपि गणान्महाक्षणान्प्रार्थये विनयपूर्वकं तथा।
यावदेष निरियान्न दिष्टकस्तावदेव समुपेत सर्वशः ॥४८॥

मैं परम उत्साही बहिनोंके भिन्न भिन्न समाजोंसे भी विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि समय बीतजानेसे पहिलेही वह भी इस युद्धमें सब तरहसे आ जावें ॥४८॥

एवं स नायकशिरोमणिरद्भुताभि-
स्ताभिश्च गीर्भिरखिलस्वमनोभितापम्।
स्त्रीपुंसशुद्धहृदयेषु च सङ्क्रमय्य,
कर्तव्यबोधनपटुर्विरराम योगी ॥४९॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
सप्तदशः सर्गः

नेताओंमें श्रेष्ठ और कर्तव्य बतानेमें निपुण श्रीमहात्माजी इस प्रकारसे उन अद्भुत वचनोंसे अपने मनके समस्त दुःखोंको स्त्रीपुरुषोंके हृदयोंमें सङ्क्रमण कराकर, चुप हो गये ॥४९॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते सप्तदशः सर्गः



❀ अष्टादशः सर्गः

प्रस्थाय रासादरविन्दनाभकान्तः स कङ्कापुरमाशु गत्वा।
तत्रापि सर्वान्स्ववचः सुधाभिः सन्तर्पयामास दयालुचेताः ॥१॥

विष्णुके समान कान्तिवाले श्रीमहात्माजीने राससे चलकर शीघ्र ही कङ्कापुर जाकर, वहाँ भी सब लोगोंको अपने वचनामृतसे तृप्त किया ॥१॥

सम्मानितो मानिजनैर्महात्मा स्वसेनया सार्धमतिप्रसन्नः।
गन्तुं स कारेलिमितोऽविलम्बं व्यतीत्य तां रात्रिमथ प्रतस्थे ॥२॥

मानिपुरुषोंसे सम्मानित होकर, कङ्कापुरमें ही रात्रिको बिताकर, अतिप्रसन्न श्रीमहात्माजी, शीघ्र कारेली जानेकेलिये अपनी सेनासहित प्रस्थित हो गये ॥ २ ॥

कारेलिमभ्येत्य महाप्रसाद सदृष्टवान्मानवसागरं सः।
नित्यक्रियाः स्वस्थतरः समाप्य सभास्थलं धीरगतिर्जगाम ॥३॥

श्रीमहात्माजीने कारेली जाकर महाप्रसन्न मानवमहासागरको देखा। नित्यक्रियाको समाप्त करके, खूब स्वस्थ होकर तब, सभास्थानमें गये ॥३॥

पुलिसपटेलान्मुखिनस्तलाटींस्त्यक्तुं समादिश्य महीपकार्यम्।
गन्तुं च तद्दर्शितवर्त्मनैव साय गजेरा स समाससाद ॥४॥

कारेलीमें पुलिसपटेलों, मुखियों और तलाटियोंके सर्कारी काम छोड देनेका और अपने बताये हुए मार्गमें ही चलनेका उपदेश देकर वह गजेरामें पहुँचे ॥ ४ ॥

दूराच्छूतं तेन महात्मना यद्ग्रामे गजेराख्य उपस्थितानाम्।
श्रद्धातिभारोपगतान्त्यजानां सभाप्रवेशः प्रतिषिद्ध आस्ते ॥५॥

❀ इस सर्गमें उपजाति छन्द है।

श्रीमहात्माजीने दूरसे ही सुना था कि गजेरा ग्राममें श्रद्धासे आये हुए अन्त्यजोंको उनकी सभामें आनेकी मुमानियत की गयी है ॥ ५ ॥

उदारचेताः स पुराणिछोटालालं महावीरमुपाजुहाव ।
पृष्टश्च तेनैव सुधीः पुराणी वृत्तं समस्तं समुदाजहार ॥६॥

उदारमनवाले श्रीमहात्माजीने महान् वीर श्रीछोटालाल पुराणीको बुलाया । महात्माजीके पूछनेपर उन्होंने सब समाचार कह सुनाया ॥६॥

उपासनायाः परमेव लोककृतार्थतायायनवद्यचर्यः ।
जवेन मध्येसभमाशु धीरो गत्वा सभाभूमिमभूषयत्सः ॥७॥

उपासना--प्रार्थनाके पश्चात् ही लोगोंको कृतार्थ करनेकेलिये पवित्र आचरणवाले और धीर श्रीमहात्माजीने शीघ्र ही सभामें जाकर सभास्थलको सुशोभित किया ॥ ७ ॥

सैन्यं तदीयं समुदन्त्यजानां दलेन सार्धं पृथगेव तस्थौ ।
एतत्तु दृश्यं हृदयप्रदारि महात्मनोऽसह्यमभूदतीव ॥८॥

श्रीमहात्माजीकी सेना (सभामें) अन्त्यजोंके साथ पृथक् बैठ गयी । यह हृदयविदारक दृश्य श्रीमहात्माजीकेलिये असह्य हुआ ॥ ८ ॥

वंहिष्ठधामा यतिभूमिभूप आप्यानशोकोऽन्त्यजबन्धुभेदात् ।
स्ववाचि रुन्धन्पटिमानमेष गिरं गभीरां समुवाच लोकान् ॥९॥

परमतेजस्वी यतिधर्मपालकशिरोमणि श्रीमहात्माजी, अन्त्यज भाइयोंको पृथक् करनेसे बडे शोकातुर होकर बुद्धिमत्ताकेसाथ लोगोंसे कहने लगे ॥९॥

सह्या न केनापि कुनीतिरित्येतस्मात्स्वराज्याभिरुचिः समुत्था ।
कथन्तरामन्त्यजवर्गकेऽस्मिन्ननीतिरेषा परिपालिता स्यात् ॥१०॥

किसीके भी अन्यायको नहीं सहना चाहिये, इसी सिद्धान्तसे स्वराज्यकी इच्छा पैदा हुई है । तब इस अन्त्यज समुदायपर किया गया हुआ यह अन्याय कैसे बचाया जा सकता है ? ॥ १० ॥

उज्जीवनं भेदमतेर्यदि स्यादङ्ग्रेजराज्यं दृढमूलमेव।
तदा भवेत्तेन विभेदभेदे प्रवृत्तिरेवास्तु महाजनानाम् ॥११॥

यदि भेदबुद्धिका उज्जीवन—उत्थान होगा तो अंग्रेजोंका राज्य अधिक मजबूत बनेगा। अतः भेदको नष्ट करनेमें ही महापुरुषोंकी प्रवृत्ति होनी चाहिये ॥११॥

भिन्नो भवेयं भुवि खण्डशोऽहं तथा परावृत्य निजाश्रमाय।
गच्छेयमेतत्र परं समीहे पराभवेद्दुर्बलमत्र कोऽपि ॥१२॥

मैं टुकडा टुकडा हो जाऊँ, लौटकर आश्रममें चला जाऊँ; परन्तु मैं यह कभी भी नहीं चाहूँगा कि कोई भी गरीबोंका तिरस्कार करे ॥ १२ ॥

तदीयवाणीतपनोदयेन बुद्ध्यावृतिर्नाशमुपेयुषी तत्।
आकारयामासुरिमे जनौघाः स्वयं स्वबन्धून्सविधेऽन्त्यजांस्तान् ॥१३॥

श्रीमहात्माजीके वाणीरूप सूर्योदयसे प्रकाशसे बुद्धिका आवरण नष्ट हो गया। अतः जनसमुदायने स्वयं ही अपने भाई अन्त्यजोंको अपने पास बुला लिया ॥ १३ ॥

ततः परं धर्मधुरीण एष तस्यां सभायां सकलानपेक्ष्य।
समादिदेशेति विमुक्तिकामान्समुत्सुकान्मुक्तिधराधरेन्द्रः ॥१४॥

उसके पश्चात् धर्मधुरन्धर श्रीमहात्माजीने उस सभा में सबको उद्देश करके, स्वतन्त्रताकी इच्छा करनेवाले और उत्कण्ठित उन लोगोंको इस प्रकारसे उपदेश दिया ॥ १४ ॥

* अङ्ग्रेजराज्यं खलु चोरराज्यमन्यायितायां निखिलाग्रगामि।
पापातिपापं निजदेशलोकपोषाय सज्जं च परार्थनाशि ॥१५॥

अंग्रेजी राज्य वस्तुतः चोरोंका राज्य है। अन्यायीपनेमें यह सबसे बढा चढा है। यह पापाधम राज्य अपने देशको पालनेकेलिये दूसरोंके लाभका नाश करनेको तैयार है ॥ १५ ॥

* यहाँसे २५ वें श्लोकतक श्रीमहात्माजीका व्याख्यान है।

राज्येऽतिपापे वसतां जनानामपीह घोरं प्रभवेद्धि पापम्।
कार्यो यथाशक्ति ततः प्रयत्नः पृथक्स्थितौ पापिजनप्रसङ्गात् ॥१६॥

इस पापी राज्यमें बसनेवाले लोगोंको पाप घेरेगा। अतः पापियोंके प्रसङ्गसे पृथक् रहनेका यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये ॥ १६ ॥

अस्य प्रणाशातिशयोऽद्य कार्यः परंतु हिंसाव्यतिरेकमार्गैः।
का नाम मात्रा सितदेहभाजोऽहिंसाप्रधानास्त्रभृतां पुरो नः ॥१७॥

हिंसारहित मार्गसे इस राज्यका सर्वथा नाश करना चाहिये। अहिंसा—अस्त्रधारी–हमलोगोंके सामने यह अंग्रेज किस गणनामें है? ॥ १७ ॥

आस्तां सुदूरे लगुडप्रहारः स्वल्पैः शिलानां शकलैरपीमे।
अस्माभिरारादपसारणीया एते तु नैतत्करणीयमिष्टम् ॥१८॥

लाठी और डंडेकी मार तो अलग रहो, हम कङ्कड़ों, पत्थरोंसे भी इन्हें यहाँसे दूर भगा सकते हैं, परन्तु यह करना हमें इष्ट नहीं है ॥१८॥

लोकापवादोऽपि भविष्यतीति त्रिंशन्महाल्पेष्वपि कोटयस्ते।
अंग्रेजकेपूपलखण्डखण्डैश्चक्रुः प्रहारं वत भारतीयाः ॥१९॥

इस प्रकारसे लोकमें निन्दा भी होगी कि थोड़ेसे अंग्रेजों पर ३० करोड़ हिन्दुस्तानियोंने कङ्कड़ोंसे प्रहार किया है ॥ १९ ॥

केशेषु केशेष्वधिगृह्य युद्धं बाह्वोश्च बाह्वोश्च तथा गृहीत्वा।
दण्डैश्च दण्डैश्च विधाय घातं कार्यो न चास्माभिरियं युद्ध ॥२०॥

बाल नोचनोचकर, या हाथाबाँही करके या लाठी चलाकर हमको यह लड़ाई नहीं लड़नी है ॥ २० ॥

दृष्ट्वैव शान्तं बलमप्रहीणं पलायितुं भारतदेशतस्ते।
विचारयेयुर्नियतं सिताङ्गा आदाय तेषां वसनासनानि ॥२१॥

शान्त और बलवती सेनाको देखकर ही ये अंग्रेज अपना बोरिया बिस्तर लेकर भारतसे भाग जानेका ही विचार करेंगे ॥२१॥

स्थातुं समीहा यदि भारते स्यात्तेषां तदा भारतवर्षवासैः।
लोकैश्च मैत्रीं परिगृह्य मित्राणीवैव तिष्ठन्तु सदा सुखेन ॥२२॥

यदि उनकी (अंग्रेजों की) भारतमें रहनेकी इच्छा हो तो भारत-वासियोंके साथ मित्रके समान ही सदा सुखसे रहें ॥ २२ ॥

आयात यूयं मम दर्शनार्थमहं स्वदेशाधिशमाय यामि।
युद्धं नियोद्धुं सह शासनेन दाँडीं महायुद्धभुवं पवित्राम् ॥२३॥

तुम सबलोग मेरे दर्शनकेलिये आये हो। मैं भारतके मानसिक दुःखके शान्त करनेके लिये, सर्कारके साथ युद्ध करनेकेलिये इस महा-युद्धकी पवित्र भूमि दांडीमें आ रहा हूँ ॥ २३ ॥

आमन्त्रयेऽहं निखिलानपीह युद्धाय गन्तुं विकटेऽत्र काले।
उद्युङ्ग्ध्वमन्यत्परिहाय कीर्तिं भूभारहारेण लभध्वमद्धा ॥२४॥

इस विकट समयमें तुम सब लोगोंको मैं आमन्त्रण देता हूँ। सबकुछ छोडकर युद्ध करनेकेलिये जानेका उद्योग करो। पृथिवीके भयको दूर करके सुन्दर कीर्ति प्राप्त करो ॥ २४ ॥

यौष्माकवीर्येण भवेद्विमुक्ता रक्षोऽर्दिता भारतभूमिरेषा।
जगत्समस्तं सितकीर्तिगानं करिष्यते वो विजयर्धितुष्टम् ॥२५॥

तुम्हारे पुरुषार्थसे यदि यह भारतभूमि स्वतन्त्र हो जावे तो तुम्हारे विजयसे प्रसन्न होकर सारा संसार तुम्हारे शुभ्र यशका गान करेगा ॥ २५ ॥

गजेरलोकैः स्तुत एष देवो दिवावसानेऽणसिमाशु यातः।
मर्क्तनिवासेन जनान्प्रतोष्य जम्बूसरं गन्तुमथ प्रतस्थे ॥२६॥

गजेरावासियोंने श्रीमहात्माजीकी स्तुति की। सायङ्काल वह वहाँसे अणसी गाँवमें पहुँचे। वहाँ रात्रिमें निवास करके लोगोंको सन्तुष्ट करके जम्बूसर जानेकेलिये चल दिये ॥ २६ ॥

महाजनानां स महासमुद्रो महाप्रभुं तं महतां वरिष्ठम्।
जम्बूसरीयो बहु सत्करार महातिथिं भारतदुःखतप्तम् ॥२७॥

जम्बूसरके उन महाजनोंके महासमुद्रने भारतके दुःखसे तपे हुए महान् अतिथि महाप्रभु—श्रीमहात्माजीका बहुत बड़ा सत्कार किया ॥ २७ ॥

प्रसीमपुण्यं समवाप तत्र द्रष्टुं च संगन्तुमधीरचेताः।
प्रयागराजाधिपतिप्रतीकः श्रीमोतिलालो द्विजवर्यसूर्यः ॥२८॥

महापुण्यशाली नेता श्रीमहात्माजीको मिलनेकेलिये और दर्शन करनेकेलिये अधीरचित्तवाले प्रयागराजके राजासमान ब्राह्मणोंमें सूर्यसमान पण्डित श्रीमोतीलालजी वहाँ–जम्बूसरमें पहुँचे ॥ २८ ॥

तेनैव सार्धं तनुजोऽपि तस्य महासभाया अधिपस्तदानीम्।
महामना धैर्यधराधरेन्द्रो जवाहिरोऽप्यत्र पदं चकार ॥२९॥

श्रीपण्डित मोतीलालजीके साथ ही महामनस्वी, परमधैर्यवान्, उस समय राष्ट्रिय महासभाके अध्यक्ष श्रीमान् पण्डित जवाहिरलाल नेहरू भी वहाँ आ पहुँचे ॥ २९ ॥

आन्ध्राश्च केचित्सुधियोऽपि सद्य आजग्मिरे तस्य दिदृक्षवोऽत्र।
आजग्मुरन्येऽपि च मोहमय्या महानगर्या विततामिलाषाः ॥३०॥

वहाँ ही आन्ध्रदेशके भी कुछ लोग श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये आये। महानगरी बम्बईसे भी दूसरे लोग बड़े अभिलाषसे वहाँ आये ॥३०॥

सर्वैः सहाऽयं सुधियां वरेण्यैरालापमालां रचयाञ्चकार।
प्रसाद्य सर्वाननघो महात्मा युयोज हर्षेण सभाभुवं ताम् ॥३१॥

श्रीमहात्माजीने सब विद्वानोंके साथ वार्तालाप किया। सबको प्रसन्न करके, सभाभवनको हर्षयुक्त बनाया–अर्थात् वह सभामें गये ॥ ३१ ॥

* यूयं हि सम्मानयितुं मदीयं सैन्यं च मामत्र विराजमानाः।
यैः सम्प्रसाद्याः प्रियशब्दजालैस्तानि सन्त्येव मयीति लज्जा ॥३२॥

निश्चय ही आप लोग मेरी सेनाका और मेरा सम्मान करनेकेलिये

* यहाँसे ४६ वें श्लोक तक महात्माजीका भाषण है।

यहाँ उपस्थित हैं। जिन प्रियशब्दोंसे आपकी प्रशंसा करनी चाहिये, मुझे लज्जा है, कि मेरे पास वह शब्द नहीं हैं ॥ ३२ ॥

मुख्यादयो देशहिताभिलाषा ये ये जहू राज्यभृतिप्रहित्वम् ।
मान्याश्च ते सन्ति विनिस्सृतायन्निन्द्यातिनिन्द्यादतिपापपुञ्जात्॥३३॥

देशके हितकी इच्छावाले जिन जिन मुखी वगैरहने राज्यकी नौकरीको छोड़ दी है वह हमारे माननीय हैं। क्योंकि नीचसे नीच और अतिपापके पुञ्जमेंसे वह बाहर निकल आये हैं ॥ ३३ ॥

यत्ष्ठीवितं ज्ञानपुरस्सरं तद्ग्राह्यं पुनर्नैव कदापि विज्ञैः ।
हितं च युष्माभिरिदं पदं तद्ग्राह्यं भवेन्नैव कदापि भूयः ॥३४॥

विद्वान् लोग जान बूझकर जिस वस्तुको थूँक देते हैं उसका पुनः ग्रहण नहीं करते। तुम लोगोंने भी जिन नौकरियोंको छोड़ दी है उनको फिरसे ग्रहण मत करना ॥ ३४ ॥

संभर्त्सिता वा परितर्जिता वा राज्येन यूयं परिदण्डिता वा।
मा मा पुनस्तत्पदकं ग्रहीष्ट कृतां प्रतिज्ञामथ निर्वहध्वम् ॥३५॥

तुम्हें कोई झुड़के या डरावे, या दण्ड करे परन्तु इन नौकरियोंको पुनः ग्रहण मत करना। अपनी की हुई प्रतिज्ञाका निर्वाह करना ॥ ३५ ॥

त्यक्त्वा पदं तद्यदि कोऽपि भूयो ग्रहीष्यते दुष्कृतमेव तत्स्यात् ।
चिरं मनो दोष्यति तच्च मे तद्विचार्य कार्यं निखिलं हि कर्म ॥३६॥

इन स्थानोंको—नौकरियों को छोड़कर पुनः यदि कोई ग्रहण करेगा तो वह पाप ही होगा। और वह पाप मेरे मनको चिरकालतक व्यथित करता रहेगा। अतः सब काम विचारकर करना ॥ ३६ ॥

दाँडीमुपेत्यैव यदाहमाज्ञां करोमि सद्यो रमणीयभावाः ।
सज्जा अनादर्तुमलं भवेत कुशासनं लावणमत्यनिष्टम् ॥३७॥

दाडी पहुँचकर जब मैं आज्ञा करूँ उसी समय सुन्दरविचारवाले तुम लोग, नमकके कायदेका अनादर करनेकेलिये तैयार हो जाना ॥३७॥

अहं भवेयं निगृहीत एव तथापि युष्माभिरवश्यमेतत्।
यदृच्छया कार्यमृते च कार्यादस्मान्न देशापदपव्ययः स्यात् ॥३८॥

मैं पकड़ा जाऊँ तो भी तुम लोगोंको यह कार्य अवश्य करना ही चाहिये। इस कार्यके विना देशकी आपत्तिका नाश नहीं होगा ॥ ३८ ॥

श्रीचन्दुलालो मणिभायिरेष जम्बूसरीयाविह नेतृवर्यौ।
उपक्रमस्यास्य मया कृतस्य निवेदयेतामखिलेषु वृत्तम् ॥३९॥

श्री० डाक्टर चन्दूलाल और श्रीयुत मणिभाई यह लोग जम्बूसरके उत्तरदाता नेता हैं। मैंने यह जो आरम्भ किया है इस आरम्भका वृत्तान्त यह लोग सबको बतावेंगे ॥ ३९ ॥

तिष्ठेत यूयं गमनाय सज्जाः कारासु सोढुं विविधप्रहारान्।
आरोढुमास्येन भटोचितेन वं मृत्युमञ्चं विगलत्प्रपञ्चम् ॥४०॥

तुमलोग जेल जानेकेलिये तैयार रहो, मार खानेकेलिये भी तैयार रहो और वीरोचित मुखसे उस फाँसीके मचानपर चढ़नेकेलिये भी तैयार रहो जिसका ज़माना अब ढल रहा है ॥ ४० ॥

ये हिन्दवो ये यवनाः सभायां सन्त्येव वा सन्ति न ये च तेऽपि।
वचो मदीयं हृदये दधीरन् द्वाराणि मुक्तेर्विवरीतुकामाः ॥४१॥

जो हिन्दु और जो मुसलमान इस सभामें उपस्थित हैं अथवा जो उपस्थित नहीं हैं, यदि यह भारतकी मुक्तिके द्वारको उघाड़ना चाहते हैं तो मेरी बातको सुनें ॥ ४१ ॥

याच्ञा मदीया न परास्ति पुंसु स्त्रीष्वप्यतरता अपि योधनेऽस्मिन्।
अमेयशक्त्या हृदयस्य भक्त्या मानान्वितं देशममुं प्रकुर्युः ॥४२॥

पुरुषोंसे और स्त्रियोंसे मैं इसके अतिरिक्त कुछ नहीं माँगता हूँ कि वह भी इस लड़ाईमें अपनी अपार शक्तिसे इस देशको गौरवशाली बनावें ॥ ४२ ॥

दादीयपौत्री खुरशेदनाम्नी श्रद्धास्वरूपाऽमलशेमुषीका ।
सम्प्रापिपत्पत्रमिदं मदीये करेऽद्य शौर्यानलदीपयित्रु ॥४३॥

श्रीयुत दादाभाई नोरोजीकी पोती श्रीखुरशेद बहिन जो स्वयं श्रद्धाकी साक्षात् मूर्ति हैं और निर्मल विचारवाली हैं—उन्होंने आज ही मेरे पास एक उत्साहप्रेरक पत्र भेजा है ॥ ४३ ॥

बालापि देवी मृदुलाऽमलाऽम्बालालस्य पुत्री द्रविणेश्वरस्य ।
प्रियंवदैकेन दलेन सोपालम्भं ददात्यद्य ममातितीव्रम् ॥४४॥

सेठ श्रीअम्बालाल साराभाई अहमदाबादकी पुत्री मृदुला देवी, बालिका हैं तो भी और मधुरभाषिणी हैं तो भी वह आज एक पत्र द्वारा मुझे अत्यन्त तीव्र उपालम्भ = उलाहना दे रही हैं ॥ ४४ ॥

पत्रद्वयेऽस्मिन्प्रणयप्रकोपः प्रदर्शितो योषिदगण्यतायै ।
परं स्त्रियो नाऽवमता मया ता ग्राह्या हि युद्धेऽवसरे समस्ताः ॥४५॥

इन दोनों पत्रोंमें स्त्रियोंकी अवगणनाकेलिये प्रेममय प्रकोप प्रकट किया गया है। परन्तु मैंने स्त्रियोंकी अवहेलना नहीं की है। अवसर आनेपर अवश्य ही मैं उनका इस युद्धमें ग्रहण करूँगा ॥ ४५ ॥

सभाऽऽग्रहात्पण्डितमोतिलालो जवाहिरस्यास्य पिता महौजाः ।
वस्तुद्वयं व्याख्यदुदात्तपुण्यः सर्वस्य शङ्करुदुरितप्रणाशि ॥४६॥

सभाके आग्रहसे पण्डित मोतीलाल नेहरूजीने दो वस्तुका प्रतिपादन किया। वे दोनों ही वस्तु लोगोंके कल्याण करनेवाली और दोषोंको दूर करनेवाली थीं ॥ ४६ ॥

* यूयं महार्घ्या यदि वो नगर्यां सेनापतिर्मान्यतमो महात्मा ।
सैन्यं समादाय स भारतापद्विपादनायाद्य पदं व्यधत्त ॥४७॥

तुम लोग धन्य हो जो तुम्हारे ग्राममें सेनापति श्रीमहात्माजी अपनी सेना लेकर भारतकी आपत्तिको दूर करनेकेलिये आये हैं ॥ ४७ ॥

* यहाँसे ५३ वें श्लोकतक पण्डित मोतीलालजीका भाषण है।

निनीषते येन पथा चमूनाम्पतिश्चमूस्तेन सदा प्रयातुम्।
धर्मोऽस्ति तासां विमलोहितस्मात्तमुद्यताःस्मोऽद्यतथाविधातुम् ॥४८॥

सेनापति जिस मार्गसे सेनाको ले जाना चाहे उसी मार्गसे जाना सेनाका पवित्र धर्म है। अतः आज हम लोग सेनापतिकी इच्छानुसार चलनेको तैयार हैं ॥ ४८ ॥

यं यं सुपन्थानमयं स्वपादसमर्पणेनैव करोति पूतम्।
तत्रत्यलोकानमृतान्धसोऽपि मान्यानसूयन्ति मताः समस्तैः ॥४९॥

श्रीमहात्माजी जिस जिस मार्गको अपने चरणकमलोंसे पवित्र करते हैं वहाँके रहनेवाले माननीय महापुरुषोंके साथ, सबसे पूजित देवता भी असूया करते हैं ॥ ४९ ॥

लङ्कां विजेतुं भगवान्स रामो जगाम येनैव पथा ससैन्यः।
तीर्थत्वमापत्स धरातलेऽस्मिन्मोक्षैकहेतुश्च ततो मतोऽपि ॥५०॥

लङ्का जीतनेके लिये दाशरथि राम अपनी सेनाके साथ जिस जिस मार्गसे गये थे वह मार्ग तीर्थ पदवीको इस पृथिवीपर प्राप्त हुआ और इसीलिये मोक्षका हेतु भी वह माना गया ॥ ५० ॥

पन्थान एतेऽपि यतीश्वरेण पवित्रिताः पादरजोऽर्पणेन।
त्रिविष्टपीकष्टविनाशकेन तीर्थीभवन्त्येव परप्रतापाः ॥५१॥

तीनों लोकोंके कष्टको नष्ट करनेवाले परमसंयमी श्रीमहात्माजीने अपने चरणरजके द्वारा इन मार्गोंको भी परमप्रतापवान् तीर्थ बना दिया है ॥५१॥

त्राणाय तत्तीर्थवरस्य भार एतस्य युष्मासु समर्पितोऽस्ति।
दृष्टिर्जनानामधुना प्रसक्ता युष्मद्विधातव्यकृतिष्वभीक्ष्णम् ॥५२॥

इस तीर्थराजकी रक्षा करनेका भार तुम लोगोंपर रखा हुआ है। लोगोंकी दृष्टि इस समय तुम्हारे कार्योंकी ओर सतत लगी हुई है ॥ ५२ ॥

अथ द्वितीयं गदितव्यमेतद्धर्म्ये प्रवृत्ते समरे सुखेऽस्मिन्।
कायेन वाचा मनसापि सर्वैः सम्पादनीयैव सहायताऽद्य ॥५३॥

दूसरी बात यह कहनी है कि यह सुखदायक धर्मपूर्ण समर प्रवृत्त हुआ है। इसमें तन, मन और वचनसे सबको आज सहायता देनी चाहिये ॥ ५३ ॥

मा भूदकीर्तेः पटहप्रणादो युष्माकमस्मिन्समरे कथञ्चित्।
यशोधनैः सन्ततसावधानै रक्ष्या स्वकीर्तिः सकलैरुपायैः ॥५४॥

इस युद्धमें किसी रीतिसे भी तुम्हारी अपकीर्तिकी ढोल न बजने पावे। जिसका यश ही धन है उसे तो सदा सावधानीके साथ, सब उपायोंके द्वारा अपनी कीर्तिको ही सुरक्षित रखनी चाहिये ॥ ५४ ॥

गृहीतमौने विदुषीह तस्मिञ्जवाहिरः प्रार्थनया समेषाम्।
महाप्रभावः शरदिन्दुबिम्बमनोहरास्यः सहसोदतिष्ठत् ॥५५॥

जब पण्डित मोतीलालजी चुप हुए तो सबकी प्रार्थनासे महाप्रभावशाली और शरदृतुके चन्द्रसमान मनोहरमुखवाले पण्डित जवाहिरलालजी खड़े हुए ॥ ५५ ॥

यद्यप्यहं भारतराष्ट्रनाथपदे प्रतिष्ठापित एव भव्ये।
भवादृशौदारमनोभिरद्य तथापि मान्यस्तु न एष एव ॥५६॥

यद्यपि आप जैसे उदारमनवालोंने भारतके भव्य राष्ट्रपति पदपर मुझे स्थापित किया है तथापि हम सबके मान्य तो यही हैं—श्रीमहात्माजी ही हैं ॥ ५६ ॥

स्फारादरस्यास्य यशोधरस्य महात्मनो वाचि समञ्चितायाम्।
वक्तुं किमप्येव न मेऽवशिष्टमित्येतदुक्त्वोपविवेश धीमान् ॥५७॥

महान् आदर प्राप्त करनेवाले यशस्वी श्रीमहात्माजीकी वाणी पूजी जानेपर–इनकी आज्ञाको सुन लेनेपर, मेरे कहनेकेलिये कुछ बाकी नहीं रह जाता है, इतना कहकर पण्डित जवाहिरलालजी बैठ गये ॥ ५७ ॥

स आर्यावर्तीयं हृदयममलं वाप्युदारं
पथाऽनेनैवासौ सुसरलवचा वागधीशः।

समेपामग्रे निर्भयमवितरां दर्शयित्वा
सुधामा श्रीमान्सन्यवृतदतिमोदं बभार ॥५८॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
अष्टादश सर्गः

अत्यन्त सरलवाणीवाले, वाणीके स्वामी श्रीमहात्माजी आर्यावर्तीय निर्मल, निर्भय और उदार हृदयको इस रीतिसे सबके समक्ष उपस्थित करके, सभासे लौट आये और प्रसन्न हुए ॥५८॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते अष्टादशः सर्गः



⊛ एकोनविंशः सर्गः

विसृज्य सर्वानतिथीन्महौजाः प्रस्थाय जम्बूसरतः ससेनः।
आमोदमापन्मुदमादधानो लोकैः सहस्रैः परिवारितोऽभूत् ॥१॥

सब अतिथियोंको बिदा करके महातेजस्वी श्रीमहात्माजी सेना सहित जम्बूसरसे चलकर आमोद पहुँचे। सहस्रों लोगोंने वहाँ भी उन्हें घेर लिया ॥ १ ॥

वृद्धं महात्मानमनन्तशक्तिमायान्तमालोक्य हृदि प्रसन्ना।
जीव्याच्चिरं देवपतिप्रभोऽयं तारेण वाचं जनता जगाद ॥२॥

अनन्तशक्तिवाले वृद्ध महात्माजीको आते देखकर सभी लोग हृदयमें प्रसन्न हुए। उच्च स्वरसे सब जनता बोल उठी कि देवराजसमान कान्तिवाले यह महात्माजी चिरकालतक जीवित रहें ॥ २ ॥

उपस्थितान्वीक्ष्य जनान्सभायां दीनार्तितप्तः समगाच्च तत्र।
गीर्भिः श्रुती नेत्रयुगं च तन्वा तेषां मनः सन्मनसाऽपुनात्सः ॥३॥

दीनोंके दुःखसे दुःखी श्रीमहात्माजी, सभामें लोगोंको इकट्ठे हुए देखकर, वहाँ गये। उपस्थित लोगोंके कानोंको वचनोंद्वारा, आँखोंको अपने शरीरद्वारा और मनको अपने पवित्र मनद्वारा उन्होंने पवित्र कर दिया ॥३॥

सज्जाः स्त गन्तुं हृदयेन दाँडीं सम्प्रेषये अत्र यदाहमाज्ञाम्।
स्त्रियः पुमांसः सकलाश्च यूयं राज्ञः कदाज्ञावमतिं कुरुध्वम् ॥४॥

दाँडी जानेके लिये हृदयसे तैयार रहो। मैं जब आज्ञा भेजूँ उसी समय सब स्त्री और पुरुष सर्कारकी आज्ञाका अपमान करें ॥ ४ ॥'

पटं स्वदेशोद्भवमेव धर्ध्वं तन्तून्स्वहस्तेन च निर्मिमीध्वम्।
पानं सुरायाश्च रसस्य ताल्यास्त्यक्त्वा पवित्रा भवतातिमात्रम् ॥५॥

⊛ इस सर्गमें उपजाति छन्द है।

अपने हाथसे तन्तुनिर्माण करो–सूत कातो, अपने देशका वस्त्र पहिनो, दारू–शराब और ताड़ीका त्याग करके अत्यन्त पवित्र बनो ॥ ५ ॥

निदिश्य तानेवमयं महात्मा ग्रामं बुवाख्यं सबलो जगाम ।
उत्साहगङ्गासलिलैः पवित्रां दूराददर्शज्जनतां प्रशस्ताम् ॥६॥

श्रीमहात्माजी इस प्रकार उपदेश देकर सेनाके साथ बुवा गाँवमें गये। उत्साहरूप गङ्गाजलसे पवित्र सुन्दर जनताको दूरसे ही देखा ॥ ६ ॥

विश्रम्य लोकानथ लोकपालो वाणीसुधाभिः सुहितांश्चकार ।
निदिश्य युद्धे सहयोगदानं शुद्धोऽतिबुद्धः समनीं जगाम ॥७॥

वहाँ थोड़ा विश्राम करके लोकपाल श्रीमहात्माजीने वहाँके लोगोंको अपने वचनामृतसे तृप्त किया। इस युद्धमें सहयोग देनेका उपदेश देकर शुद्ध और अत्यन्त ज्ञानी श्रीमहात्माजी समनी चले गये ॥ ७ ॥

लोकैर्विशोकैर्महनीयकीर्तिः प्रेम्णाऽऽदरेणादृत एव तत्र ।
कृत्यं समाप्य स्वमुपस्थितांस्तान्वचःसुधाभिः स्नपयाम्बभूव ॥८॥

शोकातुर लोगोंने अथवा उनके दर्शनसे विनष्टशोकवाले लोगोंने प्रेम और आदरसे परमयशस्वी श्रीमहात्माजीका स्वागत किया। श्रीमहात्माजीने अपना कृत्य समाप्त करके उपस्थित लोगोंको वचनसुधासे स्नान कराया ॥८॥

युधो हि मर्म प्रतिबोध्य सम्यक्छ्वेताङ्गराज्यस्य विबोध्य दौष्ट्यम् ।
साहाय्यवेऽन्वेतुमुपस्थितांस्तानामन्त्रयामास मुदा महात्मा ॥९॥

श्रीमहात्माजीने, युद्धके मर्मको अच्छे प्रकार समझाकर अंग्रेजी राज्यकी दुष्टता लोगोंको जनाकर, नमककी लड़ाईमें शामिल होनेके लिये सबको आमन्त्रण दिया ॥ ९ ॥

निशानिवासेन च तत्र लोकान्कृत्वा कृतार्थान्मुदितः खरारिः ।
प्रातर्विधेयानि विधाय शान्त्या स ग्रालसां गन्तुमनाः प्रतस्थे ॥१०॥

रात्रिमें वहाँ ही निवास करके, सबको कृतार्थ करके, दुष्टोंके विनाशक

श्रीमहात्माजीने प्रसन्न होकर, शान्तिसे प्रात कृत्य करके आलसा जानेके लिये, प्रस्थान कर दिया ॥ १० ॥

तत्राप्यवालोकि च तेन सङ्घः स्त्रीणां नराणां क्रमशः समुत्थः।
मन्देन हास्येन समर्प्य तेषु तुष्टं परां स्वं शिबिरं समीये ॥११॥

वहाँपर भी उन्होंने स्त्रियों और पुरुषोंके समुदायको क्रमसे खडा हुआ देखा। अपने मन्दहास्यसे सबको सन्तुष्ट करके अपने शिबिरमें गये ॥११॥

निर्वर्त्य कर्माणि तनुश्रितानि गतः सभां भारतपारिजातः।
सद्बोधदत्तैर्विरलाक्षरैः सल्लोकानुरागं स्ववशं चकार ॥१२॥

शरीराश्रित स्नान–उपासना आदि कर्मोंको समाप्त करके श्रीमहात्माजी-ने सभामें जाकर थोडेसे सद्बोधके अक्षरोंको बोलकर सज्जनोंके प्रेमको जीत लिया ॥ १२ ॥

देशस्य रक्षा यदि नो कृता स्यादंग्रेजराज्याश्रितः प्रणाशः।
ततो विधातुं महदेव युद्धं राज्येन सार्कं समुपैमि दाँडीम ॥१३॥

यदि अंग्रेजोंसे देशकी रक्षा न की जाय तो, अवश्य ही देशका नाश होगा। अतः राज्यकर्त्ते-सर्कारके साथ महान् युद्ध करनेकेलिये दाँडी जा रहा हूँ ॥ १३ ॥

युष्माभिरप्यत्र महानुभावैरायोधनेऽस्मिन्परधर्ममूले।
साहाय्यमीड्यं सततं विधेयं राज्येन लेशोऽपि विमर्दनीयः ॥१४॥

महानुभाव तुम लोग भी उत्तमधर्मके मूलरूप इस युद्धमें प्रशसनीय सहायता करना और सर्कारके साथ सम्बन्ध भी छोड देना ॥ १४ ॥

एवं समादिश्य, स देशभाग्यपयोजभानुः समरेष्वसह्यः।
श्रान्तिं महात्मा व्यपनीय मार्गी देरोलमापद्रजनीमुखेऽयः ॥१५॥

देशके भाग्यरूप कमलको खिलानेकेलिये सूर्यसमान और, युद्धोंमें शत्रुकेलिये असह्य, ऐसे श्रेष्ठ श्रीमहात्माजी लोगोंको पूर्वोक्त उपदेश देकर, थकावट दूर करके सायङ्काल देरोल पहुँचे ॥१५॥

स प्रार्थनां तत्र च जागदीशीमुपास्य सर्वानुपदिश्य भूयः ।
प्रबोध्य यौद्धं विधिमप्रयुद्धः श्रान्तो महात्मा शयितुं जगाम ॥१६॥

यहाँ श्रीमहात्माजी भगवान् की प्रार्थना करके, सबको पुनः उपदेश देकर, युद्धकी विधिको समझाकर, थके हुए होने के कारण सोनेकेलिये चले गये ॥१६॥

सर्वान्प्रतुन्नान्नितरां प्रहर्ष्य युद्धे च सन्नन्तुमतीवभारैः ।
पुनः प्रबोध्यारिविमर्दनाय प्रातर्भरूचाभिमुखो बभूव ॥१७॥

दुःखित-सब लोगोंको अत्यन्त आनन्दित करके, युद्धमें शामिल होनेकेलिये भारपूर्वक पुनः समझाकर प्रातःकाल भरूचकेलिये चलदिये ॥१७॥

रसप्रसन्निर्विरलप्रकाशः प्रातर्धराभानुरसंख्यरश्मिः ।
सार्धं भरूचावनिभासनाय व्यलोकिपातां समुदीयमानौ ॥१८॥

अल्पप्रकाशवाला आकाशका सूर्य और असंख्य किरणोंवाला यह पृथिवीका सूर्य, दोनोंही सूर्योंको प्रातःकाल भरूचकी भूमिपर प्रकाश डालनेकेलिये उदय होते हुए लोगोंने देखा । अर्थात् श्रीमहात्माजी सूर्योदयके समय भरूचमें पहुँच गये ॥१८॥

महामहिम्नोऽस्य महात्मनस्ते लोकाः सुखं स्वागतमभ्यनन्दन् ।
आशासु सर्वासु जयेतिशब्दो लोकाननोत्थो घुषितो बभूव ॥१९॥

महामहिमावाले श्रीमहात्माजीके शुभागमनको लोगोंने सुखपूर्वक अभिनन्दन दिया । लोगोंके मुखसे निकला हुआ जयशब्द सब दिशाओंमें फैल गया ॥१९॥

गृहेषु मार्गेषु नदीतटेषु, हट्टेषु पण्येषु स एव शब्दः ।
तारापथोऽस्मिन्समये बभूव शब्दाश्रयस्तथ्यतया प्रतीतः ॥२०॥

मार्गोंमें, घरोंमें, नदीके किनारोंपर, बाजारोंमें, दूकानोंमें सर्वत्र यही जयघोष हो रहा था । इस समय वस्तुतः निश्चय हुआ कि आकाश शब्दका आश्रय है ॥२०॥

लोकाश्चमार्गोभयपार्श्वभागे शान्ताः सहस्राणि वितिष्ठमानाः ।
जयेतिशब्दैः सुधियां वरिष्ठमावेष्टयामासुरधीरचित्ताः ॥२१॥

सड़कके दोनों ओर शान्त होकर हजारों आदमी खड़े थे। जय जयके शब्दोंसे, लोगोंने अधीर होकर श्रीमहात्माजीको घेर लिया ॥२१॥

सर्वत्र मार्गेषु पताकिकाभिः संयोजिताः सर्वगृहाश्च सर्वैः ।
न केऽपि येषां हृदये न तस्य शुभाननं द्रष्टुमुदेत्समीहा ॥२२॥

सब जगह मार्गोंपर जितने घर—मकान थे सबपर लोगोंने पताकाएँ लगा रखी थीं। ऐसे कोई भी नहीं थे जिनके हृदयमें श्रीमहात्माजीके देदीप्यमान मुखके दर्शनकी इच्छा उदय न हुई हो ॥२२॥

हिन्दूजना वा यवनाः किरिस्तास्तथैव संख्यातिगपारसीकाः ।
बालाश्च वृद्धाः पुरपाश्च नार्यस्तद्दर्शनातुर्ययुजो बभूवुः ॥२३॥

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अनन्त पारसी, बालक, वृद्ध, च=युवा, पुरुष, स्त्री सभी उनके दर्शनके लिये आतुर हो गये ॥२३॥

सेवाश्रमो दृष्टिपथं समागात्क्रमेण तस्याश्रमनायकस्य ।
यश्चन्दुलालस्य सुपुण्यपुञ्जमिवास्ति चाद्यापि महायशस्वी ॥२४॥

क्रमशः आश्रमके नायक श्रीमहात्माजीकी दृष्टि में क्रमसे सेवाश्रम आया जो कि श्रीडाक्टर चन्दूलालजीके सुन्दर पुण्यपुञ्जके समान आजभी स्थित है ॥२४॥

अन्तर्गृहं तं प्रविशन्तमेव सेवाश्रमीयाः सरला भगिन्यः ।
सुगन्धिपुष्पैः सुमचारुहारैस्सम्पूजयामासुरथाक्षतैस्ताः ॥२५॥

ज्यों ही श्रीमहात्माजी सेवाश्रमके भीतर घुसे, उस आश्रमकी सीधी सादी बहिनोंने सुगन्धित पुष्पोंसे, पुष्पकी सुन्दर मालाओं और अक्षतसे उनका पूजन किया ॥२५॥

आपानदेशोद्भपकाश्च केचिदामेरिकाजा अपि केचिदत्र ।
इहेङ्गलाडाकलिताः प्रसादाश्चाययुः पुण्यसलोकभाजः ॥२६॥

कुछ जापानीबन्धु ओर कुछ अमेरिकन बन्धु भी श्रीमहात्माजीके दर्शनकी इच्छासे वहाँ आये थे ॥२६॥

श्रीचोयिथाराम इयाय तत्र सिन्धुप्रदेशाद्बहुभिर्मनुष्यैः।
हितं विचिन्वन्स च भारतोर्व्यास्तद्दर्शनार्थं प्रतपंस्तपस्याम् ॥२७॥

भारतभूमिके हितकी इच्छासे तपस्या करते हुए डाक्टर चोइथारामजी सिन्धप्रदेशसे बहुतसे मनुष्योंके साथ श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये वहाँ आये ॥ २७ ॥

कस्तूरबा भारतमातृतुल्या पतिव्रतानां प्रथमार्चनीया।
तदङ्घ्रिसंस्पर्शमभीहमाना भरूचभूमावुपतिष्ठते * स्म ॥२८॥

पतिव्रताओंमें प्रथम पूजनीय भारतमाताके समान श्रीमती कस्तूरबा भी श्रीमहात्माजीके चरणस्पर्श की इच्छासे भरूचमें आगयीं ॥ २८ ॥

सङ्गत्य सर्वैश्च निशम्य वार्तास्तेषां स सायं सदसे जगाम।
अब्बासतैयब्बसरोजनीभ्यां व्याख्यानसिंहासनमारुरोह ॥२९॥

श्रीमहात्माजी सबसे मिलकर, उन सब लोगोंकी बातोंको सुनकर सायङ्काल सभामें गये। श्रीमान् अब्बास तैयबजी और श्रीमती सरोजिनी नायडूके साथ वह व्याख्यानवेदीपर पहुँच गये ॥ २९ ॥

लक्षाधिकास्तस्य मुखारविन्दशोभावलोकाय वचःसुधायाः।
धयाय दूरादपि तत्सभायामागत्य लोकाः स्थितिमाभजन्त ॥३०॥

श्रीमहात्माजीके मुखकमलके दर्शनकेलिये और उनके वचनामृतके पानकरनेकेलिये लाखों आदमी दूरदूरसे आकर उस सभामें बैठ गये ॥३०॥

उत्थाय तत्र प्रथमं स चन्दूलालस्तदाशिश्रवदागतानि।
नृपीय सम्बन्धविभेदकानि तांस्त्यागपत्राणि पटेलकानाम् ॥३१॥

उस सभामें पहिले डाक्टर श्रीचन्दूलालभाई खडे होकर उस समय सर्कारके साथ सम्बन्ध विच्छेदकरनेवाले जितने त्यागपत्र पटेलभाइयोंके आये थे उन्हें, सबको सुनाया ॥ ३१ ॥

---

* उपतिष्ठते स्म = सन्निधत्ते स्म।

आशीर्वचस्तस्य समिष्य स द्राग्गेष्ट स्वकीयासनकस्य पश्चात् ।
लोकाननाम्भोजविभाकरोऽयं प्रावाहयत्स्वस्य गिरां प्रवाहम् ॥३२॥

वह डाक्टर श्रीचन्दूलालजी श्रीमहात्माजीके आशीर्वादकी इच्छा करके अपने आसनपर बैठ गये । पश्चात् लोगोंके मुखकमलको खिलानेके-लिये सूर्यसमान श्रीमहात्माजीने अपनी वाणीका प्रवाह बहाना शुरू किया ।३२।

⊛ आशीर्वचांस्येव विचेतुमत्र लोभाकुलो वोऽहमुपायमद्य ।
ततश्च तद्दानकृतौ कथं स्यात्सामर्थ्यमध्यं मम बन्धुवर्याः ॥३३॥

मैं लोभसे घिरकर आज स्वयं तुम लोगोंका आशीर्वाद लेने आया हूँ । तब मेरे भाइयो ! आशीर्वाद देनेमें मैं समर्थ कैसे हो सकता हूँ ? ॥ ३३ ॥

अङ्ग्रेजराज्यं हि निशाचरीयं राज्यं ततस्तस्य विभञ्जनाय ।
युष्माकमस्मिन्समये समीहे साहाय्यमीड्यं हृदयेन दत्तम् ॥३४॥

अंग्रेज राज्य वस्तुतः राक्षस राज्य है । अतः इसके नष्ट करनेकेलिये इस समय मैं तुम्हारी हार्दिक सहायता चाहता हूँ ॥ ३४ ॥

एकाकिनेदं न मया कदापि साध्यं महत्कार्यमदो विचार्य ।
युष्माभिरव्यत्र समर्पणीया सहायतायात्महिताभिलाषैः ॥३५॥

इस बड़े भारी कार्यको मैं अकेला नहीं कर सकता हूँ । अतः विचार करके, आत्मकल्याणकी इच्छावाले तुमलोगोंको अवश्य सहायता देनी चाहिये ॥ ३५ ॥

न धर्मभेदो न च जातिभेदः स्याद्बाधकोऽस्मिन्नतिपुण्यकार्ये ।
ईशस्य साहाय्यबलेन सर्वे पराभवामोऽरिगणं समुद्राः ॥३६॥

इस पवित्र कार्यमें न तो धर्मभेद बाधक है और न जाति भेद । भगवान्‌की सहायताके बलसे हम सब इकट्ठे होकर शत्रुओंको जीतेंगे ॥३६॥

स्वोत्सर्गतो चात्मविशुद्धितो वा प्राप्येत साहाय्यमुरुक्रमस्य ।
ततोऽस्ति लाभः सकलप्रजानां सत्यामहस्तेन भवेत्समृद्धः ॥३७॥

⊛ यहाँ से ३८ वें श्लोकतक श्रीमहात्माजीका संक्षिप्त भाषण है ।

अपने त्यागसे अथवा अपनी पवित्रतासे हम लोग उरुक्रम भगवान्‌की सहायता प्राप्त कर सकेंगे। उससे सब प्रजाका लाभ होगा और अपना सत्याग्रह परिपूर्ण होगा ॥ ३७ ॥

चलेन युष्माकमथाद्य भीम युद्धं समारब्धमलीनपापम्।
स्त्रीपुंसयूथानि महान्त्यमुष्मिन्स्वीयानि नामानि निवेशयन्तु ॥३८॥

तुम्हीं लोगोंके बलसे आज मैंने इस पवित्र युद्धका आरम्भ किया है। अतः स्त्री और पुरुष सभी इस युद्धमें अपना नाम लिखावें ॥ ३८ ॥

आदिश्य सन्दिश्य तथोपदिश्य युधं महात्मा महनीयकीर्तिः।
सायं प्रतस्थे स ततोऽङ्कलेशं गन्तुं हरल्लोकमनांस्यभीक्ष्णम् ॥३९॥

पवित्रकीर्तिवाले श्रीमहात्माजी युद्धका आदेश देकर, युद्धका सन्देश देकर और युद्धका उपदेश देकर, सबके मनोंका अत्यन्त हरण करते हुए सायङ्कालमें अङ्कलेश्वर जानेकेलिये प्रस्थित हो गये ॥ ३९ ॥

येनाध्वनाऽसौ जगदेकबन्धुर्गन्तुं भरूचान्निरियाय पारम्।
श्रीनर्मदायाः स तदा ध्वजाद्यैः स्वलंकृतोऽभूत्सकलः कलाभिः ॥४०॥

जगत्‌के एकमात्र सहायक श्रीमहात्माजी जिस मार्गसे श्रीनर्मदाके पार जानेकेलिये निकले वह मार्ग कलाओंके साथ ध्वज आदिके द्वारा सजाया गया था ॥ ४० ॥

पथाश्च रथ्याश्च गृहा गृहाणां प्रासादपृष्ठा निखिला गवाक्षाः।
मनःप्रसादस्यदविस्मृतस्वैः पूर्णा मनुष्यैरभवंस्तदानीम् ॥४१॥

बड़े बड़े रास्ते, गलियाँ, घर, घरोंकी छतें, झरोखे यह सभी मनुष्योंसे भर गये थे। उस समय सब लोग आनन्दके वेगसे अपनेको भूल गये थे॥४१॥

✽तस्मिन्भरूचे समये च तस्मिन्नराश्च नार्योऽपि च निर्निमेषाः।
सिषेविरे भेदममर्त्यवृन्दाद्भूयोगमात्रेण कथञ्चिदेव ॥४२॥

उस समय उस भरूचमें स्त्री और पुरुष सभी निर्निमेष थे—कोई भी अपनी पलकोंको नहीं गिराता था। देवताओं और वहाँके मनुष्योंमें उस

✽ किञ्चिद्वैशिष्ट्यद्योतनार्थं तस्मिन्निति पदम्।

समय कुछ भी भेद नहीं रह गया था। भरूचवासी मनुष्य हैं, भेद तो केवल पृथिवीके—सयोगसे ही प्रकट होता था ॥ ४२ ॥

स्थितो गवाक्षेपु विनिश्चलाङ्गो लोकैस्तदा बालगणोऽपि रम्यः।
निस्तब्धतायाः परिकल्पितोऽभून्नूनं तदा पुत्तलिकागणोऽसौ ॥४३॥

उस समय (श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये) छोटे छोटे बच्चे भी खिड़कियोंमें चुपचाप—शान्त होकर बैठे। उनकी निस्तब्धताके कारण लोगोंने उन बच्चोंको पुतली समझ लिया था ॥४३॥

दृशौ न्यमीलन्हृदि तन्मुखाब्जलोकोत्तराभानिजिघृक्षयैव।
स्वेषु प्रकल्प्यं दिविपत्त्वमाराद्धड्त्तया मनुष्यत्वमपूपुषन्त ॥४४॥

श्रीमहात्माजीके मुखकी अलौकिक शोभाको अपने हृदयोंमें कैद करनेकी इच्छासे ही लोगोंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। उनमें जो देवता—पनेका आरोप किया जा रहा था उसको छोड़कर मनुष्यत्वको ही लोगोंने धारण किया ॥ ४४ ॥

साङ्ग्रामिकोऽसौ नवयुद्धशिक्षाप्राचार्यवर्यो विदुषामुपास्यः।
जनान्कृतार्थान्प्रणयन्महात्मा पुण्यं तटं प्राप च नर्मदायाः ॥४५॥

नवीन रणविद्याकी शिक्षाके परमाचार्य, विद्वानोंके उपास्य सग्रामको चाहनेवाले श्रीमहात्माजी लोगोंको कृतार्थ करते हुए श्रीनर्मदाके पवित्र तटपर पहुँच गये ॥ ४५ ॥

सुधर्मरक्षानिपुणो महात्मा तेजस्विनां मूर्धनि सन्निविष्टः।
सर्वाघसम्मर्दनमव्ययशक्तिपुञ्जं दधानोऽयमिहेतिपूज्यः ॥४६॥

⊛सद्धर्मकी रक्षामें निपुण, तेजस्वियोंमें अग्रगण्य, सर्वपापोंके नाश

— कहा जाता है कि देवतालोग पृथिवीपर पैर नहीं रखते।

⊛ यहाँसे ५५ वें श्लोकतक श्रीमहात्माजीके प्रति नर्मदानदीकी कल्पनाका वर्णन है।

करनेकी भव्यशक्तियोंको धारण करते हुए श्रीमहात्माजी यहाँ—मेरे यहाँ आ रहे हैं ॥ ४६ ॥

यन्नामसङ्कीर्तनतोऽपि लोका महाघभाजोऽपि भवन्ति शुद्धाः ।
सोऽयं समिद्धोऽतिविशुद्धरूपस्तीरे मदीये समुपैति धीरः ॥४७॥

जिनके नामकीर्तनसे भी बडे बडे पापी लोग भी पवित्र हो जाते हैं वही, देदीप्यमान और अतिनिर्मलस्वरूप–शुद्धस्वरूप श्रीमहात्माजी मेरे किनारेपर आ रहे हैं ॥ ४७ ॥

येनास्य देशस्य महाविपत्तीर्दृष्ट्वा परित्यज्य सुखं स्वकीयम् ।
दीर्घं तपोऽतापि च साभ्रमत्यास्तटे तटे मेऽद्य स एति पुण्यः ॥४८॥

जिन्होंने इस भारत देशकी महाविपत्तियोंको देखकर, अपने सुखका त्याग करके श्रीसाभ्रमतीनदीके किनारेपर दीर्घ कालतक तपस्या की है वही पवित्रात्मा श्रीमहात्माजी आज मेरे तटपर आ रहे हैं ॥ ४८ ॥

स्वदेशदैन्यं हृदये निधाय त्यागः परः स्वीकृत एव येन ।
कौपीनवासाः स च विश्वबन्धुर्विश्वानुकूलोऽद्य तटे ममेति ॥४९॥

जिन्होंने देशकी दीनताका विचार करके परम त्यागका स्वीकार किया है वही कौपीनधारी, जगद्बन्धु और जगत्के प्राणिमात्रके अनुकूल श्रीमहात्माजी मेरे तटपर आ रहे हैं ॥४९॥

अंग्रेजराज्येन महासमृद्धदारिद्र्यदूरोगनिपीडितायाः ।
शुचं प्रजाया अपहर्तुकामो दांडीं यियासन्निह सोऽभ्युपैति ॥५०॥

अंग्रेजराज्यके कारण अत्यन्त बढ़े हुए दरिद्रतारूप दुष्ट रोगसे पीडित प्रजाके शोकका अपहरण करनेकी इच्छावाले श्रीमहात्माजी दांडी जानेकी इच्छासे यहाँ आ रहे हैं ॥ ५० ॥

कङ्कालयुक्तेन कलेवरेण वृद्धेन रोगैरपि पीडितेन ।
वीरैः स्वकीयैर्विरलैः परीतो समेति योधप्रवरः स चात्र ॥५१॥

केवल हड्डीयुक्त वृद्ध और रोगीशरीरसे उपलक्षित यह महान् वीर

श्रीमहात्माजी थोडेसे अपने वीरोंके साथ आज यहाँ आ रहे हैं ॥ ५१ ॥

येनास्य देशस्य बुधाः समस्ता नार्यो नरा एकपदेन धात्रा।
आवर्जिता भारतरक्षणेऽद्य ममातिथित्वं समुपैति सोऽर्च्यः ॥५२॥

जिन्होंने देशके समस्त समझदार स्त्रियों और पुरुषोंको शीघ्र ही भारतकी रक्षामें झुका दिया वही पूजनीय श्रीमहात्माजी आज मेरे यहाँ अतिथि होकर आ रहे हैं ॥ ५२ ॥

इयं त्रिलोकी विजिता क्षणेन सत्येन सत्यक्रियकेण येन।
सोऽयं महाभास्वरदिव्यचक्षुर्मत्तीरमेतीह सुवित्तनामा ॥५३॥

आनन्दकी बात है कि जिन्होंने सत्याचरणशील होकर क्षणभरमें ही तीनों लोकोंका विजय कर लिया है वही महान् प्रकाशशील दिव्यचक्षुवाले ख्यातनामा श्रीमहात्माजी मेरे किनारेपर आ रहे हैं ॥ ५३ ॥

तिष्ठन्ति साहाय्यसमर्पणाय सोत्का अमर्त्या अपि नाम यस्मै।
सोयं पदातिर्यमिनां वरिष्ठस्तटे जगन्मोहन ऐति मेऽद्य ॥५४॥

जिनको सहायता पहुँचानेकेलिये देवता भी सदा उत्कण्ठित रहते हैं वही जगत्को मोहनेवाले परमसंयमी श्रीमहात्माजी आज पैदल मेरे किनारेपर आ रहे हैं ॥ ५४ ॥

एवं विचार्य्यैव महानदी सा लोकप्रसिद्धा दुरितोद्विजित्री।
अशेषलोकैः परिपूजिता तं तालैस्तरङ्गैर्बहु सच्चकार ॥५५॥

ऐसा विचारकर ही, लोक प्रसिद्ध, पापनाशिनी, सर्वपूजित उस महानदी नर्मदाने अपने बड़े बड़े तरङ्गोंसे श्रीमहात्माजीका अत्यन्त सत्कार किया ॥ ५५ ॥

*एषैव सा सर्वसरिद्वरेण्या या पापभाज्यप्यतिदुर्गुणानि।
नृणां मनांसीह तनोति शुद्धान्यादेव विद्योदृधृतिदत्तचित्ता ॥५६॥

* यहाँसे ६१ वें श्लोकतक श्रीनर्मदाके प्रति श्रीमहात्माजीकी वक्तृताका वर्णन है।

यही वह सर्वश्रेष्ठ नदी है जो मनुष्योंके अत्यन्त पापी और दुर्गुणयुक्त मनको भी शीघ्र ही पवित्र कर देती है और जगत् के उद्धारकेलिये दत्तचित्त है ॥ ५६ ॥

नर्मप्रदानेन भवीयतापप्रतप्तलोकान्प्रशमान्करोति ।
अन्वर्थनाम्नी च ततो धरित्र्यां श्रद्धालुलोकैः परिपूजितास्ति ॥५७॥

नर्म—सुखप्रदानकरके, संसारके सन्तापसे तपे हुए लोगोंको शान्त करती है अत एव इस नदीका नर्मदा यह नाम अन्वर्थ है—सार्थक है। और अत एव श्रद्धालु लोग इसे पूजते हैं ॥ ५७ ॥

संस्पर्शमात्रेण धरातलेऽस्मिन्महाजघन्यानपि मानवान्या ।
उच्चैः पदं प्रापयितुं समुत्का सैषा नमस्या दृगवेक्षितास्ति ॥५८॥

इस पृथिवीपर, स्पर्शमात्रसे भी जो नर्मदा अत्यन्त नीचोंको भी उच्चपद प्राप्त करानेकेलिये सदा उत्कण्ठित रहती है उसी नमस्कार करने योग्य इस नर्मदाको मैं आँखोंसे देख रहा हूँ ॥ ५८ ॥

नामग्रहेणापि जगत्यमुष्मिन्यस्या मनुष्या नितरां प्रमोदम् ।
व्रजन्ति शुद्धेषु मनस्सु नित्यं सा सर्वपापापनुदद्य दृष्टा ॥५९॥

इस जगत्में जिसके नाम लेनेसे भी मनुष्य अपने पवित्र हृदयमें परम आनन्द प्राप्त करते हैं उसी सर्वपापहारिणी नर्मदाको मैं आज देख रहा हूँ ॥ ५९ ॥

समागतं मामिह सा विदित्वा प्रेमातुरा प्रेम विवृण्वतीयम् ।
अम्बेव कल्लोलकरान्प्रसार्य संश्लेष्टुकामैव विभाति मेऽद्य ॥६०॥

मुझे देखते ही इसका राग बढ गया है। प्रेमातुर बन गयी है। अपने प्रेमको प्रकट करती हुई माताके समान अपने तरङ्गरूप हाथोंको फैलाकर, मुझे आलिङ्गन करना चाहती है, ऐसा मालूम होता है ॥ ६० ॥

सन्तापशान्तिप्रदतां स्वकीयां प्रदातुकामेव घलेन मह्यम् ।
प्रेमातिरेकेण जवेन नूनं धावन्त्यसावेति ममातिपार्श्वे ॥६१॥

सन्तापोंको शान्त करनेवाली अपनी शक्तिको मानो मुझे हठात् देनेकेलिये प्रेमपूर्ण वेगसे दौड़ती हुई यह मेरे पास आ रही है ॥ ६१ ॥

धियैवमिद्धार्थधियां समर्च्यः विचिन्तयन्स्वे मनसि प्रहृष्टः।
श्रीनर्मदायास्तटमेत्य सम्यक्तस्यै विनम्रोऽञ्जलिमार्पिपत्सः॥६२॥

पवित्र बुद्धिवालोंके पूजनीय श्रीमहात्माजीने इस प्रकार विचार करते हुए और मनमें प्रसन्न होते हुए नर्मदाके किनारे पर—एकदम किनारे पर आकर नम्रताके साथ हाथ जोड़ा ॥ ६२ ॥

स तामुदारां स्वयमप्युदारः पूतां स्वभावेन महापवित्रः।
पस्पर्श हस्तेन तदार्यवर्यस्तारैर्जयारावविरवैः परीतः॥६३॥

उदार कीर्तिवाले, महापवित्र, आर्यवर्य श्रीमहात्माजीने उस उदार, स्वभावतः पवित्र नर्मदाको, जय जय करनेवाले लोगोंके शब्दोंसे युक्त होकर अपने हाथोंसे स्पर्श किया। अर्थात् जिस समय वह उसका स्पर्श करने लगे, लोगोंने जय ध्वनि की॥ ६३ ॥

नौका अनेकाः पुलिनेषु तस्या अलङ्कृताः सद्ध्वजतोरणाद्यैः।
नृत्यत्पताकाकरपल्लवैः स्वं ता आह्वयन्तीरिव सन्ददर्श॥६४॥

नर्मदाके किनारे अनेक नौकाएँ सुन्दर सुन्दर ध्वज, तोरण आदिसे सजाकर रखी गयी थीं। उनके ऊपर राष्ट्रिय झण्डे फहरा रहे थे। वह झण्डे मानो उन नौकाओंके हाथ थे। महात्माजीने देखा कि मानो वह नौकाएँ उन्हें अपनी ओर फहराते हुए झण्डेरूप हाथोंसे बुला रही हैं॥ ६४ ॥

रत्नाकरस्य प्रियया खरारेः स्थातुं महात्मप्रवरस्य स्वस्याः।
गृहेऽन्तरलैरिव खद्दरैस्ता आच्छादिताः सर्वजना अपश्यन्॥६५॥

समुद्रकी प्रिया—नर्मदाने अपने घरमें खरारि—श्रीमहात्माजीके, बैठनेकेलिये, सफेदरत्न समान खद्दरोंसे उन नौकाओंको ढाँक रखा था, उसे सब लोगोंने देखा। तात्पर्य यह है कि उन नौकाओंपर बैठनेकेलिये खद्दर बिछाया गया था॥ ६५ ॥

मय्येव विष्ठत्वयमर्चनीय आसीत्समासामभिलाप एषः ।
तेनैव सर्वाधिकरूपमस्मै निदर्शयामासुरिमास्तरण्यः ॥६६॥

यह पूजनीय महात्मा मेरे ऊपर ही बैठें, इस प्रकारकी सब नौकाओंकी इच्छा थी। अतएव सबने एक एकसे बढ़कर अपना रूप श्रीमहात्माजीको दिखाया। तात्पर्य यह कि बहुतसी नौकाएँ खूब सजाकर वहाँ रखी हुई थीं ॥ ६६ ॥

खरारिवर्गोऽपि निरीक्ष्य यं श्रीनौराजराजं स्वविमानवृन्दे ।
योग्यां घृणामेव बभार भूयस्तस्मिन्स्थितं तं जनताऽऽलुलोके ॥६७॥

जिस सुन्दर नौकाको देखकर देवता भी अपने अपने विमानोंसे घृणा करने लगे उसी सुन्दर नौकामें बैठे हुए श्रीमहात्माजीको लोगोंने देखा॥६७॥

तस्मिंश्च नौराजमहाधिराजे संस्थापितस्यार्घ्यमहाध्वजस्य ।
अधः स्थितं तं जनताऽथ मेने श्रीपारिजातस्थितविष्णुमेव ॥६८॥

उस सुन्दर नौकापर समर्चनीय राष्ट्रध्वज स्थापित हुआ था। उसीके नीचे बैठे हुए श्रीमहात्माजीको देखकर लोगोंने समझा कि कल्पवृक्षके नीचे श्रीविष्णुभगवान् बैठे हुए हैं ॥ ६८ ॥

आजीविकोपायहतिं न कुर्यायस्मादयं दीनजनाधिनाथः ।
तस्माद्यतेः श्रीचरणावनिर्क्ति न कामयामास मनाक् स दाशः ॥६९॥

श्रीमहात्माजीका उस मल्लाहने * पादप्रक्षालन नहीं किया। उसकी ऐसा करनेकी इच्छा भी नहीं हुई। क्योंकि उसको विश्वास था कि श्रीमहात्माजी दीनोंके स्वामी हैं। वह दीनोंकी आजीविकाका नाश नहीं करेंगे ॥ ६९ ॥

---

* श्रीरामजीके केवटने उनका चरणप्रक्षालन किया था क्योंकि उसने समझा कि कहीं रामजीके चरणस्पर्शसे मेरी काठकी नाव अहल्याके समान स्त्री बन गयी तो मेरी जीविका ही नष्ट हो जायगी। यह भय श्रीमहात्माजीके मल्लाहको नहीं हुआ।

अयं महात्मा क्व च मादृशां क्व वासस्थली काष्ठमयीत्यवेक्ष्य।
मेने स दाशोऽस्य पदाब्जतस्तां पुण्यां भवन्तीं स्वमपीह पुण्यम्॥७०॥

कहाँ यह श्रीमहात्माजी और कहाँ मेरी यह लकड़ीकी बनी हुई नौका—मेरा निवासस्थान ? दोनोंमें बहुत अन्तर है, ऐसा समझकर उस मल्लाहने महात्माजीके चरणसे अपनी नौकाको और अपनेको भी पवित्र होता हुआ समझा ॥ ७० ॥

एकाधिकाशीतिरमुष्य वीराः सेनानरा नौषु यथावकाशम्।
समे परास्वारुरुहुस्तदानीमन्ये तदन्यासु च साभिलाषाः॥७१॥

श्रीमहात्माजीकी सेनाके ८१ नरवीर दूसरी नौकाओंमें यथावकाश बैठ गये। दूसरे लोग दूसरी नौकाओंमें जा बैठे ॥ ७१ ॥

श्रीतैयबो वृद्धपितामहोऽसौ श्रीब्रह्मकन्येव सरोजिनी सा।
सता महामेयमनोबलेन तेनैव तया च समाश्रिपाताम्॥७२॥

वृद्धपितामह श्री तैयबजी और सरस्वतीसमान श्रीमती सरोजिनी नायडू यह दोनों जन भी उसी नौकामें अमेय मनोबलवाले श्रीमहात्माजीके साथ ही बैठ गये ॥ ७२ ॥

श्रीनर्मदाया हृदयानुरागः केनापि कल्प्यो न भवेत्कदाचित्।
न चेत्तदुत्तुङ्गतरङ्गमालाजालं जनानां नयनाजिरे स्यात्॥७३॥

यदि नर्मदाजीके बड़े बड़े तरङ्ग लोगोंकी नजरमें न आते तो नर्मदाके हृदयके अनुरागकी कल्पना कभी भी नहीं की जा सकती थी ॥ ७३ ॥

निर्याति चेदेष भरूचपुर्या अनन्तरश्मिर्मयका किमर्थम्।
स्थातव्यमत्रेति सहस्ररश्मिस्तेनैव सार्धं विजहौ भरूचम्॥७४॥

सूर्यने भी यह विचार कर कि, जब अनन्त रश्मिवाले श्रीमहात्माजी ही इस भरूचमेंसे चले जा रहे हैं तो मैं यहाँ—सहस्ररश्मिवाला ही—रहकर क्या करूँगा, श्रीमहात्माजीके साथ ही भरूचको छोड़ दिया। अर्थात् जब श्रीमहात्माजी भरूचसे चले उस समय सूर्यास्त हो रहा था ॥ ७४ ॥

भारूचनारीनरसद्गणेन सन्ध्यापि तस्मिन्विबभार रागम्।
हृदा दधाराथ सरिद्वरा तं श्रीवायुदेवोऽपि सुखं सिषेवे ॥७५॥

भरूचके स्त्रीपुरुषोंके साथ ही सन्ध्याने उन श्रीमहात्माजीमें राग प्रकट किया। नर्मदाने उन्हें अपने हृदयसे धारण किया। वायुदेवने उनकी सुखसे सेवा की ॥७५॥

नेतुं महात्मानमनादिदेवं पारं तटिन्या अथ नर्मदायाः।
सहस्रलोकार्तविलोचनास्रैर्दाशोऽमुचन्नावमनूनभाग्यः ॥७६॥

अनादिदेव श्रीमहात्माजीको नर्मदा नदीके उस पार लेजानेकेलिये भाग्यशाली मल्लाहने हजारों लोगोंके आँसुओंके साथ नावको छोड दिया—खोल दिया ॥ ७६ ॥

तत्कालदृश्यं तदभूतपूर्वमक्ष्णां सहस्रैरनुभूतमेव।
कस्याऽस्तु वाणीविषयस्तु पुंसः श्रीशारदाम्बापि च यत्र मौनम्॥७७॥

उस समयका वह अभूतपूर्व दृश्य, जिसे कि हजारों आँखोंने प्रत्यक्ष अनुभव किया था, किसकी वाणीका विषय हो सकता है ? जब कि माता सरस्वती भी चुप धारण किये हुए हों ॥७७॥

❀ आयातो यो निखिलजनताविपत्तिमहानिधेः
वर्तुं शोषं स्थित इह भवाम्बुधेर्जगदीश्वरम्।
लीलानाथं तमयमनघं करोति च दाशकः
पारं नद्या महदभवदेव चाद्भुतमत्र तत् ॥७८॥

समस्त जनताके विपत्तिमहासागरको और भवसागरको सुखादेनेकेलिये जो यहाँ आये हैं और निवास कर रहे हैं उन्हीं जगदीश्वर, लीलानाथ, निष्पाप श्रीमहात्माजीको यह मल्लाह नदीसे पार कर रहा है। यह बात सबको अत्यंत आश्चर्य पैदा करा रही थी ॥७८॥

❀ मालाक्रान्ता छन्द।

❀ जगदभिरामे गतवति पारं
महति जनौघे भवति निमग्ने।
प्रशमिनि तस्मिन्भरुचमनुष्या
निजभवनानि प्रययुरधीराः ॥७९॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते भारतपारिजाते एकोनत्रिंशः सर्गः

प्रशमी — महाजितेन्द्रिय वह श्रीमहात्माजी जब पार पहुँच गये और भारी भीड़में छिप गये तब भरूचनिवासी अधीर होकर अपने अपने घर चले गये ॥७९॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञभारतराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजातेएकोनत्रिंशः सर्गः



❀ कुसुमविचित्रा छन्द।

विंशः सर्गः

दीपे प्रकाशिते दीप्तो महोत्कण्ठाविगुण्ठितम्।
महात्मा सुधियां ध्येयः सोऽथ प्रापाऽङ्कलेश्वरम् ॥१॥

देदीप्यमान श्रीमहात्माजी दीपकके जलनेके समय अत्यन्त उत्कण्ठित अङ्कलेश्वरमें पहुँचे ॥ १ ॥

तत्रत्यानां समेषां स सभायां सभ्यनायकः।
आदेशेनोपदेशेन कृतार्थीकृतवाञ्जनान् ॥२॥

वहाँके लोगोंकी सभामें श्रीमहात्माजीने उपदेश और आदेशसे सब लोगोंको कृतार्थ कर दिया ॥ २ ॥

समरेऽस्मिन्मरो नास्ति मृत्युमालिङ्गतोऽपि च।
कीर्तिकायेन जीवन्ति धर्म्ये युद्धे मृता नराः ॥ ३ ॥

इस युद्धमें मरनेपर भी मृत्यु नहीं होता है। धर्मयुद्धमें जो मनुष्य मरते हैं वह अपने कीर्ति-देहसे जीते ही रहते हैं ॥३॥

धर्म्यमेतन्महायुद्धमादृतं देशरक्षया।
यूयं सङ्गत्य सस्नेहं नरदेहं पुनीत तत् ॥४॥

देशरक्षाकेलिये आरम्भ किये गये हुए इस महायुद्धमें शामिल होकर मानवदेहको पवित्र करो ॥ ४ ॥

एवमादिश्य लोकेशो मोहनः स्त्रीर्नराञ्छिशून्।
श्रोतृनुपस्थिताञ्छिशाज्ञाहर्षपुष्टांश्चकार सः ॥५॥

लोकनायक श्रीमोहनने—श्रीमहात्माजीने स्त्रियोंको और बालकोंको भी इस प्रकारकी आज्ञा देकर प्रसन्न कर दिया ॥५॥

निशां निनाय तत्रैव सोऽनिशं जागदात्मनि।
भाते प्रभाते सेनानीः सेनया सह निर्ययौ ॥६॥

श्रीमहात्माजीने वहाँ ही रात्रि व्यतीत की और प्रातःकाल सेनासहित वहाँसे चले गये ॥ ६ ॥

*जहिजोडं सजोडं स कर्षन्सेनाममेनेनसम् ।
जनैर्जुष्टं रवैः पुष्टं पुपावाङ्घ्रिरजःकणैः ॥७॥

अपनी निर्दोष—पवित्र सेनाको लेते हुए श्रीमहात्माजीने सजोड ग्रामको अपने चरणरजसे पवित्र किया। उस ग्रामके तीन विशेषण हैं। (१) जहिजोड = भारतके बन्धनको काटडालनेकेलिये जो तैयार था। (२) बहुतसे जन समाजसे भरा हुआ था। (३) जिसमें खूब कलकल हो रहा था ॥ ७ ॥

आत्मसन्देशमादिश्य स्त्रीपुंसान्दर्शनार्थिनः ।
तेषां तोषं प्रणीयाशु माङ्गरोलमगान्मुनिः ॥८॥

स्त्रीपुरुषोंको अपना सन्देश देकर, उनको सन्तुष्ट करके श्रीमहात्माजी शीघ्र ही मांगरोल गये ॥ ८ ॥

अलङ्कृत्य च तं ग्राममलं कृत्वा मनःखिदाम् ।
इहत्यानां सुखेनायं रायमां प्रययौ पुरम् ॥९॥

उस मांगरोल गांवको सुशोभित करके, उस गाँवके लोगोंके मानसिक खेदको दूर करके सुखपूर्वक श्रीमहात्माजीने रायमाकेलिये प्रयाण किया ॥ ९ ॥

संसदं दिविषत्प्रख्यां व्याख्यानेन महामुनिः ।
महाख्यां विधायास्यां कर्मभारं समार्पिपत् ॥१०॥

देवगणोंकी सभाके समान वहांकी सभामें जाकर श्रीमहात्माजीने सभाको महाद्दूष बनाकर, कार्यभार उसे सौंप दिया ॥१०॥

---

* जुड बन्धने इतिधातुगृग्रम्। जोड.—बन्धनम्। जोडं जहीति य भाट स जहिजोडः।

उपराछीं कीममुत्तीर्य प्राप्य लोकमनःखिदाम् ।
अचिच्छित्सत धर्मात्मा गतस्तेन सभाभुवम् ॥११॥

मांगरोलमें कीम नदीको पार करके उपराछी पहुँचकर महात्माजीने लोगोंके दुःखके छेदन करनेकी इच्छाकी। अतः सभास्थानमें वह गये ॥११॥

भियो भिन्त मनस्तापं छिन्त संमानसङ्कुलाः ।
इत्यल्पेनैव वचसा निराध्नन्मोहमण्डलम् ॥१२॥

मानपरिपूर्ण-प्रतिष्ठित बन्धुओ ! भयको फाड डालो। मानसिक सन्तापको टुकडे टुकडे कर दो। इस तरहसे थोडे ही शब्दोंमें श्रीमहात्मा जीने उनलोगोंके मोहको दूर करदिया ॥१२॥

महनीयां समादाय सेना शान्तिनिषेविणीम् ।
उत्सुकोल्लोलकल्लोलं शाहोलं सद्बलो ययौ ॥१३॥

अपनी महनीय और शान्त सेनाको लेकर सत्यबलवाले श्रीमहात्माजी शाहोल गये ॥१३॥

तत्रत्यान्प्रणयन्दीप्तांस्तेजसा सूर्यसन्निभः ।
पर्यष्करोन्महाबाहुर्भटग्रामं महाभटः ॥१४॥

सूर्यसमान तेजस्वी श्रीमहात्माजीने शाहोल के लोगोंको उत्तेजित करके भटगाँवको अलङ्कृत किया ॥ १४ ॥

पञ्चकलाप्रपञ्चेन सज्जां व्याख्यानवेदिकाम् ।
वेदभेदविदां वेधः स आरोहन्महाप्रभः ॥१५॥

बहुत सुन्दर कलाओंसे सजायी गयी हुई व्याख्यान वेदीपर श्रीमहात्माजी आकर विराजमान हुए ॥१५॥

शान्तिमूर्तिं समार्तानां विपदुल्लासकं मुदां ।
अक्ष्णां पुटैः सहस्रैस्ते निर्निमेषं जनाः पपुः ॥१६॥

दुःखियोंके दुःखको दूर करनेवाले, उन शान्तमूर्ति श्रीमहात्माजीको लोगोंने सहस्रों आँखोंसे पान किया—लोगोंने उनका खूब दर्शन किया ॥१६॥

निःशब्दे च समापन्ने जनानां मण्डले तदा ।
अखण्डाखण्डलाभासो मुखमुद्रां मुमोच सः ॥१७॥

जब सब लोग एकदम चुप हो गये— शान्ति छा गयी तब इन्द्रके समान अखण्ड तेजस्वी श्रीमहात्माजीने अपने मुँहको उघाडा—बोलना शुरू किया ॥ १७ ॥

जिह्वावतां तु सर्वेषामुपदेशो न दुर्लभः ।
दुःखापोपदेष्टुं सा योग्यता किन्तु केवलम् ॥१८॥

जिनके पास जीभ है उनको उपदेश करना तो दुर्लभ नहीं है किन्तु उपदेश करनेकी योग्यता ही दुःखसे प्राप्त करने योग्य है ॥ १८ ॥

यत्किञ्चिदहमद्याद्य कथयिष्यामि वः पुरः ।
उपदेशस्तदग्यद्वा यथारुचि विकल्प्यताम् ॥१९॥

आज मैं तुम लोगोंके सामने जो कुछ कहूंगा उसे, तुम्हारी मर्जी हो तो उपदेश समझना, तुम्हारी मर्जी हो तो और कुछ समझना ॥ १९ ॥

अंग्रेजराज्यनियता - न्महादोषा - न्यथायथम् ।
ज्ञात्वा च ज्ञपयित्वा च मनस्तोषं निषेवते ॥२०॥

अंग्रेजी राज्यमें जो जो महान् दोष हैं उनको जानकर, और जनाकर ही मेरे मनको सन्तोष होता है ॥ २० ॥

परं यः कोपि दोषः स्यात्परमाणुसमोऽपि मे ।
सुमेरुरिव दीर्घत्वं धत्ते नित्यं हि मद्दृशि ॥२१॥

परन्तु यदि मेरा कोई दोष परमाणु बराबर भी (अल्प) हो तो भी वह सचमुच मेरी दृष्टिमें सुमेरु पर्वत जितना बड़ा प्रतीत होता है ॥२१॥

नाल्पीयांसोऽपि ते लोका ये स्वदोषान्महेश्वरे ।
समर्प्यैव मनः स्वीयं नयन्ते तोषमन्दिरम् ॥२२॥

और ऐसे लोग थोड़े नहीं हैं जो अपने दोषोंको भगवान्को ही अर्पण करके सन्तोष मान लेते हैं ॥ २२ ॥

सर्वसामान्यसम्मान्यं मार्गमेनमहं पुनः।
विहाय विहरन्नत्र कैश्चित्त्यक्तोऽप्यनादरात् ॥२३॥

अपने दोषको क़बूल न करना अथवा भगवान्को उसे अर्पण कर देना वह सर्वसाधारणका माननीय मार्ग है। मैंने इस मार्गका त्याग किया है। मैं अपने दोषोंको भी दोष मानता हूँ, दूसरोंके दोषोंको भी दोष मानता हूँ। और इसीलिए मेरे कितने ही साथियोंने मेरा त्याग भी कर दिया है ॥ २३ ॥

ये मदीया महामोदा जनाः सन्ति मया सह।
सेनारूपेण ते सर्वे सावधानीकृता मया ॥२४॥

मेरे साथ सेनाके रूपमें जो मेरे आनन्दी साथी हैं, मैंने उन सबको सावधान कर दिया है ॥ २४ ॥

प्रदेशेऽस्मिंश्च बहवः सुहृदः सन्ति संस्तुताः।
तत्कृतं योग्यमातिथ्यं ग्रहीतव्यं न चान्यथा ॥२५॥

इस प्रदेशमें बहुतसे परिचित मेरे बन्धु निवास करते हैं। वहलोग अच्छासे अच्छा अतिथिसत्कार करेंगे। जो योग्य आतिथ्य है उसे ही ग्रहण करना, अन्यथा नहीं ॥ २५ ॥

न स्मो वयं सुरा वापि तत्समा वापि केवलम्।
अनेकैर्दुर्गुणैर्लोभैः पूर्णाः स्मो मानवा ननु ॥२६॥

हम लोग न तो देवता हैं और न देवताओंके समान ही हैं। हम तो अनेक दुर्गुणों और लोभोंसे परिपूर्ण केवल मनुष्य हैं ॥ २६ ॥

अमी अवगुणाः सर्वेऽस्माभिर्हेया अशेषतः।
एवं प्रबोधिता एते मया सर्वे पुनः पुनः ॥२७॥

हम लोगोंको यह सब अवगुण सर्वथा छोड़ देने चाहिये। इस प्रकारसे मैंने बार-बार इन लोगोंको सिखाया है ॥ २७ ॥

एवं कृतेऽपि मद्दृष्टावस्मद्दोषाः समागताः।
तदर्थं भर्त्सिता एते मया भूयोऽनुयायिनः ॥२८॥

ऐसा करनेपर भी—समझानेपर भी हमारे दोष मेरी दृष्टिमें आ गये हैं। इसकेलिए मैंने अपने इन साथियोंको बहुत डाटा है ॥ २८ ॥

सार्धं मयैव वसतां मदभिन्नात्मनां यदि।
सैनिकानां भवेद्दोषः खेदायैव स मे भवेत् ॥२९॥

मेरे ही साथ रहनेवाले, साक्षात् मेरे आत्माके समान इन सैनिकोंमें यदि दोष हो तो वह अवश्य मुझे खिन्न बनावेंगे ॥ २९ ॥

अस्मदर्थं व्ययो भूयान्भवत्येवेह सर्वथा।
तदसह्यं महद्दुःखं मानसं सन्दुनोति मे ॥३०॥

यहाँपर हम लोगोंकेलिए सब प्रकारसे अधिक व्यय हो रहा है। वह असह्य महादुःख मेरे मनको व्यथित कर रहा है ॥ ३० ॥

दीनरक्षानिमित्तेन निर्गता वयमद्य चेत्।
न तदायाद्व्ययो योग्यः पञ्चाशद्गुणिताधिकः ॥३१॥

यदि हम लोग दीनोंकी रक्षाकेलिए निकले हों तो दीनोंकी आयसे ५० गुणा अधिक व्यय हम नहीं कर सकते ॥ ३१ ॥

वाइसरायस्य सविधे उपालम्भपुरस्सरम्।
भवेत्तत्प्रहितं पत्रं नाधिकारविचेष्टितम् ॥३२॥

वाइसरायके पास जो मैंने उलाहनेका पत्र भेजा है वह अनधिकार चेष्टा ही हुई है ॥ ३२ ॥

दूरादानाययन्तेऽत्र मृद्वीका भूमिजम्बुकाः।
भवन्तोऽस्माकमातिथ्यं कर्तुं श्रद्धातिविह्वलाः ॥३३॥

श्रद्धाके मारे हमारे आतिथ्यकेलिए आप लोग दूर-दूरसे द्राक्षा और नारङ्गी मँगाते हैं ॥ ३३ ॥

सर्पिष्कुण्डिकया दुग्धमहाभारैश्च सत्कृताः ।
भवतां हृदयक्षोभभीत्या सर्वं सहामहे ॥३४॥

घीके कुण्डोंसे और दूधके भारसे हमारा सत्कार किया जा रहा है। आपके हृदयको आघात न पहुँचे, इसलिए हम सब कुछ सह रहे हैं ॥३४॥

अतिक्रम्य कृतः शक्तिं व्ययः शोभेत न क्वचित्।
चौर्यमेव भवेदेतच्चौर्यान्न स्याज्जयो युधि ॥३५॥

शक्तिसे अधिक यदि व्यय किया जाय तो वह शोभा नहीं देगा। ऐसा व्यय चोरी ही है। और चोरीसे युद्धमें जय प्राप्त नहीं होगा ॥३५॥

यद्यप्यद्य वयं सर्वे भवामोऽल्पे परं यदि।
असंख्याः सेवका ईयुर्निर्वाहः स्यात्कथं तदा ॥३६॥

यद्यपि हम लोग आज अवश्य ही थोड़े हैं परन्तु यदि असंख्य स्वयंसेवक आ जावें तो कैसे निर्वाह होगा ? ॥ ३६ ॥

अहं दीनो धनैर्हीनो मलिनो मनसा पुनः ।
किमर्थं मामका यूयं स्वीयं दूषयथात्र माम् ॥३७॥

मैं दीन हूँ। निर्धन हूँ। मनका मलिन हूँ। तुम सब लोग मेरे हो। मैं तुम्हारा हूँ। तुम लोग मुझे दूषित क्यों करते हो? ॥ ३७ ॥

युष्माभिरेव वक्तव्यं किट्सन्दीपप्रयोजनम्।
अस्मिन्ग्रामे किमासीद्यज्ज्वालितोऽग्नाविचारितम् ॥३८॥

तुम्हीं बताओ कि इस गाँवमें किट्सन् लाइटका क्या प्रयोजन था जो तुम लोग विनाविचारे यहाँ जला रहे हो? ॥ ३८ ॥

लक्षेणैव जनैर्जातं कृतमद्य विलुण्ठनम् ।
असह्यं किं पुनस्त्रिंशत्कोटिलोकैर्मिथः कृतम् ॥३९॥

एक लाख आदमी (अंग्रेज) लूट रहे हैं, यही असह्य हो रहा है। यदि ३० करोड़ लोग आपसमें ही लूटपाट करने लग जावें तो मेरे दुःखका कहना ही क्या है? ॥ ३९ ॥

एतद्दीपमिषेणात्र सर्वान्सेवापरायणान् ।
सावधानानहं कर्तुं प्रयते सर्वकर्मसु ॥४०॥

इस किट्सन् लाइटके बहानेसे मैं सब सेवकोंको सब कार्योंमें सावधान करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ ॥ ४० ॥

मया प्रदर्शितेनैव वर्तेध्वं न यथा यदि।
कदर्थितं भवेदेव सर्वथा जीवनं मम ॥४१॥

मेरे बताए हुए मार्गसे ही यदि तुम लोग नहीं चलोगे तो मेरी जिन्दगी खराब होगी ॥ ४१ ॥

अहं न नियतं वेद्मि राज्यं प्रत्येव केवलम्।
कर्तुं सत्याग्रहं सर्वैः सम्बन्धिभिरपीश्वरः ॥४२॥

मैं केवल सर्कारके साथ सत्याग्रह करना नहीं जानता प्रत्युत अपने सम्बन्धियोंके साथ भी करना जानता हूं ॥ ४२ ॥

सत्याग्रहं समादतुं राज्यं प्रति विचारयन्।
नीतवान्वत्सरगणं सत्वरं सोऽस्तु वः प्रति ॥४३॥

सर्कारके प्रति सत्याग्रह करनेमें तो विचार करते करते मैंने वर्षों बिता दिए। परन्तु तुम्हारे साथ तो उसे करते देर न होगी ॥ ४३ ॥

प्रबन्धारोऽपि शृण्वन्तु प्रार्थनामाहतां मया।
कार्यं तदेव कर्तव्यं सर्वेषां यत्सुखप्रदम् ॥४४॥

मेरी इस की हुई प्रार्थनाको व्यवस्थापक लोग भी सुनें। काम वही करना चाहिए जो सबके लिए सुखदायक हो ॥ ४४ ॥

इदमस्ति न चालोदमिदमायादिदं न हि।
इत्यस्माभिः कदाचिद्वो नोपालम्भः प्रदास्यते ॥४५॥

यह है और यह नहीं है, यह चीज आयी और यह नहीं आयी, इस तरहसे हम लोग कभी भी आपको उलहना नहीं देंगे ॥ ४५ ॥

रोगिपेयं पयो यूयमानयेत न मत्कृते ।
विषवत्तन्मया त्याज्यं पिपासामि न तत्पयः ॥४६॥

जो दूध रोगियोंके पीनेकेलिये हो उसे मेरेलिये आप लोग न ले आवें । मैं उसका विषके समान त्याग करूँगा । उसे मैं पीना नहीं चाहता ॥ ४६ ॥

भाजा शाकानि दुग्धादि आनीयन्तेऽत्र सूरतात् ।
औचित्यं न भजेतैतच्छोभते न च सा कृतिः ॥४७॥

भाजी, शाक और दूध भी आप लोग सूरतसे मँगाते हैं । यह न तो उचित ही है और न शोभा ही देता है ॥ ४७ ॥

भजेरन्नासवो नाशं विना शाकं विना पयः ।
तद्विना म्रियमाणानाममन्यूनां तु का क्षतिः ॥४८॥

शाक और दूध बिना तो हम लोग मर नहीं सकते हैं । और यदि उनके बिना मर भी जायँ और क्रोध न करें, तो क्षति ही क्या है ? ॥४८॥

मोटरादिषु यानेषु कार्येष्वन्येष्वपीहितः ।
विषोढव्यो व्ययो योग्यो वोढव्योऽपव्ययो नहि ॥४९॥

मोटर आदि वाहनोंमें और दूसरे कार्योंमें भी योग्य व्यय ही सहना चाहिये । अपव्ययका भार नहीं उठाना चाहिये ॥ ४९ ॥

पदातिगमनं श्रेयोऽसामर्थ्ये रेलगाडिका ।
तदशक्ये हयो ग्राह्यस्तदशक्ये च मोटरम् ॥५०॥

पैदल चलना सबसे उत्तम है । असमर्थ हो तो रेलगाड़ीसे जाना अच्छा है । उसकेलिये भी धनादिक अभाव हो तो घोड़ाका ग्रहण करना चाहिये । जब यह भी न मिले तब मोटरका ग्रहण करना चाहिये ॥ ५० ॥

कोटीनां त्रिंशतो नृणामिदं युद्धं प्रयुध्यताम् ।
न निष्पापमयत्नं द्रव्यैर्मोटरैर्वा कदाचन ॥५१॥

३० करोड़ आदमियोंका यह युद्ध है। द्रव्यसे या मोटरसे यह कभी भी सफल नहीं हो सकता है ॥ ५१ ॥

क्षुत्पीडापीडितैर्वापि पिपासाकुलितैरपि ।
योद्धव्यमिति निश्चित्य यूयमामन्त्रिता मया ॥५२॥

भूखकी पीड़ासे पीड़ित होकर भी, प्याससे व्याकुल होकर भी इस युद्धको लडना है, ऐसा निश्चय करके मैंने तुमको आमन्त्रण दिया है ॥ ५२ ॥

नावकाशं लभेतैव युद्धेऽस्मिन्वो विलासिता।
क्षणायापि कदाप्येतन्न विस्मार्यं कदाचन ॥५३॥

इस युद्धमें विलासिताकेलिये स्थान नहीं है, यह बात कभी क्षणभरकेलिये नहीं भुलानी चाहिये ॥ ५३ ॥

विना भोगविलासैर्वा विना द्रव्यैर्विना सुखैः।
यदि शक्यं तदा योध्यं प्रपलायध्वमन्यथा ॥५४॥

विना भोगविलासके, विना द्रव्यके और विना सुखके यदि शक्य हो तो लडो नहीं तो चले जाओ ॥ ५४ ॥

न पत्रं पत्रिका नापि न लेखो नापि वाग्मिता।
अस्य युद्धस्य साफल्ये हेतुतां वहते ध्रुवम् ॥५५॥

इस युद्धकी सफलतामें पत्र, पत्रिका, लेख और भाषण आदि कारण नहीं हो सकते ॥ ५५ ॥

जय्यं श्रीरामनाम्नैव युद्धमेतत्क्षणादपि ।
निश्चप्रचं तदेवास्ति साधनं सर्वसाधनम् ॥५६॥

श्रीरामनामके बलसे ही यह युद्ध क्षणभरमें जीता जा सकता है। सर्ववस्तुओंका साधनरूप रामनाम ही इस युद्धमें भी साधन है ॥ ५६ ॥

लोकाभिमतनीचस्य पुरुषस्याद्य कस्यचित् ।
सोपष्टभ्यं महादीपं स्थापयित्वाऽय मूर्धनि ॥५७॥

मदग्रे गन्तुमादिष्टो हस्तपादादिमानसौ ।
कुर्वतामीदृगन्याय्यं कुतः प्राप्या स्वतन्त्रता ॥५८॥

लोगोंकी दृष्टिमें जो नीच है उस पुरुषके सिरपर आज स्टूल सहित—बैठक सहित यह बड़ा भारी गेस रखकर, हाथ पैरवाले उस आदमीसे मेरे आगे-आगे चलनेके लिए कहा गया। इतने अन्याययुक्त कर्मोंके करनेवालोंको स्वतन्त्रता कैसे मिल सकती है ? ॥ ५७-५८ ॥

ममैतद्वच आकर्ण्याऽनुत्साहो वः पराभवेत् ।
विमुखीभूय न परं पलायिष्ये रणादहम् ॥ ५९ ॥

मेरी इस बातको सुनकर अनुत्साह तुमको हरा सकता है। परन्तु मैं विमुख होकर युद्धसे नहीं भागूँगा ॥ ५९ ॥

सर्वथा रक्षणीयैव प्रतिज्ञा या मया कृता ।
उत्पादितं हि तद्भङ्गात्पापं मा मां वधीदिति ॥ ६० ॥

मैंने जो प्रतिज्ञाकी है उसकी तो मैं रक्षा करूँगा ही; जिससे कि प्रतिज्ञाभङ्गसे उत्पन्न हुआ पाप मेरा नाश न कर डाले ॥ ६० ॥

वायसानां शुनां तुल्यं मृत्युमालिङ्गितो मम ।
वैमुख्यं न भवेद्युद्धात्सत्यमेतन्न संशयः ॥ ६१ ॥

कौओं और कुत्तोंकी मौतको भी स्वीकारता हुआ मैं युद्धसे विमुख नहीं होऊँगा, यह सत्य है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥

क्षुधितस्तृषितो वापि ग्रामाद्ग्रामं वनाद्वनम् ।
अटन्स्वराज्यकामोऽहं मृत्युमालिङ्गितास्म्यलम् ॥ ६२ ॥

स्वराज्यकी इच्छावाला मैं भूखा और प्यासा एक ग्रामसे दूसरे ग्राम में और एक वनसे दूसरे वनमें भटकता हुआ मृत्युका आलिङ्गन करूँगा ॥ ६२ ॥

नानुत्साहो न धैर्याद्यं प्रभवेन्मां प्रबाधितुम् ।
यूयं जानीथ नियतं मोहनो द्विर्न भाषते ॥ ६३ ॥

मुझे न तो अनुत्साह हैरान कर सकता है और न व्यग्रता। तुम लोग जानते ही हो कि मैं (मोहन) दो बार नहीं बोलता। अर्थात् मेरी प्रतिज्ञा कभी उलटती नहीं है ॥ ६३ ॥

मुहम्मदपुरं सायं ययौ लोकाधिनायकः।
सांधियेरं च देलाडं क्रमादापन्महामुनिः ॥ ६४ ॥

श्रीमहात्माजी सायङ्काल मुहम्मदपुर गये। उसके बाद क्रमसे सांधियेर और देलाड पहुँचे ॥ ६४ ॥

श्रीमती खुरशेदाख्या देवी सत्याग्रहाश्रमात्।
आगता अपरा देव्यो देलाडं निषिषेविरे ॥ ६५ ॥

श्रीमती खुरशेद बहिन और सत्याग्रह आश्रम साबरमतीसे भी कुछ बहिनें यहाँ आ गयी थीं और उन्होंने देलाडकी अच्छी तरह सेवा की ॥ ६५ ॥

सर्वाः संमार्जनीहस्ता ग्रामेयकसमन्विताः।
पर्यष्कुर्वत तं ग्रामं सोत्साहा मातृशक्तयः ॥ ६६ ॥

देलाड ग्रामके लोगोंको साथमें लेकर इन सब बहिनोंने हाथमें झाड़ू लेकर उत्साहसे उस ग्रामको परिष्कृत = स्वच्छ कर दिया ॥ ६६ ॥

आदाय मार्जनीं शुभ्रां खुरशेदमहोदया।
श्रीमती मृदुला चोभे अन्त्यजावासमीयतुः ॥ ६७ ॥

श्रीखुरशेद बहिन और श्रीमृदुला बहिन दोनों ही झाड़ू लेकर अन्त्यजवाडेमें चली गयीं ॥ ६७ ॥

सत्याग्रहसदाचार्य इदं सर्वं विलोकयन्।
मन प्रसत्तिमापेदे कुपितोऽपि गतेऽहनि ॥ ६८ ॥

श्रीमहात्माजी गत दिवस क्रुद्ध हो गये थे तो भी आज यह सब कार्य देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया ॥ ६८ ॥

हरित्पल्लवशोभाढ्ये स नभःपटमण्डपे।
मन्दमन्दं स्फुरद्दीपैः शोभितेऽगारसभागृहे॥ ६९॥

हरे हरे पत्तोंसे सजाये गये हुए, मन्द मन्द दीपकोंसे शोभित, खुले आकाशमें होनेवाली सभामें श्रीमहात्माजी गये॥ ६९॥

प्रतानपि सुपामासौ जगन्मंगलवर्धकः।
समस्तवित्त्वात्सत्प्रख्यो वाचमाचमयज्जनान्॥ ७०॥

यद्यपि श्रीमहात्माजी कुछ दु:खी हो रहे थे तो भी शान्तियुक्त होकर, सर्ववित् होनेके कारण सुन्दर ज्ञानसम्पन्न और अत एव जगत्के कल्याणको बढानेवाले उन्होंने लोगोंको उपदेश करना शुरू किया॥ ७०॥

* गतेऽहनि समुत्थेन दुःखदावानलेन मे।
तप्तं हृदयमद्यास्ते कथंचिच्छान्तिसद्मनि॥ ७१॥

परसों मेरे हृदयमें जो दु:खदावानल सुलग रहा था उससे मेरा हृदय सन्तप्त था। परन्तु आज वह थोडासी शान्ति में है॥ ७१॥

प्रेमानलललज्ज्वाला प्राकट्यं गमिता मया।
मित्रेभ्यः सा न दुःखाय जातेति मुदितं मनः॥ ७२॥

प्रेमरूप अग्निकी जिस प्रचण्ड ज्वालाको मैंने प्रकट किया था उससे मेरे मित्रोंको दुःख नहीं हुआ है, इससे मेरा मन प्रसन्न है॥ ७२॥

अकृत्रिममिदं सर्वं समालोक्य समन्ततः।
अद्य मे हृदयं शान्तिं संस्प्रष्टुमुपधावति॥ ७३॥

आज यह सब अकृत्रिम—स्वाभाविक (रचना) को देखकर मेरा हृदय शान्तिको स्पर्श करनेकेलिये दौड रहा है॥ ७३॥

ग्राम्यजीवनमस्माकं पाश्चं ह्याडम्बरोमहान्।
उभयोः स्पष्टमाभाति विततं महदन्तरम्॥ ७४॥

* यहाँसे श्री महात्माजीका भाषण है।

कहाँ तो हम लोगोंका ग्राम्यजीवन और कहाँ यह महान् आडम्बर! इन दोनोंमें स्पष्ट ही महान् अन्तर दीख पड़ रहा है ॥ ७४ ॥

धूमयानं न यत्रास्ति नगराणि विदूरतः।
तासु ग्रामटिकास्वेव लोकसेवा मनीषिता ॥ ७५ ॥

जिन छोटे छोटे गाँवोंमें न तो रेल है और न जिनके पास कोई शहर है उन्हींमें हम लोगोंको जनसेवा करनी है ॥ ७५ ॥

युक्तप्रान्तेषु वङ्गेषु विहारेष्वपि या मया।
दृष्टा ग्रामदशा सा तु दुर्दर्शा नात्र दृश्यते ॥ ७६ ॥

संयुक्तप्रान्तमें, बंगालमें और बिहारमें भी ग्रामोंकी जो दशा मैंने देखी है, सद्भाग्यसे वह दशा यहाँ नहीं है ॥ ७६ ॥

तेषु प्रान्तेषु ये ग्रामा दुःखागारा मता मम।
न दीपो न सुखं वर्त्म भषणं सर्वतः शुनाम् ॥ ७७ ॥

उन प्रान्तोंमें जो ग्राम हैं मेरी दृष्टिमें दुःखागार ही हैं। वहाँ न रोशनी है, न अच्छा रास्ता है। चारोंओर कुत्ते भूँकते रहते हैं ॥ ७७ ॥

गुर्जरग्रामगेहेभ्यो निकृष्टा एव तत्र ते।
लोका लोकितकङ्काला निस्तेजस्काश्च सर्वथा ॥ ७८ ॥

गुजरातके गाँवोंके घरोंकी अपेक्षा उन प्रान्तोंके घर बहुत निकृष्ट हैं। लोगोंकी हड्डियाँ दीखती रहती हैं। लोक सब तरहसे तेजोहीन हैं ॥ ७८ ॥

शरीराच्छादनं तेषां शीतर्तौ कुवितेऽपि न।
कृतेऽपि प्राप्यते यत्ने धिग्दैवस्य विडम्बनम् ॥ ७९ ॥

उन लोगोंको भयङ्कर ठंडमें भी, यत्न करनेपर भी शरीर ढाँकनेके-लिये ओढ़ना नहीं मिलता है। दैवकी इस विडम्बनाको धिक्कार है ॥ ७९ ॥

अन्नं नास्ति क्षुधः शान्त्यै तृषः शान्त्यै न वा जलम्।
दैवस्य दुर्विपाकोऽयं वीक्षितः स्वदृशा मया ॥ ८० ॥

वहाँ भूख मिटानेको अन्न नहीं है और प्यास दूर करनेको जल नहीं है। भाग्यका यह दुष्ट विपाक मैंने अपनी आँखोंसे देखा है ॥ ८० ॥

दीपाभावेन, तत्राहेर्दंशनात्प्रतिवत्सरम्।
लक्षाणि विंशतिर्लोका गच्छन्ति यममन्दिरम् ॥ ८१ ॥

वहाँ गाँवोंमें रोशनी के विना, साँपके काटनेसे प्रतिवर्ष २० लाख आदमी मरा करते हैं। (यह सख्या सर्कारद्वारा प्रकाशित है) ॥ ८१ ॥

दशायां वर्तमानायामस्यां संशोभतां कथम्।
बन्धवोऽस्माकमथैतदैश्वर्यस्य प्रदर्शनम् ॥ ८२ ॥

ऐसी अवस्थामें, भाइयो ! हम लोगोंको आडम्बर दिखाना कैसे शोभा दे सकता है ? ॥ ८२ ॥

शनैः शनैः समारूढं योग्यं विपरिवर्तनम्।
सम्भूयैव स्वराज्यस्य प्राप्तिहेतुर्भविष्यति ॥ ८३ ॥

धीमे धीमे आरूढ-होनेवाले योग्य परिवर्तन, एक दिन सब मिलकर स्वराज्यप्राप्तिके कारण बन जायँगे ॥ ८३ ॥

यथा बहिस्तथा कारागारेऽप्यात्मविशुद्धयः।
भ्रातरोऽस्माकमत्यन्तं कामिता जीवितुं मुदा ॥ ८४ ॥

भाइयो ! जैसे बाहर वैसे ही जेलमें भी, हमलोगोंको जीनेकेलिये आत्मशुद्धि अत्यन्त इष्ट वस्तु है ॥ ८४ ॥

पत्त्रं मसी च कार्पासं चक्रं कार्पासमार्जनी।
कारागारेऽपि लब्धव्यं गीतारामायणाद्यपि ॥ ८५ ॥

जेलमें भी कागज, स्याही, रूई, चर्खा, पींजण, (धुनकी, गीता और रामायण) आदि मिलेंगे ॥ ८५ ॥

यदि नैतानि वस्तूनि लभ्येरन्बन्दिमन्दिरे।
शान्त्या सभ्यतया सर्वैः प्राप्तव्यानि प्रयत्नतः ॥ ८६ ॥

यदि जेलमें यह सब चीजें न मिलें तो शान्तिसे सभ्यताके साथ प्रयत्न करके इन्हें प्राप्त करना चाहिये ॥ ८६ ॥

आदेशकुशलाचार्यो दर्शनोत्कण्ठिताञ्जनान् ।
उपदिश्यैवमह्नाय छापराभाठमीयिवान् ॥ ८७ ॥

आदेश करनेमें परमनिपुण आचार्य श्रीमहात्माजी दर्शनकेलिये उत्कण्ठित लोगोंको इस प्रकार उपदेश देकर शीघ्र ही छापराभाठा चले गये ॥८७॥

ततस्तापीं नदीं रम्यां पापसन्तापतापिनीम् ।
ततार मुनिराजोऽयं ससैन्यो भारताग्रणीः ॥ ८८ ॥

वहाँसे उन्होंने अपनी सेनाके साथ पापसन्तापको नष्ट करनेवाली ताप्ती नदीको पार किया ॥ ८८ ॥

असंख्यजनसंघातपरिवारित एव सः ।
प्रतीक्षानिरतं साधु सुरतं प्रययौ पुनः ॥ ८९ ॥

असंख्योंकी भीड़से घिरे हुए श्रीमहात्माजी, राह देखकर बैठे हुए सूरतकेलिये चल दिये ॥ ८९ ॥

भगवत्प्रार्थनान्ते स भगवत्त्वविभूषितः ।
प्रविवेश सभागेहं जयघोषैः समर्चितः ॥ ९० ॥

भगवान्की प्रार्थनाके पश्चात् भगवत्त्व-भगवद्धर्मसे शोभित श्रीमहात्माजीने जयघोषोंके साथ सभागृहमें प्रवेश किया ॥ ९० ॥

नेत्राण्युपोषितान्यथ लोकानामातुराणि तम् ।
सम्प्राप्य सहसा तत्र सुखं चिरमथापिपुः ॥ ९१ ॥

लोगोंकी आँखें भूखी और व्याकुलके समान बनी हुई थीं। श्रीमहात्माजीको वहाँ अकस्मात् पाकर उन आँखोंने सुखपूर्वक चिरकालतक उनका पान किया ॥ ९१ ॥

तत्रत्यानामशान्तानि हृदयानि जगाहिरे।
महाशान्तिमहासिन्धुं दर्शनेन महात्मनः ॥ ९२ ॥

वहाके लोगोंके अशान्त हृदयोंने श्रीमहात्माजीके दर्शनसे महाशान्तिसागरका अवगाहन किया–अर्थात् शान्ति प्राप्त की ॥ ९२ ॥

लोकानां श्रवणे तृप्ते कर्तुं तृप्तः स आत्मवान्।
कृतार्थयन्सुधादिग्धां वाचं प्रोवाच मानवान् ॥ ९३ ॥

आत्मशक्तिसम्पन्न श्रीमहात्माजी लोगोंको तृप्त करनेकेलिये लोगोंको कृतार्थ करतेहुए अमृतसिक्त वचन बोले ॥ ९३ ॥

सभ्यान्सर्वोन्वारयारान्दृष्ट्वा प्रतिसभं मया।
मन्यते भगवान्सर्वप्रेरकोऽद्य प्रसीदति ॥ ९४ ॥

प्रत्येक सभामे झुण्डके झुण्ड आदमियोंको देखकर, मैं समझता हूँ कि सबके प्रेरक भगवान् आज प्रसन्न हैं ॥ ९४ ॥

अनेकदोषसंजुष्टैः सैनिकैर्नितरामहम्।
दोषराशिर्न योग्योऽस्मि सत्कारस्यास्य सर्वथा ॥ ९५ ॥

अनेक दोषोंसे भरे हुए मेरे सैनिकोंके साथ मैं दोषोंका भण्डार हूँ। अतः किसी प्रकारसे भी मैं इस सत्कारके पात्र नहीं हूँ ॥ ९५ ॥

इष्टं यद्वस्तु सर्वेषां तदेवाप्तुं वयं व्रजिम्।
रचयाम इति ह्लादात्सत्कारस्तस्य मन्यते ॥ ९६ ॥

जो वस्तु (स्वराज्य) सबको प्रिय है उसीको प्राप्त करनेकेलिये हम लोग जा रहे हैं, मैं मानता हू कि, इसी प्रसन्नतासे उसी वस्तुकेलिये (स्वराज्यकेलिये) यह सत्कार है ॥ ९६ ॥

निस्सन्देहं समायाता यूयं प्रेमपुरस्सराः।
परं तु परमैः स्वेष्टं विना दुःखैर्न चाप्यते ॥ ९७ ॥

निस्सन्देह तुम प्रेमके साथ यहाँ आये हो। परन्तु इष्ट वस्तु दुःखोंके बिना मिलती नहीं है ॥ ९७ ॥

अन्याय्यः कर आस्तेऽयं लवणीयः शिशोरपि।
महात्यागव्रतायत्तादपि राज्येन गृह्यते ॥ ९८॥

यह नमक कर अत्यन्त अन्यायपूर्ण है क्योंकि यह बालकसे भी और परम विरक्त सन्यासीसे भी लिया जाता है ॥ ९८ ॥

अस्य राज्यस्य नाशाय लवणोऽयं करः स्थितः।
एतेनैव निमित्तेन तमीशो नाशयिष्यति ॥ ९९॥

इस राज्यके नाशकेलिये ही यह नमक कर है। इसी निमित्तसे भगवान् इसका नाश करेंगे ॥ ९९ ॥

धर्मग्रन्थेष्वधीतेषु श्रुतेषु च मया ननु।
निर्धनेषु च योषित्सु दृष्टं करविवर्जनम् ॥१००॥

मैंने सभी धर्मोंके ग्रंथ पढ़े और सुने हैं। सब जगह यही पाया है कि गरीबोंसे और स्त्रियोंसे कर न लिया जावे ॥१००॥

यथा युद्धे न हन्तव्या बालाः प्रवयसः स्त्रियः।
करादपि तथा वर्ज्या एते सर्वत्र सर्वथा ॥१०१॥

जिस तरहसे युद्धमें बालक, वृद्ध और स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये, ऐसे ही इन तीनोंको सर्वथा करमेंसे भी बचा लेना चाहिये ॥ १०१ ॥

राज्येऽस्मिन्कर एषोऽस्ति ग्राह्यः सर्वेभ्य एव तत्।
राक्षसस्यास्य राज्यस्य महापुण्यविनाशकः ॥१०२॥

इस राज्यमें यह कर सबसे ही लिया जाता है। अतः इस राज्यके पुण्यका नाश करनेवाला ही यह कर है ॥ १०२ ॥

भगवन्तमुपासीना नार्हन्ति शुभचारिणः।
उपासितुमिदं राज्यं भ्रान्त्यापि नयवर्त्मभित् ॥१०३॥

जो लोग भगवान्‌की उपासना करते हैं उन धर्मात्माओंको इस अन्यायी राज्यकी कभी भी उपासना—सेवा नहीं करनी चाहिये ॥१०३॥

अंग्रेजराज्यनाशाय प्रातः सायं महेश्वरः।
कर्तव्या प्रार्थना सर्वैरेष धर्मः सनातनः ॥१०४॥

प्रात और सायकाल, दोनोंसमय भगवानसे अंग्रेजो राज्यके नष्ट होजानेकी प्रार्थना करनी चाहिये। यही सनातनधर्म है ॥ १०४ ॥

एवं प्रार्थयमानान्न· कारां नयतु शासकः।
शिरश्छेदं च कुर्याद्वा सर्वं सह्यमनाकुलैः ॥१०५॥

शासक, इस तरहसे प्रार्थना करते हुए हम लोगोंको चाहे जेलमें ले जायँ और चाहे मस्तकच्छेदन करें, सब कुछ शान्तिसे सहन करना चाहिये ॥१०५॥

प्रगृह्यास्मान्निगडितान्कुर्यात्कारां नयेत वा।
राज्यं तथापि तस्यापि वान्छामः सात्त्विकीं मतिम् ॥१०६॥

इम लोगोंको पकड़कर बेडी डाल दें या जेलमें यह सर्कार ले जाय तो भी हम उस राज्यकेलिये भी सात्त्विकी बुद्धिकी ही इच्छा करेंगे ॥१०६॥

कुर्वीत बन्धनं नो वा राज्यं नः परमेकदा।
अनीत्या ह्येतयाऽशेषो देशः सन्तापमेष्यति ॥१०७॥

यह राज्य हम लोगोंको पकडे या न पकडे परन्तु एक दिन आवेगा जब इस अनीतिसे सम्पूर्ण देश सुलग उठेगा ॥ १०७ ॥

तदा नयतु नः कारां नवेति न भवेद्भिदा।
सपद्येव विमोक्षः स्यात्तदा भारतवर्षिणाम् ॥१०८॥

और उस समय यह राज्य हमें जेलमें ले जाय या बाहर रखे, दोनोंमें कुछ भी अन्तर नहीं होगा। भारतवर्षको शीघ्र ही मुक्ति मिल जायगी ॥१०८॥

वल्लभेनात्र वार्तानां वल्लभेन निरन्तरम्।
बहुकृत्वः समादिष्टं कृत्यं यौष्माकमञ्जसा ॥१०९॥

दोनोंके प्रिय श्रीवल्लभभाईने हमेशा बहुत बार तुम्हें तुम्हारे कर्तव्यका उपदेश किया है ॥ १०९ ॥

तत्फलं चात्र किं जातमेतदेव विचार्यते।
स्वस्ति भूयात्तलाटिभ्यः संत्यक्तं यैः स्वकं पदम् ॥११०॥

उस उपदेशका क्या फल हुआ है, मैं इसीका विचार करता हूँ। उन तलाटियोंका कल्याण हो जिन्होंने अपने पद का त्याग कर दिया है॥११०

प्राड्विवाकस्तथा छात्रगणोऽकुर्वन्कियत्किमु।
न्यायालयास्तथा पाठशालास्तैस्तु हिता नवा॥१११॥

वकीलोंने और छात्रोंने क्या किया और कितना किया? उन्होंने ⊛ कचहरियों और स्कूलोंको तथा कालेजोंको छोड दिया या नहीं॥१११॥

तकलीभाषणं मेऽद्य युष्माभिर्वीक्षितं खलु।
एष एवाद्य सर्वेषां धर्मो दुरितपावनः॥११२॥

तुम लोगोंने मेरे ÷ तकलीभाषणको देख लिया। आज यही सब पापोंको पवित्र करनेवाला सबका धर्म है॥ ११२॥

खद्दीयपरिधानेन नग्नता नैव वो भवेत्।
भवेत्तदापि नो हानिर्दुष्टेऽस्मिञ्छासनेऽद्भुते॥११३॥

खद्दीय = खादी वस्त्रके पहिरनेसे तुम नंगे नहीं माने जाओगे। यदि नंगे रहो तो भी इस दुष्ट राज्यमें कोई क्षति नहीं है॥११३॥

शरीराच्छादनं चेद्वो भवेदिष्टं तदा तु तत्।
कर्तव्यं खद्दरेणैव वासोभिर्न विदेशिभिः॥११४॥

⊛ कच = केश। हारी = हरण करनेवाली। मुकदमा लड़ते लड़ते सिरके बाल चुप जाते हैं इसलिये उसका नाम कचहरी है।

÷ श्रीमहात्माजी कभी कभी जब सभाओंमें बहुत अशान्ति होती है तो मौखिक भाषण न करके चुपचाप टेकुआपर कता करते हैं। इसीका नाम तकली-भाषण है। गुजराती भाषामें तकली का अर्थ टेकुआ है।

अगर तुम्हें शरीर ढंकना हो तो खद्दरसे ही ढंकना, विदेशी कपड़ोंसे नहीं ॥ ११४ ॥

स्वदेशयोषितां हस्तैः पवित्रैः सूत्रसम्पुटैः ।
सञ्जीकृतैः कृतं वस्त्रं परमानन्दमावहेत् ॥११५॥

अपने देशकी, बहिनोंके पवित्र हाथोंसे तैयार किये गये हुए सूत्रके सम्पुटोंसे बनाया हुआ वस्त्र परम आनन्द देगा ॥११५॥

आदेशं मेऽद्य शृण्वन्तु योषितो ध्यानपूर्वकम् ।
व्रतं गृह्णन्तु हस्तेन सर्वदा सूत्रनिर्मितेः ॥११६॥

स्त्रियाँ ध्यानपूर्वक मेरे आदेशको सुनें । तुम लोग सदा हाथसे कातनेकेलिये व्रतधारण करो ॥११६॥

मद्यपानां गृहं गत्वा मृद्व्या प्रार्थनया सदा ।
मद्यपानविरक्तांस्तान्कुर्वन्तु सुरतस्त्रियः ॥११७॥

इस सूरतकी बहिनें शराबियोंके घर जाकर, नम्रप्रार्थनाके द्वारा उन्हें मद्यपानसे पृथक् करें ॥११७॥

योषितां वचनं श्रुत्वा कुप्येयुर्नहि मद्यमाः ।
लज्जिता विवशा भूत्वा सुरां हास्यन्ति ते सुखम् ॥११८॥

तुम लोगोंके (बहिनोंके) वचनोंको सुनकर वह शराबीलोग क्रोध नहीं करेंगे। वे लज्जित होंगे और लाचार होकर शराब पीना सुखसे छोड़ देंगे ॥११८॥

हिन्दवश्च मुसल्मानाः सर्वे भारतसूनवः ।
परस्परं न योद्धव्यं कदाचिद्देशबन्धुभिः ॥११९॥

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही भारतकी सन्ततियाँ हैं । देशभाइयोंको कभी परस्पर लड़ना नहीं चाहिये ॥ ११९ ॥

पारसीका अपि प्राथ्यीः सुरायाः क्रयविक्रयौ ।
परित्यक्तुं स्वदेशार्थं धर्मार्थं चापि सर्वदा ॥१२०॥

शराबके खरीदने और बेचनेको, स्वदेश और धर्मकेलिये छोडदेनेके-लिये मैं पारसी भाइयोंकी सर्वदा प्रार्थना करूँगा ॥ १२० ॥

वाक्सुधाभिः स सन्तर्प्य सर्वानेव जनान्मुनिः ।
विश्रमायागमच्छ्रीमान्शिविरं स्वं दृढव्रतः ॥१२१॥

वाणीसुधासे सब लोगोंको तृप्त करके श्रीमान् दृढव्रतवाले श्रीमहात्माजी अपने शिविर = निवासस्थानको चले ॥१२१॥

डींडोली वाँझमप्येवं गत्वा लक्षं जनानपि ।
बोधयित्वा रहस्यं तद्यौधनं धामणं गतः ॥१२२॥

डींडोली और वांझ इन गाँवोंमें जाकर लाखों आदमियोंको इस युद्धके रहस्यको समझाकर वह धामण गये ॥१२२॥

सैन्येन श्रीमता सार्धं ततो लोकसहस्रकैः ।
सहितः समियायैष जमालपुरमुत्तमम् ॥१२३॥

सेनासहित तथा अन्य हजारों लोगोंके साथ श्रीमहात्माजी जलालपुर में पहुँचे ॥१२३॥

नवसारीं ततः श्रीमानुपेत्याधिसभं निशि ।
प्रायेण पारसीकेभ्य उपदेशं चकार सः ॥१२४॥

उसके बाद नवसारी आकर, रात्रिमें सभामें जाकर श्रीमहात्माजीने अधिकांशमें पारसियोंको उपदेश दिया ॥१२४॥

उपविश्यासनं प्रोच्चैर्योगिश्रेष्ठो महीपतिः ।
पारसीकगुणान्पूर्वं निस्सङ्कोचमवर्णयत् ॥१२५॥

योगिपुरुषोंमें श्रेष्ठ श्रीमहात्माजीने ऊँचे आसनपर बैठकर पहिले तो बिना किसी सङ्कोचके पारसीलोगोंके गुणोंका वर्णन किया ॥१२५॥

नाम्ना हैङ्गेन केनापि गौराङ्गेण निरूपितम् ।
औदार्यं पारसीकानामविस्मर्य जनान्स्थितम् ॥१२६॥

किसी लैकूनामक अंग्रेजने भी पारसियोंकी लोकोत्तर उदारताका वर्णन किया है ॥ १२६ ॥

जनसंख्याऽतिबहुला नैतेषामस्ति यद्यपि ।
दानं तथापि निष्पक्षं निखिलानतिगच्छति ॥१२७॥

यद्यपि इनकी जनसख्या बहुत बडी नहीं है तथापि इनका पक्षपात-रहित दान सबसे बढ जाता है ॥१२७॥

यौष्माकेणैव हस्तेन प्रान्तेऽस्मिन्मदिरालयाः ।
पारसीकाः प्रचाल्यन्ते देशनाशस्य कारणम् ॥१२८॥

पारसी भाइयो ! इस प्रान्तमे आप लोगोंके ही हाथोंसे शराबकी बडी बडी दूकानें चलायी जा रही हैं जो देशनाशके कारणभूत हैं ॥१२८॥

सौरं व्यापारमत्रेह मत्वेशद्रोहमात्मनि ।
यूयं पार्थक्यमेवाशु ततो गृह्णीत बन्धवः ॥१२९॥

भाइयो ! मदिराके व्यापारको अपने मनमें आपलोग ईश्वरका द्रोह मानकर शीघ्र ही उससे अलग हो जाइये ॥१२९॥

अन्येऽप्यनुकरिष्यन्ति युष्मानत्र महोदयाः ।
मुद्राणां रक्षणं तस्मात्कोटीनां पञ्चविंशतेः ॥१३०॥

दूसरे लोग भी आपका अनुसरण करेंगे और उससे २५ करोड रुपयोंकी रक्षा होगी ॥१३०॥

मुक्तिसेनानुयायिन्यो योषितो मद्यहापनम् ।
प्रकुर्वत्यो मया दृष्टाः सकला धर्मसेवकाः ॥१३१॥

मुक्तिफौजकी बहिनोंको मदिरापानका निषेधकार्य करती हुई मैंने देखा है । वह धर्मकी सेविका हैं अत एव वह इस कार्यमें सफल हुई हैं ॥१३१॥

कुर्वन्त्यत्रापि ता आर्या यवन्यः पारसीकिकाः ।
योषितः परमं शुद्धमेतत्कर्म निजेच्छया ॥१३२॥

इस देशमें भी हिन्दू, मुसलमान और पारसी बहिनें स्वेच्छासे इस परम पवित्र कर्मको कर सकती हैं ॥१३२॥

मद्यपाः पुरुषैः साकं मद्यपाननिषेधकैः ।
कलहं ते करिष्यन्ति योषिद्भिर्न परं क्वचित् ॥१३३॥

मदिरा पीनेवाले लोग मद्यपान निषेध करनेवाले पुरुषोंके साथ तो अवश्य ही झगडा करेंगे परन्तु बहिनोंके साथ तो नहीं ही ॥१३३॥

प्रेमप्लुतेषु नेत्रेषु स्त्रीणां दृष्ट्वा सुधानिधिम् ।
अवश्यं मद्यपाः शुद्धा भविष्यन्त्यचिरादिह ॥१३४॥

स्त्रियोंके प्रेमपूर्ण नेत्रोंमें सुधानिधिको देखकर शराबी अवश्य ही शीघ्र ही पवित्र बन जायँगे ॥१३४॥

मद्यपानां गृहं गत्वा संद्रक्ष्यन्ति यदि स्त्रियः ।
तेषां तदर्भकाणां च दशास्तासु दयोद्भवेत् ॥१३५॥

यदि बहिनें शराबियोंके घर जाकर उनकी और उनके बच्चोंकी दशा देखेंगी तो उन्हें अवश्य दया आवेगी ॥१३५॥

निर्वस्त्रा च गृहे भार्या निराहाराश्च बालकाः ।
बहवो निर्गृहाश्चापि सुरापाणामियं दशा ॥१३६॥

शराबियोंकी यह दशा है कि उनके घरमें स्त्रीके शरीरपर वस्त्र नहीं है। बच्चे भूखे पड़े हैं। और कितने ही तो बिना घरके हैं ॥१३६॥

दशा एता निरीक्ष्यैव योषित्का नाम सा भवेत् ।
यस्या न हि प्रजायेत हृदये करुणा परा ॥१३७॥

इस दशाको देखकर कौन ऐसी बहिन होगी कि जिसके हृदयमें दया न पैदा हो? ॥१३७॥

मिट्ठूदेवी सुरापाणां दशा एता निरैक्षत ।
दयासागरमग्ना सा तदुद्धारपराऽभवत् ॥१३८॥

श्रीमिट्ठु बहिनने शराबियोंकी इस दशाको देखा। उन्हें दया आ गयी। वह उनके उद्धारमें लग गयी ॥१३८॥

मातरं स्वां विहायैषा गृहं गृहसुखानि च।
सर्वान्सुखयितुं व्यग्रा त्यागिनो सहसाऽभवत् ॥१३९॥

श्रीमिट्ठुबहिन अपनी माताजीको छोडकर, घर और घर सुखोंको छोडकर, सबको सुखी बनानेकेलिये व्याकुल होकर एक दम त्यागिनी—सन्यासिनी बन गयीं ॥ १३९ ॥

नैकयैव परं साध्यं पारसीकमहेलया।
महत्कार्यमिदं तस्मात्सर्वाः संहत्य कुर्वताम् ॥१४०॥

परन्तु यह बडा भारी कार्य है। एक ही पारसी महिला इसे पूरा नहीं कर सकती। अतः सब बहिनें मिलकर इस कार्यको करें ॥ १४० ॥

कारां नयेत राज्यं मां यदि तास्वखिलास्विमम्।
स्वसन्देशं विनिक्षिप्य गमिष्यामि सुखेन ताम् ॥१४१॥

यदि सर्कार मुझे जेल ले जायगी तो मैं अपने इस सन्देशको पारसी बहिनोंको सौंपकर सुखसे जेल चला जाऊँगा ॥१४१॥

गुर्जर्यो योषितः सर्वा अन्यप्रान्तवधूगणात्।
कुशलाः सन्ति कार्येऽस्मिन्पवित्रे धर्मरक्षणे ॥१४२॥

अन्य प्रान्तोंकी स्त्रियोंकी अपेक्षा गुजरातकी बहिनें इस धर्मरक्षण रूप पवित्र कार्यमें कुशल हैं ॥१४२॥

मिट्ठूदेवी तु यत्क्षेत्रं स्वीकृत्य स्वां समार्पयत्।
तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे सुरुच्युष्माकं विवर्धताम् ॥१४३॥

श्री मिट्ठुबहिनने जिस क्षेत्रको स्वीकार करके अपनेको उसीमें लगा दिया है उसी महान् क्षेत्रमें तुम लोगोंकी भी रुचि बढे ॥१४३॥

नगरेऽस्मिन्सुरागार रतस्त्री पुस संचये।
शुभां वाचं प्रसार्यायं प्रययावमता मुनि ॥१४४॥

शराबकी दूकानमें प्रेम है जिनका ऐसे स्त्रीपुरुषोंसे भरे हुए सूरत शहरमें श्रीमहात्माजी अपनी पवित्र वाणीको फैलाकर आगे चले गये ॥१४४॥

प्रातः पेथाणमाप्यासौ कराडीं च निशामुखे।
प्राप सर्वगुणागारः सेनानीः सेनया सह ॥१४५॥

प्रातःकाल पेथाणमें पहुँचकर सायङ्काल कराडीमें सर्वगुणागार श्रीमहात्माजी अपनी सेनाके साथ पहुँच गये ॥१४५॥

कराडीं प्रविशन्नग्रे स्वयं रेजे महामुनिः।
ततः परं क्रमेणैते सैनिका अनुवव्रजुः ॥१४६॥

कराडीमें प्रवेश करते हुए श्रीमहात्माजी सबसे आगे आगे शोभित हो रहे थे। उनके पीछे क्रमसे यह सैनिक चल रहे थे ॥१४६॥

* प्यारेलालश्छगनलालजोशी च श्रीखरे तथा।
गोडशे श्रीगणपतिश्च पृथिवीराज आसरः ॥१४७॥

१—श्रीप्यारेलालजी, २—श्रीछगनलाल जोशी, ३—श्रीखरेपण्डितजी, ४—स्नातक गणपतराव गोडशे, ५—श्रीपृथिवीराजआसर ॥१४७॥

महावीरश्च बालश्च तथा खड्गबहादुरः।
रसिको विठ्ठलो हर्षो जात्यान्त्यज उदाहृतः ॥१४८॥

---

* श्रीमहात्माजीके सैनिकोंके नाम हैं।

१—श्रीमहात्माजीके प्राइवेट सेक्रेटरी। पंजाबयुनिवर्सिटीके बी० ए०। १९२० ई० में एम० ए० क्लाससे असहयोग किया। वय ३० वर्ष। २—बी० ए० (बम्बई)। श्रीयुतभाई मगनलाल गांधीजीके मृत्युके पश्चात् सत्याग्रह आश्रम साबरमतीके व्यवस्थापक। प्रो० पेट्रिक गेडिसके विद्यार्थी। १९२० में असहयोग किया। वय ३५ वर्ष। ३—पण्डित विष्णुदिगम्बर के गान्धर्वमहाविद्यालयमें १२ वर्षतक संगीतका अध्ययन किया। आश्रमके संगीत शिक्षक। प्रार्थना कराते हैं। वय ४२ वर्ष। ४—गुजरात विद्यापीठके स्नातक। शिक्षक। वय २५ वर्ष। ५—

६-श्रीमहावीरजी, ७-श्रीबाल कालेलकर, ८-श्रीखड्गबहादुर, ९-श्रीरसिक देसाई, १०-श्रीविट्ठल, ११ श्रीहर्ष अन्त्यज ॥१४८॥

श्रीमत्तनुसुखो भट्टः कान्तिगांधी च शङ्करः।
आनन्दहिंगोराणी च श्रीरमणीकलालकः ॥१४९॥

१२—श्रीतनसुख भट्ट, १३—श्रीकान्तिगांधी, १४—श्रीशङ्कर कालेलकर, १५—श्रीआनन्द हिंगोराणी, १६—श्रीरमणीकलाल मोदी ॥१४९॥

छोटूभाईपटेलश्च श्रीमदब्बास एव च।
नारायणो मगनभायी पूंजाभायी च माधवः ॥१५०॥

१७—श्रीछोटूभाई पटेल, १८—श्रीअब्बासजी, १९—श्रीनारायण, २०—श्रीमगनभाई, २१—श्रीपूंजाभाई शाह, २२—श्रीमाधवलाल ॥१५०॥

आश्रमकी पाठशालाके छात्र। वय १६ वर्ष। ६ महावीर। नैपाली। आश्रमके छात्र। वय १९ वर्ष। ७—श्रीकाकासाहेबजी-दत्तात्रेय कालेलकरके छोटे पुत्र। आश्रमके छात्र। वय १८ वर्ष। ८—पहाड़ीबन्धु। यह पीछेसे महात्माजीकी विशेष आज्ञासे, मार्गमें भर्ती हुए थे। ९—आश्रमके छात्र। वय १९। १०-आश्रमके छात्र। वय २० वर्ष। ११-वणकर-लोकोक्त अस्पृश्यजाति। वय १८ वर्ष।

१२-गोसेवा सघके कार्यकर्ता, वय २० वर्ष। १३-श्रीमहात्माजी के पौत्र। वय २० वर्ष। १४-श्रीकाका कालेलकरके बड़े पुत्र। कालेज और कई छात्रवृत्तियों छोड़कर पीछे नडियादमें आकर सैनिक बने। १५-बी० ए० (बम्बई)। इनके पिता एग्जिक्यूटिव इञ्जिनियर थे। वय २४ वर्ष। १६—बी० ए० (बम्बई) आश्रमकी शालाके शिक्षक। वय ३८ वर्ष। १७—खादी कार्यकर्ता। वय २२ वर्ष। १८-खादी उद्योग-शालाके शिक्षक। वय २० वर्ष। १९—उत्कल उड़ीसाके खादी कार्यकर्ता। वय २२ वर्ष। २०—उत्कलमें खादी कार्यकर्ता। वय २५ वर्ष। २१—कितनेही वर्षोंतक आश्रममें रहे थे। वय २५ वर्ष। २२—बी० ए०

डुङ्गर्शीः सोमभायी च द्वारकानाथ एव च।
रामजी किं च दाऊदभाई श्रीभानुशङ्करः ॥१५१॥

२३—श्रीडुंगरशीभाई, २४—श्रीसोमाभाई, २५—श्रीद्वारकानाथ,
२६—श्रीरामजीभाई, २७—श्रीदाऊदभाई, २८—श्रीभानुशङ्कर ॥१५१॥

गजाननो हँसमुखरामः श्रीकृष्णनायरः ।
जेठालालश्च गोविन्दहर्केरेः शङ्करन् तथा ॥१५२॥

२९—श्रीगजानन, ३०—श्रीहंसमुखराम, ३१—श्रीकृष्णनायर,
३२—श्रीजेठालाल, ३३—श्रीगोविन्दहरकरे, ३४—श्रीशङ्करन् ॥१५२॥

मुन्शीलालः पाण्डुरङ्गः राघवन्नाववार्चकः ।
सुल्तानसिंहतपननायरौ प्रेमराजजी ॥१५३॥

३५—श्रीमुन्शीलाल, ३६—श्रीपाण्डुरङ्ग, ३७—श्रीराघवन्जी,
३८—श्रीसुल्तानसिंह, ३९—श्रीतपननायर, ४०—श्रीप्रेमराजजी ॥१५३॥

(पायई) निवास । २३—कच्छमें खादी कार्यकर्ता । वय २० वर्ष । २४—आश्रमवासी गांधी सेवासंघवाले । नागपुरके ध्वजसत्याग्रहमें जेल गये । वय २५ वर्ष । २५—दुग्धालयके कार्यमें निपुण । बी० एस० सी० (कैलिफोर्निया)। अमेरिकामें बहुत दिनोंतक शिक्षण और अनुभव प्राप्त किये । सूप आनन्द-बी पदवी छोड़कर आश्रमके दुग्धालयके अध्यक्ष । वय ३० वर्ष । २६—पठान-नौशेरा सरहद्द । १२ वर्षोंसे आश्रममें रहते थे । वय ४५ वर्ष । २७—मुसल्मान् । पहिले करीमभाई सिन्धी 'अफ्रिकामें नौकर । वय २५ वर्ष । २८—खादी विद्यार्थी । वय २२ वर्ष । २९—खादी सारकाम रंगनिरीक्षक । ३०—गोंद के कामनें । वय २५ वर्ष । ३१ जापान विद्यापीठके स्नातक । खादी विद्यार्थी । वय २५ वर्ष । ३२—खादी विभागमें । वय १५ वर्ष । ३३—खादी विद्यार्थी । वय २५ वर्ष । ३४—खादी विद्यार्थी । वय १५ वर्ष । ३५—खादीविद्यार्थी । वय ३८ । ३६—खादीविद्यार्थी । वय २२ । ३७—खादीविद्यार्थी । वय १५ । ३८—खादी विद्यार्थी । वय २५ । ३९—खादीविद्यार्थी । वय २५ । ४०—खादीविद्यार्थी-

शिवारत· शिवाभायी जशभायी तथैव च।
पटेलो रावजीभायी टाइटसूजी च रत्नजी ॥१५४॥

४१—श्रीशिवाभाई, ४२—श्रीजशभाई, ४३—श्रीरावजीभाई पटेल, ४४—श्रीटाइटसूजी, ४५—श्रीरत्नजी ॥१५४॥

दुर्गेशचन्द्रदासश्च तथा केशवचित्रके ।
अम्बालालपटेलश्च श्रीज्योतीरामजी तथा ॥१५५॥

४६—श्रीदुर्गेशचन्द्रदास, ४७—श्रीकेशवचित्रे, ४८—श्रीअम्बालाल पटेल, ४९—श्रीज्योतीरामजी ॥१५५॥

जयन्तीपारिखो विष्णुशर्मा च श्रीसुरेन्द्रजी।
गांधीश्रीमणिलालश्च हरिभाऊ-सु-मोहनी ॥१५६॥

५०—श्रीजयन्ती पारिख, ५१—श्रीविष्णुशर्मा, ५२—श्रीसुरेन्द्रजी, ५३—श्रीमणिलाल गांधी, ५४—श्रीहरिभाऊ मोहनी ॥१५६॥

कर्ता। वय २२। ४१–गुजरात विद्यापीठके स्नातक। दफ्तरमें काम करते थे। वय २७। ४२—खादीविद्यार्थी। वय २०। ४३—१९२० ई० में ग्रान्ट मेडिकल कालेजसे असहयोग किया। गुजरातमें आरम्भसे ही खादीकार्यकर्ता। प्रलय और दुष्कालसंकटनिवारण कार्यमें वल्लभभाई पटेलके स्वयसेवक। वय ३०। ४४—ईसाई। इण्डियन डेरीसे प्रमाणपत्र प्राप्त किया। ४५—अंत्यज आश्रम गोधराके। वय १८। ४६—खादीविद्यार्थी। बङ्गालमें सर्कारी नौकरी छोड दी। वय ४४। ४७—खादीविद्यार्थी। वय २५। ४८—१९२० में ग्रांट मेडिकल कालेजमेंसे असहयोग किया। खादीकार्यकर्ता पहिलेसे ही। दुष्काल और प्रलय सङ्कटनिवारणमें वल्लभभाई पटेलके स्वयसेवक। वय ३०। ४९–खादीविद्यार्थी। वय ३०। ५०— । ५१—शिक्षक। वय ३०। ५२—संस्कृतविशारद। आश्रमके चर्मालयके अध्यक्ष। ५३–इण्डियन ओपीनियन के भूतपूर्व सम्पादक। दक्षिण अफ्रिकासे तुरन्त ही आये थे। श्रीमहात्माजीके द्वितीय पुत्र। वय ३८। ५४–बी० ए०। शिक्षक। वय ३२। ५५–

शास्त्री चिन्तामणिर्विद्वान् नारायणमहाशयः ।
श्रीयुतवालजीभायी देशाई विष्णुपन्तकः ॥१५७॥

५५-श्रीशास्त्रीचिन्तामणि, ५६-श्रीनारायणजीभाई, ५७-श्रीबालजी-भाई देशाई, ५८-श्रीविष्णुपन्त ॥१५७॥

श्रीमान्दिनकररावः सुब्रह्मण्यं महायशाः ।
श्रीयुतश्रीहरिलालमाहीमत्रा गुणालयः ॥१५८॥

५९—श्रीदिनकरराव, ६०-श्रीसुब्रह्मण्यम्, ६१-श्रीहरिलाल माही-मतुरा ॥ १५८ ॥

श्रीमोतीवासदासश्च सूर्यभानुः सुधीश्वरः ।
श्रीमन्मदनमोहनचतुर्वेदी द्विजोत्तमः ॥ १५९ ॥

६२-श्रीमोतीवासदास, ६३-श्रीसूर्यभानु, ६४—श्रीमदनमोहन चतुर्वेदी ॥ १५९ ॥

मजूमदारश्रीहरिदासो हरिप्रसादकः ।
श्रीमहादेवमार्तण्डश्चिम्मनलाल एव च ॥१६०॥

६५-श्रीहरिदास मजूमदार, ६६-श्रीहरिप्रसाद, ६७-श्रीमहादेव मार्तण्ड, ६८-श्रीचीमनलाल ॥१६०॥

पुराने आश्रमवासी सम्पिघनेकी राष्ट्रियशालामें रहते थे। वय ४०। ५६-उत्कलमें खादीकार्यकर्ता। वय २२। ५७-गुजरात कालेजमें अंग्रेजी के अध्यापक थे। १९१६ में कांग्रेसमें शामिल होनेकेलिये सर्कारसे मनाई हुई अतः कालेज छोड दिया। हिन्दु युनिवर्सिटीमें भी अध्यापक थे। उस समय गुजरात विद्यापीठमें अध्यापक थे। बहुत दिनोंसे "यङ्गइण्डिया" में काम करते थे। १९२१ में जेल गये। वय ३५। ५८—खादीविद्यार्थी। वय २५। ५९................(?)। ६०—खादीविद्यार्थी। वय २५। ६१—बी० ए० एल्० एल्० बी० (बम्बई) खादीविद्यार्थी। वय २७। ६२-खादीविद्यार्थी। वय २०। ६३—श्रीसूर्यभानु। ६४—श्रीमदनमोहन चतुर्वेदी। ६५—एम्० ए० पी० एच्० डी (विसकोनसीन)। उसी समय

सुमङ्गलप्रकाशोऽपि पुरातनबुधोऽपि च ।
श्रीगांधीहरिदासश्च श्रीपन्नालालजौहरी ॥१६१॥

६९—श्रीसुमङ्गलप्रकाश, ७०—श्रीपुरातन बुच, ७१—श्रीहरिदास-गांधी, ७२-श्रीपन्नालाल जौहरी ॥ १६१ ॥

श्रीमद्गिरिवरधारी चौधुरी भैरवस्तथा ।
श्रीमन्माधवलालश्च रामधीरश्च माधवः ॥१६२॥

७३-श्रीगिरिवरधारी चौधरी, ७४-श्रीभैरवदत्त, ७५—श्रीमाधवलाल, ७६-श्रीरामधीरराय, ७७-श्रीमाधवजीभाई ॥१६२॥

श्रीमद्विनायकरावः शङ्करभायि लालजी ।
श्रीजयन्तीप्रसादश्चेत्येते तस्य च सैनिकाः ॥१६३॥

७८—विनायकराव, ७९-शङ्करभाई, ८०-लालजी, ८१—जयन्ती-प्रसाद, यह सब श्रीमहात्माजीके सैनिक थे ॥ १६३ ॥

अमेरिकासे आये थे । वय २५ ॥ ६६—फीजीमें जन्म । राष्ट्रीयकार्यमें पारङ्गत होनेके लिये ही हिन्दुस्तान आये थे। वय २० ॥ ६७-खादी विद्यार्थी। वय १८ । ६८-गुजरात प्रलयसङ्कट निवारणके कार्यकर्ता (खादीविभागके) वय २४ । ६९-काशीविद्यापीठमें हिन्दी अध्यापक । वय २५ ॥ ७०-गुजरात विद्यापीठके स्नातक । वय २५ ॥ ७१-पहिले रूईके व्यापारमें थे । वय २५ । ७२-पन्नाराज्यके भूतपूर्व दीवानसाहेबके पुत्र । उस समय गोसेवासंघमें थे । वय २५। ७३-खादीविद्यार्थी । वय २० । ७४-खादी विद्यार्थी । वय २५ ॥ ७५-बी० ए० (बम्बई) शिक्षक । ७६-ब्रह्मदेशमें पोष्टमेनकी नौकरी छोड़कर खादीविभागमें काम करते थे । वय ३० ॥ ७७—लंडनमें विजयी व्यापार करते थे । कलकत्ताका बहुत बड़ा व्यापार छोड़कर थोड़े दिन ही पूर्व आश्रममें आये थे । वय ४० ॥ ७८-महाराष्ट्रमें खादी कार्यकर्ता । वय ३३ वर्ष । ७९—खादीविद्यार्थी । वय २० वर्ष । ८०-वणकर-लोकोक्त अस्पृश्य । वय २५ वर्ष । ८१-खादीविद्यार्थी । वय ३० वर्ष ।

लोकादधीतसन्देशाः कराडीग्रामवासिनः ।
अवर्ण्योत्साहसम्पन्ना ग्रामतो बहिरागताः ॥१६४॥

लोगोंसे उनके आनेका समाचार सुनकर सभी—कराडी ग्रामके निवासी अत्यन्त उत्साहयुक्त होकर ग्रामसे बाहर आये ॥ १६४ ॥

यस्मै स्पृहयमाणास्ते विलसद्धर्ममूर्तये ।
विनिद्रा उत्सुका आसंस्तं द्रष्टुं सत्वरा ययुः ॥१६५॥

जिस साक्षात् धर्ममूर्तिके लिये-श्रीमहात्माजीके लिये लोग स्पृहा कर रहे थे, जागरण कर रहे थे और उत्सुक थे; उन्हींको देखनेके लिये वेगसे सब लोग गये १६५

कर्षन्तं शान्तसेनां तां जनतामपरामपि ।
वायुवेगेन धावन्तमिवापश्यन्त्यतीश्वरम् ॥१६६॥

अपनी उस शान्त सेनाको तथा अन्य बड़ी भारी भीड़को साथमें खींचते हुए, वायुसमान दौड़ते हुए श्रीमहात्माजीको लोगोंने देखा ॥१६६॥

श्रीसत्यदेव ऋजुमूर्तिरसौ यमानः
कौपीनमेकममलं च हृषीकनाथः ।
लोकेन सस्पृहमतीव विनिद्रनेत्रैः-
र्दृक्सम्पुटैरुपगतः परिपीयते स्म ॥१६७॥

एक निर्मल-निर्दोष कौपीन पहिने हुए उन इन्द्रियविजेता, उदारमना श्रीमहात्माजीका लोगोंने अपनी प्यासी आँखोंसे खूब पान किया-दर्शनकिया१६७

तद्वैभवं जितभवं परिवीक्ष्य लोकाः
स्वस्वादरादवनतमस्तकमालिकाभिः ।
सम्पूज्य तस्य युगलं पदपद्मयोस्त-
द्ग्राममग्रे स्म गमयन्ति मुदा स्मरारेः ॥१६८॥

दुर्दांत दमन करनेवाले श्रीमहात्माजीके उस लोकोत्तर वैभवको देखकर महान् आदरसे सब लोगोंने उनके चरणकमलोंमें सिर झुका दिया । पश्चात् आनन्दसे लोग उन्हें गाँवमें ले आये ॥ १६८ ॥

माङ्गल्यसूचकपदोद्ग्रथितानि गीता-
न्यालाप्य सर्वहृदयाधिसुखाकराणि ।
स्त्रीणां गणो गुणधराप्रमुतापरीतः
स्वानन्दवृद्धिमतनोदतनुप्रकाशः ॥१६९॥

माङ्गल्यसूचक पदोंसे बनाई हुई, सर्वहृदयोंको परम सुख देनेवाली गीतिकाओंको परमगुणवती बहिनें गाकर अपने आनन्दकी वृद्धि करनेलगीं१६९

तत्रैव रात्रिमतिवाह्य विनीय खेदं
ब्राह्मे मुहूर्त उदतिष्ठदयं यतीन्द्रः ।
सेनासहाय उररीकृततापसत्व
आराधने च भगवद्विनतौ रतोऽभूत् ॥१७०॥

वहाँपर ही रात्रि बिताकर, थकावटको दूर करके, तापसधर्मको स्वीकार करनेवाले श्रीमहात्माजी अपनी-सेनाकेसहित प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें उठ गये और भगवत्प्रार्थनामें लग गये ॥१७०॥

मोदादुदारवचनैश्च कराडिवासा-
नादिश्य गन्तुमखिलान्युधि वीरभूमौ ।
धर्मं स्वकीयमपुपत्तदधीरचित्ते-
ष्वप्येष धर्मरतिमातत दीनबन्धुः ॥१७१॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
विंशः सर्गः

दीनबन्धु श्रीमहात्माजीने प्रसन्नतासे अपने उदार वचनोंसे कराडी ग्रामके सब निवासियोंको वीरभूमि-युद्धमें चलनेकेलिये आज्ञा देकर अपने कर्तव्यका पालन किया और ग्रामवासियोंके अधीरचित्तमें धर्मके प्रति प्रेम बढ़ा दिया१७१

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजातेविंशः सर्गः

ॐ एकविंशः सर्गः

विकसति दिवि भानौ दिव्यभानुः स कल्ये
रघुकुलपतिपादाम्भोजयुग्मं पवित्रम् ।
परमविमलभक्त्या मानसे सन्निधाय
प्रहसितवदनोऽसौ सम्प्रतस्थेऽथ दांडीम् ॥ १ ॥

प्रातःकाल जब आकाशमें सूर्योदय हुआ तब वह दिव्यकिरणवाले श्रीमहात्माजी रघु = जीवोंके, कुल = समुदायके, पति = स्वामी सच्चिदानन्दके पवित्र चरणकमलोंको, निर्मलभक्तिसे मनमें धारण करके हँसते मुखसे दांडीके लिये चल दिये ॥ १ ॥

चलति मुनिमहीन्द्रे सेनया सार्धमारा—
दगणितजनयूथं साश्रुपातं चचाल ।
त्रिगुणभुवमतीत्य प्रोल्लसच्चिद्विलासे
सकलजनमनोज्ञे को न बध्नाति मानम् ॥ २ ॥

सेनाके साथ जब श्रीमहात्माजी कराडीसे चले, अगणित लोग आँखोंमें आँसू भरकर साथ चलने लगे। परमसुन्दर त्रिगुणातीत चित्स्वरूपमें किसको आदर न हो ? ॥ २ ॥

बहुविधमनुजासुत्रातपातक्षमाणि
हृदयकमलकम्पीन्यस्त्रशस्त्राणि बिभ्रत् ।
सिततनुजनराज्यं क्रूरकर्माऽतिवृद्धो
व्रजति विगतशङ्को रोद्धुमेतद्धि चित्रम् ॥ ३ ॥

बहुत प्रकारोंसे मनुष्योंके प्राणोंको हरणकरनेमें समर्थ और हृदयको दहलानेवाले अस्त्र शस्त्रोंको धारण किये हुए, क्रूर कर्म करनेवाले अंग्रेजी

ॐ इस सर्गमें मालिनी छन्द है ।

राज्यको विना शस्त्रके ही रोकने—दबानेकेलिये यह वृद्ध महात्माजी जा रहे हैं। अवश्य ही यह आश्चर्य है ॥ ३॥

नहि भवति निरीक्ष्यं यच्छरीरावकाशे
व्यपगतपिशितास्रं कीकसं चान्तरेण।
किमपि ननु कथं सा निर्बलात्यल्पसेना
प्रभवति परियोद्धुं मत्तसेनाभिरद्य ॥ ४ ॥

जिसके शरीरमें लोहू और माँस बिना हड्डीके अतिरिक्त और कुछ भी दीखने योग्य नहीं है वह बलहीन और अल्पसेना, मतवाली सेनाओंके साथ कैसे युद्ध कर सकती है? ॥ ४ ॥

इतिविविधविचाराम्भोजमालाविधाने—
रनु मुनिवरमेते ग्रामलोकाः सशोकाः।
ययुरथ मुनिवर्यः श्रीमताऽव्यक्तसत्त्वोऽ—
परिमितबलपूर्णेनाऽऽशु सैन्येन यातः ॥ ५ ॥

इस प्रकारके पैदा हुए विचाररूपकमलोंकी माला बनाते हुए अर्थात् विचार करते हुए ग्रामके लोग शोकातुर होकर श्रीमुनिराज श्रीमहात्माजीके पीछे पीछे गये। और जिनके बलको सब जानते थे वह श्रीमहात्माजी भी अपनी अपारबलवाली सेनाके साथ शीघ्रतासे चल पड़े ॥ ५ ॥

अतिमुदितमनस्को निम्नगानाथ एष
उपगतमभिवीक्ष्य स्वस्य तीरे यमीन्द्रम्।
ऋषिमुनिपरिचर्यामाचरन्तं सशब्दं
प्रणिपतितमिवोर्व्यामाशु तेने प्रणामान् ॥ ६ ॥

प्रसन्न चित्तवाले महासागरने अपने किनारेपर पासमें ही आये हुए महायतीन्द्र, और महर्षियों, मुनियोंके आचरणको पालनेवाले, श्रीमहात्माजीको देखकर, मानों अपने शरीरको पृथिवीपर लिटाकर शब्दोच्चारण सहित प्रणाम कर रहा था ॥ ६ ॥

निजहृदयविजातं मोदमानन्दधाम्नः
प्रबलदुरितदारिप्रेक्षुपादौ निरीक्ष्य ।
निजतुमुलतरङ्गैरुन्नमद्भिर्नमद्भिः
प्रकटयितुमजस्रं वारिधिश्चोद्यतोऽभूत् ॥ ७ ॥

परमानन्दधाम श्रीमहात्माजीके उन प्रिय चरणकमलोंको देखकर जो बड़े बड़े पापोंको फाड डालते हैं-समुद्रके मनमें जो आनन्द उत्पन्न हुआ था उसे, नीचे ऊँचे होनेवाले अपने बड़े बड़े तरङ्गोंसे प्रकट करनेकेलिये, वह तैयार हो गया ॥ ७ ॥

दुरितपथविघातो दीनरक्षैकचिन्तः
सलिलनिधिमभीक्ष्णं सक्षणं सोऽवलोक्य ।
पुलकितशुभगात्रः श्रीहरिश्यामतायाः
स्मृतिरतिमभितन्वन्प्रेमराशौ ममज्ज ॥ ८ ॥

दुष्टमार्गके विनाशक, दीनोंकी रक्षाकी ही चिन्ता करनेवाले, वह श्रीमहात्माजी बारम्बार उत्साहसे महासागरको देखदेखकर, रोमाञ्चित शरीरवाले होकर भगवान् की श्यामताका स्मरण करकेप्रेमसागरमें डूबगये।८।

जलनिधितटमित्था शान्तिसीमावनीन्द्रोऽ-
परिगणितमनुष्यैर्वेष्टितो दीननाथः ।
मृदुलमृदुलवाचां शीतधाराप्रवाहै—
रसिचदिति समेषामान्तरं तत्त्वमीशः ॥ ९ ॥

शान्तिकी सीमाभूमिके राजा=परमशान्तिमान्, दीनोंके नाथ और अगणित मनुष्योंसे घिरे हुए श्रीमहात्माजीने कोमल कोमल वाणीकी शीतधाराके प्रवाहोंसे सबके अन्तःकरणको सींच दिया-ठंडा कर दिया ॥९॥

* निरसरमहमत्र प्राप्तुकामो मदीयैः
परमविमलचेतोभृद्भिरल्पैश्च सैन्यैः ।

---

* यहाँसे २६ वें श्लोकतक श्रीमहात्माजीका भाषण है ।

मम च न च परेषां मानसेषु प्रतीतिः
क्षणमपि उपजाता द्रष्टुमेतां तु दाँडीम् ॥ १० ॥

जिस समय मैं यहाँ पहुँचनेकेलिये थोड़े परन्तु अत्यन्त निर्मलचित्त-वाली अपनी सेनाके साथ (आश्रमसे) निकला उस समय न तो मुझे और न किन्हीं अन्योंको भी क्षणभरकेलिये भी विश्वास था कि हम दाडीको देखेंगे ॥ १० ॥

परमशममुपेतां मामकीनां चमूं त—
द्धदपि निखिलामेवान्तकृच्छक्तिधाराम् ।
अभवदथ विवेकान्नातिदूरं हि राज्यं
न हि गिलितशरीरां मानयाशि व्यधत्त ॥ ११ ॥

सभी शक्तियोंको धारण करती हुई भी यह सर्कार विवेकमार्गसे भ्रष्ट नहीं हुई और अत एव वह नरभक्षी होनेपर भी मेरी इस शान्त सेनाको निगल नहीं गयी ॥ ११ ॥

परमुखपरिनिन्द्यं कृत्यमाधायकोऽपि
श्रयति यदि विलज्जां स्यात्तु सोऽपीह सभ्य ।
कथमिह लभतां नो धन्यवादं निरघ्न—
न्न दलमपि सशक्तं राज्यमात्रीडयाऽपि ॥ १२ ॥

जिस कृत्यकी अन्य लोग निन्दा करें, उसे भी करके यदि कोई लज्जित होता हो तो वह भी सभ्य कहा जा सकता है । सर्कारने शक्तिके होते हुए भी थोडी लज्जासे ही सही, मेरी सेनाको नहीं रोका अतः यह धन्यवादका पात्र क्यों न हो ? ॥ १२ ॥

लवणकरविमर्दः श्वोऽविलम्बेन सेद्धा
तमपि यदि विरोद्धा नाशमीयात्करोऽसौ ।
मम हृदि स विनष्टप्राय एवाद्धि तस्मि—
न्न्यपिपत पगमल्पेऽप्येतदाभञ्जनाय ॥ १३ ॥

नमकके क़ानूनका भङ्ग कल्ह अवश्य होगा। उसको भी यदि सर्कार सह लेगी तो नमक्कर चला जायगा। मेरे विचारमें तो नमक्कर उसी दिन टूट गया जिस दिन, भले थोडे ही लोगोंने, इसके तोडनेकी प्रतिज्ञा ली॥१३॥

यदि मम बलमेतन्मां च राज्यानुशिष्टे—
नृपतिपरिकरास्तद्बन्दिशालां नयेरन्।
अधिहृदयमुदीयात्स्तोकमप्यत्र शोकः
क्षणमपि न यतः सैवास्ति नः प्रार्थनीया॥ १४॥

यदि सर्कारकी आज्ञासे सर्कारी नौकर मेरी सेनाको और मुझे अपने जेलमें ले जायें तो मेरे हृदयमें क्षणभरकेलिये भी जरा भी शोक नहीं होगा; क्योंकि जेलको ही तो हम चाहते हैं॥ १४॥

अहमथ निगृहीतः स्यामुताहो समस्तो
नरवरगण एव स्यात्प्रसिद्धोऽत्र देशे।
अभिलषति न कंचिच्छीयमानान्धकारा
प्रकृतिरथ कदाचिन्नायकं भारतीया॥ १५॥

और यदि मैं पकडा जाऊँ अथवा इस देशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध सभी नेता पकड लिये जायँ, परन्तु प्रजाका अन्धकार अब नष्ट होने लग गया है, अतः वह किसी आदमीको नेता बनानेकी इच्छा नहीं करेगी। तात्पर्य यह कि प्रजामेंसे कोई भी या सभी अब नेता हो सकेंगे॥ १५॥

दुरितविरतिमेतन्नाश्रयेतात्र याव—
द्भवतु नहि विरामस्तावदल्पोऽपि वोऽद्य।
अविरतमतियत्नात्क्षारपाकं विधाय
क्षितिपलवणराशिं व्यर्थतां प्रापयध्वम्॥ १६॥

जब तक यह सर्कार पाप—अत्याचारसे विरक्ति न ग्रहण करे तब तक तुमलोग थोडा भी विश्राम मत लेना। निरन्तर अत्यन्त यत्नसे नमक बनाकर सर्कारके नमकको व्यर्थ बना देना॥ १६॥

भवति न यदि पूज्या जन्मभूमिः स्वतन्त्रा
न हि कथमपि राज्यं ब्रैटिशं क्रूरकर्म ।
मुखिभिरथ पटेलैस्त्यक्ततत्सङ्गलेशै—
र्दुरितसमधिवृद्ध्यै स्यान्नमस्कार्यमत्र ॥ १७ ॥

यदि अपनी जन्मभूमि माता स्वतन्त्र न हो तो, जिन्होंने नोकरी और सम्बन्ध छोड दिये हैं वह पुलिसपटेल और मुखी लोग इस पापी बृटिश-राज्यके सामने शिर न झुकावें । अन्यथा पाप ही बढ़ेगा ॥ १७ ॥

अथ भवतु न कस्याप्यागतिस्तस्य दाँड्यां
परधरणिजवस्त्रैश्छन्नदेहो भवेद्यः ।
विनतिरियमिदानीं पालिता नाभविष्य—
त्पुरपथमुखभागे नॄन्समस्थापयिष्यम् ॥ १८ ॥

जिसके शरीरपर विदेशी वस्त्र हों वह कोई भी आदमी यहाँ दाडीमें न आवे । यदि इस मेरी प्रार्थनाका पालन नहीं होगा तो मैं दाडीग्रामके रास्तेके नाकेपर आदमियोंको बैठा दूँगा ॥ १८ ॥

विनयनयसमृद्धैर्भर्त्सितैस्तर्जितैर्वा
प्रबललगुडपातैस्ताडितैर्वा सुसभ्यैः ।
खदरवसनमद्धा सेवकैः प्रार्थनीयाः
सनति च परिधातुं यूयमत्यादरेण ॥ १९ ॥

जो आदमी नाकेपर बैठाये जायेंगे वह बहुत विनयी होंगे। उनको आप झिडकेंगे, फटकारेंगे, लाठी लेकर मारेंगे तब भी वह सभ्य सेवक नमस्कार करके आपको परम आदरके साथ खादी पहिरनेके लिये प्रार्थना करेंगे ॥१९॥

दृढतर इति यः स्यान्मानसे प्रत्ययो य—
त्सकलहृदयराजच्छ्रीपतिप्रेरणातः ।
सितवतनुपरयत्तापापधाम्नो लवित्रं
भवति सुखदमेषा धर्मधामैव दाँडी ॥ २० ॥

तुम्हारे मनमें यह दृढतर विश्वास होना चाहिये कि सबके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान्‌की प्रेरणासे, दांडी अंग्रेजोंकी पराधीनतारूप पापधामका नाश करनेवाला सुखद धर्मधाम ही है ॥ २० ॥

कथमपि न विचार्यं पापमेत्यैव दांडीं
कथमपि न निगाद्या वाङ्मृषा कैश्चिदत्र ।
क्षुधितजनसुखायाऽऽगम्य एष प्रदेशः
किमपि किमपि पुण्यं कार्यमेवात्र भूमौ ॥ २१ ॥

यहाँ दांडीमें आकर किसी प्रकारसे भी पाप विचार नहीं करना चाहिये । यहाँ झूठा वचन नहीं बोलना चाहिये । इस प्रदेशमें भूखे लोगोंको सुख देनेकेलिये ही आना चाहिये और यहाँ कुछ न कुछ पुण्य करना ही चाहिये ॥ २१ ॥

उपगमयति देहीं सम्पदं नाशमार्गं
समलमतिमुपस्थाप्यार्तिदुःखं विधत्ते ।
विरमत नितरां तत्तालनिःस्यन्दपाना—
द्भवत विपरिशुद्धाः कार्यमुद्धूय दुष्टाम् ॥ २२ ॥

तालनिस्स्यन्द = ताडी पीनेसे बुद्धि दूषित होती है, दुःख होता है और शारीरिक क्षीणता प्राप्त होती है । अतः ताडी पीनेसे सब लोग बच जाओ और इस दुष्ट कार्यको छोडकर पवित्र बनो ॥ २२ ॥

इह विमलधरायां तालवृक्षा महागो—
रतिजननपरास्तत्तानिन्द्या हि यूयम् ।
नरकुलसुखशान्त्यामोदसम्पोषणार्थं
शकलयत कुठारैस्तीव्रतीक्ष्णैः क्षणेन ॥ २३ ॥

इस पवित्र भूमिमें ताल के वृक्ष महान् आग—पापमें प्रवृत्ति करा रहे हैं, अतः मेरे पवित्र बन्धुओ ! तुम लोग मानवजातिके सुख, शान्ति और आनन्दकी वृद्धिके लिये अत्यन्त तीव्र कुल्हाडे लेकर तालोंको टुकडे टुकडे कर डालो ॥ २३ ॥

जहित जहित मद्य सद्य एवाद्य यूयं
प्रबलतममघं तत्पानतो जायतेऽलम् ।
भवत भवत तस्माद्धूतपापाश्च यस्मा—
त्परमयतिपतीनां भूर्विजिह्लेति सेयम् ॥ २४ ॥

आज अभी ही सब लोग दारू—शराब पीना छोड दो । उसके पीनेसे भारी पाप होता है । जल्दीसे इस दोषको छोडकर पवित्र हो जाओ क्योंकि परमसंयमी महात्माओंकी यह भूमि लज्जित हो रही है ॥ २४ ॥

अथ पुनरपि युष्मान्स्मारयामीति युद्धं
लवणकरविनाशं यावच्छदेतत्प्रवृत्तम् ।
भवति निमुखता चेदस्य रक्षाविधाना—
दनुदिनमिह दुःखावृत्तिरेवाऽस्त्वजेया ॥ २५ ॥

मैं पुनः तुम लोगोंको स्मरण कराता हूँ कि यह लडाई नमककरको तोडनेकेलिये शुरू की गयी है । यदि इस लडाईकी रक्षासे तुम लोग विमुख रहे तो दुःखोंकी आवृत्ति रोज रोज होती रहेगी और उनको कोई हटा नहीं सकेगा ॥ २५ ॥

विधिविविधविलासप्रस्तुतानन्तताने
पतितमतय एवाद्यैत आङ्ग्ला अभूवन् ।
तत इह निखिलास्ते खण्डशो यो विदध्यु—
स्तदपि न निजमुष्टिं क्षारपूर्णां प्रसार्या ॥ २६ ॥

विधिकी विविधप्रकारसे शुरू हुई लीलाके विस्तारसे—अर्थात् भाग्यकी लीलासे इन अंग्रेजोंकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। अतः वे सब यदि तुमको टुकडे टुकडे कर डालेंतब भी नमकसे भरी हुई मुट्ठीको तुमलोग नहीं छोडना ॥२६॥

सरलसदुपदेशैरित्यजेयात्मशक्तिः
समुपगतजनांस्तान्बोधयित्वैव तस्याम् ।
लवण नियमभङ्गोपक्रमं संव्यधत्त
प्रथमदिवस आप्तो राष्ट्रसप्ताह एव ॥ २७ ॥

इस प्रकारसे सरल सदुपदेशोंसे सब उपस्थित लोगोंको, तत्त्वको समझाकर, राष्ट्रसप्ताह-राष्ट्रियसप्ताहके प्रथमदिनमें अजेय शक्तिवाले और आप्त श्रीमहात्माजीने नमकक़ायदाका तोडना शुरू किया ॥ २७ ॥

दुरितदलनदक्षो नीरधिं सत्यसन्धः
परिहिततनुकौपीनैकवासाः प्रविश्य ।
स्मृतरघुपतिनामा स्नानमासेव्य धीमा—
ञ्जलधितटगतं स क्षारमाराज्जहार ॥ २८ ॥

पापोंके नाश करनेवाले सत्यप्रतिज्ञ श्रीमहात्माजीने शरीरपर केवल एक छोटीसी लंगोटीको धारण करके, समुद्रमें घुसकर, स्नानकरके, रामनामका स्मरण करके समुद्रके तटपर पडे हुए नमक उठा लिये ॥ २८ ॥

अतिकलकलरावैर्मेदिनीं पूरयद्भिः
खमपि निखिलमेतैर्ध्वानयद्भिस्तदीयैः ।
मुदितहृदयतत्त्वैः क्षारमुष्टिं दधद्भि—
र्नृपतिनियमभङ्गः सैनिकैरप्यकारि ॥ २९ ॥

अत्यन्त जय-आदिकोलाहल शब्दोंसे पृथिवीको भरते हुए और उन्हीं शब्दोंसे सम्पूर्ण आकाशको गुँजाते हुए उन सैनिकोंने भी प्रसन्न होकर मुट्ठीमें नमक लेकर राजाके क़ानूनको तोड डाला ॥ २९ ॥

तदनु तु निखिलेऽस्मिन्भारते क्षाररक्षि-
नियमतनुविभङ्गोऽभून्महोत्साहशाली ।
अनतिसुलभदेवेनाऽऽहिता या तपस्या
फलतु नहि कथं सा सर्वशुद्धा समिद्धा ॥३०॥

उसके बाद तो, आश्चर्य है, कि सारे भारतमें उत्साहपूर्ण नमक क़ानून तोडा गया । अतिदुर्लभदेवने जिस परमपवित्र और प्रदीप्त तपश्चर्याका अनुष्ठान किया वह क्यों न फलीभूत हो ? ॥ ३० ॥

असकृदभयदेप क्षारलुण्ठनमस्तैः
प्रतिदिनमुपयुक्तः किन्तु नो राजकीयैः ।

व्यरचि कुपुरुषैस्तद्बन्धनं भग्नमानै-
रितिविजयपताका नाकमालीढ नूनम् ॥३१॥

श्रीमहात्माजीके उन साथियोंने इसी प्रकार नमक लूटनेका क्रम रोज और अनेक बार जारी रखा, परन्तु राजकीय दुष्टपुरुषोंने अपना मान गँवा दिया और उनको पकड़ा नहीं। अतः विजयपताका आकाशको चूमने लग गयी ॥ ३१ ॥

मुनिवरपदपद्मप्रेक्षणाशां वहद्भि-
र्विकटपथमतीत्यैवागतिं सेवमानैः।
सदयहृदयमेतस्यापि विवशस्य लोके-
र्विवशितमधिवस्तुं तैस्ततस्तां कराडीम् ॥३२॥

श्रीमहात्माजीके दर्शनों की आशामें लोग उस विकट मार्गसे पार करके आते थे। उन लोगोंने श्रीमहात्माजीके हृदयको विवश कर दिया कि वह लोगोंकी सुविधाके लिये कराडीमें जाकर निवास करें ॥ ३२ ॥

इह विलसति विद्यामन्दिरं राष्ट्रवर्धि
हृदयरमणदक्षे ग्रामबाह्यैकभागे।
अतिसविधमदीर्घं चूतषण्डं च तस्य
तदध उटजमध्ये सोऽभवद्वासशीलः ॥३३॥

इह = कराडीमें राष्ट्रकी उन्नति करनेवाला एक विद्यामन्दिर है। वह परमरमणीय ग्रामके बाहरके भागमें है। उसके पासमें ही एक छोटीसी आमकी घटा है। उसीके नीचे झोपड़ेमें श्रीमहात्माजी रहने लग गये ॥ ३३ ॥

त्रिभुवनमुनिमान्यस्त्वेकदा धारवाडा-
मगमदथ विलोक्य क्षारराशीन्बहुंश्च।
परिचलितमनास्तान्संग्रहीतुं सभाया-
मितिवचनमुखैस्तर्पयामास लोकान् ॥३४॥

एक दिन श्रीमहात्माजी धारवाड़ा गये। वहाँ बहुत जगहोंमें नमकका

ढेर देखकर उनका मन उन ढेरोंको लेनेकेलिये विचलित हो गया। उन्होंने लोगोंको * इन वचनोंसे तृप्त किया ॥ ३४ ॥

अभवमहमवश्यं क्षारचौरः प्रसिद्धो
निजपरिजनवागावेदितो वस्तुतस्तु ।
गिरिमिममतिरम्यं लावणं संविभिद्य
पदमिदमुपलब्धुं साधु योग्यो भवामि ॥३५॥

मेरे साथियोंके कहनेसे मैं अवश्य ही प्रसिद्ध नमकचोर बन गया हूँ। परन्तु सच तो यह है कि इस रमणीय नमकके पहाड़को तोड़कर ही मैं इस पद (नमकचोर) को पानेकेलिये ठीक ठीक योग्य हो सकता हूँ ॥ ३५ ॥

अशनवसनयोश्चेत्संयमः कस्यचित्स्या-
द्भवति यदि च कौपीनेन युक्तोऽपि कोपि ।
झटिति स हि महात्मा स्यात्सुदेशेऽस्मदीये
परमिह सुलभो न क्षारचौरेत्युपाधिः ॥३६॥

यदि कोई आदमी भोजन और वस्त्रमें संयम रखने लग जाय और एक लंगोटी पहिन ले तो वह हमारे इस सुन्दर देशमें शीघ्र ही महात्मा बन जाता है। परन्तु नमकचोरकी उपाधि सुगमसे प्राप्त करने योग्य नहीं है ॥ ३६ ॥

अथ यदि न भवामि क्रूरराज्यस्य दण्ड्यः
प्रतिदिनमपि कुर्वन्क्षारलुण्ठिं प्रसह्य ।
कथमपि न भवेयं चोरशब्देन वाच्यो
भवति न हि मदीयं कृत्यमेतत्तु चौर्यम् ॥३७॥

मैं रात दिन नमक लूटनेपर भी यदि इस राज्यका दण्डित न होऊँ तो चोरशब्दके प्रयोग करनेका मैं पात्र कैसे बन सकता हूँ ? और यह मेरा काम, चोरी है भी नहीं ॥ ३७ ॥

---

* यह वचन ३५ वें श्लोकसे शुरू होते हैं।

अपहृत इह न स्याच्चेदयं क्षारराशि-
विंगतभयभुवा धारासणो भांयदरैः ।
अपहृत इह खाराघोड एवापि नो चे-
च्छिशुजनसुलभ स्यात्क्रीडन सर्वमेतत् ॥३८॥

यदि निर्भय होकर मैं इस नमकके कारखानेको लूट न लूँ, धरासणा और भॉयदरा और खाराघोड़ा इन तीनों स्थानोंके कारखानोंको भी न लूट लूँ तो यह सब मेरा काम केवल बचोंका खेल माना जायगा ॥३८॥

नियत इह कृत स्याल्लौण्टनो यर्हि कालो
निखिलनिजजनाना संघमादाय शुद्धम् ।
प्रियरणभुवि युष्माभिस्तदानीं समेत्य
शशिसमसुखदं स्वं कीर्तिशुभ्रं प्रसाधयम् ॥३९॥

इन सबके लूटनेका जब समय नियत किया जाय उस समयपर तुम लोग अपने अपने प्रामाणिक जनोंको साथ लेकर प्रियरणभूमिमें आ कर चन्द्रसमान सुखद अपनी कीर्तिको उज्ज्वल बनाना ॥ ३९ ॥

इह परित उपेत्येवास्य देशस्य यो यो
हृदयकमलशोषी दुस्समाचारराशिः ।
क्षणमपि न विधत्ते सोऽद्य मामार्तचित्तं
मम हृदयमनिन्द्य वज्रलितं यतोऽभूत् ॥४०॥

इस देशके--भारतके विभिन्न भागोंसे जो जो हृदय कँपानेवाले खराब खराब समाचार आ रहे हैं उनसे मैं जरा भी दुखित नहीं हो रहा हूँ। आज तो मेरा हृदय वज्रको भी लज्जित करनेवाला--अत्यन्त कठोर बन गया है ॥ ४० ॥

विगतदयमनुष्यैस्ताडिता यन्निभिद्यन्ते-
भिरपकृतय एते. मूर्ध्नि' समे ते ।
क्षतिरिह नहि काचिल्लक्ष्यते यत्परेषा-
मयमनय इह स्यात्तत्पराभूतिचिह्नम् ॥४१॥

निर्दय क्रूर इन अंग्रेजोंके आदमियोंने यदि निरपराध उन स्वय-सेवकोंको लाठियोंसे मारा है तो कोई क्षति नहीं है। यही अन्याय तो अंग्रेजोंके पराजयका सूचक होगा ॥ ४१ ॥

परमविपदुपेतान्भारतीयान्विलोक्य
प्रबलहृदयपीडापीडिता बन्धवो नः।
लवणसमरभूमावागता वीरयोधाः
प्रतिदिनमपि ताड्यास्ते भवन्तीह दुष्टैः ॥४२॥

भारी विपत्तियुक्त भारतीयोंको देखकर भारी हार्दिक पीडासे पीडित होकर हमारे भाई इस नमककी लडाईमें आये हैं और प्रतिदिन दुष्ट उन्हें मारते हैं ॥ ४२ ॥

भवति नहि मदीये कोऽपि खेदो मनस्ये-
तदनघजनदुःखं वाञ्छनीयं निशम्य।
बलिवरजयरामस्ताडितश्चेत्कराच्यां
सुभगरुधिरदानात्पावितं तेन युद्धम् ॥४३॥

निरपराधों को जो दुःख मिल रहा है, उससे मेरे हृदयमें कुछ भी खेद नहीं होता है। वह तो इष्ट ही है। वीरवर श्रीजयरामदासजीको भी यदि कराचीमें मारा गया है तो उस लोहूसे यह युद्ध पवित्र हो गया है ॥ ४३ ॥

अतिपतितकुराज्येनाभिवर्षं विधाय
क्षत इह जयरामश्चेदुरस्येव युद्धे।
इह यजनभुवि स्यान्नैव तस्मात्पवित्रो
बलिरिति हृदये नस्तोष एवाऽस्त्वनेन ॥४४॥

इस पतित राज्यने यदि अभिवर्षा करके श्रीजयरामदासकी छातीमें घाव किया है तो इस यज्ञभूमिमें इससे पवित्र बलिदान हो ही नहीं सकता। इससे हम लोगोंको सन्तोष ही होना चाहिये ॥ ४४ ॥

विमलकृतिकृतात्मा विट्ठलो गुर्जरे वा
परिविदितमहौजा मेघराजः कराच्याम् ।
अतिबहुबलिदत्तात्रेय उद्धोऽपि तत्रा-
सुलभमृतिमुपास्य स्वर्गताः पुण्यभाजः ॥४५॥

पवित्र कर्मसे कृतार्थ विट्ठलभाई गुजरातमें और प्रख्यात तेजस्वी श्रीमेघराज और अतुल बलशालियोंमेंसे श्रीदत्तात्रेय कराचीमें दुष्प्राप्य मृत्युका इस युद्धमें आलिङ्गन करके स्वर्ग चले गये ॥ ४५ ॥

लवणनिचयमीड्यं श्रीमहादेवदेसा-
य्यधिशकटमुपस्थाप्यातिहर्षान्वितोऽसौ ।
निगडित इति निन्द्यै राजकीयैर्मनुष्यै-
रधिगतमुदगान्मे तेन चित्ते प्रसादः ॥४६॥

श्रीमहादेव देसाई गाडामें नमकका ढेर लेकर प्रसन्न हुए थे और सर्कारी नौकरोंसे पकडे गये, इस समाचारको सुनकर मेरे चित्तमें प्रसन्नता हुई है ॥ ४६ ॥

परमलिखमहं तत्सन्निधौ पत्रमेकं
न हि भवसि महांस्त्वं बन्दिशालाप्रयाणात् ।
किमपि नहि तवाङ्गं छिन्नमीषन्न भग्नं
न च शिरस उदस्थादुष्णरक्तप्रवाहः ॥४७॥

परन्तु मैंने महादेवभाईके पास पत्र लिखा है कि जेल जानेसे ही तुम गौरवशाली नहीं बन सकते। अभी तो शरीरका कोई भी अङ्ग न तो फटा और न टूटा। शिरमेंसे गर्म गर्म लोहूकी धारा भी नहीं निकली ॥ ४७ ॥

भवतु हि जयरामस्ताडितः प्रहर्तै-
रपि भवतु महादेवोऽपि तुल्यास्तथाऽऽभ्याम् ।
भवति नहि समर्थः कोऽपि रोद्धुं तदानीं
जगदधिपकृपायाः स्रोतसां सम्प्रवाहम् ॥४८॥

क्रूर हाथोंसे चाहे जयरामदास मारे जायँ और चाहे महादेवभाई मारे जायँ अथवा इन दोनोंके समान ही दूसरे लोग भी मारे जायँ; परन्तु भगवान्‌की कृपाके स्रोतका जो प्रवाह है उसे रोकनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ४८ ॥

यदि रुधिरपिपासाशान्तये वाञ्छितं स्या—
न्मनुजकुलसहस्रं देयमेवाद्य तेभ्यः ।
प्रधनमिदमवद्यामानुषाचारलोकै—
र्विपद उपहृता आसोढुमेव प्रवृत्तम् ॥४९॥

यदि हजारों और लाखों आदमियोंकी उन अंग्रेजोंको जरूरत पड़ेगी, तो मैं अवश्य ही उन्हें उतने आदमी दूँगा । क्योंकि यह लड़ाई शुरू ही इसलिये हुई है कि नीच और अमानुषीय आचारवाले—राक्षसोंके द्वारा जो जो आपत्तियाँ आवें उनको सहन किया जाय ॥ ४९ ॥

भवति न मम हर्षः शोक एवापि कृत्ये
रिपुकुलपरिपोष्येऽत्रातिहीनातिहीने ।
विलसति यदि सर्वप्रेक्षिका कापि शक्तिः
कथमिह मम चिन्ता जायतां दुःखदाय ॥५०॥

शत्रुओंके इस नीचातिनीच कर्मसे मुझे न तो हर्ष होता है और न शोक । यदि कोई सर्वद्रष्टी शक्ति जगत्‌में विद्यमान है तो मुझे दुःखद चिन्ता आज क्यों करनी चाहिये ? ॥ ५० ॥

प्रभुरहमिति गर्वः संनिधत्ते नराणां
गणमिति नितरां सक्रोध एवात्र दृष्टः ।
अविशसनमतोऽसौ सद्व्रतं रक्षितुं त—
न्नहि भवति समर्थः प्रायशः कार्यकाले ॥५१॥

नराणां गणम्—पुरुषोंको यह अभिमान रहता है कि हम समर्थ हैं, अतः यह हमेशा क्रोधी ही देखे जाते हैं । और अत एव वह अहिंसा-रूप उत्तमव्रतकी रक्षा करनेमें प्रायः समयपर असमर्थ हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

सदयहृदय एव प्रेक्ष्यते स्त्रीगणोऽसौ
विशसनविरतिर्वा त्यागशक्तिर्ह्यपूर्वा ।
नियतमिह निवासं सन्तनोतीति तस्मा-
त्कृतिविभजनमेतत्साधु सम्पादितं स्यात् ॥५२॥

स्त्रियाँ सदा दयालु हृदयवाली होती हैं। हिंसासे उनकी विरक्ति रहती है। अपूर्व त्यागशक्ति भी उनमें अवश्य ही निवास करती है। अतः इस प्रकारका (निम्नलिखित प्रकारका) कार्य विभाग करना अच्छा होगा ॥५२॥

प्रतिगृहमुपगम्य प्रश्रयेणैव कश्य—
ग्रहणनिरतलोकान्प्रेमतः सम्प्रबोध्य ।
अबुधजनसहस्रं त्रायतां घोरपापा—
न्मधुरमधुरवाचा योषितां सद्गणोऽयम् ॥५३॥

बहिनें घर घर जाकर नम्रताके साथ शराबियोंको मीठे मीठे शब्दोंसे समझाकर इस घोर पापसे उन्हें बचावें ॥ ५३ ॥

प्रतिनगरमपूर्वं युद्धमेतत्क्षणेन
प्रतिदिनमधिकाभ्युत्साहपूर्वं प्रसर्पत् ।
त्रिटिशनृपतिपोष्याः किङ्कराः क्रूरवृत्ताः
प्रतिहतगति कर्तुं यत्नमारेभिरे वै ॥५४॥

जब यह युद्ध थोडे ही समयमें प्रतिदिन प्रत्येक शहरमें अत्यन्त उत्साहके साथ फैलने लग गया तो इसे रोकनेके लिये सर्कारके निर्दय नौकर यत्न करने लग गये ॥ ५४ ॥

यतिपतिरपि शीघ्रं निर्णयं लुण्ठनस्य
व्यधित निजबलेनैवास्य धारासणस्य ।
जलजलवणपुञ्जस्यार्तलोकार्तिहारी
व्यलिखदिति च पत्रं लार्ड इर्विन्समीपे ॥५५॥

श्रीमहात्माजीने भी धरासणाके इस बल (समुद्रीय) के बने हुए

नमकके कानूनपर लूट चलानेकेलिये निर्णय कर लिया और दीनलोगोंके दुःख दूर करनेवाले उन्होंने, *लार्ड इर्विन्* के पास इस प्रकारसे ❀ पत्र लिखा ॥५५॥

यतनमथ विधास्ये कर्तुमस्मद्वशे तं
जलनिधिजलसङ्कैर्निर्मितं क्षारराशिम्।
निगदितमिति यद्वैयक्तिकः सोऽस्ति तत्तु
छलननवविधानं राजभृत्यैः प्रक्लृप्तम् ॥५६॥

अब मैं समुद्रके जलसे बने हुए तमाम नमकके समूहको अपने कब्जेमें करनेका यत्न करूँगा। यह जो सर्कारने कहा है कि वह सब नमकके कारखाने व्यक्तिगत हैं--सर्कारी नहीं हैं—राजकर्मचारियोंने धोखा देनेका नया उपाय रच लिया है ॥ ५६ ॥

लवणकरनिरोधोऽथ त्वया घुष्यतां वा
मम च मम बलस्याप्यस्तु कारानिवासः।
अधमजनविशोभिर्वेत्रयष्टिप्रहारै—
रपि भवति निरुद्धं चैतदास्कन्दनं नः ॥५७॥

या तो आप नमक करके बन्द होनेकी घोषणा करें तब यह मेरी लूट बन्द हो सकती है या मैं और मेरी सेना जेलमें चली जाय तब बन्द हो सकती है। नीचजनोंके समान लाठीके प्रहारोंसे भी इस लूटको रोका जा सकता है ॥ ५७ ॥

परमिदमपि बोध्यं चेदचिन्त्येशशक्त्या
विपदभिहतलोकाः स्त्रीयरक्षां विधातुम्।
विशसनरहितेऽस्मिन्नागताः सम्पराये
भवति नहि निरोध्यास्त्वन्तिरेषा कदाचित् ॥५८॥

परन्तु यह भी समझ लेना चाहिये कि यदि अचिन्त्य भगवान्की शक्तिसे दुःखके मारे हुए लोग अपनी रक्षा करनेकेलिये इस अहिंसाप्रधान

❀ यहाँसे ६८ वें श्लोक तक यह पत्र है।

युद्धमें आ गये—शामिल हो गये तब यह क्रान्ति कभी रोकी नहीं जा सकेगी ॥ ५८ ॥

मम मनसि तु पूर्वं प्रत्ययः सर्वथासो—
त्समरभुवि सुसभ्यौचित्यमेषा न जह्यात् ।
अहमपि ननु सभ्यास्मीति गर्वक्षयित्री
कथमपि किल शिष्टिर्ब्रैटिशी नष्टगर्वा ॥५९॥

मेरे मनमें तो पहिले सर्वथा निश्चय था कि अंग्रेजोंकी सभ्यता "मैं भी सभ्य हूँ" ऐसा गर्व दिखाती है, अतः समरभूमिमें वह कभी भी सुसभ्योंके औचित्यका त्याग नहीं करेगी। परन्तु वह नष्ट गर्व हो गयी—उसका, सभ्य होनेका अभिमान नष्ट हो गया ॥ ५९ ॥

इदमिह यदि राज्यं सर्वसाधारणीय—
प्रचलितनयमाश्रित्याकरिष्यत्समन्तात् ।
व्यवहृतिमखिलैस्तैर्धर्मसङ्ग्रामयोधैः
कथमपि वचसो मे नाऽभविष्यत्प्रसारः ॥६०॥

यदि यह सर्कार सर्वसाधारण प्रचलित नीतिका आश्रय लेकर, धर्मसङ्ग्रामके उन सब योद्धाओंके साथ, व्यवहार करती तो मुझे कुछ कहनेकी कभी भी आवश्यकता न पडती ॥ ६० ॥

अभवदयमतीवानेकवारानन‍र्थो
बहुषु च नगरेषु प्रान्तकेषु प्रचण्डः ।
कतिपयनगरेषु प्राहरन्मानवेषु
त्वदहृदयजनास्ते पावकास्त्रैर्नृशंसाः ॥६१॥

बहुतसे प्रान्तोंमें, बहुतसे शहरोंमें अनेकोंबार घोर अन्याय हुआ है। कुछ नगरोंमें तो आपके हृदयशून्य आदमियोंने लोगोंपर गोलियाँ भी बर्षायी हैं ॥ ६१ ॥

क्रियत इह नृशंसैस्तावकैरस्थिभङ्गो
दुरितविरहितानां मत्स्वयंसेवकानाम् ।

> व्यपगतमतिलेशैस्तैश्च गुह्याङ्गभागः
> करगतलवणानां पीड्यते धिग्विलज्जैः ॥६२॥

इस युद्धमें आपके निर्दय मनुष्य मेरे निरपराध स्वय सेवकोंकी हड्डियाँ तोड रहे हैं। वे निर्बुद्धि और निर्लज्ज (सिपाही) स्वयंसेवकोंके हाथोंमेंसे नमक छुडानेकेलिये उनके गुह्य अङ्गोंको दबाते हैं। धिक्कार है ॥ ६२ ॥

> अधिमथुरमकस्मात्कस्यचिद्बालकस्य
> परममृदुलहस्ताद्राष्ट्रियं केतुदण्डम् ।
> नृपनर उपमैजिष्ट्रेटमाच्छिद्य भूयः
> शिशुकमदुरितं तं निर्दयं प्राहरत्सः ॥६३॥

मथुरामें अकस्मात् ही किसी बालकके कोमल हाथमेंसे झण्डेको एक सिपाहीने छीन लिया और मैजिष्ट्रेटके सामने ही उस निरपराध बच्चेको निर्दयरीतिसे मारा ॥ ६३ ॥

> अमितयतनसिद्धं यष्टिहस्तैस्त्वदीयै—
> र्बहुसुफलितशालिक्षेत्रराशिः प्रदग्धः ।
> अशनमपि बहूनां निर्दयं तैर्गृहीतं
> सकलमपि च केचिच्छाकपण्यं व्यलुण्ठन् ॥६४॥

बडे यत्नसे तैयार किये हुए, खूब फले हुए अन्नके खेतोंको आपके सिपाहियोंने जला डाला है। बहुतोंके भोजनको भी सिपाहियोंने निर्दयताके साथ छीन लिया है। कितने सिपाहियोंने तो साराका सारा शाक बाजार लूट लिया है ॥ ६४ ॥

> अहमपि तव रोषं स्पष्टमार्गं प्रणेतुं
> यतनमथ विधित्से शुद्धयुद्धेऽत्र युद्धे ।
> दमनकृतिरियं ते वर्धतां वर्धतां नो
> दमनसहनशक्तिः प्रत्यहं दुष्प्रतारा ॥६५॥

मैं भी आपके क्रोधको स्पष्टमार्गमें ले आनेका यत्न करूँगा। इस

परमपवित्र युद्धमें आपका दमनकार्य बढ़े और हमारी उसके सहन करनेकी अपारशक्ति सदा बढ़े ॥ ६५ ॥

यदहमिह विधातुं कामये कार्यमद्य
विलसति च भयं यत्तत्र तद्वेद्मि नूनम् ।
परमिह यदि सोढा स्वेच्छयास्माभिराप—
द्विजयतुमुलनादो वार्यतां तर्हि केन ॥६६॥

आज मैं जो काम करना चाहता हूँ, उसमें जो भय है मैं उसे अच्छे प्रकारसे जानता हूँ। परन्तु अगर हमलोग स्वेच्छासे आपत्तिको सह लेंगे तो हमारे विजयके डंकेको कौन रोक सक्ता है ? ॥ ६६ ॥

नियतमिह मते मे जेतुमद्याथ हिंसा
न हि किमपि सुशस्त्रं विद्यते चान्तरेण ।
सहनमिह विपत्तेः शत्रुसम्पादितायाः
अविचलपदपद्मां निष्कलङ्कामहिंसाम् ॥६७॥

मेरे मतमें तो यह नियम है कि आज शत्रुद्वारा प्राप्त अतिविपत्तिके सहन करनेके सिवाय और स्थिर निष्कलङ्क अहिंसाके सिवाय, हिंसाको जीतनेकेलिये कोई भी दूसरा अच्छा शस्त्र नहीं है ॥ ६७ ॥

विदितमदुपदेशैरप्यहिंसाविरोधि
यदपि किमपि कृत्यं भारतीयैः क्रियेत ।
कथमपि मयि न स्यात्तस्य भारो न हेयः
कथमपि भविता वा मार्ग एष प्रशस्यः ॥६८॥

जिन्होंने मेरे उपदेशको जान लिया है वह भी भारतीय यदि अहिंसाका विरोधी कोई कृत्य करेंगे तो उसका भार मेरे सिर नहीं होगा। और यह अहिंसा-युद्धका उत्तम मार्ग किसी प्रकारसे भी मेरेलिये त्याज्य नहीं होगा ॥ ६८ ॥

❀ इदं पत्रं श्रीमान्सुभगपदनिष्टं लिखित्वा क्षणेन
प्रहेष्यामि श्रेयः प्रतिनिधिसमीपे धरापो विधातुम् ।
इति ध्यात्वा देवः कथमपि च सुप्तो निशीथे मनुष्यैः
समायातैर्भौपैर्यतिपतिरयं बन्दितां नीत एव ॥६९॥

श्रीमान् महात्माजीने इस सुन्दर पत्रको उत्साहके साथ लिखकर, राजाके प्रतिनिधि–वाइसरायके पास, कल्याण करनेकेलिये भेजूँगा, ऐसा विचार कर किसी किसी तरहसे आधी रातको सोये थे। इतनेमें ही राजपुरुषोंने आकर उन्हें कैद कर लिया ॥ ६९ ॥ •

-ं-आकर्ण्यैतमनिष्टमिष्टमथवा वृत्तान्तमेतेऽखिलाः
सेनावीरवराः सपद्यभियुस्तत्सन्निधौ सत्यपाः ।
पूजान्ते प्रणतिं विधाय सकलास्तत्पादपद्मेऽनमन्
गायन्तो गमयाम्बभूवुरथ तं गीतिं च तस्य प्रियाम् ॥७०॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
एकविंशः सर्गः

इस अनिष्ट अथवा इष्ट समाचारको सुनकर सब सैनिक शीघ्र ही वहाँ आ गये। सबने पूजाके पश्चात् उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके प्रिय×गीतको गाते हुए सबने उन्हें विदा किया ॥ ७० ॥

❀ मेघविस्फूर्जिता छन्द ।

-ं- शार्दूलविक्रीडित छन्द ।

×वैष्णव जन तो तेने कहिये पीर पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे ॥ १ ॥
सकल लोकमाँ सहुने वन्दे निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे ॥ २ ॥
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन नव झाले हाथ रे ॥ ३ ॥

मोह माया व्यापे नहि जेने दृढ वैराग्य जेना मनमॉ रे,
रामनाम शुँ ताली लागी सकल तिरथ तेना मनमॉ रे ॥ ४ ॥
वणलोभी ने कपट रहित छे काम क्रोध नावार्या रे,
भणे नरसैंयो तेनुँ दरशान कुल ऐकोतर तार्यॉ रे ॥ ५ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते
एकविंशः सर्गः



❀ द्वाविंशः सर्गः

गते यतिपतौ च बन्धभवनेऽवने विरचितस्य तेन मुनिना।
क्रमस्य सकलस्य कार्यवितते र्बभूव गतिमानबास ऋषिदृक् ॥१॥

श्रीमान् महात्माजीके जेल चले जानेपर उनके बनाये हुए सम्पूर्ण कार्यक्रमकी रक्षा करनेमें ऋषिसमान दृष्टिवाले श्रीअब्बासजी तैयार हो गये ॥ १ ॥

अबासमणिलालकौ नरहरिस्तथा जुगतराम ईडितमतिः।
स वालजिरिमामसाहिब इमे समीकसमितिं तदा विदधिरे ॥२॥

श्रीअब्बासजी, श्रीमणिलाल गांधी, श्रीनरहरिभाई परिख, श्रीजुगतराम दवे, श्रीवालजीभाई और श्रीइमामसाहेब, इन लोगोंने उस समय एक युद्धसमिति बनाली ॥ २ ॥

—अयं समर एति शान्तिपदवीमुपेत्य हि तथापि राजपुरुषाः।
बहून्प्रकृतिसेवकानपकृपास्तिरस्कृतिपदं नयन्ति सततम् ॥३॥

यह युद्ध शान्तिमार्गका अवलम्बन करके चल रहा है, तो भी राजकर्मचारी बहुतसे प्रजासेवकोंका सदा अपमान करते रहते हैं। (इस श्लोकका सम्बन्ध ८ वें श्लोकके अब्बास इति घोषणाम् के साथ है) ॥३॥

महात्मपर आत्मनि प्रहरणं दलेऽपि निखिले निजे नृपजनैः।
कृतं हुतभुगञ्जलिपिहितैकामयत सन्मयाऽपि लषितम् ॥४॥

श्रीयुत महात्माजी चाहते थे कि उनके ऊपर और उनकी सेनाके ऊपर बन्दूकधारी राजकर्मचारी प्रहार करें, वही इच्छा मेरी भी है ॥ ४ ॥

❀ इस सर्गमें जलोद्धगति छन्द है।

— यहाँसे ८ वें श्लोकतक श्रीयुत अब्बास तैयबजी भूतपूर्व जज बड़ोदाकी घोषणा है।

अथो भवतु राजपद्धतिरियं सदा सुखकरो नृणां निवसताम् ।
इहेत्यपि मुनीश्वराभिलषितं तदेवमयकापि कामितमिति ॥ ५ ॥

श्रीमहात्माजीकी यह भी इच्छा थी कि—अथवा इस राज्यमें रहने-वाली प्रजाओंकेलिये यह राजनीति सदा सुख देनेवाली बने, वही वस्तु मैं भी चाहता हूँ ॥ ५ ॥

इदं निजमनीषितं सुमुनिना सिताङ्गनृपतेः प्रति प्रकटितम् ।
दलं लिखितमेव कर्तुमथ तन्मया प्रहितमद्य तस्य सविधे ॥ ६ ॥

श्रीमहात्माजीने इस अपनी इच्छाको वाइसरायपर प्रकट करनेकेलिये एक पत्र लिखा था जिसे मैंने आज वाइसरायके पास रवाना किया है ॥६॥

धरासनधरागतं लवणनिर्मितिस्थलमवश्यनैजवशगम् ।
विधातुमनुरुध्यते स्म मुनिना तदेव भवतात्र इष्टमधुना ॥ ७ ॥

धरासणाकी भूमिमें जो नमक बनानेकी जगह है—कारखाना है उसे अवश्य ही अपने वशमें करनेकेलिये श्रीमहात्माजीका अनुरोध था। वही वस्तु आज हमें भी इष्ट होनी चाहिये ॥ ७ ॥

अनेन सुबलेन तस्य सुधियो धरासनभुवं प्रयामि सपदि ।
अब्बास इति घोषणां जनतया मतोऽकृत महौजसा परिवृतः ॥ ८ ॥

श्रीमहात्माजीकी इस सेनाको साथमें लेकर मैं शीघ्र ही धरासणा जाऊँगा। बड़े भारी ओजस्वी और जनतासे पूजित श्रीअब्बासजीने, यह घोषणा की ॥ ८ ॥

दिने नियमिते स सैन्यपतितामुपेत्य चलितुं धरासनमभि ।
समुद्यत उपेत्य राजधनमुड्महाधमनरैर्न्यरुध्यत परम् ॥ ९ ॥

धरासणा जानेकेलिये जो तारीख नियत की गयी थी उस दिन सेना-पति बनकर जब चलनेकेलिये श्रीअब्बासजी तैयार हुए तब राजधनके खानेवाले अधमजनोंने आकर उन्हें रोक लिया ॥ ९ ॥

क्रमेण निखिलाश्चभूपतिमनु प्रजीनतनुमार्तिभञ्जनपरम् ।
स्थिताः शुशुभिरे चतुर्मुखमनु प्रतिष्ठितचमूनरा इव सुराः ॥१०॥

अत्यन्त वृद्ध शरीरवाले, दुःखोंके दूर करनेवाले सेनापति उन श्रीअन्नासजीके पीछे क्रमसे सब सैनिक खड़े हो गये और उस समय ऐसा मालूम होता था मानों ब्रह्माजीके पीछे सब देवता खड़े हों ॥ १० ॥

समर्चित उदारया कुसुममालया स ऋषिकल्प उन्नतमनाः ।
प्रसन्नमुखकस्तुराह्वजननीपवित्रकरतो बभूव मतिमान् ॥११॥

प्रसन्नवदना श्रीमती कस्तूरबाके पवित्र हाथोंसे, बुद्धिमान्, ऋषिसमान और उदार विचारवाले श्रीअन्नासजी, मालासे पूजे गये ॥ ११ ॥

सकृच्छतजनासुसंहृतिकरैरतीव भयदायुधैर्नरगणात् ।
उवाच नयपाल एत्य पुरतो विभक्तिमुपगच्छतेति सकलान् ॥१२॥

एक बारमें ही सैकड़ों लोगोंके प्राणोंके संहार करनेवाले भयङ्कर हथियारोंसे युक्त मनुष्यों-सिपाहियोंके समूहमेंसे मैजिस्ट्रेट आगे आ कर उन लोगोंसे कहा कि सब लोग तितर बितर हो जाओ ॥ १२ ॥

अवास इति वाचमाह सहसा वयं न गणयाम ईदृशमिदम् ।
वचस्तव ततो यथेच्छमभितः कुरुष्व जहि नो बधान निगडैः ॥१३॥

एक दम श्रीअन्नासजी बोल उठे कि हम लोग तुम्हारी इस बातको नहीं मानते । अतः तुम तुम्हारी इच्छा हो तो हम लोगोंको क़ैद करलो, और इच्छा हो तो मार डालो ॥ १३ ॥

चुकोप स ततो ग्रहीतुमखिलान्व्यजिज्ञपदमूनिजानसिधरान् ।
क्षणेन स च तैः स्वसैनिकनरैर्जगाम नरपालयन्त्रणविधिम् ॥१४॥

ऐसा कहनेपर वह मैजिस्ट्रेट गुस्सा हो गया और उसने सब लोगोंको पकड़ लेनेके लिये अपने तलवारधारी सैनिकोंको आज्ञा दी । क्षणभरमें ही श्रीअन्नासजी अपने सैनिकोंके सहित कैदी बन गये ॥ १४ ॥

उपैच सुरताच्छतद्वयमतो नृणां युधि रसं परं निदधताम्।
गुणैकनिलया बभूव च सरोजिनी स्थितवती चमूपतिपदे ॥१५॥

इस सत्याग्रह युद्धमें प्रेम रखनेवाले दो सो आदमी–सैनिक सूरतसे आ गये। सर्वगुणवती श्रीमती सरोजिनी नायडूने सेनापति पदको स्वीकार किया ॥ १५ ॥

चमूं समुपचित्य सा लवणभृद्धरासनभुवं जगाम कृतिनी।
व्यशोभत च झांसिराजमहिषी यथा सुविदुषी जनैरनुगता ॥१६॥

सुन्दर कृतिवाली वह देवी सूरतसे आयी हुई सेनाको लेकर नमकपूर्ण घरासणाकी भूमिमें गयी। वह अपने सैनिकोंके साथ ऐसी शोभा देती थीं जैसे अपने सैनिकों सहित झाँसीकी महारानी श्रीलक्ष्मीबाई ॥ १६ ॥

अकारि लवणालयं च परितो दृढं सततरक्षणं यतनतः।
नृपस्य दनुजैरिवैत्य मनुजैरयोरचितरज्जुभिर्बहुविधम् ॥१७॥

राक्षसजैसे भयङ्कर सर्कारी नोकरोंने वहाँ आकर बहुत यत्न के साथ बहुत तरहसे उस नमकके कारखानेके चारों ओर लोहेके तारोंसे दृढ़ रक्षण कर लिया ॥ १७ ॥

प्रवेशपथमाकलय्य मृदुलस्वभावरचिता च सा नृपजनैः।
उपाविशदथावृत्तं ग्रहपतिप्रतप्तघृणिमूर्छिताऽपि तृषिता ॥१८॥

कारखानेमें प्रवेश करनेके मार्गोंको सिपाहियोंसे बन्द किये हुए देख कर कोमलस्वभाववाली वह श्रीसरोजिनीदेवी, प्यासी हुई थीं तो भी और सूर्यके प्रखर तापसे मूर्छित हो गयी थीं तो भी वहीं ही बैठी रहीं ॥ १८ ॥

यतीन्द्रपरिकल्पितक्रममियं प्रपूरयितुमेव वीरजननी।
दलेन सह सा स्थिता स्थिरमतिः क्षुधं तृषमपीह नो गणयता ॥१९॥

श्रीमहात्माजीके बनाये हुए कार्यक्रमको पूरा करनेकेलिये वीरमाता और स्थिर बुद्धिवाली वह श्रीसरोजिनीदेवी, भूख और प्यासकी परवा न करनेवाले सैनिकोंके साथ वहाँ ही बैठी रहीं ॥ १९ ॥

विलोक्य तपनातितप्तवदनां नितान्तसुकुमारतां च दधतीम् ।
सुखस्य च विधित्सयाऽसिचदिमां निदाघमिषतो जलेन वरुणः ॥२०॥

अत्यन्त सुकुमारी श्रीसरोजिनीको धूपसे बहुत व्याकुल वदनवाली देखकर, उनको सुख देनेकी इच्छासे श्रीवरुणदेवने पसीनेके बहानेसे जलसे उन्हें सींच दिया ॥ २० ॥

धरासनभवा अनेकमहिलास्तथोटडिभवाः सुशीतलजलैः ।
घटैरुपगताः प्रसन्नवदना जनैर्नरपतेस्तु वारितगमाः ॥२१॥

धरासणाकी और उंटडीकी बहुत सी बहिनें ठंडे पानीसे भरे घड़ोंको ले ले कर, प्रसन्न होकर वहाँ आयीं परन्तु राजकर्मचारियोंने उन्हें रोक दिया ॥ २१ ॥

इतः परमकोमलाशि ललना चमूपतिपदप्रकाशनपरा ।
ततो दुरितदारुणा नृपनराः करोतु भगवान्निजेहितमिति ॥२२॥

इधर परम सुकुमारी एक महिला सेनापतिके पदको उज्ज्वल बना रही है, और उधर बड़े बड़े पापी राजपुरुष खड़े हुए हैं। भगवान् की जो इच्छा हो, उसे वह करें ॥ २२ ॥

विलोकितुमुपागमन्स्वनयनैर्विदरमिदमद्भुतं सुमहिलाः ।
सहस्रश उदारहृदयनजा नराश्च समराङ्गणीयमतुलम् ॥२३॥

अपनी आँखोंसे समरभूमिके इस भयङ्कर अद्भुत और अनुपम, दृश्यको देखनेकेलिये उदार हृदयवाली महिलाएँ और पुरुष वहाँ सहस्रोंकी संख्यामें आ गये ॥ २३ ॥

चमूषु मिलिताः सुसेवकगणा सुखं निजजनैर्निशाचरगणात् ।
प्रशान्तमनसो हि पातुमितो जयेच्च हि कथं यतेर्ननु तपः ॥२४॥

अपनी जन्मभूमिको निशाचरोंके हाथोंमेंसे बचानेकेलिये शान्तमनवाले बहुतसे स्वयंसेवक चारोंओरसे आकर सेनामें शामिल हो गये। भला श्रीमहात्माजीकी तपस्या क्यों न विजयको प्राप्त करे ? ॥ २४ ॥

अयोवृतिमरिन्दमा बलिवरा निकृत्य कथमप्यलं समरगाः ।
विलुण्ठ्य लवणं तदा समभवन्प्रसादसहिताः कृतार्थमनसः ॥२५॥

समरमें गये हुए शत्रुओंको दमन करनेवाले बलिवीर, सर्कारके लगाये हुए तारके घेरोंको काटकर, नमकको लूटकर बहुत प्रसन्न और कृतार्थ हो गये॥२५॥

अनुष्ठितमिदं स्तुतै रणरतैरनेकदिवसेषु हन्त तु पुनः ।
हता लगुडकैर्नरैरपदयैः शिरस्सु नरपस्य निर्दयतया ॥२६॥

जिनकी सब प्रशंसा कर रहे थे उन योद्धाओंने बहुत दिनोंतक ऐसा ही किया। परन्तु पीछेसे सर्कारके निर्दय कर्मचारियोंने निर्दयताके साथ उनके सिरपर लाठियोंका प्रहार किया ॥ २६ ॥

रणे निपतितान्महासुरभटमहारबहुलैर्नरैरीक्ष्य समरे ।
यतीन्द्रसुभटान्परे रणधियो गताश्च समुदाऽऽहता अविकलाः ॥२७॥

रणभूमिमें असुरसैनिकोंके प्रहारोंसे गिरे हुए श्रीमहात्माजीके सैनिकोंको देखकर दूसरे सैनिक लड़ाईमें गये और सबके सब आहत हुए ॥ २७ ॥

विपद्य परमापदामपि ततीर्न ते मनसि भेजिरे कथमपि ।
हताशपदवीं ययुः प्रमुदिताः समिद्भुवमसंख्यका बलिवराः ॥२८॥

अनेक आपत्तियोंके सहन करनेपर भी श्रीमहात्माजीके सैनिक हताश नहीं हुए और प्रसन्न हो होकर असंख्य सैनिक युद्धभूमिमें गये ॥ २८ ॥

इमामसाहिब इतो रणभुवि प्रसिद्धखलताविदारिसुभटः ।
न्यगृह्यत परं क्षणेन सुधियां वरो नरपतेर्जनैः प्रथमतः ॥२९॥

दुष्टताके नाश करनेमें प्रसिद्ध महावीर इमामसाहेब रणभूमिमें गये। परन्तु राजपुरुषोंने उन्हें पहिले ही पकड़ लिया ॥ २९ ॥

ततश्च स पियारलाल इह सद्गुणैकनिलयः सतामतिमतः ।
न्यबध्यत भटैः सिपाहिजपतेर्जगाम सुरतोऽथ बन्धभवनम् ॥३०॥

उसके बाद परमगुणवान् और सज्जनोंसे आदृत श्रीप्यारेलालजी भी सर्कारी सिपाहियोंसे पकड़ लिये गये और सुरतसे जेल चले गये ॥ ३० ॥

शतानि रणरङ्गिणो हृदयमुद्गराः शिरसि ताडिता अहृदयैः ।
शतानि नृपमानुपैः सपदि सम्परायवसुधातलाच्च विधृताः ॥३१॥

हृदयानन्दसे युक्त सैकड़ों रणबाँकुड़ोंको तो हृदयहीन सर्कारी आदमियोंने पीटा और सैकड़ोंको उस रणभूमिमेंसे पकड़ लिया ॥ ३१ ॥

अयाचितजनाधिसेवनपराः समाययुरभीष्टकार्यकुशलाः ।
ततोऽभवद्दलं वलीन्द्रपटलप्रपूर्णमभितः स्थलं च समितेः ॥३२॥

अभीष्ट कार्य करनेमें कुशल, बहुतसे स्वयंसेवक वहाँ आ गये । अतः रणभूमि योद्धाओंके समूहसे परिपूर्ण हो गयी ॥३२॥

चिलीमुरधरासणे च डुँगरी स्थलेष्विति बभूव सैनिकगणः ।
स्थितः परमतेजसा प्रमुदितो दधत्स्वहृदयेन युद्धकुतुकम् ॥३३॥

चिल्लीमोरा, धरासणा और डुंगरी इन तीनोंमें परम तेजस्वी, आनन्दी और युद्धमें जानेकेलिये कुतूहलवाले सैनिक निवास कर रहे थे ॥ ३३ ॥

प्रणीय जयनादमेभिररिन्दैः स्थितैर्भुवि युधः समेत्य युगपत् ।
प्रहोतुमभितो भिया विरहितैर्ययै सपदि तैर्हितैश्च लवणम् ॥३४॥

यह सब सैनिक जयध्वनि करते हुए युद्धभूमिमें एक साथ ही एकत्रित होकर, निर्भय होकर नमक लेनेकेलिये गये ॥ ३४ ॥

विलोक्य यमयष्टिधारिमनुजा निरस्त्रगणमेनमागतमलम् ।
प्रहृत्य विदयं निशाचरचराः स्वतोपमभिमेनिरे वहुविधम् ॥३५॥

यमराज समान दण्डधारी सर्कारी सिपाहियोंने इन निरस्त्र सैनिकोंको आये हुए देखकर निर्दयताके साथ उन्हें पीटकर सन्तोष प्राप्त किया ॥३५॥

पदोः शिरसि पृष्ठके च सयरे तथैव करयोः प्रहारविकलाः ।
स्वदेशहितसेवनात्तनियमा धराशयनसङ्गतास्तु सहसा ॥३६॥

स्वदेशसेवाके नियमको लेनेवाले वे सैनिक पैरोंमें, सिरमें, पीठमें, और हाथोंमें, प्रहारसे व्याकुल होकर, एकदम पृथिवीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

समादिशदनुक्षणं दधदयं क्रुधं नयनयोस्तथा च हृदये।
ग्रहीतुममुमाटिश निजनरा न्यतीन्द्रतनयं मणिं नरमणिम् ॥३७॥

आँखोंमें और हृदयमें प्रत्येक क्षण क्रोध धारण करते हुए * आटियाने श्रीमहात्माजीके पुत्र श्रीमणिलाल गांधीको पकडनेके लिये अपने सिपाहियोंको आज्ञा दी ॥ ३७ ॥

गतोनरहरिः परीख इति सनिशम्य मणिवन्दिता कलिभुवम्।
निनीषुरभवच्चमूं च महतीं परं न सफलो वभूव सुकृती ॥३८॥

श्रीमणिलाल गांधीका पकडा जाना सुनकर परीख श्रीनरहरिभाई युद्धभूमिमें पहुँच गये। उस विशाल सेनाका नेतृत्व करना चाहते थे परन्तु वह सफल नहीं हुए ॥ ३८ ॥

नराशनपरायणा नृपनरा रणावनिमुपेतमिद्धतपसम्।
क्षणेनकरपादपृष्ठशिरसि प्रहृत्य लगुडे क्षत विदधिरे ॥३९॥

मनुष्योंके भक्षण करनेवाले राजसिपाहियोंने राजभूमिमें आये हुए परमतपस्वी श्रीनरहरिभाईको क्षणभरमें ही, हाथ पैर, पीठ और शिरमें लाठी मारकर घायल कर दिया ॥ ३९ ॥

नृदेवपतिसैनिका सपदि तं परिप्लुतमवेक्ष्य रक्तसलिलैः।
स्नुतैः शिरस एतदूतिनिरता उपस्थितिमशिश्रियन्त विकलाः ॥४०॥

श्रीमहात्माजीके सैनिक श्रीनरहरिभाईको शिरसे बहते हुए रक्त-जलमें डूबे हुए देखकर, व्याकुल होकर उनकी रक्षामें तत्पर होकर सब सैनिक वहाँ उपस्थित हो गये ॥ ४० ॥

पर नृपनरैस्तु तेऽपि लगुडप्रहारशतकैः हता निपतिता।
कथचिदथ मूर्छितो नरहरिर्जनैः शिविरमापितो नरहरिः ॥४१॥

परन्तु सर्कारी सिपाहियोंने सैकडों लाठियाँ मारकर उन सबको भी

*आँटिया नामका एक सार्जेन्ट था जो लाठी चलानेमें बहुत प्रख्यात था।

गिरा दिया। उसके बाद मूर्छित हुए श्रीनरहरिभाईको लोग किसी प्रकारसे शिविरमें ले आये ॥ ४१ ॥

सहस्रमथ सैनिका यतिपतेः प्रहारविकला भुवं निपतिताः।
तथापि न निराशता यतिचमूं चुचुम्ब निजदेशरक्षणपराम् ॥४२॥

श्रीमहात्माजीके हजारों सैनिक मार खाकर पृथिवीपर पडे हुए थे तो भी उन देशरक्षामें लगे हुओंको निराशा न हुई ॥४२॥

स्वकीयकरगं विधातुमखिलां यतीन्द्रशिविरं महाऽनयपराः।
सिताङ्गजचमूनराः प्रलगुडैस्तथानलमहायुधैरभियुयुः ॥४३॥

महान् अन्यायी अंग्रेजोंके सैनिक, श्रीमहात्माजीके शिबिरछावनीको अपने कब्जेमें लेनेके लिये बडी बडी लाठियाँ और बन्दूक लेकर वहाँ गये ॥४३॥

ययुः प्रथममिमे कुनीतिरसिका जवेन निखिलाः सचेतउटडीम्।
शतद्वयमिमे यतीन्द्रशिविरस्थितिश्रितनृणामकुर्वत बहिः ॥४४॥

अन्याय करनेके रसिक अंग्रेजीसिपाही सभी बडे वेगसे पहिले सचेत बनी हुई उटडी में गये। वहाँ दो सौ सैनिकोंको—जो कि उस रात्रिमें शिविरमें थे—सिपाहियोंने बाहर करदिया ॥४४॥

गतासुरभवद्य तेषु सुभगः प्रतिष्ठिततमः स दाजितनयः।
क्षतोऽसितनयैर्नरेन्द्रमनुजैः रतीव स च भाइलाल ऋजुवाक् ॥४५॥

उनमेंसे श्री—दाजीके पुत्र भाईलाल, उन कालीनीतिवाले सिपाहियोंसे पीटे जानेपर मरण धर्मको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥

क्षतोपि शिरसि महारशतकैरसौ नरहरिर्नृपालमनुजैः।
गृहीत इति संमुदा निजजनान्स आदिशादलं विवेकपरवान् ॥४६॥

सैकडों प्रहार पडनेसे शिरमें घाव लगा था तो भी पुलिसने श्रीनरहरिभाईको पकड लिया। पकडे जानेपर विवेकी उन्होंने अपने आदमियोंको, प्रसन्नतासे, यह आज्ञा दी ॥४६॥

ध्वजो भवतु रक्षितोऽयमखिलै स्वदेशहितकामुकैर्नरवरै ।
समेतु च धरासणासमरभू शुभां विजयमालिकामचिरत ॥४७॥

स्वदेशके हित चाहनेवाले सब लोग इस राष्ट्रध्वजकी रक्षा करें। शीघ्र ही यह धरासणाकी युद्धभूमि विजयमालाको प्राप्त करे ॥ ४७ ॥

यतीन्द्रशिबिर विरिक्तमधुना विभाति तु तथापि गुर्जरभुव ।
परेभ्य उत मण्डलेभ्य इह ते रणे च सहसाऽऽव्रजन्तु कुशला ॥४८॥

इस समय यद्यपि यह राष्ट्रिय छावनी खाली पड गयी है तथापि गुजरातसे तथा अन्य प्रान्तोंसे भी इस लडाईमें, कुशल सैनिक आ जावें ॥ ४८ ॥

अहिंसकतया विधातुममलं युध भवति धीरता यदि तदा ।
समागतिरिहास्तु कस्यचिदपि प्रशान्तमनसो यतीन्द्रसुखदा ॥४९॥

अहिंसकरूपसे इस पवित्र युद्धको लडनेकेलिये यदि धैर्य हो तो शान्तमनवाले, चाहे जो यहाँ आ जावें। उनका आना श्रीमहात्माजीको आनन्ददायक होगा ॥ ४९ ॥

जगाद स ततो नयाधिपपुरो वचो गतभय स्फुट नरहरि ।
भवेद्वरबलिदानमत्र सुधियां भवेच्च विजयोऽत्र न शिवतर ॥५०॥

इसके बाद मैजिस्ट्रेटके सामने श्रीनरहरिभाईने बयान दिया कि इस युद्धमें सुन्दर विचारवालोंका बलिदान दिया जायगा और हमारा सुन्दर विजय होगा ॥ ५० ॥

पराजय इहास्ति सत्यसमरे कदापि न ततोऽस्ति नो जय इह ।
नृपस्य हृदये कथञ्चिदपि तद्धवेत्सुपरिवर्तनं शुभपदम् ॥५१॥

सत्याग्रहयुद्धमें पराजय तो कभी होता ही नहीं है अत सदा ही हमारा विजय है। इस युद्धसे कुछ न कुछ सर्कारके हृदयमें भी सुन्दर परिवर्तन हुआ होगा ॥ ५१ ॥

मतामथ नृणां भवेदिह यदि प्रकाशापरको बलि प्रभुतम ।
अथेन्नृपनय प्रकाशमधिक प्रनेदय लय प्रवर्तित इह ॥५२॥

यदि इस युद्धमें सज्जनोंका जाज्वल्यमान समर्थ बलिदान होगा तो यहाँ—हिन्दुस्तानमें अथवा इस युद्धमें प्रवर्तित राजनीतिमें या तो अधिक प्रकाश प्राप्त होगा अथवा वह नष्ट हो जायगी ॥ ५२ ॥

ततः शिबिरमास्थितं सपदि तद्वशं सततमम्बिकापटिलके ।
स चापि समवाप निग्रहमथो सहैव बत तेन स त्रिभुवनः ॥५३॥

उसके बाद छावनी श्रीअम्बालाल पटेलको सौंप दी गयी परन्तु वह भी और उनके साथ ही डाक्टर त्रिभुवनदासजी भी पकड़ लिये गये ॥५३॥

इदं न नृपसम्मतं हि शिबिरं ततस्तदवपातनाय बहवः ।
कुराजभृतिभोजिनो नियमिताः स्वभावपतिताः पतङ्गसदृशाः ॥५४॥

यह राष्ट्रियछावनी सर्कारको पसन्द नहीं है अतः उसका नाश करनेकेलिये राजान्नपानेवाले, स्वभावतः पतित आदमियोंको नियुक्तकर दिया गया ॥ ५४ ॥

बिभेद पटमण्डपांश्च विततान्घटानपि च कोऽपि कर्मठगणः ।
प्रदीपमपि किट्सनेति परितः स कोपि बलवानखण्डयदपि ॥५५॥

किसीने तम्बू फाड़ डाले, किसी कर्मकुशलने घड़े फोड़ डाले, किसी बलवान् सिपाहीने किट्सन् लाइटको तोड़ दिया ॥ ५५ ॥

अथाहृतजनाधिशान्तिसुखदं तदौषधनिकेतनं च विभिदे ।
बिभेद च ततः सिताङ्गनृपतेर्जडत्वमधिकं मतेश्च मनसः ॥५६॥

जख्मी सेवकोंकी शान्ति और सुखकेलिये जो श्रीमहात्माजीके शिबिर—छावनीमें अस्पताल बनाया गया था उसे भी सर्कारने तोड़ दिया, और अपनी बुद्धि और मनकी दशाको जनतापर प्रकट कर दिया ॥५६॥

तथापि तिलमप्यसौ यतिपते र्गणो न सरति स्म भूमिपतनात् ।
तदास्य च गणस्य धर्मसु सुखं समैच्छदथ कोपि मोर्टरगतिम् ॥५७॥

इतना सब होजानेपर भी वह श्रीमहात्माजीका समुदाय उस भूमिरूप

भवनसे तिलभर भी न हटा। तब किसी अंग्रेजने उन सैनिकोंपर मोटर दौडानेकी भी इच्छा प्रकट की ॥ ५७ ॥

अनीतिमथ लोकदाहनिपुणां विलोकितुमिमामुपागमदिह ।
अतीव जनताऽऽतुरा तदवनिं भविष्यति च किं न्यकम्पत पुनः ॥५८॥

यह एक ऐसा अन्याय था जिससे सारा संसार भस्म हो जाता। उस अन्यायको देखनेकेलिये जनता अत्यन्त आतुर होकर वहाँ आयी। क्या होगा यह विचारकर वह काँप गयी ॥ ५८ ॥

ययावमृतलालठक्कर उदाहृतं नरपशुप्रणेयमखिलम् ।
स्वयं स्वनयनेन लोकितुमिदं सितांगजनतामनः स्थितिमिमाम् ॥५९॥

नरपशुओंकी इस लीलाको और अंग्रेजोंकी मानसिक स्थितिको अपनी आँखोंसे स्वयं देखनेकेलिये श्रीअमृतलाल ठक्कर बापा भी वहाँ गये ॥५९॥

हयैरपि विमर्दिताश्च बहवो रणाङ्गनगताः सिताङ्गमनुजैः ।
जघन्यकृतयोऽपरा अपि कृता न ताः कथयितुं विधावति मनः ॥६०॥

युद्धभूमिमें अंग्रेजोंके आदमियोंने बहुतसे लोगोंके ऊपर घोड़े भी दौड़ाये थे। अन्य दूसरे ऐसे-ऐसे नीच कर्म इन्होंने किये जिसे कहनेकेलिये मन नहीं चाहता है ॥ ६० ॥

अनीतिशतकं कृतं तदसुरैः परैस्तु मनसापि यत्कचन नो।
भवेदपि विचारितं यतबले धिगस्तु नरपालतां हतमतिम् ॥६१॥

इन असुरोंने सैकड़ो ऐसे ऐसे अन्याय श्रीमहात्माजीकी सेनापर किये कि जिनका दूसरे असुरोंने कभी विचार तक भी नहीं किया था। ऐसे निर्बुद्धि राजपनेको धिक्कार है ॥ ६१ ॥

मुनिं जिनमैतस्थितं जिनजयं तथा च रणछोडलालधनपम् ।
निगृह्य परिदण्डयत्रयपतिं स्तुनोप हृदये चिरादृधितपन ॥६२॥

जैनमतके परम विरक्त मुनि श्रीजिनविजयजीको तथा सेठ श्रीरणछोड़-

भाईको पकड़कर दण्ड देते हुए न्यायाधीशको बहुत सन्तोष हुआ क्योंकि वह बहुत दिनोंसे मनमें ही जल रहा था ॥ ६२ ॥

पुरातनबुचोऽपि सैन्यसहित स्तथा च बलवन्तराय ऋतवान् ।
अनीतिरमणीरवैर्हतभगैः प्रताड्य विवशौ कृतौ निगडितौ ॥६३॥

अनीतिमार्गमें प्रेम रखनेवाले इन अंग्रेजी सिपाहियोंने श्रीयुतपुरातन बुच और श्रीबलवन्तरायको भी सेनासहित पकड़ लिया, मारा और कैद कर लिया ॥ ६३ ॥

स भावनगरीयसैनिकयुवा तनावहह यस्य कण्टकशिखाः ।
निवेश्य नरपामरा नृपजना भन सुरसमपूपुपन्गुणवतः ॥६४॥

भावनगरका एक वह जवान सैनिक था जिसके सारे शरीरमें इन पामर अंग्रेजी आदमियोंने कांटे चुभोये थे ॥ ६४ ॥

घनाघन इवाप तेन समरो धरासणधरातलेऽतिविकटे ।
विचारचतुरैर्महात्मपदवीप्रयाणकुशलैः समाह्रियत सः ॥६५॥

वर्षाऋतु आ गया अतः अत्यन्त विकट धरासणाकी भूमिमेंसे विचार-चतुर तथा महात्माजीके मार्गमें चलनेवालोंमेंसे कुशल लोगोंने इस युद्धको खींच लिया ॥ ६५ ॥

निरुध्य युधमत्र ते प्रयतनैर्यानत्रसथेषु नीतिनिपुणाः ।
प्रबोध्य सफलं कृषीवलगणं भुवां करभरं न्यरुरुधत चिरम् ॥६६॥

उन लोगोंने युद्धको रोककर गाँवोंमें प्रयत्न के साथ सब किसानोंको समझाकर मालगुजारी देना रोक दिया ॥ ६६ ॥

भयङ्करमिदं बभूव हृदयप्रमापणमलं प्रजानरपयोः ।
निरञ्जनजनतां स्थितां स्थितिपदे सशास्त्रनरमत्तकाः समगिलन् ॥६७॥

राजा और प्रजाका यह युद्ध हृदयको भेदा देनेवाला भयङ्कर युद्ध था । अपनी मर्यादामें रही हुई निरञ्जनजनताको यह शस्त्र धारण निगलने लग गये ॥ ६७ ॥

हृतानि भवनानि वस्त्रनिचयो हृतोऽशनमपि प्रदग्धमभितः ।
हृतं पशुधनं हृताः कृषिभुवः प्रजा विकलिताः कृता नृपनरैः ॥६८॥

राजकीय पुरुषोंने घर छीन लिये, वस्त्र छीन लिये, खेत भी छीन लिये। प्रजा व्याकुल बना दी गयी ॥ ६८ ॥

विहाय निजपूर्वपूरुषगणैरुपार्जितमिदं गृहं च धरणीः ।
कृषीवलमहाशयाश्च निरयुः स्वदेशहितरक्षणव्रतधियः ॥६९॥

ये विचारशील किसान स्वदेश रक्षाके व्रतको स्वीकार करके अपने पूर्वजोंके उपार्जित घर और जमीनको छोड़कर बाहर निकल गये ॥ ६९ ॥

उपार्जितमभूत्कियत्किमथवा सुपुण्यमथ पूर्वजन्मसु च तैः ।
यदाश्रयणतः स्वदेशरतिरीदृशी स्वहृदयेषु हन्त पुपुषे ॥७०॥

उन किसानोंमें पूर्वजन्मोंमें कितना और कौन सा पुण्य किया होगा जिसके आश्रयसे उन्होंने अपने हृदयोंमें इस प्रकारका स्वदेश प्रेमका रक्षण किया ! ॥ ७० ॥

स्तनन्धयगणोऽथ ते च जरठा अदृष्टविपदाननना विधुमुखाः ।
कुलस्त्रिय उदस्य गेहनिरतां रतिं समभजन्त काननभुवि ॥७१॥

दूध पीनेवाले बच्चे, बूढ़े और जिन्होंने विपत्तिका मुख भी नहीं देखा था ऐसी सुन्दर कुलीन बहिनें भी घरके प्रेमको छोड़कर जङ्गलमें रहने लग गयीं ॥ ७१ ॥

रविप्रखररश्मिभि - र्घनघटागलज्जल - महापृषन्निपतनैः ।
हिमैश्च शिशिरे तनुक्षतकरैर्मनागुदविजन्त ते न जयिनः ॥७२॥

सूर्यके तीक्ष्ण किरणोंसे, मेघके जलके बड़ी-बड़ी बूँदोंसे, और शरीरमें घाव पैदा करनेवाली ठंडसे भी, यह विजयी-किसान व्याकुल नहीं बने ॥७२॥

महासमितिसंगतादथ निखिलाजनानिगदिता सुधीशसुमताः ।
सभामनुहरन्समस्तसदसां पयोऽप्यभयदेव खण्डिततनुः ॥७३॥

महासभाके साथ जो जुड़े हुए थे वह सब के सब विद्वान् बाँध लिये गये। जितनी भी अन्य सभाएँ महासभाके ध्येयके साथ चल रही थीं वह सब सर्कारसे तोड़ डाली गयीं ॥ ७३ ॥

स्वदेशहितचिन्तनं समभवन्महापतितकर्म भारतभुवि ।
सिताङ्गनृपतेर्मतौ मृतमतेर्निजार्थपरिपालने रतिमतः ॥७४॥

स्वार्थी और निर्बुद्धि अंग्रेजी सर्कारके मतमें, भारतवर्षमें अपने देशका कल्याण करना महान् पतित कर्म बन गया ॥ ७४ ॥

न कोऽपि भवति स्म भारतभुवि स्वकीयहितमिच्छता नृपतिना ।
स्वदेशहितमीहमान इह नो गृहीत इति नापि दण्डित इति ॥७५॥

भारतवर्ष में ऐसा कोई भी नहीं था जो अपने देशकी भलाई चाहता रहा हो और उसे स्वार्थी सर्कारने न पकड़ा हो और दण्ड न दिया हो॥७५॥

स्त्रियोऽपि पुरुषाश्च बालकगणः प्रजीनवयसोऽपि हन्त समरे ।
गता नृपतिमानवैर्निगडितास्तिरस्कृतिपदं समापुरनिशम् ॥७६॥

स्त्रियाँ, पुरुष, बच्चे और बुड्ढे भी जो जो इस लड़ाईमें उतरे थे। राजपुरुषोंने सबको पकड़लिया और सबका अपमान किया ॥ ७६ ॥

विलोक्य तदपत्रपस्य नृपतेरनीतिमिति सर्वजीवशरणम् ।
दयापरवशः समुद्यतकरो हरिः स्मरति स स्म नैजहरिताम् ॥७७॥

निर्लज्ज सर्कारकी इस अनीतिको देखकर सर्वजीवोंके शरणदेनेवाले परमदयालु भगवानने अपना हाथ ऊँचा किया और अपनी पापनाशिनी शक्तिका स्मरण किया ॥ ७७ ॥

श्रियश्च विजयस्य कण्ठमभितः श्रिता यतिपतेर्बलस्य मुदिताः ।
पराभवविपत्पराहतनृपस्तताप हृदयेऽनयाध्वपथिकः ॥७८॥

विजयश्रीने प्रसन्न होकर श्रीमहात्माजीकी सेनाके कण्ठका आलिङ्गन किया। हार खाकर अन्यायी सर्कार हृदयमें दुःखी होने लगी ॥ ७८ ॥

अभूद्यतिपतिर्विमुक्तनिगडो विमुक्तिमथ भेजिरे च सुभटाः ।
जयेति विजयस्व चेति सुरवैः समर्चित इहाभवत्स यतिराट् ॥७९॥

श्रीमहात्माजी भी छोडदिये गये । सब सैनिक भी छूट गये । जय हो विजय हो, इत्यादि शब्दोंसे महात्माजीकी पूजा होने लगी ॥ ७९ ॥

स देहलिमगान्नृपप्रतिनिधेरवाप्य हृदयं सनातनशिवः ।
विधाय सह तेन वाग्विनिमयं करं तु लवणस्य दूरमकरोत् ॥८०॥

सनातनशिव श्रीमहात्माजी वाइसरायका हृदय पाकर-उनका आमन्त्रण पाकर दिल्ली गये । वहाँ उनसे बातचीत करके नमकका * कर दूर किया ॥ ८० ॥

चकार विविधेष्वसौ नरपतिप्रतीकपदवीमुपास्य मतिमान् ।
विचारमथ नीतिशास्त्रनिपुणः प्रवुद्धविषयेष्विह स्थितिमता ॥८१॥

दिल्लीमें बुद्धिमान् और नीतिशास्त्रनिपुण श्रीमहात्माजीने वाइसरायके साथ प्रस्तुत बहुत से विषयोंपर विचार किया ॥८१॥

प्रसन्नबुद्धिर्विरच्यय सन्धिपत्रं स्वहस्ताङ्कितं च ताभ्याम् ।
विधाय तद्युद्धविरामकालमघोषयत्सोऽस्थिरमेव तर्हि ॥८२॥

प्रसन्नबुद्धिवाले श्रीमहात्माजीने सन्धिपत्र—सुलहनामा तैयार किया । उसपर वह स्वयं और श्रीवाइसराय दोनोंने अपने हस्ताक्षर किये । इस प्रकारसे उस समय महात्माजीने अस्थायी युद्धविरामकी घोषणा की ॥८२॥

ये भारतेऽस्मिन्नखिले गृहीता महारणे ते निखिला विमुक्ताः ।
तूर्णं तु देशे प्रससार शान्तिः सिताङ्गसेनापि मुदं प्रपेदे ॥८३॥

इस महायुद्धमें समस्त भारतमें जो राष्ट्रसैनिक पकडे गये थे वह

* यद्यपि गांधी-इर्विन् समझौतेके अनुसार नमकका कर सर्वत्र दूर नहीं हुआ था तथापि अपने अपने उपयोगकेलिये समुद्रके किनारे से कोई भी नमक ले सके, इतनी छूट हुई थी ।

सबके सब छोड दिये गये। क्षणभरकेलिये देशम शान्ति फैल गयी। अंग्रेजी सेना भी प्रसन्न हुई ॥८३॥

गन्तु तदा श्रीयतिराजराज
सम्प्रार्थितो वर्तुलगोष्ठिकायाम्।
भूत्वा सदस्य सपदीर्विनेन
स लन्दन धीरवरो जगाम ॥८४॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
द्वाविंश सर्ग

उस समय लार्ड ईर्विनने श्रीमहात्माजीसे गोल्मेज परिषदमें सदस्य होकर जानेकी प्रार्थना की। अत वह लन्दन गये ॥८४॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते भारतपारिजाते
द्वाविंश सर्ग



त्रयोविंशः सर्गः

गत्वाथ लन्दनपुरं मतिमद्वरिष्ठो
भूत्वैककः प्रतिनिधिः स महासभायाः।
यद्भाषणं व्यतत तत्र समूहतन्त्र-
निर्माणसंसदि पठन्तु तदत्र धीराः॥ १॥

बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीमहात्माजीने महासभा–कांग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधि होकर, लन्दनमें जाकर समूहतन्त्रनिर्माणसमितिमें जो भाषण दिया था उसे विद्वान् लोग यहाँ पढ़ें॥ १॥

भूयान्हि शासनमहासभयोर्विचारे
भेदोऽस्ति तत्त्वत इति प्रयतः प्रवेद्मि।
विश्वासयाम्यहमतो निखिलान्सदस्या-
न्नाहं भवामि भवतामिह विघ्नकर्ता॥ २॥

मैं इस बातको भले प्रकारसे जानता हूँ कि सर्कार और कांग्रेसके मतोंमें–विचारोंमें तात्त्विक भेद है। अतः मैं आप लोगोंको विघ्न करनेवाला नहीं बनूँगा॥ २॥

यस्या महापरिषदोऽत्र दधत्समागा-
मस्यामहं प्रतिनिधित्वमलं समित्याम्।
सा राष्ट्रियैव परिषन्निखिलस्य हिन्द-
देशस्य सर्वजनमानमहो बिभर्ति॥ ३॥

जिस महासभाका मैं प्रतिनिधि बनकर आया हूँ वह राजनैतिक परिषद् समस्त हिन्दुस्तानके सब लोगोंकी माननीय है॥३॥

श्रीह्यूम एव जनकः समितेश्च तस्या
असीत्पितामहसमोऽपि ततः स दादा।

फीरोजशाह इति सर्वमतौ प्रशस्तौ
तद्रक्षणं बहुविधैर्नितरां व्यधत्ताम् ॥ ४ ॥

इस हमारी राष्ट्रिय महासभाके जन्मदाता तो (एक अंग्रेज) श्री० ह्यूम साहेब थे। उनके पश्चात् पितामहके समान श्रीयुत दादाभाई नौरोजी और श्रीफिरोजशाहजी यह दोनों ही बहुत प्रशंसनीय थे अत एव सर्वके माननीय थे। इन दोनों महानुभावोंने उस कांग्रेसका बहुत रक्षण किया ॥ ४ ॥

मौहम्मदाः प्रथमतोऽथ च पारसीकाः
ख्रिस्तादयो विविधधर्मजुषः परेऽपि।
आसंस्तथैव बहवः श्रुतिमार्गभाजो
भेदादृते बुधवराः सदसः सदस्याः ॥ ५ ॥

आरम्भसे ही हिन्दु, मुसलमान, पारसी, ईसाई, विना किसी भी भेदके इस महासभाके सदस्य रहे हैं ॥५॥

अस्या महापरिषदोऽधिपतित्वमापु-
र्विद्वान्मुहम्मदअली स मुहम्मदीयः।
एनी महामतिमती च सरोजिनीयं
धन्यौ महाकविरिमे अबले महेले ॥ ६ ॥

इस महासभाके सभापतिपदपर, मौलाना मुहम्मदअली भी थे और श्रीमती एनीबेसेण्ट तथा श्रीमती व्याख्यात्री और महाकवि श्रीसरोजिनी नायडू यह दो स्त्रियाँ भी थीं ॥ ६ ॥

प्रारम्भतोऽन्त्यजगणोऽपि महासभायां
सत्कार्य इत्यविकलाभिमतं बभूव।
श्रीरानडे सुनिपुणं तत एव तस्य
सेवां चकार दुरितानि निराचकार ॥ ७ ॥

महासभामें शुरूसे ही अन्त्यजबन्धु भी सत्कारके पात्र और सबके

अभिमत रहे हैं। श्री० रानडेने इस अन्त्यज समाजकी सेवा की है और दोषोंको दूर किया है ॥७॥

हिन्दूमुहम्मदपदानुगयोर्यथैक्यं
स्वातन्त्र्यलाभजनकं सभया महत्या।
अङ्गीकृतं हरिजनैरपि साकमेवं
तद्राजकीयसरणावनिवार्यमेव ॥ ८ ॥

जिस तरहसे महासभाने यह मान लिया है कि हिन्दू और मुसलमान-का परस्पर मेल भारतकी स्वतन्त्रताका साधन है वैसे ही अन्त्यजोंके साथ ऐक्यस्थापन भी राजनैतिक जगत्‌में अनिवार्य ही है ॥ ८ ॥

हे भारतीयनरनाथकुलावतंसा
आदौ महापरिषदा ननु वोऽपि पक्षः।
युष्मद्धिताय जगृहे निजजन्मभूमि—
रक्षापरायणतया तदपि स्मरेत ॥ ९ ॥

भारतीय महाराजो! आप इस बातको याद करें कि आरम्भमें आपके हितकेलिये, महासभाने आपका भी पक्ष लिया है। क्योंकि महासभा तो अपनी जन्मभूमिकी रक्षामें तत्पर है ॥ ९ ॥

काश्मीरभूपतिमहीसुरनाथयोस्त-
त्साहाय्यमादधत हिन्दपितामहोऽसौ।
तद्राजवंशयुगलं विमलं सभायै
तस्यै च धारयति तद्दृहु नात्र शङ्का ॥१०॥

काश्मीर और मैसूरके महाराजोंको श्रीदादाभाई नौरोजीने सहायता दी थी। अतः यह दोनों ही राजवंश महासभाके ऋणी हैं, इसमें शङ्का नहीं है ॥१०॥

सा हिन्दराष्ट्रपरिषन्महती कदाचि-
द्द्यावधि क्षिपति नैव करं स्वकीयम्।

कृत्येषु वः समचिनोदुपकारमेव
तेनैवमत्र विमतिर्न पदं दधीत ॥११॥

अभीतक भी महासभा आप लोगोंके कार्योंमें हस्तक्षेप नहीं करती है। अतः इसने आपका भी उपकार ही किया है इसमें दो मत हो ही नहीं सकते ॥ ११ ॥

एतत्स्वरूपमिह वः पुरतो मयाऽद्य
यच्चित्रितं निखिलहिन्दिमहासभायाः।
तेनाऽस्तु वोऽधिगतिरत्र सुखेन तस्या-
स्तत्त्वस्य हन्त निहितस्य तदर्थनायाम् ॥१२॥

आपके समक्ष मैंने महासभाका स्वरूप चित्रित कर दिया है। इससे अनायास ही आपको, महासभाकी जो मांग है उसकी असलियत का ज्ञान हो जायगा ॥ १२ ॥

स्यादेतदप्यथ कदाच निजार्थनायां
वैफल्यमेव सभया परिसेवितं स्यात्।
सत्यं तथापि नितरामिदमस्ति यत्सा
वारान्बहूनुपगता सफलत्वमेव ॥१३॥

यह भी सम्भव है कि महासभाको अपनी इष्टप्राप्तिमें कभी असफलता भी मिली हो परन्तु यह भी सत्य ही है कि उसे बहुत बार सफलता ही मिली है ॥ १३ ॥

एकान्ततः समितिरियं खलु भारतस्य
लक्षेषु सप्तसु च संवसथेषु तेषु।
दारिद्र्यदावपरिदग्धसुखातिशान्ति-
सम्पत्त्ययव्यथितदीनजनैकजिह्वा ॥१४॥

भारतके सात लाख गाँवोंमें दरिद्रताकी आगसे सुख, शान्ति और सम्पत्ति जिनकी नष्ट हो गयी है—ऐसे गरीबोंकी यह महासभा ही एकमात्र जीभ है ॥ १४ ॥

क्षुत्क्षामकण्ठगलदस्रुजनार्तिपीडा-
नाशाय सर्वमपि लाभमपास्य सद्यः ।
सेयं महापरिषदार्तजनार्तिखिन्ना
सर्वं करिष्यति भवेत्परमोचितं यत् ॥१५॥

भूखसे जिनके कण्ठ सूखे हुए हैं, आँसू जिनके बह रहे हैं उन गरीबोंके दुःखको दूर करनेकेलिये दूसरे सभी लाभजनक कार्योंको छोड़कर, दीनोंके दु खसे दुःखित यह महासभा सब कुछ करेगी जो कि उचित होगा ॥ १५ ॥

स राष्ट्रसंसदवशोऽत्र सहस्रयुग्मे
ग्रामेऽर्धलक्षवनिताभरणादिकृत्ये ।
साहाय्यमर्पयति कार्यगणं च चर्खा—
सङ्घेन योग्यविधया सततं प्रदाप्य ॥१६॥

यह राष्ट्रिय महासभा दो हजार ग्रामोंमें ५० हजार स्त्रियोंके नित्य भरणपोषणकेलिये अखिलभारतवर्षीय चर्खा सङ्घके द्वारा योग्य मार्गसे कामधन्धा दिलाकर, उनको सहायता कर रही है ॥ १६ ॥

प्रत्येमि यद्विदितमेव भवेदनेन
स्पष्टं स्वरूपमिह राष्ट्रमहासभायाः ।
सम्प्रेप्सितस्य च तयात्र निवेदनाय
प्राप्तोऽस्मि तच्छ्रवणगोचरयन्तु सन्तः ॥१७॥

मुझे विश्वास है कि मेरे इस वक्तव्यसे महासभाका स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट हो गया होगा । अब महासभाके जिस इष्ट वस्तुके निवेदन करनेकेलिये मैं यहाँ आया हूँ उसे सज्जन महानुभाव आप सुनें ॥१७॥

सा कार्यकारिसमितिश्च महासभाया
हिन्दीयशासनमदोऽस्थिरमेव सन्धिम् ।
संमिल्य यं परिविचार्य बहु व्यधत्त
स स्वीकृतोऽस्ति सभयापि कराचिपुर्याम् ॥१८॥

महासभाकी उस कार्यकारिणी समितिने और इस भारतसर्कारने मिलकर और बहुत विचारकर जो अस्थिर सन्धि की है उसे महासभाने भी कराचीमें सर्वथा स्वीकृत कर लिया है ॥ १८ ॥

व्यस्पष्टयीदथ तथापि महासभेयं
जातेऽपि शासनमहासभयोश्च सन्धौ।
पूर्णस्वराज्यसमवाप्तिरभिन्नदेहा
ध्येया भविष्यति महासभया तदन्ता ॥१९॥

इस महासभाने, सर्कार और महासभाके बीचमें सन्धि हो जानेपर भी यह स्पष्ट कर दिया है कि जबतक पूर्णस्वराज्य भारतवर्षको नहीं मिलेगा तबतक सब प्रकारसे पूर्णस्वराज्यकी प्राप्ति, उसका ध्येय बना रहेगा ॥१९॥

मार्गो भवेद्यदि सिताङ्गजशासनस्य
लोकैः सह प्रतिनिधित्वमुपाश्रयद्भिः।
हिन्दस्य च प्रतिनिधिप्रहयेऽपि सा द्राक्
कृत्वा तथा निजमनीषितमर्धयेत ॥२०॥

अंग्रेजी हुकूमतके प्रतिनिधियोंके साथ कहींपर भी, महासभाको भी अपने प्रतिनिधियोंको भेजनेका, यदि मार्ग होगा तो, महासभा उन्हें भेजकर अपने इष्ट कार्यकी वृद्धि करेगी ॥ २० ॥

सेनाधिकारपरदेशसमस्तकृत्य-
द्रव्याधिकारधननीतिपराधिकारान्।
सम्प्राप्नुयात्सविधि भारतवर्षमत-
स्तत्प्रेष्य सा प्रतिनिधींस्तु तथा प्रकुर्यात् ॥२१॥

सेनाधिकार, परदेशके समस्त व्यवहारोंका अधिकार, द्रव्याधिकार और धननीतिका अधिकार इतने अधिकारोंको भारतवर्ष जैसे प्राप्त कर सके, वैसा यह महासभा अपने प्रतिनिधियोंको भेजकर करेगी ॥२१॥

निष्पक्षमण्डलमथो ब्रिटिशाधिराज्ये-
नात्रार्थराशिविनियोगममुं कृतं तम्।

किञ्चित्परीक्ष्य नियतं विदधीत देयं
किं भारतेन किमथाङ्ग्लभुवेति तत्र ॥२२॥

बृटिश सर्कार द्वारा किये गये हुए इस धनव्ययकी कोई निष्पक्षमण्डल जाँच करके फैसला करे कि उसमेंसे कितना भारतको देना चाहिये और कितना इङ्गलैण्डको ॥२२॥

प्राप्तं भवेच्च समभागभुजोर्द्वयोस्त-
त्स्वार्थक्यमाश्रयितुमेव समांशितायाः ।
स्वत्वं यथेच्छमिति चापि महासभा सा
सम्प्रेष्य तत्प्रतिनिधीनवधारयेत ॥२३॥

काग्रेस और सर्कार इन दोनों भागीदारोंको भागीदारीमेंसे छूट जानेका अधिकार प्राप्त हो, इसकेलिये भी महासभा अपने प्रतिनिधियोंको भेजकर निश्चय करायेगी ॥२३॥

लाभाय भारतभुवो ननु कोपि बन्ध
आवश्यकस्तदपहानमपेक्षितं वा ।
तत्सर्वसाधनविधौ प्रभवो भवेयुः
सम्प्रेषिताः प्रतिनिधिप्रमुखाः सभायाः ॥२४॥

भारतभूमिके लाभकेलिये यदि कोई बन्धन आवश्यक होगा अथवा किसी बन्धनका तोड डालना आवश्यक होगा तो उसके करनेकेलिये, महासभाके भेजे हुए यह प्रतिनिधि समर्थ होंगे ॥२४॥

ता गोलसंसदुपपादितगोष्ठिकाभिः
संपादिता व्यवसितीर्विनिवेदनानि ।
साम्राज्यनिश्चयभृतानि महाप्रधान-
संघोषितानि मनसाऽमनमेव शान्त्या ॥२५॥

राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स—गोलमेज परिषत्की बनायी हुई उपसमितियों-के द्वारा किये गये निर्णयोंको और महाप्रधानके द्वारा घोषित साम्राज्यके निश्चयसे युक्त निवेदनोंको मैंने मन लगाकर शान्तिसे मनन किया है ॥२५॥

ज्ञातं मया तदखिलं परमात्ममेव
ध्येयान्महापरिषदोऽस्ति ततो न गृह्यम् ।
न्यूनाधिकप्ररचने प्रभुरस्मि किन्तु
तच्छासनानुगतवस्तुनि नान्यथैव ॥२६॥

मुझे मालूम हुआ कि, यह सब निर्णय और यह सब निवेदन, महासभाके ध्येयसे बहुत ही अलग हैं अत एव उनका ग्रहण नहीं हो सकता है। न्यूनाधिक करनेमें मैं समर्थ हूँ परन्तु इस सामर्थ्यका उपयोगमें उसी वस्तुमें कर सकता हूँ जो महासभाके शासनके अनुकूल हो, अन्यथा नहीं ॥२६॥

दिल्ल्यां महापरिषदा सितशासनेन
सम्पादितं तमभिपन्धिमहं स्मरामि ।
सात्रोररीकृतवती च समूहतन्त्र-
सिद्धान्तमेव चिरसौख्यविचारपूर्वम् ॥२७॥

दिल्लीमें महासभा और सर्कारके बीचमें पवित्र और सुन्दर सन्धि हुई है। उसमें भी महासभाने बहुत समय तक प्रशस्त विचार करके, समूहतन्त्र सिद्धान्तको ही स्वीकार किया है ॥२७॥

तत्रैतया परिषदा ह्यधिमध्यवर्ति-
सत्त्वं प्रजाधिकृतिरप्युररीकृताऽस्ति ।
ये हिन्दलाभजनकाः समया मतास्ते
ग्राह्या भवेयुरिति चापि तदीयमिष्टम् ॥२८॥

दिल्लीमें महासभाने यह भी स्वीकार किया है कि मध्यवर्ती सत्तामें प्रजाका अधिकार होना चाहिये। और हिन्दुस्तानके हितकारक नियम राज्यसे स्वीकार कराये जायँ, यह भी महासभाका इष्ट है ॥ २८ ॥

सम्बन्धहानमय पूर्णतया नहीष्टं
हिन्दीयतत्परिषदो ब्रिटिशस्य किन्तु ।
श्रीभारतेन सह तत्स्वसमानतार्थं
स्वीकृत्यमत्र सुरतः स्वपिवादपेच्छम् ॥२९॥

भारतीय महासभाको पूर्णतया ब्रिटिशसे सम्बन्धत्याग इष्ट नहीं है। किन्तु वह भारतके साथ अपनी भागीदारीका स्वीकार करके यहाँ अपनी इच्छाके अनुसार रह सकता है ॥ २९ ॥

स्वं ब्रैटिशीं प्रकृतिमेव पुरा स्म मन्ये
सोऽहं भजन्नरपतेः प्रतिरोधिभावम्।
नो कामये कथमपीह समाश्रितां तां
साम्राज्यके प्रकृतितन्त्रगतौ च सेष्टा ॥३०॥

जो मैं अपनेको ब्रिटिशकी प्रजा मानता था वह मैं आज राजाका प्रतिरोधी होकर बैठा हूँ। मैं किसी प्रकारसे भी साम्राज्यमें तो नहीं परन्तु कॉमनवेल्थमें उस भागीदारीको चाहता हूँ ॥ ३० ॥

भागित्वमेतद्द्वयकल्पितमत्र न स्या—
द्धिन्दीयराष्ट्रसदसा परिभञ्जनीयम्।
नैतद्भवेद्यदि परस्परलाभदायि
विच्छेद्यमेव भविता नियतं तदानीम् ॥३१॥

इस हिस्सेदारीको राष्ट्रिय महासभा नहीं तोडेगी। परन्तु यदि इससे एक दूसरेको कुछ लाभ न होगा तो अवश्य ही तोडी जा सकेगी ॥ ३१ ॥

स्याद्भारतं यदि वशं करवालशक्त्या
नीतं भवेत्प्रकृतिकोप इहेति सत्यम्।
प्रेम्णा भजश्च सह तेन समांशभुक्त्वं
तद्योगमेव लभता ब्रिटिश सदैव ॥३२॥

यदि हिन्दुस्तानको तलवारसे वशमें किया जायगा तो यह बिल्कुल सत्य है कि प्रजामें क्रोध उत्पन्न होगा। यदि बृटिश प्रेमसे भारतके साथ हिस्सेदारी निभावे तो भारतका सहयोग ही वह पाता रहेगा ॥ ३२ ॥

आवश्यकं यदि भवेत्तु यदृच्छयैव
साहाय्यमारचयितुं ब्रिटनस्य हिन्दः।

युद्धेपि कुत्रचिदलं स समुद्यतः स्या—
त्कर्तुं शिवं निखिलमानवदेहभाजाम् ॥ ३३ ॥

यदि आवश्यकता पड़े तो ब्रिटनकी सहायता करनेकेलिये हिन्द किसी युद्धमें भी तैयार हो सकता है। परन्तु वह युद्ध यदि समस्त जगत्का कल्याण करनेवाला हो तो ॥ ३३ ॥

स्वातन्त्र्यमस्मदवनेरपि कामितं मे
नो लुण्ठितुं कमपि देशमथापि जातिम्।
सर्वाधिकारसमतामुररी न कुर्यां
योग्यो भवामि नहि तत्परिलब्धयेऽहम् ॥३४॥

हमको हमारे देशकी भी स्वतन्त्रता किसी अन्य देश या जातिको लूटनेकेलिये नहीं चाहती है। यदि मैं सबके अधिकारकी समानताका स्वीकार न करूँ तो मैं भारतकी स्वतन्त्रता पानेके योग्य नहीं हूँ ॥ ३४ ॥

अल्पीयसी विरलसाम्यगुणा च धीरा
दास्यं विजित्य परिलब्धयशाः प्रजैका।
वारान्बहूनबलरक्षणघोषणाऽपि
चक्रे तया स्ववदनेन जगद्धिताय ॥३५॥

एक प्रजा (ब्रिटिशप्रजा) थोड़ी है परन्तु वीर है, उसमें ऐसे गुण हैं कि जिनकी समता मिलनी कठिन है, दासताको जीतकर कीर्ति प्राप्त कर चुकी है और जिसने निर्बलोंकी रक्षाकी घोषणा अपने मुखसे अनेकों बारकी है ॥ ३५ ॥

भूतार्थशारदशशिप्रतिभाच्छकीर्तिः
शौर्यातिरोमपरिहर्षणसत्कथाढ्या ।
हिन्दूमुदम्यदिदिरिस्तरपारसीकै
रम्याऽपराऽप्य महनीयगुणा प्रजैका ॥३६॥

एक प्रजा (भारतीय प्रजा) ऐसी है जिसको भूतकालके कार्योंके

कारण शरच्चन्द्रके समान शुभ्रकीर्ति प्राप्त है, उसके पास अपने ऐसे ऐसे इतिहास हैं कि उसकी शूरतासे रोवें खडे हो जाते हैं, हिन्दु, मुसलमान्, ईसाई और पारसी लोगोंसे जो रमणीय है और जिसमें अनन्त गुण हैं ॥ ३६ ॥

सर्वस्य संस्कृतिगणस्य महेद्धकेन्द्रं
हिन्दोऽस्ति हिन्दुयवनौ यदवाप्नुयाताम् ।
ऐक्यं तदा हितकरः कतरश्च हिन्दः
स्वाधीनतामुपगतः परतन्त्रतां वा ॥३७॥

हमारा यह हिन्दुस्तान सर्व संस्कृतियोंका केन्द्र है। यदि हिन्दु और मुसलमान् एकता प्राप्त करें तो कौन हिन्द हितकर सिद्ध होगा—स्वाधीन वा पराधीन ? ॥ ३७ ॥

स्वप्नोऽयमस्ति मम वः पुरतो मयाद्य
स्पष्टीकृतोऽत्र लवतोऽपि न मैपवेपः ।
न्यूनं यदस्तु परिपूरयितव्यमत्र
युष्माभिरेव वचसो मम नावकाशः ॥३८॥

यह मेरा स्वप्न है, इसे मैंने आप लोगोंके समक्ष स्पष्ट कर दिया है। इसमें मैप-वेप-कपटभेख कुछ नहीं है। मेरे इस कथनमें जो कमी हो, उसे आपलोग पूरो कर लें। मेरे कहनेकेलिये जगह नहीं है ॥ ३८ ॥

आगच्छतो विगलतोऽपि समांशभाज
इष्टा परं भवति तद्व्यवहारशुद्धिः ।
तस्माद्दणे नहि कदाचिदपीह दूष्या
तन्निर्णयाभिलषणेन महासभा स्यात् ॥३९॥

कोई हिस्सेदार चाहे आवे या चला जाय, परन्तु उसके व्यवहारकी शुद्धि अयन्त इष्ट है। अतः महासभा जो सर्कारी ऋणके सम्बन्धमें निर्णय करानेकी इच्छा रखती है, इसकेलिये उसे बुरा नहीं कहा जा सकता ॥३९॥

देयस्य तत्सुपरिवीक्षणमत्र नित्या—
लाभाय भारतभुवो नहि केवलायाः ।
निश्चयतं ब्रिटेनमप्युपलप्स्यते तं
तस्मात्परीक्षणमिदं परमोपयोगि ॥४०॥

देय—ऋणकी समीचीन परीक्षा केवल भारतवर्षके ही लाभके लिये नहीं है; प्रत्युत यह सर्वथा निश्चित है कि उस लाभको वृटन भी प्राप्त करेगा । अतः यह परीक्षा बहुत ही उपयोगिनी है ॥ ४० ॥

हिन्देन यद्भवति धर्म्यमृणं प्रदेयं
नो तस्य राष्ट्रसभया क्रियतेऽपलापः ।
तस्माच्च तद्वयमवश्यमिहासृजाऽपि
निःशेषतः सुकृतयः प्रतिशोधयाम ॥४१॥

धर्मयुक्त जो ऋण हिन्दुस्तानके हिस्सेमें पड़ेगा उसके देनेकेलिये राष्ट्रीय महासभा कभी भी इन्कार नहीं कर सकती । भारतीयप्रजा सदाशयिनी प्रजा है अतः हम लोग उस ऋणको अपने रक्तसे भी अवश्य अदा करेंगे ॥ ४१ ॥

अस्यां च हन्त ! समितौ नियतान्समस्ता—
नालोकयन्प्रतिनिधीनहमार्तभावम् ।
यातो यतो न जनता वृणुते स्म तान्स—
न्मिथ्यैव भाति समिते रचना समस्ता ॥४२॥

खेद है कि इस समितिमें नियत किये गये समस्त प्रतिनिधियोंको देखकर मैं दुःखित बना हूँ; क्योंकि इन प्रतिनिधियोंको जनताने पसन्द नहीं किया है । और इसीलिये समितिकी सारी रचना मुझे मिथ्या ही प्रतीत हो रही है ॥ ४२ ॥

अस्यां विचारविततौ न विलोक्यतेऽन्यो
नो वा ददौ भवति कारि ततः फलाशा ।

एवं स्थिते तदवशिष्टमनेकवस्तु—
व्रातं विलोड्य ननु निष्फलतां व्रजेम ॥४३॥

इस समितिमें जो विवाद चल रहे हैं उनका अन्त दिखायी नहीं पड रहा है। ऐसी स्थितिमें बचे हुए जो अनेक वस्तु-विषय हैं उनको मथकर भी हम लोग निष्फल ही रहेंगे ॥ ४३ ॥

पारेम्बुधेरिह तु नो निजकार्यहाना—
दानाय्य किन्न सुरभागमधीशपक्ष्याः।
गृह्णन्तु ते यदि भवेयुरजिह्मचित्ता
यः कोऽपि निर्णय उदेष्यति नात्र शङ्का ॥४४॥

सम्राट्के पक्षके लोग, हम लोगोंको हमारे कामोंसे—कर्तव्योंसे छुडाकर यहाँ समुद्रपार बुलाकर, अग्रभाग क्यों नहीं ग्रहण करें? वह लोग यदि अपने हृदयको सरल बना लें तो कोई भी निर्णय अवश्य हो सकेगा, इसमें शङ्का नहीं ॥ ४४ ॥

हिन्दीयभूपतिगणाय निवेदयामि
स्वायोजितामधिसमित्यथ योजनां याम्।
ते स्थापयेयुरिह तत्र ननु प्रजानां
स्थानं भवेदिति भवेच्छिवदा समेषाम् ॥४५॥

भारतीय नरेन्द्रोंसे मैं एक प्रार्थना करता हूँ। इस समितिमें वह लोग अपनी जिस आयोजित योजनाको रखना चाहें उसमें प्रजाको स्थान भी यदि अवश्य ही मिले तो वह योजना सबको हितप्रद होगी ॥ ४५ ॥

ते स्युर्नवाऽत्र मिलिताः समवायतन्त्रे
यद्रोचतां तदिह ते विदधत्वभङ्गम्।
मार्गप्रदानमिति नः कृतिरस्तु तेभ्य—
स्तेषां च साऽस्मदनुकूलपथाधिसृष्टिः ॥४६॥

वह लोग इस समूहतन्त्रमें शामिल हों या न हों, जैसा उन्हें रुचे

वैसा यह करें। उनको मार्ग देना हमारा कर्तव्य है और हमारे अनुकूल मार्ग बनाना उनका कर्तव्य है ॥ ४६ ॥

संयोजितो दृढयितुं निजराजसत्तां
वीतंस एष इति वक्तुमहं न शङ्के।
यद्येवमस्तु विजयोऽस्तु चिराय वोऽत्र
पार्थक्यमेष्यति च हिन्दिमहासभाऽतः ॥४७॥

इसमें क्या सन्देह है कि यह सारीकी सारी योजना अपना राजसत्ताको दृढ़ करनेकेलिये बनायी गयी है! यदि सचमुच ऐसा ही है तो आपका जय हो, और महासभा इसमेंसे अलग हो जायगी ॥ ४७ ॥

यां योजनां समनुसृत्य कदापि नैव
स्वातन्त्र्यपादप इहास्तु समृद्धिशीलः।
सन्त्यज्य तां बहुलवर्षगणं सभा सा
सज्जाऽटितुं च विपिनाद्विपिनं तदर्थम् ॥४८॥

जिस योजनाके अनुसरण करनेपर स्वतन्त्रता कभी मिल ही नहीं सकती है, उसे छोड़कर निश्चय ही, हमारी महासभा अकल्पनीय वर्षोतक वन वन में अपनी इष्टसिद्धिकेलिये भटकनेको तैयार है ॥ ४८ ॥

ऊरीकरोति निखिलामथ भारतार्धं
तां योजनामिति वचो नितरामसत्यम्।
यद्धिन्दयोपिहृणैरपि धिक्कृतं त—
द्द्वेषिकं प्रतिनिधित्वमिदं हि साक्ष्यम् ॥४९॥

और जो यह कहा जाता है कि इस योजनाको आधा भारत निस्सन्देह-रूपसे स्वीकार करता है, यह कहना अत्यन्त असत्य है, जिस खास प्रतिनिधित्व की स्त्रियोंने भी उपेक्षा की है वही इस विषयमें गवाह है ॥४९॥

भूपश्च यत्कृमिति सङ्कुचतीह नात्मा
हिन्दे स्वराज्यमिचतुरान्परिहाय लोकान्।

सर्वे जना अनुसरन्ति महासभां त—
स्सत्यं परं परमसत्यमतो विरुद्धम् ॥५०॥

एक और भी बात कहनेमें मुझे सङ्कोच नहीं होता है। हिन्दुस्तानमें १००में से३-४आदमियोंको छोड़कर बाक़ी ९६, ९७ आदमी महासभाके ही अनुयायी हैं। यही सत्य है। और इसके विरुद्ध सब असत्य है ॥५०॥

ईहेत शासनमिदं यदि भारतीय—
लोकानुमोदनपरीक्षणमस्मि सज्जः ।
अल्पश्रमादिह भविष्यति सुप्रकाशं
सर्वांशतोऽस्ति वचने मम सत्यतेति ॥५१॥

यदि सर्कार यह परीक्षा करना चाहे कि कितने भारतीयोंका अनुमोदन सर्कारके संघारणके साथ है तो मैं इसकेलिये तैयार हूँ। थोड़े श्रमसे ही यह विदित हो जायगा कि सर्वांशमें मेरी बातमें सत्यता है ॥ ५१ ॥

हिन्दीयबन्दिगृहरक्षितपञ्जिकातो
हिन्दीयराष्ट्रियमहासदसोऽपि तस्याः ।
मारो भवेदथ न वेदितुमित्यनेके
मौहम्मदा अपि च तामनुयान्ति नित्यम् ॥५२॥

हिन्दुस्तानके जेलोंमें जो रजिष्टर रखे हुए हैं अथवा कांग्रेसके जो रजिष्टर हैं उनसे यह जान लेना कठिन नहीं होगा कि मुसल्मान् भी कांग्रेसके सदा अनुयायी हैं ॥ ५२ ॥

मौहम्मदा अपि खिरिस्तजना अपीह
कार्पासयन्त्रपतयो धनशालिनोऽपि ।
ये हालिकाश्च कृषकाः श्रमिकाश्च तेऽपि
सन्त्येव तस्य महतः सदसः सदस्याः ॥५३॥

मुसलमान, ईसाई, मिलमालिक, हलचलानेवाले, किसान, मजदूर सभी महासभाके सदस्य हैं ॥ ५३ ॥

सन्दर्शितं सुगति वर्त्म महासमित्या
त्यक्त्वा निजेच्छमभितो नियमानुसृष्टिः।
इष्टा भवेद्यदि तदा परि योजनायाः
स्थास्याम एव किल कृत्रिमराज्यतन्त्रात् ॥५४॥

महासभाके बताये हुए मार्गको छोड़कर यदि स्वेच्छासे नियम बनाना पसन्द हो तो इस योजना और कृत्रिम राज्यतन्त्रके बिना ही हम रहेंगे ॥५४॥

हिन्दूमुहम्मदिसिखेभ्य इहास्तु रुच्यो
यो निर्णयः स सभयाऽप्युररीकृतः स्यात्।
संख्याल्पतां च दधतीः प्रति सा तु जाती—
र्न स्वीकरिष्यति पुनः पृथगासनानि ॥५५॥

हिन्दू, मुसलमान् और सिक्ख इन तीनोंको जो निर्णय रुचिकर हो, महासभा भी उसे स्वीकार कर लेगी। अल्पसंख्यक जातियोंकेलिये पृथक् निर्वाचनको तो महासभा नहीं ही स्वीकार करेगी ॥ ५५ ॥

सर्वाधिकप्रियजनोऽस्म्यहमन्त्यजानां
तेषां हितं प्रियमथास्ति ममासुतुल्यम्।
लब्ध्वाधिपत्यमसपत्नमपि त्रिलोक्या—
स्त्यक्ष्यामि नैव हितमत्र कदापि तेषाम् ॥५६॥

अन्त्यजोंका सबसे अधिक प्रियजन मैं ही हूँ। मुझे उनका हित प्राणोंसे भी अधिक इष्ट है। तीनों लोकोंका बिना किसी शत्रुके ही, राज्य मिलजावे तो भी उनके हितको मैं त्याग नहीं करूँगा ॥ ५६ ॥

मौहम्मदाः सततमेव मुहम्मदीयाः
श्रीनानकानुगतसिक्खगणोऽपि सैव ।
स्थास्यन्त्यमी सितकलेवरकास्तथैवा—
स्पृश्या भवेयुरथ नो सततं हि निष्ठ्याः ॥५७॥

मुसलमान् हमेशा मुसलमान् ही रहेंगे एवं सिक्ख भी सदा सिक्ख

ही रहेंगे। और अंग्रेज़ भी अंग्रेज रहेंगे। परन्तु यह अन्त्यज सदा अस्पृश्य नहीं रहेंगे ॥ ५७ ॥

सन्त्युन्नतिप्रणयिनो बहवोऽथ हिन्दु—
ष्वस्पृश्यतापविलयाय कृतप्रतिज्ञाः ।
हिन्दीयराष्ट्रियसभाऽपि ततोऽन्त्यजाना—
मुद्धारकर्मणि रता सततं सतर्का ॥५८॥

हिन्दुजातिमें बहुतसे संशोधक—सुधारक इस अस्पृश्यतारूप पापको नष्ट करनेकेलिये प्रतिज्ञा ले कर बैठे हैं। अतः महासभा भी सतर्क होकर अन्त्यजोंके उद्धारकार्यमें लगी हुई है ॥ ५८ ॥

सन्त्वन्त्यजा यदि मुहम्मदिधर्मशीलाः
खैस्ता भवन्त्वथ कथंचिदिदं सहिष्ये।
ग्रामेषु हिन्दुजनता लभतां विभक्ति
सह्यं भवेन्न मम वस्तु कथंचिदेतत् ॥५९॥

अन्त्यज भाई यदि मुसलमान् बन जायँ या ईसाई बन जायँ, इसे तो मैं जैसे तैसे सह लूँगा; परन्तु गाँवोंमें हिन्दु प्रजा विभक्त होकर रहे, यह वस्तु मुझे कभी भी सह्य नहीं है ॥ ५९ ॥

अस्पृश्यताऽभिलभतां यदि हिन्दुधर्मे
संजीवनं भवति चेष्टतमः प्रणाशः।
तस्याद्य मे परमहं सुदृढं विजाने
साऽसौ शनैरपसरत्यप हिन्दुधर्मात् ॥६०॥

यदि हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यता जीती रह जाय तो मुझे मरण ही अधिक इष्ट होगा। परन्तु मैं विश्वासपूर्वक जानता हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मको छोड़कर धीरे धीरे जा रही है ॥ ६० ॥

हिन्दूसमाजरचनाक्रममेव नाथ
हिन्दस्थितिं च निखिलां परिचिन्वते वे।

ये राजनीतिविषयेऽन्त्यजबन्धुवर्गं
वाञ्छन्ति कर्तुमभितः पृथगेव सर्वम् ॥६१॥

जो लोग राजनीतिमें अन्त्यजबन्धुओंको अलग करना चाहते हैं वह लोग हिन्दूसमाजकी रचनाके क्रम को नहीं ही जानते हैं ॥६१॥

नूनं जगद्यदि भवेदखिलं प्रतीपं
स्यामेक एव जगतीह हरीच्छया चेत् ।
प्राणार्पणावधि विरोधमहं विधास्ये
विश्लेषणानुरचनेऽत्र तथापि तेषाम् ॥६२॥

यदि सारा संसार प्रतिकूल हो जाय और भगवदिच्छासे मैं जगत्में अकेला ही रह जाऊँ तो भी अन्त्यजोंके पार्थक्यका मैं प्राणान्त विरोध करूँगा ॥ ६२ ॥

एवं विघोष्य सकलेषु विदर्पदारी
शृण्वत्सु तेषु परिषद्गृहसंस्थितेषु ।
कामं प्रतायं सितकीर्तिकलाधरोऽसौ
कीर्तिं सिताम्बुपतो न्यवृतत्स्वदेशम् ॥६३॥

समस्त सभासदोंके सुनते हुए, सबके अहङ्कारको फाड़नेवाले, शुभ्रकीर्तिकलाधर श्रीमहात्माजी भारतभूमिके यशका विस्तार करके भारतको लौट आये ॥ ६३ ॥

मुम्बापुरीं यतिपतिः समगाद्यदाऽसौ
सत्कृत्य तेनमधिकप्रतिमानवन्त ।
संवीक्ष्य तत्पदपयोजयुगं पवित्रं
ते मेनिरे निजजनिं परमां पवित्राम् ॥६४॥

जब श्रीमहात्माजी भारतमें, बम्बईमें आये, बड़े बड़े प्रतिभाशालियोंने भी उनका स्वागत किया । उनके पवित्र चरणकमलोंके दर्शन करके लोगोंने अपने जन्मको पवित्र समझा ॥६४॥

अब्दुल्गफ़ार—शिरवानि—–जवाहिराणां
फारानिवासविपदा व्यथितान्तरात्मा ।
लज्जामवाप किल वङ्गवसुन्धरायां
बालाकृतं सिततनोर्हननं निशम्य ॥६५॥

श्रीयुत अब्दुलगफ़ारखाँ, श्रीशेरवानी और श्रीजवाहिरलालजीके कारानिवासके दुःखसे दु.खित होकर, बङ्गालमें दो बालिकाओंके द्वारा एक अंग्रेजके किये गये वधको सुनकर श्रीमहात्माजी लज्जित हो गये ॥६५॥

आजादभूमिमधिगत्य परस्सहस्रा—
ल्लोकानुपादिशदयं करुणावनीन्द्रः ।
आगामिनि प्रधन ईहितसिद्धिकामै—
र्भाव्यं दृढ शतभुगस्त्रसहैर्नितान्तम् ॥६६॥

दयालु श्रीमहात्माजीने वहाँ आजाद मैदानमें जाकर हजारों आदमियों को उपदेश दिया कि आगामी युद्धमें जाकर अपने मनोरथकी सिद्धि चाहनेवाले भाई, बन्दूकको सहन करनेवाले बन जायँ ॥६६॥

त्यक्तं भवेन्मृतिभयं मम बन्धुभिश्चे—
त्को नाम लाभ इह नैव भवेत्प्रलब्ध ।
अस्मान्निजार्थपरिपोषककृत्यदक्षा—
न्मुक्तिं भजेत ननु भारतमद्य राज्यात् ॥ ६७ ॥

यदि हमारे भाई मृत्युका भय छोड दें तो वह कौनसा लाभ है जो न मिल जाय ! अपने स्वार्थको पुष्ट करनेमें प्रवीण इस राज्यसे भारत आज ही मुक्ति पा जाय ॥ ६७ ॥

अन्यायवह्निपरिचुम्बितविग्रहाश्चे—
त्सीत्कारमप्यथ मुखान्न बहिर्नयाम ।
जित्वैव वज्रहृदयं सितकायकानां
नूनं भवेम विजयर्द्धिसमर्चिताश्च ॥६८॥

अन्यायकी आगसे जलाये जानेपर भी यदि हमारे मुखसे "सीत्कार" शब्द भी बाहर न निकले तो अवश्य हम अंग्रेजोंके वज्रसमान हृदयको जीतकर विजयी हो सकेंगे ॥६८॥

येऽद्याऽन्त्यजा मयि विधेः प्रतिकूलतायाः
कोपं दधत्यथ भविष्यति दिष्ट एते।
मद्देहमेतमवदाय पयोधिमध्ये
ते चेत्क्षिपेयुरनृणा ※ न तथाप्यमान्याः ॥६९॥

भाग्यकी प्रतिकूलताके कारण जो अन्त्यज भाई आज मुझपर क्रोध कर रहे हैं वह यदि कल्ह मेरे इस शरीरको टुकड़े टुकड़े करके समुद्रमें फेंक दें तो भी उनका अपमान नहीं करना ॥६९॥

सम्प्रेषयद्दल्ममुद्धतवृत्तिरम्यो
वीलिङ्गडनेऽवगतये हृदयस्य तस्य।
कार्यं च किं कथमिहास्तु मयेति सर्वं
प्रष्टुं दयासरिदधीश्वर एष सद्यः ॥७०॥

शान्तवृत्तिवाले होनेके कारण अति रमणीय, दयासागर श्रीमहात्माजीने लार्ड विलिंगडनको, उनके हृदयका भाव जाननेके लिये, लिखकर पूछा कि अब मुझे क्या और कैसे करना चाहिये ॥७०॥

पप्रच्छ तं स यतिराडिति चापि यन्मे
सर्वे सहायकगणास्त्वयका गृहीताः
कस्मात्त्वतोऽदयतया ज्वलनैः प्रदग्धाः
सीमान्तिवासनिरता यवना अहिंस्राः ॥७१॥

श्रीमहात्माजीने वाइसरायको यह भी पूछा कि मेरे सब साथियोंको

※ अनृणा ! इस विशेषणका यह आशय है कि यदि अन्त्यज महात्माजीको मार डालें तो उनके मरनेसे सारा देश उऋण हो जायगा— अन्त्यजोंके साथ देशने जो अन्याय किया है उस अपराधसे वह छूट जायगा

आपने क्यों पकड़ लिया। तथा निर्दयताके साथ सीमाप्रान्तके अहिंसक मुसलमान बन्धुओंको गोलियोंसे क्यों जला दिया गया? ॥७१॥

> वङ्गेषु नूतनविधाननिधानमेतत्—
> किं चिन्तयञ्जनमनस्तपनोपमाहम्।
> प्राचार-यस्तदपि वेत्तुमये मदीयं
> चेतः कुतूहलपरं शमयाशु तच्च ॥७२॥

यह भी लिखा कि—क्या विचारकर आपने वङ्गालमें लोगोंके दिलको जलानेवाले नये कायदोंका प्रहार किया है? इसको जाननेकेलिये मेरे मनमें कुतूहल है। अतः उत्तर देकर मेरे मनको शान्त करें ॥७२॥

> जन्मानुजो भवति नः परतन्त्रताया
> हानेऽधिकार इति न ब्रुवता कदाचित्।
> अब्दुल्गफारसुधिया रचितोऽपराधः
> कस्माद्बभूव तव बन्धगृहातिथिः सः ॥७३॥

जन्मके पश्चात् ही परतन्त्रताके नाश करनेका अधिकार हम लोगोंको प्राप्त है, ऐसा कहनेसे श्रीअब्दुल गफारखाँने कोई अपराध नहीं किया था। तब भी वह आपके कैदी कैसे बन गये? ॥७३॥*

---

* स्वराज्य मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी वस्तुको प्रकट करनेकेलिये "जन्मके पश्चात् ही परतन्त्रता नाश करनेका अधिकार हम लोगोंको प्राप्त है" ऐसा कहा गया है। जन्मके पश्चात् ही इस कहनेका तात्पर्य यह है कि इस अधिकारको प्राप्त करनेमें जन्मके बाद इतना अल्पतम समय लगा कि उसकी गणना भी नहीं की जा सकती। अतः इसका अर्थ "जन्मके साथ ही" हो जाता है। वस्तुतः तात्पर्य तो यह है कि जीव तो स्वतन्त्र ही है। परतन्त्रता तो औपाधिक वस्तु है। उस उपाधिके तोड़नेका भान तो जन्मके पश्चात् ही होता है। अतः यह प्रयोग उचित ही है।

लाहोर एव नगरे सभयाऽपि सभ्य—
क्तत्त्वं तदेव समघोषि विचारपूर्वम्।
तल्लन्दनेऽसकृदिहापि मयापि तारैः
स्पष्टाक्षरैर्निगदितं न कथं प्रवेत्सि ॥७४॥

लाहोरमें ही, महासभाने भी इस तत्त्वकी भले प्रकार घोषणा कर दी है। मैंने भी अनेकवार इस स्वतन्त्रताकी बात हिन्दुस्तानमें भी की है। लन्दनमें भी मैंने स्पष्ट शब्दोंमें इस बातकी घोषणा की थी। इन सबको आप क्यों नहीं समझते ? ॥ ७४ ॥

एषोऽपराध इतिचेद्भवतःप्रतीतः
किं प्रेषितोऽहमतियत्नपरेण तात!
तद्गोलसंसदि सदस्यतया त्वयैव
सुप्तां स्मृतिं स्मरसि किं न विचारदक्ष ॥७५॥

यदि ऐसा कहना आपको अपराध मालूम हुआ तो आपने मुझे बहुत प्रयत्न करके गोलमेजी परिषद्में सदस्य बनाकर क्यों भेजा ? इस सोई हुई स्मृतिको क्यों नहीं स्मरण करते ? क्या नहीं जगाते ? ॥७५॥

प्राप्तं भवेन्न यदि योग्यमलं त्वदीयं
शुद्धोत्तरं सपदि तत्पुनरप्यजस्रः।
युद्धानलोऽत्र भविता ज्वलितो न तत्र
दूष्यो भवामि कथमप्यथ केनचिद्वा ॥७६॥

यदि शीघ्र ही आपका कोई शुद्ध-उत्तर, स्पष्ट-उत्तर मुझे नहीं मिलेगा तो पुनः युद्धकी आग भड़केगी और उसका नाश नहीं होसकेगा। और तब मुझे दोष मत देना ॥७६॥

तद्भारतातिहरणोत्सुकचेतसोऽस्य
पत्रं प्रपठ्य यतिमूर्धविभूषणस्य।
क्रुद्धोऽभवत्प्रतिनिधिः सितकायसंभृ—
द्भूपस्य मत्त इव लार्डविलिङ्गडनोऽसौ ॥७७॥

भारतके दुःखोंके हरनेवाले * यतिराज श्रीमहात्माजीके इस पत्रको पढकर वाइसराय क्रुद्ध होकर पागलके समान हो गये ॥७७॥

आज्ञापितोऽनयपथे कुपितेन ··तेन
कोऽप्येष किङ्करवरो मणिमन्दिरात्तम्।
निन्द्रां गतं मुनिवरं पुरि मोहमय्यां
नक्तं निनाय ननु वन्दिपदं प्रबोध्य ॥७८॥

वाइसराय क्रुद्ध हुए। उन्होंने एक बड़े आफिसरको आज्ञा दी। उसने बम्बईमें मणिभुवनमें सोते हुए श्रीमहात्माजीको जगाकर गिरफ्तार कर लिया ॥ ७८ ॥

† न देशो नो कालो न हि कमपि वस्तु स्तुतमपि
व्यवच्छेत्तुं तत्त्वं प्रभवति च यन्नित्यमजडम्।
तदेवाऽनात्मज्ञा . उपलकलनाकल्पितगृहे
यरोडाख्ये ग्रामेऽसनिपत् निबद्धं जडधियः ॥७९॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
त्रयोविंशः सर्गः

वेदान्तशास्त्रमें त्रिविध परिच्छेद परिगणित हैं। देशकृत, कालकृत और वस्तुकृत। अमुक देशमें अमुक वस्तु है और अमुकदेशमें वह नहीं है इसका नाम देशपरिच्छेद है। अमुक कालमें अमुकवस्तु थी और अमुक कालमें नहीं रहेगी और अब है, इसका नाम कालपरिच्छेद है।

* इन्द्रियोंको संयम रखनेवालोंको यति कहा जाता है। गृहस्थ अथवा संन्यासी दोनों ही यति हो सकते हैं। विशेषकर त्यागी-महापुरुषों-के लिये ही इस शब्दका प्रयोग होता आया है। श्रीमहात्माजीके समान त्यागी जगत्‌में दुर्लभ है। उनके समान संयमके पालन करनेवालेसे आज जगत् शून्य है। अतः उनसे बढ़कर यति मिलना भी कठिन ही है।

† शिखरिणी छन्द।

अमुक वस्तु अमुक वस्तुके समान है इसका नाम वस्तुपरिच्छेद है। जिस नित्य और अजड चेतन तत्त्वको देश, काल और वस्तु परिच्छिन्न नहीं कर सकते हैं अर्थात् जो तत्त्व नित्य है, चेतन है और देशकृत, कालकृत, तथा वस्तुकृत परिच्छेदसे परे है उसी सच्चिदानन्द सर्वव्यापक तत्त्वको अनात्म ज्ञानियोंने यरोडा ग्रामके पत्थरोंके बने मकानमें—जेलमें बँधा हुआ-कैद किया गया हुआ मान लिया ॥७९॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीकासहिते
भारतपारिजाते त्रयोविंश सर्ग



चतुर्विंशः सर्गः

वसताऽथ सता तेन यरोडाबन्दिमन्दिरे ।
मासाः कतिपये शान्तं निन्यिरे शान्तिमूर्त्तिना ॥ १ ॥

यरोडा जेलमें निवास करते हुए शान्तिमूर्ति श्रीमहात्माजीने शान्तिके साथ कुछ महीने व्यतीत किये ॥ १ ॥

यन्निर्णेतुं महात्मासौ लन्दने गोलसंसदि ।
जगाम पूर्वं तत्तन्त्रं घोषितं राज्यमन्त्रिणा ॥ २ ॥

जिस तन्त्रके निर्णयकेलिये श्रीमहात्माजी लन्दनमें गोलमेजी परिषद्में गये थे उस तन्त्रकी—नूतन शासनविधानकी घोषणा राजमन्त्रीने कर दी ॥२॥

स्वराज्यं दातुकामास्ते भारताय सिताननाः ।
एकं विज्ञापनापत्रं प्रकाशितमकुर्वत ॥ ३ ॥

भारतको स्वराज्य देनेकी इच्छावाले अंग्रेजोंने एक सूचनापत्र प्रकाशित किया ॥ ३ ॥

भारतार्तिहरः श्रीमान्सच्चिदानन्दविग्रहः ।
निचिक्षेप दृगाक्षेपं तत्र पत्रे स उत्सुकः ॥ ४ ॥

भारतके दुःख हरनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीमहात्माजीने उत्सुक होकर उस पत्रमें अपना दृष्टिपात किया ॥ ४ ॥

अन्त्यजानां स हिन्दूतो विच्छेदं तत्र दृष्टवान् ।
अधिकारान्पृथग्दत्तांस्तेभ्यो व्यैक्षिष्ट हिन्दुतः ॥ ५ ॥

उस सूचनापत्रमें श्रीमहात्माजीने देखा कि अन्त्यजों और हिन्दुओंको अलग-अलग कर दिया गया है और हिन्दुओंसे पृथक् अन्त्यजोंको अधिकार दिये गये हैं ॥ ५ ॥

तस्य चेतः समाक्रम्यच्छोकशङ्कुरनङ्कुशः।
अङ्गभङ्गः स हिन्दूनाममन्यत महापदम् ॥ ६ ॥

उनके चित्तपर शोकरूप बर्छेने निरङ्कुश होकर हमला कर दिया। हिन्दुओंके अङ्गभङ्गको उन्होंने दुःसह दुःख माना ॥ ६ ॥

अध्यात्मतत्त्ववेत्तासौ भारतात्प्रति मोहनः।
समर्थोऽपि कथं पश्येत्स्वसिद्धान्तविमाननाम् ॥ ७ ॥

अध्यात्मतत्त्वके जाननेवाले, भारतके प्रतिनिधि श्रीमहात्माजी समर्थ होते हुए, अपने सिद्धान्तके अपमानको कैसे देख सकते थे ? ॥ ७ ॥

विधेयं केन विधिना किमस्मिन्विषमेऽहनि।
सर्वशक्तिनिधिं रामं प्रकाशं समयाचत ॥ ८ ॥

इस विषयमें किस तरहसे क्या करना चाहिये, इसकेलिये सर्वशक्तिमान् रामसे उन्होंने प्रकाशकी प्रार्थनाकी ॥ ८ ॥

अंग्रेजसुहृदस्तस्य फादरेणैल्विनेन ते ।
प्रतिशुक्रं जगन्नाथ-प्रार्थनां समचोदयन् ॥ ९ ॥

फादर एलविनके साथ महात्माजीके सब अंग्रेज मित्रोंने प्रत्येक शुक्रवारको भगवान्की प्रार्थनाकी प्रेरणा की ॥९॥

यरोडाबन्दिशालायां महात्माप्यनुयायिभिः।
ज्योतिर्ज्योतिः स्वरूपेशं सततं याचते स्म सः ॥१०॥

यरोडा जेलमें श्रीमहात्माजी अपने साथियोंसहित ज्योतिःस्वरूप भगवान्से सदा प्रकाशकी प्रार्थना करते थे ॥१०॥

निद्रानाशमुपास्यैव स आरात्रि कदाचन।
उपासीनः परात्मानमकस्माज्ज्योतिराप्तवान् ॥११॥

एक दिन उन्होंने सारी रात जागरण करके, परमात्माकी उपासना करते हुए अकस्मात् प्रकाशको प्राप्त किया ॥११॥

ईशप्रेरणया लब्धं ज्योतिरालिङ्ग्य सन्मनाः।
सेमुअल्होरमुद्दिश्य प्रैषयत्पत्रमञ्जसा ॥१२॥

भगवत्प्रेरणासे प्राप्त हुए इस प्रकाशको ग्रहण करके उन्होंने शीघ्र ही एक पत्र सेमुअलहोरको भेजा ॥१२॥

पृथङ्निर्वाचनादेशमन्त्यजानां करोषि चेत्।
उपवत्स्याम्यहं नूनमा - मृत्योरीश्वराज्ञया ॥१३॥

यदि आप अन्त्यजोंके पृथक् निर्वाचनकी आज्ञा करेंगे तो मैं ईश्वरकी आज्ञासे आमरणान्त उपवास करूँगा ॥१३॥

उपवासो ममैषोऽस्तु प्रतिवादाय ते मतेः।
क्षारमिश्रजलेनैव प्रतीक्षिष्ये मृतिं पुनः ॥१४॥

यह मेरा उपवास नमक और जलके साथ, आपके विचारके प्रतिवादकेलिये होगा। मैं मृत्युकी प्रतीक्षा करूँगा ॥१४॥

लोकानामनुरोधेन स्वेच्छया वा भवान्यदि।
अन्यथयेन्मतं स्वं स्यादुपवासविवासनम् ॥१५॥

लोगोंके अनुरोधसे या अपनी इच्छासे यदि अपने इस विचारको आप बदल देंगे तो मैं उपवास छोड दूँगा ॥१५॥

पृथङ्निर्वाचनं चैतद्घातकत्वेन मे मतम्।
हिन्दूनां चेद्भ्रमो मेऽत्र भ्रमः सर्वत्र कल्प्यताम् ॥१६॥

यह पृथक् निर्वाचन मेरी दृष्टिमें हिन्दुओंका घातक है। यदि इसमें मेरा भ्रम प्रतीत होता हो तो, सब वस्तुमें भ्रम ही मान लेना चाहिये। अर्थात् मेरे इस कथनमें भ्रम नहीं है ॥१६॥

असंख्यका नरा नार्यो विश्वसन्तीह ये मयि।
तेषां भारविमोक्षाय प्रायश्चित्ताय मे मृतिः ॥१७॥

---

* यहाँसे १८ वें श्लोकतक श्रीमहात्माजीका यह पत्र है जिसे उन्होंने हिन्दके प्रधानमन्त्रीको लिखा था।

असंख्य जो स्त्री और पुरुष मुझमें विश्वास करते हैं, उनके ऋणको दूर करनेकेलिये, यह मेरी मौत प्रायश्चित्तस्वरूप हो ॥१७॥

यद्येष निर्णयो मे स्यान्निर्भ्रमोऽसंशयं पुनः ।
पूर्णतां नेष्यते नूनं स मे जीवनयोजनाम् ॥१८॥

यदि मेरा यह निर्णय निर्भ्रम होगा तो निस्सन्देह ही मेरे जीवनकी योजनाको यह पूर्ण करेगा ॥१८॥

सेमुअल्होर ' एत सद्विचारं प्रत्यपद्यत ।
वीतरागस्य रागीशः सोऽन्त्यजानां हितद्विषम् ॥१९॥

रागवान् सेमुअल होरने वीतराग श्रीमहात्माजीके इस विचारको अन्त्यजोंके हितका घातक समझा ॥१९॥

समाधित महात्मासौ भूयो मन्त्रिकुशङ्किकाम् ।
विपरीतंभवद्बुद्धिर्विचारं मम पश्यति ॥२०॥

सेमुअल होरकी इस क्षुद्र और छोटीसी शङ्काका उन्होंने पुनः समाधान किया । कहा कि आपकी बुद्धि मेरे विचारको उलटा ही देख रही है ॥२०॥

भवन्मते विचारोऽसावन्त्यजाहितहर्षदः ।
शुद्धधर्मतया नूनं मन्मतावेष तिष्ठति ॥२१॥

आपके विचारमें यह मेरा मत अन्त्यजों के अहितको बढानेवाला है और मेरे मतमें मेरा यह विचार शुद्ध धर्म है ॥ २१ ॥

पृथङ्निर्वाचनं द्वारीकृत्यैतत्तु विषासरः ।
प्रवर्तेत सदा हिन्दूजीवनोज्ञासकः परः ॥२२॥

अवश्य ही, इस पृथक् निर्वाचनको द्वार बनाकर सदा हिन्दूजीवनको नष्ट करनेवाला एक बडा विषका प्रवाह प्रवृत्त होगा ॥ २२ ॥

अन्त्यजैरपि नो लाभो लप्स्यते कोऽपि तत्क्रमात् ।
ततो नार्हन्ति ते चापि हिन्दुजाते· पृथक्कृतिम् ॥२३॥

उस क्रमसे—पृथक निर्वाचनके क्रमसे अन्त्यज भी कोई लाभ नहीं उठा सकेंगे । अतः उन्हें हिन्दुजातिसे पृथक् नहीं करना चाहिये ॥२३॥

भूयो भूयो मयाऽघोषि महापातककारकम् ।
अस्पृश्यतां पुरस्कृत्य वर्णान्तरविकल्पनम् ॥२४॥

मैंने बार बार घोषणा की है कि अस्पृश्यताको लेकर अन्त्यजोंके वर्णान्तर होनेकी कल्पना महापापको पैदा करनेवाली है ॥२४॥

हिन्दूधर्मे महत्पापं प्रवृत्तमिदमर्दितुम् ।
प्रवृत्तानां बहूनां स्यादेतस्मात्कार्यशातनम् ॥२५॥

हिन्दूधर्ममें प्रवृत्त हुए इस (अस्पृश्यतारूप) महापापको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुए बहुतसे लोगोंके कर्मको इस आपकी घोषणासे, बहुत धक्का लगेगा ॥२५॥

अधिकारिगणाज्ञत्वविनाशनसदिच्छया ।
यतिराजो विचार्यैनमुपमासमजूघुषत् ॥२६॥

अधिकारियोंकी अज्ञानताके नाश करनेकी सुन्दर इच्छासे, यतिराज श्रीमहात्माजीने विचार करके इस मरणान्त उपवासकी घोषणा कर दी ॥२६॥

निशम्य निश्चयं तस्य सत्यसन्धस्य धीमतः ।
देशे देशे च शोकाग्निरवकाशमवाप्नुत ॥२७॥

सत्यप्रतिज्ञ श्रीमहात्माजीके इस निश्चयको सुनकर देशमें शोकाग्नि फैल गया ॥२७॥

समस्ते भूतले शोकसंविग्नहृदयैर्जनैः ।
यतिप्राणाभिरक्षार्थं प्रयत्नोपक्रमः कृतः ॥२८॥

समस्त पृथिवीमें रहनेवाले लोग शोकसे व्याकुल होकर श्रीमहात्माजीके प्राणोंकी रक्षाके लिये प्रयत्न करने लग गये ॥ २८ ॥

तेजोबहादुरः सप्रूर्बन्धात्तस्य विमोक्षणम् ।
ययाचे शासनं शीघ्रं पूजितस्य सतां विदाम् ॥२९॥

श्री० तेजबहादुरसप्रूने सज्जनों और विद्वानोंके पूजित श्रीमहात्माजीके छुटकारेकी प्रार्थना की ॥२९॥

असहायोऽपि यः सर्वं निर्णेतुं साम्प्रदायिकम्।
क्षमते कलहं तस्य प्राणा रक्ष्यास्तु शासकैः ॥३०॥

जो अकेले ही सभी सम्प्रदायिक झगडेका फैसला कर सकते हैं उन श्रीमहात्माजीके प्राणोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥३०॥

इत्येतां प्रार्थनां सप्रूः शासकान्प्रति सादरम्।
एकस्यां सार्वजनिकसभायामकरोद्व्यथी ॥३१॥

श्रीयुत सप्रूजीने एक सार्वजनिक सभामें शासकोंसे दुःखित होकर, यह उपर्युक्त प्रार्थना की ॥३१॥

श्रीयाकूबहुसेनोऽपि बन्धून्कौरानिकान्समान्।
आदिशन्निखिलैर्मान्येऽस्मिन्दर्शयितुमादरम् ॥३२॥

श्रीयुत याकूबहुसेनने भी सभी मुसलमान भाइयोंको, सबके माननीय श्रीमहात्माजीमें आदर प्रकट करनेकेलिये आज्ञा दी ॥ ३२ ॥

स्ववशीकृतलक्ष्मीको महोदारो दयानिधिः।
श्रीघनश्यामविड्ला सेवकश्चान्त्यजावलेः ॥३३॥
दीनरक्षी च राजेन्द्रप्रसादोऽप्यपरे तथा।
यतिराजासुरक्षार्थं मिलिताः समघोषयन् ॥३४॥

परम धनवान्, महान् उदार, दयासागर और अन्त्यजोंके सेवक शेठ श्रीघनश्याम विड्लाजी, शरणागतकी रक्षा करनेवाले बाबू राजेन्द्रप्रसाद-जी तथा और भी अन्य लोगोंने एक सम्मिलित घोषणा की ॥३३॥३४॥

द्विजाद्यकुलपाथोजसम्भासनदिवाकरः।
मालवीय. स मदनमोहनः सर्वमोहनः ॥३५॥
धर्मधी राजगोपालश्चक्रवर्ती तथाऽपरे।
नेतारो निखिला मान्याः समवेतास्तु संसदि ॥३६॥

ब्राह्मणकुल-कमलदिवाकर पण्डित श्रीमदनमोहन मालवीयजी, धर्म-बुद्धिवाले श्रीराजगोपालाचार्य चक्रवर्ती तथा अन्य भी माननीय नेता सभामें उपस्थित हुए ॥३५॥३६॥

एकस्मिन्दिवसे सर्वैरुपवासः सहेतुकः ।
कार्य एवेति सदसा निरचायि तया तदा ॥३७॥

उस सभाने निश्चय किया कि एक दिन सबको एक विशेष उद्देश्य लेकर उपवास करना चाहिये ॥३७॥

श्रीपोलको दयाधीमानैण्डूजश्च तथाऽपरे ।
अंग्रेजसुहृदः सर्वे बभूवुश्चिन्तिताः परम् ।३८॥

श्रीयुत पोलक और दयालु ऐण्डूजसाहब तथा अन्य सभी अंग्रेज मित्र अत्यन्त चिन्तित हो गये ॥३८॥

लन्दनेऽन्यत्र चाप्यत्र यथा रक्षा महात्मनः ।
भवेत्तथाऽखिलाः कर्तुं प्रवृत्ता खिन्नमानसाः ॥३९॥

लन्दनमें भी तथा अन्यत्र भी जिस प्रकारसे महात्माजीकी रक्षा हो, वह करनेकेलिये दुःखितमनसे सब लोग प्रवृत्त हो गये ॥३९॥

श्रीमांल्लेन्सबरीत्याह महात्मा चेद्दिवं गतः ।
भविता भविता शक्तिर्द्विगुणा तस्य धीमतः ॥४०॥

श्रीयुत लेन्सबरीने कहा कि यदि श्रीमहात्माजी स्वर्ग चले जायँगे तो उनकी शक्ति दूनी हो जायगी ॥४०॥

अन्वरीत्सीत्स सपदि मुख्यमन्त्र्यादिकांस्तदा ।
संघर्षजनकं त्यक्तुं निर्णयं चान्त्यजस्पृशाम् ॥४१॥

श्री० लेन्सबरीने मुख्यमन्त्री आदिकोंसे अनुरोध किया कि अन्त्यजोंके सम्बन्धमें ऐसा निर्णय न करें कि जिससे संघर्ष पैदा हो ॥४१॥

लन्दने स्थितिमापन्ना भारताश्च सिताङ्गजाः ।
आरात्रि जाग्रतः सर्वे प्रार्थयन्त महेश्वरम् ॥४२॥

लन्दनमें रहनेवाले हिन्दुस्तानी और बहुतसे अंग्रेजोंने सारी रात जागकर भगवान्से प्रार्थना की ॥४२॥

देवतायतनेष्वेतैर्यतीन्द्रशुभवाञ्छया ।
प्रत्येकं भानुघस्रे च स्थापितः प्रार्थनाक्रमः ॥४३॥

इन गुणग्राहकोंने प्रत्येक रविवारको देवमन्दिरोंमें प्रार्थना का क्रम रखा ॥४३॥

श्रीमती साफिया जग्लुल् पाशाश्च मुस्तफानहस् ।
मिश्रदेशाद्यतीशस्य जग्मतुः समदुःखिताम् ॥४४॥

श्रीमती साफिया जगलुल और पाशा मुस्ताफानहस् मिश्रदेशसे महात्मा जीके दुःखमें भागीदार हुए ॥४४॥

फ्रेण्ड्स्आफ इण्डिया कृतवान्विधातुं समुपोषणम् ।
विश्वव्यापि समारोहैर्निश्चयं तच्छिवाश्रयम् ॥४५॥

"फ्रेण्ड्स् आफ् इण्डिया" ने बड़े समारोहके साथ विश्वव्यापी उपवास करनेका इसलिये निश्चय किया कि उससे महात्माजीको शान्ति मिले ॥४५॥

श्रीमान्रवीन्द्रनाथोऽपि श्रीमच्छान्तिनिकेतने ।
छात्राणामुपदेशार्थमिति व्याख्यानमातनोत् ॥४६॥

श्रीमान् कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोरने भी शान्तिनिकेतनमें अपने छात्रोंके उपदेशार्थ लिये इस प्रकारसे व्याख्यान दिया ॥४६॥

सामाजिकदुराचारनिर्णेजनकृते कृतः ।
उपदेशाय लोकानामुपवासो महात्मना ॥४७॥

लोगोंके सामाजिक दुराचारकी पवित्रताकेलिये तथा उपदेश देनेके-लिये श्रीमहात्माजीने यह उपवास किया है ॥४७॥

भेदभावो विपक्षीणां सदा सद्भावघर्षकः ।
तस्मात्तस्य विनाशः स्याच्छान्तिलाभाय सर्वथा ॥४८॥

भेदभाव सदा विपत्तियोंके सद्भावको—सत्ताको ही बढाता है। अतः उसके नाशसे शान्ति मिल सकती है ॥ ४८ ॥

मुम्बापुरीकलिकातामद्रासानां कुलाङ्गनाः ।
अस्पृश्यत्वविनाशाय प्रयत्नं जगृहुर्मुदा ॥४९॥

बम्बई, कलकत्ता और मद्रासकी कुलीन स्त्रियोंने अस्पृश्यताके नाशकेलिये प्रयत्न करना शुरू कर दिया ॥४९॥

एकादशभिरेकत्र संघैः सम्भूय खण्डिता।
कलिकातानगर्यां तु सेमुअल्होरघोषणा ॥ ५० ॥

कलकत्तेमें तो ११ सभाओंने एकत्रित होकर सेमुअल होरकी घोषणाका खण्डन किया ॥५०॥

बिडला यादवः श्रीमांश्चिन्तामणिरनेकशः ।
अनेकाश्च सभास्तस्य प्रार्थयन्त यतेर्मुचिम् ॥५१॥

श्रीबिडला, श्रीयादव, श्रीचिन्तामणि इन लोगोंने तथा अनेक सभाओंने श्रीमहात्माजीको जेलसे छोड देनेकी प्रार्थना की ॥५१॥

शासकाग्रे महात्मासौ हठं संप्राचकाशत।
यरोडाबन्धनागार उपवासनिषेवणे ॥५२॥

और श्रीमहात्माजीने शासकोंके सामने अपना आग्रह प्रकट किया कि उपवासके दिनोंमें उन्हें यरोडामें जेलमें ही रहने दियाजाय ॥५२॥

शासनेन तदीया सा स्वीचक्रे प्रार्थना तदा।
यान्कांश्चिदपि सङ्गन्तुं स्वेच्छमेव व्यजिज्ञपत् ॥५३॥

सर्कारने श्रीमहात्माजीकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया। वह जेलमें ही रखे गये। और सब किसीको स्वेच्छासे मिलने देनेकेलिये भी आज्ञा सर्कारने दे दी ॥५३॥

अलिखत्सान्त्वनापत्रं श्रीमान्सत्याग्रहाश्रमे।
वसतो व्याकुलानस्मात्समाचारात्सुधीरिति ॥५४॥

विद्वान् श्रीमान् महात्माजीने इस समाचारसे व्याकुल बने हुए लोगोंको सान्त्वना देनेकेलिये सत्याग्रह आश्रम साबरमती को पत्र लिखा ।। ५४ ।।

उपवासप्रयोगेण प्राणाहुतिसमर्चनैः ।
आश्रमादर्शयज्ञोऽयं पूर्णतां परिचुम्बतु ।।५५।।

इस उपवासके प्रयोगसे और प्राणोंकी आहुतिके द्वारा पूजन करनेसे यह आश्रमका आदर्शरूप यज्ञ पूर्णताको प्राप्त करेगा ।।५५।।

मच्छरीरवियोगाग्निदग्धोत्साहपलाशिनः ।
मा यूयं कार्ष्ट सत्कार्यच्छायाच्छेदं कदाचन ।।५६।।

मेरे शरीरके वियोगरूप अग्निसे जल गया है उत्साहरूप वृक्ष जिनका, ऐसे होकर—अर्थात् हिरुत्साह होकर तुमलोग सत्कार्यरूप छायाका नाश नहीं करना। अर्थात् जो आदमी जो काम करते हैं, उसे वह करते ही रहें ।।५६।।

पुरुषैर्महिलावृन्दैः सततं दृढनिश्चयैः ।
भाव्यं समुद्यतैर्होतुमात्मनो दुःखपावके ।।५७।।

स्त्रियों और पुरुषोंको, दृढनिश्चयवाले होकर अपनेको दुःखज्वालामें होम देनेकेलिये सदा तैयार रहना चाहिये ।।५७।।

पात्रता च ममाप्यद्य विपन्निकषघर्षणात् ।
परीक्षिष्यत एषा सत्परीक्षकगणैर्ध्रुवम् ।।५८।।

सत्परीक्षकलोग आज इस विपत्तिरूप कसौटीपर घिस करके मेरी इस पात्रता—योग्यताकी भी परीक्षा करेंगे ।।५८।।

मृत्योः पूर्वं न कोऽप्यत्र सुखसाम्राज्यभोगिताम् ।
धत्ते चेति वचः सत्यं सोलनस्य विभाव्यताम् ।।५९।।

श्रीसोलनके इस वचनको सत्य ही मानना चाहिये कि "मृत्युसे पूर्व कोई भी सुखका भोग नहीं कर सकता है" ।। ५९ ।।

मया सम्पादिते त्यागे नात्र स्तो द्वेपरोषणे ।
यूयं विधत्त साक्ष्यं मे नूनं सद्भावसम्प्लुते ॥६०॥

सद्भावपूर्ण मेरे इस त्यागमें द्वेष और रोष यह दोनों ही चीजें नहीं हैं, इस विषयमें तुमलोग ही मेरे गवाह रहना ॥६०॥

ईश्वरेच्छां समाश्रित्य जगद्भ्रमति सर्वथा ।
एतदाचरणं मेऽपि तदिच्छामनुधावति ॥६१॥

ईश्वरेच्छाके आश्रित होकर सब जगत् भ्रमण कर रहा है । मेरा यह कार्य भी ईश्वरेच्छाका ही अनुसरण कर रहा है ॥६१॥

देहासक्तिपरित्यागाद्धैर्यरत्नावलम्बनात् ।
प्रसीदत परं वीक्ष्य परीक्षावसरं मम ॥६२॥

देहासक्तिका त्याग करके और परमधैर्यका आश्रय लेकर मेरी इस महती परीक्षाके अवसरको देखकर तुम लोग प्रसन्न हो ॥६२॥

विषमं पतनं नद्यां नास्ति पारं परं परम् ।
तदवाप्तुं ततः पूर्वं तितीर्षोः नो कृतार्थता ॥६३॥

नदीमें कूद पड़ना कठिन नहीं है । परन्तु नदीमें पड़कर उस पार पहुँचना कठिन है । पार पहुँचे बिना तो नदीमें तरनेकी इच्छावालेको कृतार्थता नहीं मिलती है ॥६३॥

युष्माभिर्निहितां शुद्धां प्रार्थनां परमेश्वरे ।
साहाय्यमवलम्ब्याधिगमिष्यामि मनीषितम् ॥६४॥

तुम लोग भगवान्‌के समक्ष जो पवित्र प्रार्थना करोगे, उसका अवलम्ब लेकर मैं अपने मनोरथको सिद्ध कर सकूँगा ॥६४॥

श्रीमतीं यमुनालालपत्नीमपि दुःखिनीम् ।
सन्दिदेश दयासिन्धुः पत्रद्वारेति जानकीम् ॥६५॥

(श्रीयमुनालाल बजाजकी धर्मपत्नी) श्रीमती जानकी बाई को भी श्रीमहात्माजीने पत्रद्वारा यह सन्देश भेजा ॥६५॥

हिन्दुजातेर्न यावत्स्याद्भेदबुद्धिप्रणाशनम् ।
प्रयतन्तां तपस्विन्यो भगिन्यस्तावदञ्जसा ॥६६॥

जबतक हिन्दुजातिकी भेदबुद्धिका नाश नहीं होता है तब तक सब बहिनें प्रयत्न करें ॥६६॥

प्रयत्नासफलत्वेन विषादो मैतु वः प्रति ।
सद्भावेन कृतो यत्नः कदाचित्तु फलिष्यति ॥६७॥

प्रयत्नमें यदि सफलता न मिले तो तुम लोगोंको चिन्तित नहीं होना चाहिये। शुद्धभावसे किया गया यत्न कभी तो अवश्य ही सफल होगा ॥६७॥

यावदेकापि भगिनी व्यापृतोद्देश्यपूरणे ।
मम तावदहं देहे जीवामि विगतेऽपि च ॥६८॥

जबतक मेरी एक भी बहिन उद्देश्यपूर्तिमें लगी हुई रहेगी, तबतक मैं, शरीरके मर जानेपर भी, जीता ही रहूँगा ॥६८॥

मनः कामं निजात्मानं समर्प्य परमात्मनि ।
तदिच्छामवलम्ब्यैव कर्माचरत निर्मलम् ॥६९॥

मन और आत्माको सर्वथा परमात्माकेलिये अर्पण करके, उसीकी इच्छाके सहारे निर्मल कर्म सबलोग करती रहो ॥६९॥

विलियम्शाररेकस्मिन्पत्रे मुनिवरं प्रति ।
प्रेषिते मधुराक्षेपान्कियतोऽप्यकृतेदृशः ॥७०॥

विलियम शररने श्रीमहात्माजीके प्रति भेजे हुए एक पत्रमें इस प्रकार के कुछ मधुर आक्षेप किये थे ॥ ७० ॥

हिन्दिराष्ट्रमहासंसन्नेतृत्वमहणाद्भवान् ।
हिन्दुमोहमदीयानां पारसीकखिरिस्तिनाम् ॥७१॥
सर्वेषामेव नेतृत्वं सततं भवति स्थितम् ।
स्वयमाह भवानेतद्बहुकृत्वो बहुत्र च ॥७२॥

आपने बहुत जगहोंपर बहुत बार स्वयं कहा है कि भारतीय राष्ट्रिय महासभाके नेतृत्व ग्रहण करनेके कारण हिन्दु, मुसलमान्, पारसी और ईसाइयोंका भी नेतृत्व आपमें विद्यमान है। अर्थात् आप सब क़ौमोंके नेता हैं ॥ ७१-७२ ॥

कथं तर्हि भयानेकजातिहेतोरसुव्ययम् ।
स्वस्य कर्तुं महाविद्वानद्य हन्त व्यवस्यति ॥७३॥

यदि ऐसा ही है तो आप केवल एक हिन्दु जातिकेलिये ही, समझदार होकर भी, अपनी जानको क्यों गँवाते हैं ? ॥ ७३ ॥

सङ्ग्रामोऽयं स्वराज्यस्य साम्प्रदायिकतां न हि ।
स्पृशतीति भवद्वाणी मिथ्यात्वमवगाहते ॥७४॥

"यह सङ्ग्राम स्वराज्यकेलिये है। साम्प्रदायिकताकेलिये यहाँ जगह नहीं है" आपकी यह वाणी मिथ्या हो रही है ॥ ७४ ॥

हास्येन मुखमाधुर्यं वर्धयन्दीनवत्सलः ।
आमेरिकस्य मित्रस्य ददावुत्तरमित्ययम् ॥७५॥

श्रीमहात्माजीने हँसीसे अपने मुखकी मधुरताको बढाते हुए उन अमेरिकन मित्रको इस तरहका जवाब दिया ॥ ७५ ॥

उपवासो ममायं नो केवलं हिन्दुशोधकः ।
निखिलं हि मनुष्याणां समाजं शोधयेदयम् ॥७६॥

मेरा यह उपवास केवल हिन्दुओंको ही पवित्र करनेवाला नहीं है। यह तो मनुष्योंके सभी समाजोंको शुद्ध करेगा ॥ ७६ ॥

येन केनापि रूपेण यत्र कुत्राप्यवस्थितम् ।
अस्पृश्यत्वमपाकुर्यादुपवासोऽयमच्युतः ॥७७॥

जिस किसीरूपमें, जहाँ कहीं भी यह अस्पृश्यता रहेगी, सबको मेरा यह अखण्ड उपवास दूर कर देगा ॥ ७७ ॥

व्रतारम्भदिने नेत्र व्रतराजेन घोषितम् ।
अस्पृश्यत्वविनाशेन निष्कलङ्कं जगद्भवेत् ॥७८॥

व्रतके पहिले दिनमें श्रीमहात्माजीने घोषणा की कि अस्पृश्यताका नाश करके जगत् को पवित्र हो जाना चाहिये ॥ ७८ ॥

मानवाशुद्धिमात्रं स्यादस्पृश्यत्वेन सम्मितम् ।
एतस्मादुपवासात्स्यात्सर्वदोषविशोधनम् ॥७९॥

मनुष्यकी अशुद्धिमात्र—सारी अशुद्धि अस्पृश्यताके समान ही मानी जानी चाहिये। मेरे इस उपवाससे सर्व दोषोंकी शुद्धि हो ॥ ७९ ॥

ध्येयसाफल्यविश्वासो हिन्दूविश्वास एव च ।
जनाग्रभावविश्वासो विश्वासः शासनस्य च ॥८०॥
ममैतेषु चतुर्ष्वेव स्तम्भेषु विलसद्गृहम् ।
हरिं प्रसादयेदेतदुपवासनिकेतनम् ॥८१॥

ध्येयकी सफलतामें विश्वास, हिन्दुजातिका विश्वास, माननीय स्वभावका विश्वास और सर्कारका विश्वास, इन चार स्तम्भोंके ऊपर यह मेरा उपवासरूप घर विलसित हो रहा है और यह उपवास भगवान् को भले प्रकारसे प्रसन्न करेगा ॥ ८० ॥ ८१ ॥

रागद्वेषविहीनोऽयमुपवासो भवेद्यदि ।
मनुष्यजातिरखिला सहाया मे भविष्यति ॥८२॥

अगर यह उपवास राग और द्वेषके विना ही होगा तो सारी मनुष्यजाति मेरी मदद करेगी ॥ ८२ ॥

परसन्तापहरणो दारिद्र्यहरणो व्रती ।
नियते समये सोऽभूदुपवासपरायणः ॥८३॥

दूसरोंके सन्तापको हरनेवाले और दरिद्रताको दूर करनेवाले व्रती श्रीमहात्माजी नियत समयपर उपवासमें बैठ गये ॥ ८३ ॥

यरोडावन्दिशालायां सहकारतरोरधः ।
मानवान्यायनाशाय व्रतमेष उपाददे ॥८४॥

यरोडा जेलमें, आम्रवृक्षके नीचे, मनुष्योंके नाश करनेकेलिये श्रीमहात्माजीने इस उपवासको ग्रहण किया ॥ ८४ ॥

त्रिलोकीं कम्पयन्नेष एजयन्हृदयान्यपि ।
मनुष्याणां महायोगी तीव्रे तपसि संस्थितः ॥८५॥

महान् योगी श्रीमहात्माजी तीनों लोकोंको कँपाते हुए और मनुष्योंके हृदयको भी कँपाते हुए तीव्रतपस्यामें बैठ गये ॥ ८५ ॥

श्रीमत्सरोजिनी देवी विदुषी कर्मयोगिनी ।
तत्रैव वन्दिशालायां निबद्धा स्मावतिष्ठते ॥८६॥

विदुषी और कर्मयोगनिपुण श्रीमती सरोजिनी नायडू भी उसी यरोडा जेलमें क़ैद थीं ॥ ८६ ॥

महाव्रते समासीनं मुनिनाथं निषेवितुम् ।
समाहूता समागात्सा तत्र सौभाग्यशालिनी ॥८७॥

व्रतमें बैठे हुए श्रीमहात्माजीकी सेवाकेलिये वह बुलायी गयीं और शीघ्र ही वहाँ वह आ गयीं ॥ ८७ ॥

मातृशक्तिर्यतेस्तस्य परिचर्यापरायणा ।
सावधाना च तद्रक्षाकरणे कृत्यवेदिनी ॥८८॥

वह मातृशक्ति—श्रीमती सरोजिनी श्रीमहात्माजीकी सेवामें लग गयीं। उनकी रक्षामें वह सावधान थीं क्योंकि वह कर्तव्यको समझती थीं॥८८॥

साभ्रमत्याश्च कारातो मुक्तिमाप्य समागता ।
यरोडां श्रीमती साध्वी कस्तूरीबाऽचिरेण सा ॥८९॥

साबरमतीकी जेलसे छूटकर श्रीमती कस्तूरबा भी वहाँ शीघ्र ही आ गयीं।८९।

देवीदासोऽपि तत्सूनुः कनीयांस्तत्र चागमत् ।
अन्येऽपि बहवो लोका दर्शनार्थमुपागताः ॥९०॥

श्रीमहात्माजीके छोटे पुत्र भाई देवीदास भी आ गये। अन्य भी दूसरे लोग इनके दर्शनकेलिये वहाँ आ गये ॥ ९० ॥

> श्रीकवीन्द्रो रवीन्द्रोऽपि वङ्गदेशादृषिप्रभः ।
> समायात्तत्र सहसा मुनिवर्यं विलोकितुम् ॥९१॥

ऋषिसमान श्रीयुत महाकवि श्रीरवीन्द्र ठाकुर भी श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये बङ्गालसे वहाँ आये ॥ ९१ ॥

> समागत्य द्विजेशोऽसौ नयनाभ्यां पिबन्मुनिम् ।
> चिरात्तर्पाभिसन्तप्तः सौहित्यं नापदुन्मनाः ॥९२॥

श्रीयुत टैगोर महात्माजीको नेत्रोंसे बार बार पीते हुए भी, चिरकालसे पिपासासे तपे हुए होनेके कारण तृप्त नहीं हुए ॥ ९२ ॥

> सनाथीकृत्य तं देशं मधुरालापवर्जितम् ।
> पटेन मुखमाच्छाद्य विललाप चिरेण सः ॥९३॥

श्री रवीन्द्रबाबू वहाँ आकर, चुपचाप रहकर, कपडेसे मुँह ढँक कर बहुत देरतक रोते रहे ॥ ९३ ॥

> चित्तरञ्जनदासस्य वासन्ती प्राणवल्लभा ।
> उर्मिला च स्वसा तस्य कलिकातात आगते ॥९४॥

श्रीयुत देशबन्धु चित्तरञ्जनदासजीकी साध्वी पत्नी श्रीवासन्तीदेवी और बहिन श्रीउर्मिलादेवी कलकत्तेसे आयीं ॥ ९४ ॥

> स्वरूपरानी सद्धीमन्मोतीलालस्य भार्यिका ।
> जराजीर्णशरीरापि सपद्यायात्कृपापरा ॥९५॥

परमविद्वान् पण्डित श्रीमोतीलाल नेहरूजीकी धर्मपत्नी श्रीमती स्वरूपरानीजी शरीरसे अत्यन्त वृद्ध थीं तो भी कृपावश वहाँ शीघ्र ही आ गयीं ॥ ९५ ॥

> कमलानेहरू श्रीमज्जवाहिरकुटुम्बिनी ।
> कमलेव धराया' सा तत्रागच्छत्तया सह ॥९६॥

पृथिवीकी कमला—लक्ष्मीके समान, पण्डित श्रीजवाहिरलाल नेहरूजी-की कुटुम्बिनी श्रीमती कमलानेहरू भी श्रीमती स्वरूपरानीके साथ आयीं॥९६॥

साराभाईतनूजोऽसावम्बालालो धनीश्वरः ।
कौटुम्बिकैः जनैः साकं झटित्यागात्तमर्चितुम् ॥९७॥

श्रीमान् शेठ अम्बालाल साराभाई भी अपने सभी परिवारके लोगोंके साथ शीघ्र यरोडा आ गये ॥ ९७ ॥

समस्ते भारते नूनमार्तरावः समुत्थितः ।
दिवं च पृथिवीं चैव सहसा व्यानशे चिरम् ॥९८॥

समस्त भारतमें अतिस्वर—हाहाकार मच गया । वह अतिस्वर—हाहाकार आकाश और पृथिवीमें भी व्याप्त हो गया ॥ ९८ ॥

शतानि च सहस्राणि देवतायतनान्यपि ।
अन्त्यजेभ्यो निराबाधं विवृतद्वारतां ययुः ॥९९॥

सैकडों और सहस्रों मन्दिर भी अन्त्यजोंकेलिये विना किसी रुकावटके खुल गये ॥ ९९ ॥

व्रताग्नौ तप्यमानस्य विशुद्धस्य महात्मनः ।
अह्नान्येवं व्यतीतानि क्रमशः पञ्च तन्मुनेः ॥१००॥

व्रताग्निमें तपस्या करते हुए परमपवित्र श्रीमहात्माजीके इस प्रकार क्रमसे पाँच दिन बीत गये ॥ १०० ॥

सर्वेषां नेतृवर्याणामश्रमैश्च परिश्रमैः ।
पृथङ्निर्वाचनं नामास्पृश्यानां विलयं गतम् ॥१०१॥

सभी बडे बडे नेताओंके अथक परिश्रमसे अस्पृश्योंका पृथक् निर्वाचन बन्द हो गया ॥ १०१ ॥

विजयश्रीर्यतीन्द्रस्य वरमालां यशस्विनीम् ।
षष्ठे सुदिवसे कण्ठे निचिक्षेप स्वयं मुदा ॥१०२॥

विजय लक्ष्मीने स्वयं प्रसन्न होकर उपवासके छठें दिन श्रीमहात्माजीके कण्ठमें यशस्विनी वरमाला डाल दी ॥ १०२ ॥

चित्तरञ्जनदासस्य धर्मपत्नी पतिव्रता ।
निर्मला चोर्मिला देवी विदुषी च सरोजिनी ॥१०३॥

श्रीचित्तरञ्जनदासजीकी धर्मपत्नी श्रीवासन्तीदेवी, श्रीउर्मिलादेवी, श्रीसरोजिनी नायडू—॥ १०३ ॥

श्रीमत्स्वरूपरानी च मोतीलालस्य गेहिनी ।
अमला कमलादेवी जवाहिरविनोदिनी ॥१०४॥

पण्डित श्रीमोतीलालनेहरूकी पत्नी श्रीस्वरूप रानीजी तथा श्रीमती कमलानेहरू—॥ १०४ ॥

श्रीमती मृदुलादेवी तन्माता च यशस्विनी ।
अम्बालालः पिता तस्या धनिश्रेष्ठ उदारधीः ॥१०५॥

श्रीमती बहिन मृदुला, उनकी माता और उनके पिता श्रीअम्बालालभाई१०५

तत्रैव कारानियतो वीरवर्यो विवेकवान् ।
वाग्मिप्रवर एषोऽपि श्रद्धावान्वल्लभः सुधीः ॥१०६॥

उसी जेलके क़ैदी श्रीवल्लभभाई— ॥ १०६ ॥

महात्मनः कृपापात्रं महादेवो विदांवरः ।
तदन्तेवासितां यातः प्यारेलालो महोदयः ॥१०७॥

श्रीमहात्माजीके कृपापात्र विद्वान् श्रीमहादेवभाई देसाई और श्रीमहात्माजी के शिष्य श्रीप्यारेलालभाई—॥ १०७ ॥

सत्याग्रहाश्रमात्प्राप्ता बहवः प्रेमविह्वलाः ।
रवीन्द्रनाथटैगोरः शास्त्री परचुरेऽपि ॥१०८॥

सत्याग्रह आश्रम (साबरमती) से आये हुए बहुतसे लोग, श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर, और श्रीपरचुरेशास्त्री—॥ १०८ ॥

दिव्यशक्तिधरैरेतैर्दिव्यः स परिवारितः ।
कस्तूरबाईहस्तेन दीयमानं रसं पपौ ॥१०९॥

दिव्यशक्तिसम्पन्न इन उपर्युक्त लोगोंसे घिरे हुए श्रीमहात्माजीने श्रीमती कस्तूरबाके हाथसे दिये गये रस, फलरसका पान किया ॥ १०९ ॥

तस्मिन्दिने सुखावेशो निखिले भूमिमण्डले ।
सत्रा विवेश सर्वांश्च विजयात्तस्य सर्वथा ॥११०॥

उस दिन समस्त भूमण्डलमें, सब किसीको, श्रीमहात्माजीके विजयसे आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ११० ॥

मृत्युञ्जयो महाबाहुर्महाकर्णो महेक्षणः ।
महायशा महात्माऽसौ पूर्णायुषमवाप्नुयात् ॥१११॥

मृत्युको जीतनेवाले, विशालभुजावाले, बडे बडे कानवाले, बडी बडी आँखोंवाले, महान् यशस्वी श्रीमहात्माजी सौ वर्ष तक जीवें ॥ १११ ॥

* जग्मुरेव सकला इतस्ततो दर्शनाय यतिमेदिनीपतेः ।
दीनदुःखहरणक्षमःप्रभुःसोऽप्यमुच्यत च बन्दिबन्धनात् ॥११२॥

इधर उधरसे सब लोग यतिराज श्रीमहात्माजीके दर्शनकेलिये वहाँ गये। और दीनदुःखहरण वह महात्माजी भी जेलसे छोड दिये गये ॥११२॥

\+ भेत्ता यः सर्वबन्धव्यतिकरनिकरस्यापि सच्चित्स्वरूपो
मुक्तिं प्राप्यैव देहेऽपि रिहततनुतादात्म्यमोक्षैकरूपः ॥११३॥
सर्वैःकाम्यःकृपालुःकतिचिदपि दिनान्येष वासं विधातुं
यातः श्रीप्रेमलीलाभवनमनुपदं चाधिपूनं परात्मा ॥११४॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहंसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजाते
चतुर्विंश सर्ग

---

* रथोद्धता छन्द ।
\+ स्रग्धरा छन्द ।

जो सर्वबन्धनोंके काटनेवाले हैं, जो सत्स्वरूप और चित्स्वरूप हैं, जिन्होंने शरीरके साथ तादात्म्य सम्बन्धका त्याग कर दिया है और अत एव जो मोक्षस्वरूप हैं, जिनकी प्राप्तिकी सभी इच्छा करते हैं, वही कृपालु श्रीमहात्माजी पूनामें कुछ दिन निवास करनेकेलिये श्रीमती प्रेमलीला बहिनके बङ्गले—पर्णकुटीमें गये ॥ ११४ ॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
स्वोपज्ञराष्ट्रभाषाटीका सहिते
भारतपारिजाते चतुर्विंशः सर्गः



❀ पञ्चविंशः सर्गः

स यदा शरीरबलमाप योगिराड्नृपशासनावमतिमादधे पुनः ।
निगृहीत एव स पुनर्महायतिर्नृपनीतिरक्षणपराधिशासनात् ॥१॥

बीमारीके बाद जब शरीरमें बल प्राप्त हुआ तब योगिराजजी (श्रीमहात्माजी) ने सर्कारी कायदेका भङ्ग करना शुरू किया। वाइसरायकी आज्ञासे वह पुनः पकड़ लिये गये ॥ १ ॥

अधिगत्य बन्धभवनं यतीश्वरः स ववाञ्छ कर्तुमथ सेवया निजम् ।
फलि जन्म हन्त हृदयादरान्मुहुर्दलितस्य तस्य निचयस्य दीनभृत् ॥२॥

जेलमें जाकर दयालु यतिराज श्रीमहात्माजीने उस दलित समाज-अन्त्यजसमाजकी सेवासे, अपने जन्मको सफल करनेकेलिये, हृदयसे इच्छाकी ॥ २ ॥

निषिषेध तं रचयितुं तथाविधं नृपशासनं पुनरयं सदाग्रहम् ।
चरितुं समारभत तेन मोचितोऽभवदत्र तीव्रतपसि व्यवस्थितः ॥३॥

सर्कारने उन्हें वैसा करनेसे मना किया। अतः उन्होंने पुनः सत्याग्रह (जेलमें ही) किया। अतः वह छोड़ दिये गये और तीव्र तपस्या करनेमें लग गये ॥ ३ ॥

अधिपर्णकुट्ययमपास्तकिल्बिषः पुनरप्यवाप्य गुणि पुण्यपत्तनम् ।
वितताननं तस्य परया मुदा तनोः परिरक्षणं बहु निकेतनाधिपा ॥४॥

❀ इस सर्गमें मञ्जुभाषिणी छन्द है।

÷ दक्षिण आफ्रिकामें जब पहिले पहल श्रीमहात्माजीने लड़ाईका आरंभ किया तो उन्होंने एक घोषणा निकाली थी कि मेरी इस लड़ाई-का जिसमें मार खाना है—मारना नहीं है, दुःख सहन करना है—दुःख देना नहीं, नहीं, शत्रुके साथ भी प्रेमपूर्ण व्यवहार करना है—क्या नाम रखा जाय ? जिसकी सूचना सर्वोत्तम होगी उसे इनाम भी दिया जायगा। श्रीभाई मगनलाल गांधीजीने सदाग्रह इस नामकी सूचना की। श्रीमहात्माजीने इसमें एक य बढ़ाकर सत्याग्रह नाम रख दिया। सदाग्रह यह मूल नाम है।

श्रीमहात्माजी पुनः पूनामें श्रीमती प्रेमलीला बहिनकी पर्णकुटी (बङ्गले) में आये। उन्होंने बडी प्रसन्नतासे श्रीमहात्माजीके शरीरकी रक्षा की ॥४॥

अनुभूय देहबलितां ततोऽचलत्समवापदाश्रमभुवं निजां यतिः।
परिभञ्जनाय कृतनिश्चयो निजाश्रमकस्य मोहममतापरिच्युतः ॥५॥

शरीरमें बलका अनुभव करके श्रीमहात्माजी वहाँसे चले और अपने आश्रम (साबरमती) में आये * मोह और ममतासे रहित उन्होंने उस अपने आश्रमको तोड डालनेका निश्चय कर लिया था ॥ ५ ॥

यदि नाभविष्यदयमाश्रमोऽपि मे ननु नाभविष्यदिह कापि शुङ्मम।
इति नन्दनप्रममपास्य तं क्षणात्स निरञ्जनोऽभवदतीतचिन्तकः ॥६॥

यदि यह आश्रम † भी मेरा न हो तो मुझे कोई शोक भी न हो ऐसा समझकर इन्होंने नन्दन वन समान उस आश्रमको क्षणभरमें उजाड करके निश्चिन्त होकर निरञ्जन बन गये ॥ ६ ॥

वसुधाधिपत्यमथ कामितं न चेन्न समीहितं सुरपतित्वमप्यहो।
स तदाश्रमाधिपतितां कथं मुनिश्चिरमावहेत निजबन्धनं परम् ॥७॥

जिनको न सार्वभौम राज्यकी इच्छा है और न स्वर्गीय साम्राज्यका अभिलाष है वह श्रीमहात्माजी अपनेलिये बन्धनसमान आश्रमके अधिपतित्वको चिरकालतक कैसे धारण कर सकते थे ॥ ७ ॥

परिभासमानममुमाश्रमं त्यजन्नातरागतां जगति भासयन्निजाम्।
प्रजितुं स रासमभि भूपतिप्रतिनिधिशासनेन सपदि न्यगृह्यत ॥८॥

* साबरमती आश्रममें निवासके लिये नहीं किन्तु उसके विसर्जन के लिये महात्माजी गये थे।

† परमविरक्तशिरोमणि श्रीमहात्माजीके पास "यह मेरी चीज है" ऐसा कहनेके लिये कुछ भी नहीं था। केवल आश्रमकी व्यवस्थाकी ही उन्हें चिन्ता रहती थी। अतः उन्होंने उसे छोड दिया।

रास जानेकेलिये देदीप्यमान इस आश्रमको छोडते हुए, जगत्में अपनी वीतरागताको प्रकाशित करते हुए, वाइसरायकी आज्ञासे वह शीघ्र ही पकड लिये गये ॥ ८ ॥

कतिभिश्चिदेव समवाप बन्धनाद्यतिरेष मुक्तिमथ माभिरद्वयः ।
प्रमना व्यचारयत कार्यपद्धतौ परिवर्तनं किमपि कालभेदतः ॥९॥

और थोडे महीनोंमें ही श्रीमहात्माजी जेलसे छोड दिये गये । उस समय प्रसन्नमनसे उन्होंने विचार किया कि समयानुसार अपनी कार्यप्रणालीमें कुछ परिवर्तन करना चाहिये ॥ ९ ॥

तपसार्जितं सुरगणेन सर्वदा दलमासुरं प्रबलशक्तिसंयुतम् ।
तप एव तद्भवतु मे समीहितं पुनरेव तेन यतिनेति चिन्तितम् ॥१०॥

श्रीयतिराज महात्माजीने विचार किया कि तपस्यासे ही देवोंने बलवान् असुरदलपर विजय प्राप्त किया था । अतः मुझे भी फिरसे तपस्या ही करनी चाहिये ॥ १० ॥

मुनिनाऽथ कार्यसचिवार्यमण्डलं स्वमवस्थितं चरितुमस्य शासनम् ।
विनियुज्य दीनजनसेवने स्वयं निरचायि तीव्रतपसे क्वचिद्गतिः ॥११॥

विचारशील श्रीमहात्माजीने कार्य करनेवाले अपने मन्त्रिमण्डलको-जो कि उनकी आज्ञाके पालनेकेलिये उपस्थित था,-गरीब प्रजाकी सेवामें लगाकर, स्वयं तीव्रतपस्याकेलिये कहीं जानेका निश्चय करलिया ॥ ११ ॥

स बजाज आत्तमुनिवृत्त आकुलः सहसा जगाम यतिराजसन्निधौ ।
विनयेन चार्तवचनेन तं ततः समदो निनाय वरधां धनेश्वरः ॥१२॥

श्रीयुत बजाजजी—श्रीसेठ यमुनालाल बजाजजी इस समाचारको सुनकर व्याकुल हो गये । एकदम श्रीमहात्माजीके पास गये । विनयसे और दुःखित वचनसे श्रीमहात्माजीको सेठजी वर्धा ले गये ॥ १२ ॥

उदतं मनीषितमुदारमानसः कृतवानतीव रमणीयमस्य सः ।
विमले तदावसथके शिगाँवके न्यवसन्महामुनिवरोऽपि तत्र सः॥१३॥

उदार मनवाले श्रीबजाजजीने श्रीमहात्माजीकेलिये एक झोपड़ी जो कि उन्हें इष्ट और प्रिय थी शेगाँव नामक ग्राममें क्षणभरमें तैयार कर दी। श्रीमहात्माजी उसी झोपड़ीमें रहने लग गये ॥ १३ ॥

स्थितमार्तबन्धुमवलोक्य तत्र तं षडपि क्रमेण ऋतवस्समाययुः ।
यतिराजपादजलजे प्रवीक्ष्य ते गमयाम्बभूवुरखिलां जनिं शिवम् ॥१४॥

दीनबन्धु श्रीमहात्माजीको शेगाँवमें निवास करते देखकर क्रमसे छहों ऋतु वहाँ आये। यतिराजके चरणकमलोंके दर्शन करके समस्त जीवनको शिव–सफल बना दिया ॥ १४ ॥

तपसि स्थिताय यतये महेर्ष्यया प्रथमं चुकोप सहसैव तत्तपः ।
अयमिच्छतीव तपसा तु मामतिक्रमितुं कदाचिदिति मानसे तपन् ॥१५

"कदाचित् यह (श्रीमहात्माजी) तपस्या करके मुझसे आगे बढ़ जाना चाहते हैं–मुझसे अधिक प्रतापी बनना चाहते हैं" ऐसा विचारकर मनमें जलता हुआ ग्रीष्मऋतु महात्माजी पर एकदम क्रुद्ध हो गया ॥१५॥

परिचिन्त्य तस्य परिवीतरागितां जगतः शिवानि सततं चिकीर्षतः ।
तदनु द्विधाऽभवदमुष्यहृच्छुचा नयने अलं ववृषतुर्जलावलिम् ॥१६॥

जगत्के कल्याण करनेकी सदा इच्छा करनेवाले श्रीमहात्माजीकी वीतरागताको पहिचानकर इस ग्रीष्म ऋतुका हृदय शोकसे भर गया और उसकी आँखें जल बरसाने लगीं ॥ १६ ॥

अयमात्मवाञ्छितपदं यथासुखं पदयोरधश्च कुरुतादितीच्छया ।
उपगम्य तत्र जलदागमो यतिं जलसेचनेन शिशिरं सदा व्यधात् ॥१७॥

यह महात्माजी अपने वाञ्छित पदको सुखपूर्वक अपने अधिकारमें कर लें, इस इच्छासे वर्षाऋतु वहाँ आकर, जल सींच कर, उन्हें ठंढा रखने लगा ॥ १७ ॥

अपनीय सर्वनयनाभिरामतां स नदीर्नदांश्च सरसीः सरांसि च ।
यतिराजपादजलजार्पितोपदं रचयाञ्चकार विनयेन सन्नतः ॥१८॥

वर्षाऋतुने नदियों, नदों, तलाइयों और तालाबोंको सबकी आँखोंके लिये सुन्दर बनाकर—अर्थात् सबको जलसे भरकर विनयपूर्वक झुककर श्रीमहात्माजीके चरणकमलोंको प्रसन्न कर लिया ॥ १८ ॥

तिमिरावगुण्ठनमये विहायसे तडिता प्रकाशमभिताय वारिदः ।
अभिगर्ज्य तत्र किल वादनोनतामपनीय बिन्दुरवमार्दवं व्यधात् ॥१९॥

अन्धकारके अवगुण्ठनमय आकाशमें—अन्धकारपूर्ण आकाश में बिजलीसे प्रकाश फैलाकर, गर्जना करके बाजेकी कमीको पूरा करके, पानीके बूँदोंके शब्दको बादलोंने कोमल बना दिया। गाना, बजाना प्रकाशमें ही शोभता है। आकाशके अन्धकार को बिजली फाड़ रही थी। बाजा नहीं था। इस कमीको बादलकी गर्जना पूर्ण कर रही थी। बाजेके बिना शब्दमें मधुरिमा नहीं होती है। बुन्दरूप शब्द तो हो रहे थे परन्तु मधुर नहीं थे। इस मेघगर्जनरूप बाजेने उन्हें मधुर बना दिया ॥ १९ ॥

कुशकाशदाशपुर भार्गवीलतातरुगुल्महारिहरिताधिसम्पदा ।
युगदेववीक्षणयुगं समर्चयन्कृतकृत्यतामुपगतः स सुन्दरः ॥ २० ॥

कुश, काश, मोथा, दूब, लता, तरु—वृक्ष, गुल्म इन सबके मनोहर हरे रङ्गकी सम्पदासे वह वर्षाऋतु, युगदेवता श्री महात्माजीके दोनों नेत्रोंकी पूजा करता हुआ कृतकृत्य हो गया ॥ २० ॥

अणुकङ्कुकोद्रवकमाषकादिभिर्बहुशालिभिश्च दधती मनोज्ञताम् ।
हलफालदीर्णहृदयापि काश्यपी जलदागमे यतिपतेर्मुदेऽभवत् ॥२१॥

यद्यपि पृथिवीका हृदय हलके फालसे फाड दिया गया था तो भी चीना, कगनी, कोदव, उड़द आदि अन्नोंसे तथा बहुल प्रकारके धानोंसे सुन्दरताको धारण करती हुई वह, उस वर्षाऋतुमें यतिराजको प्रसन्न कर रही थी ॥ २१ ॥

विमलाभ्रमण्डपममुष्य हेतवे जटितं प्रतारकमहार्घ्यरत्नकैः ।
परितत्य हृन्नयनमोहनैरसौ शरदागमोऽपि सिषिवे यतीश्वरम् ॥२२॥

श्रीमहात्माजीकेलिये हृदय और नेत्रोंको मोहित करनेवाले सुन्दर तारारूप-महामूल्य रत्नोंसे जटित निर्मल आकाशरूप मण्डप चन्दवाको फैलाकर शरद् ऋतुने श्रीमहात्माजीकी सेवा की ॥ २२ ॥

पथि कर्दमादि विलयं गतं तदा सरितोऽभवंश्च सुतराः समन्ततः ।
तनुतां गतैश्च दिवसैर्निरभ्रकैः शरदागमो यतिपतिं समार्चयत् ॥२३॥

रास्तेके कीचड आदि सूख गये । नदियाँ पार करने लायक हो गयीं । दिन छोटे हो गये । बादल नहीं दीखते थे । शरद्ऋतु इन सुन्दर दिवसोंसे श्रीमहात्माजीकी पूजा करने लगा ॥ २३ ॥

अतसीकदम्बकसुराष्ट्रजासुरीसितसर्षपादिसुमनोभिरीश्वरम् ।
सहकारकोकिलसुहृद्वसन्तकः शुभगन्धवाहपवनैरसेवत ॥२४॥

अलसी, सरसो, अरहर, राई, सफेद सरसो आदिके फूलोंसे, आम्र और कोइलोंको साथ लिये हुए वसन्तने, सुन्दरगन्धयुक्त वायुसे श्रीमहात्माजीकी सेवा की ॥ २४ ॥

तपसः प्रभावमवलम्ब्य तस्य तां विजयो चचार मुदितो महासभाम् ।
चरितं हि शुद्धमनसा तपः क नो फलमाददाति सुपथि प्रधावताम् ॥२५॥

श्रीमहात्माजीके प्रभावका अवलम्बनकरके, प्रसन्न होकर विजयने महासभाको अङ्गीकार कर लिया अर्थात् महासभाका विजय हुआ । सत्य है, सन्मार्गमें चलनेवालोंसे, शुद्धमनसे की गयी हुई तपस्या कहाँ फल नहीं देती है ? अर्थात् यह तपस्या सर्वत्र फलदायिनी होती ही है ॥ २५ ॥

अधिशासतीह रत्नपूजवाहिरे नरवीरमानितवरे महासभाम् ।
नियतं च सप्तसु बभूव शासनं परिमण्डलेषु सदसः शुभङ्करम् ॥२६॥

उसी विजयका वर्णन करते हैं । रत्न लोगोंको पवित्र बनानेवाले पण्डित जवाहिरलालके महासभाका शासनकरनेपर भारतके ११ प्रान्तोंमें-से ७ प्रान्तोंमें महासभाका शासन प्रारम्भ हुआ ॥ २६ ॥

प्रतिमण्डलं सचिवमण्डलं महज्जनतोपकारनिरतं निरन्तरम् ।
यतिराजसन्मतिमतं पुरश्चरत्यजयतात्सदा स्वजनिभूमिमुद्धरत् ॥२७॥

प्रत्येक प्रान्तमें यह महान् मन्त्रिमण्डल निरन्तर जनताके उपकारमें लगा हुआ है । श्रीमहात्माजीकी सम्मतिका अनुष्ठान करता है । अपनी मातृभूमिका उद्धार कर रहा है । इसका जय हो ॥ २७ ॥

युधि या हृता अवनयोऽनयानुगैरथ यानि वृत्तपरिबोधकान्यपि ।
दलितानि राजपुरुषैर्दलानि वा भरतप्रजाः परिलभन्त उद्धियः ॥२८॥

सत्याग्रहयुद्धमें अनीतिमार्गके अनुयायी उद्धत लोगोंने जिन जमीनोंको छीन लिया था, जो समाचारपत्र बन्द कर दिये गये थे, प्रजा उन सब जमीनों और पत्रोंको पा रही है ॥ २८ ॥

भवनानि यानि बलतो नृपानुगैः प्रधने हृतानि बलवद्भिरासुरैः ।
सहसा महासदस आर्यमन्त्रिणो ददतेऽद्य तानि सुखिनः सुखाय नः ॥२९॥

राजाके अनार्य अनुयायियोंने महासभाके जिन मकानोंको—समितियोंकी बलात्कारसे छीन लिया था आज यह श्रेष्ठ मन्त्रिमण्डल, हमारे सुखकेलिये, प्रसन्न होकर हमें दे रहा है ॥ २९ ॥

अथ पुस्तकान्यपि बहूनि राज्यतः प्रतिबन्धितानि निखिलानि तान्यपि ।
शुभमन्त्रिमण्डलमिदं सभाजितं निखिलैर्ददाति निखिलेभ्य ईश्वरम् ३०

सर्कारने बहुतसे पुस्तकों को भी जब्त कर लिया था । सबसे पूजित शासक यह शुभमन्त्रिमण्डल उन सब पुस्तकोंको, सबको दे रहा है ॥३०॥

अथ भारते प्रचुरसंख्यकेषु तन्न निरक्षरत्वमिह शोभते नृषु ।
इति शोभनं मनसिकृत्य मण्डलैस्तदपाकृते. प्रयतनं विधीयते ॥३१॥

भारतवर्षमें अधिक लोगोंमें निरक्षरता (लिखना पढना न जानना) शोभा नहीं देती है, ऐसा मनमें निश्चय करके यह कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल उस निरक्षरताको कँपानेकेलिये—दूर करनेकेलिये सदा सुन्दर प्रबन्ध कर रहा है ॥ ३१ ॥

अतिपीड़ितां दयितभारतप्रजां मधुसेवनाज्जनितपापतापतः ।
परिवीक्ष्य तत्परिहृतेःसदिच्छया नियमं नवं विदधतेऽपि तान्यथा॥३२॥

शराबखोरीसे पैदा हुए पापके तापसे, भारतीय प्रजाको अत्यन्त पीड़ित देखकर, शराबखोरी दूर करनेकी सत् इच्छासे यह सब मन्त्रिमण्डल नये नियम बना रहे हैं ॥ ३२ ॥

कृषकेषु खेलदथ निर्भयं च नैः सततं प्रयामवल्म्यार्तचिन्तकैः ।
परिहर्तुमेभिरनिशं विचिन्त्यते सुलभं किमप्युपयनं सदातनम् ॥३३॥

किसानोंमें दुर्भिक्ष—दुष्कालका अब निर्भय होकर खेल रहा है। *दुःखितोंकी चिन्ता करनेवाले यह कांग्रेसी मन्त्रिमहोदय उसे दूर करनेके-लिये किसी स्थायी सुलभ उपायको सोच रहे हैं ॥ ३३ ॥*

अथ वर्त्मनां प्रणयनानि मन्त्रिणः परिकल्पयन्त्यवसथेषु शोभनम् ।
अधिकः करश्च यदि वार्षिको भवेदथ कामितं तदनुशोधनं च तैः ॥३४॥

यह मन्त्रिमण्डल गाँवोंमें सडकोंके बनानेका विचार कर रहा है। *खेतकी मालगुजारी यदि अधिक हो तो उसे भी तोड़नेको यह लोग इच्छा* कर रहे हैं ॥ ३४ ॥

एतत्सर्वं समापन्नं मुनीन्द्रस्य प्रभावतः ।
अण्डमन्स्थान्समर्थः को रक्षितुं भारतावनौ ॥३५॥

यह सब श्रीमहात्माजीके प्रभावसे ही हुआ। नहीं तो अन्डमन (कालापानी) में रहनेवालोंको भारतभूमिमें कौन रख सकता था?॥३५॥

अफ्रीकात इहागत्य स्थिते तस्मिन्महात्मनि ।
निर्भयत्वं गताः सर्वाः प्रजाः भारतभूमिजाः ॥३६॥

दक्षिण अफ्रिकासे आकर जब महात्माजी भारतमें रहने लगे तब भारतकी समस्त प्रजा निर्भय बन गयी ॥ ३६ ॥

सिताङ्गानां नरान्दृष्ट्वा सोष्णीषान्दण्डधारिणः ।
बिभ्यतो निखिला जाता भयभूमिविलङ्घिनः ॥३७॥

जो लोग अंग्रेजोंके लाल पगड़ीवाले और डंडावाले सिपाहियोंको देखकर डर जाया करते थे वह सभी भयरहित हो गये ॥ ३७ ॥

पामरैर्हिंसिताऽहिंसा पुनरुज्जीविता सती ।
सर्वान्पापात्परक्षन्ती निर्भयाऽद्य वितिष्ठते ॥३८॥

दुष्टोंने अहिंसाको मार डाला था। वह फिर जीवित हुई और अब निर्भय होकर सबको पापोंसे बचाती हुई भारतमें स्थिर है ॥ ३८ ॥

निखिलान्विदुषो भूपान्दरिद्रान्धनिकानपि ।
मोहनोऽयं महाभागः साम्येऽकार्षीत्स्थितानिह ॥३९॥

महात्माजीने सभी विद्वानोंको, राजाओंको, धनिकोंको, दरिद्रोंको, समान भावसे रहना सिखाया ॥ ३९ ॥

अस्पृश्यत्वमहाघोरराक्षसं स निषूदयन् ।
हिन्दूधर्मस्य संशुद्धिं महतीमकरोन्मुनिः ॥४०॥

अस्पृश्यतारूप महाभयङ्कर राक्षसको मारकर महात्माजीने हिन्दुधर्मको अत्यन्त पावन बना दिया ॥ ४० ॥

हिन्दूकौरानयीशायीपारसीकाः परस्परम् ।
समचिन्वत सौहार्दं प्रयत्नात्तस्य सद्व्रतेः ॥४१॥

उन्हींके शुभप्रयत्नसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी परस्पर प्रेम करने लग गये ॥ ४१ ॥

भगवत्पद्मनाभस्य ट्रावन्कोरे विराजतः ।
दर्शनाय कृता राज्ञा निर्बन्धा अन्त्यजादयः ॥४२॥

ट्रावन्कोर (मद्रास) में विराजमान भगवान् पद्मनाभके दर्शनके लिये अन्त्यजोंको वहाँके महाराज हिज़हाइनेस् श्रीपद्मनाभदास वंचीपाला श्रीरामवर्मा महोदयने छूट दे दी है ॥ ४२ ॥

प्राचीनं परमं गुह्यं पद्मनाभस्य मन्दिरम् ।
ततः पूर्वं कदाचिन्नो प्राविशन्नन्त्यजादयः ॥४३॥

यह पद्मनाभ भगवान्का मन्दिर बहुत प्राचीन और गुह्य है। इससे पहिले उसमें अन्त्यज आदि कभी प्रवेश नहीं पा सके थे ॥ ४३ ॥

लोकोत्तरेण तपसा मूर्धन्यस्य तपस्विनाम् ।
गतमोहं जगज्जातं मोहनस्य महात्मनः ॥४४॥

तपस्वियों में सर्वश्रेष्ठ महात्माजीकी लोकोत्तर तपस्यासे सम्पूर्ण जगत्का अज्ञान जाता रहा ॥ ४४ ॥

श्रीसेतुपार्वतीबाई ट्रावन्कोरमहीभुजः ।
प्राणप्रिया महाराज्ञी साहाय्यमतनोदिह ॥४५॥

ट्रावनकोर महाराजकी महारानी श्रीसेतु पार्वतीबाईने इस मन्दिर-प्रवेशरूप कार्यमें अपने पतिकी सहायता की थी ॥ ४५ ॥

अन्यान्यपि प्रभूतानि देवतायतनानि सः ।
स्वराज्यस्थानि कृतवानन्त्यजार्हाणि सन्मतिः ॥४६॥

उन महाराजने अपने राज्यमें अन्य भी बहुतसे मन्दिरोंमें अन्त्यजोंको दर्शनार्थ जानेकेलिये आज्ञा दे दी है ॥ ४६ ॥

सर्वेष्वेव प्रदेशेषु भारतेऽस्पृश्यता मृता ।
प्रयत्नेन मुनीन्द्रस्य मोहनस्य दयानिधेः ॥४७॥

महात्माजीकी ही दया और प्रयत्नसे भारतके सभी प्रदेशोंमेंसे अस्पृश्यता चली गयी है ॥ ४७ ॥

भारते तीर्णतिमिरे प्रियस्वाधीनतेऽधुना ।
राष्ट्रभाषापदं प्रापद्धिन्दी यस्य प्रभावतः ॥४८॥

महात्माजीके ही प्रभावसे जिसको स्वाधीनता प्रिय है और जो अन्धकार-को पारकर गया है उस भारतमें हिन्दीको राष्ट्रभाषाका पद मिला है ॥४८॥

पटनानगरे पुण्ये पूनानगर उत्तमे ।
कारयामहम्मदाबादे विद्यापीठानतिष्ठिपत् ॥४९॥

पटना, पूना, काशी, अहमदाबादमें उन्होंने विद्यापीठों की स्थापना की ॥ ४९ ॥

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः पवित्रता ।
शान्तिः सौजन्यमित्येतान्गुणान्स प्रत्यपीपदत् ॥५०॥

ब्रह्मचर्य पालन करनेसे वीर्यलाभ, पवित्रता, शान्ति, सौजन्य आदि गुणोंकी प्राप्तिका उन्होंने प्रतिपादन किया ॥ ५० ॥

आहारे व्यवहारे च भाषणे लेखनेऽपि च ।
निर्व्याजता पदं चक्रे तस्मिंस्तपति मोहने ॥५१॥

महात्माजीके यहाँ रहनेसे आहार, व्यवहार, भाषण, लेख आदिमें सादगी और स्वाभाविकता आ गयी ॥ ५१ ॥

सुदूरारोहिणी विद्या कामसंमोहनं वपुः ।
अव्ययं द्रव्यमीहन्ते स्वदीप्त्यै निर्व्यलीकताम् ॥५२॥

बहुत बडी विद्या, सुन्दर रूप और अखूट धन अपनी शोभाके लिये आज सादगी ढूँढ रहे हैं ॥ ५२ ॥

स्वदेशगौरवस्यर्द्धेरभिलाषो नृपून्मिषन् ।
प्रतिक्षणं यतीशस्य माहात्म्यं बोधयत्यलम् ॥५३॥

आज मनुष्योंमें स्वदेशगौरवकी वृद्धिकी इच्छा उत्पन्न हो गयी है यही महात्माजीके माहात्म्य बतानेकेलिये पर्याप्त है ॥ ५३ ॥

देशोद्धारार्थी यतिराजस्तपसैवं,
सन्तोष्यात्मानं परमं सत्यमहीन्द्रः ।
सम्प्राप्य स्वल्पान्परिगृह्यानधिकारा—
न्निःशेषान्प्राप्तुं तपसीद्धे निरतोऽस्ति ॥५४॥

देशोद्धारकी इच्छावाले महात्माजी तपस्यासे अपनेको सन्तुष्ट करके मिलनेवाले अधिकारोंमेंसे थोडेसे राजनीतिक अधिकार प्राप्त करके सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त करनेके लिये अभी महान् तपमें बैठे हुए हैं ॥ ५४ ॥

धन्या शेगांवधरणी धन्याः शेगांवधूरयः ।
ललितान्यङ्घ्रिचिह्नानि विधत्ते यत्र स प्रभुः ॥५५॥

शेगाँव (सेवाग्राम—वर्धा) की धरणी और धूर दोनों ही धन्य हैं जिनके ऊपर महात्माजी अपने पवित्र चरण रखते हैं ॥ ५५ ॥

धन्याः शेगांवसम्भूता लोका यन्नयनाजिरे ।
मोहनाख्यं परं ज्योतिः सततं ज्योततेऽमरम् ॥५६॥

शेगाँव (सेवाग्राम) के लोग धन्य हैं जिनकी आँखोंके सामने वह अमरज्योति (श्री महात्माजी) जल रही है ॥ ५६ ॥

धन्यास्तत्पादपुण्याब्जं लालयन्तस्तदन्तिके ।
निवसन्तोऽद्य सन्तस्ते सौभाग्यैरनुकम्पिताः ॥५७॥

वह धन्य हैं जो उनके पास रहकर उनके चरणोंकी सेवा करते हैं॥५७॥

अस्मिन्महाकाव्य उदारवृत्तेः श्रीमोहनस्योत्तमचन्द्रसूनोः ।
महापवित्रं चरितप्रसूनराशिं व्यचैषं महता श्रमेण ॥५८॥

इस महाकाव्यमें श्रीमहात्माजीके पवित्र चरितरूप पुष्पोंको मैंने बहुत श्रमसे संगृहीत किया है ॥ ५८ ॥

यद्यत्कृतं तेन महात्मनाऽत्र साक्षी स्वयं तस्य सुकर्मराशेः ।
अहं भवामीति न कोऽपि विद्वान्सन्देहदेहं जनयेदमुष्मिन् ॥५९॥

इसमें जो कुछ चरित लिखा है—वह सब उनके ही किये गये कार्य हैं। मैं स्वयं इसका साक्षी हूँ। इसमें किसीको सन्देह नहीं होना चाहिये ॥ ५९ ॥

अस्मिन्कथा कापि न कल्पितास्ति नात्युक्तिलेशोऽपि कथञ्चिदत्र ।
सत्यो महात्मा चरितं च सत्यं तल्लेखकोऽयं यतिरस्ति सत्यः ॥६०॥

इस काव्यमें कोई भी कथा कल्पित नहीं है। अतिशयोक्तिपूर्ण भी कोई कथा नहीं है। महात्माजी सत्य हैं, उनका चरित सत्य है और उसका लेखक यह संन्यासी भी सत्य है ॥ ६० ॥

पूर्वं यदाहं प्रथमाश्रमस्थ श्रीमोहनस्याश्रम एव बालान्।
न्यवात्समध्यापयितुं सुराणा गिरं च हिन्दीमथ फारसीं च ॥६१॥

जब मैं (काव्यनिर्माता) ब्रह्मचर्याश्रममें था तब महात्माजीके आश्रम (साबरमती) में बच्चोंको संस्कृत, हिन्दी, फारसी पढ़ानेको रहा करता था ॥ ६१ ॥

सम्यङ्निरीक्षानिपुणो निरीक्षामतानिषं तस्य किलाश्रमस्य।
मिथ्योक्तिमिथ्याचरणादि तत्राचरन्न कोपि प्रतिवासमाप ॥६२॥

परीक्षा करनेमें निपुण मैंने उनके आश्रमकी भले प्रकार परीक्षाकी है। जो कोई मिथ्याभाषी हो अथवा मिथ्याचरणवाला हो वह उस आश्रम में निवास नहीं पा सकता था ॥ ६२ ॥

यदा महात्मा परिहृत्य साभ्रमतीतटस्थं स्वमहाश्रम तम्।
श्रीमोहनोऽगादवदातकीर्तिर्वर्धां तदाप्यासमहं तदीय ॥६३॥

जब महात्माजी साबरमतीके तटपर बनाये हुए अपने आश्रमको— सत्याग्रह आश्रमको छोड़कर वर्धा गये, तब भी मैं उस आश्रम का ही बना हुआ था ॥ ६३ ॥

यद्यप्यह तत्र निवासशीलो नासं तथाप्यासममुष्य नित्यम्।
स्मर्तव्य एतेन तदाश्रमीय इवास्मि वृत्तः परमोऽधुनापि ॥६४॥

यद्यपि मैं वहाँ रहता नहीं था तो भी मैं आश्रमका ही था। आज भी मैं आश्रमवासीके ही समान हूँ और महात्माजीका स्मरणपात्र हूँ ॥६४॥

ततश्च तद्वृत्तमवैमि सम्यग्भूतं भवच्चापि सदाऽविकल्पम्।
ततो न सद्गीतिरिहास्ति कार्या जडोपमेनापि बुधेन वापि ॥६५॥

अत एव मैं आश्रममें जो कुछ हुआ है, होता है उस सबको अविकल्परूपसे जानता हूँ और अत इस काव्यमें जो लिखा गया है उसपर विद्वान् और मूर्ख किसीको भी सन्देहकेलिये अवकाश नहीं है ॥६५॥

पूर्वं मयैतन्महनीयकाव्यं मुद्रापयित्वाल्पतमैश्च कालैः।
प्रकाशितं तेन विलोकितोऽत्र राशिस्त्रुटीनां बहुषु स्थलेषु ॥६६॥

पहले मैंने इस काव्यको बहुत थोड़े दिनोंमें छपवाकर प्रकाशित किया था। अतः बहुतसे स्थलोंमें त्रुटियाँ देखनेमें आयी थीं॥ ६६ ॥

ततोऽस्य काव्यस्य मया द्वितीयावृत्तिः श्रमेणातिरहय्य दोषान्।
प्रकाश्यते तद्विदुषां वरेषु प्रामाण्यमाप्नोतु विदीर्णदोषम् ॥६७॥

अतः सब दोषोंको दूर करके मैं इसकी यह दूसरी आवृत्ति छपवा रहा हूँ। विद्वान् इसे ही प्रमाण मानें ॥ ६७ ॥

मनुष्यमेधा भ्रममाभजन्ते सदेति वागस्तु यदीह सत्यम्।
कृपालवस्तद्भ्रममत्र वीक्ष्य क्षाम्यन्तु मामल्पमतिं सुबोधाः ॥६८॥

यदि यह कथन सत्य हो कि मनुष्यकी बुद्धिको भ्रम होता ही रहता है, तो कृपालु विद्वान् इसमें भी मेरा भ्रम देखकर मुझे क्षमा करेंगे ॥६८॥

अशुद्धं शुद्धं वा हृदयलहरीसंगतमिति,
महाकाव्यं श्राव्यं भवतु परिमोदाय विदुषाम्।
यदि स्कन्नं किञ्चिद्भवति मम बुद्धेस्तनुतया,
क्षमन्तां विद्वांसः परमकरुणावारिनिधयः ॥६९॥

यह काव्य चाहे शुद्ध हो चाहे अशुद्ध, परन्तु मेरे हृदयकी लहरीके साथ ही इसका सम्बन्ध है। इसे विद्वान् सुनें और उन्हें आनन्द हो, इतनी ही इच्छा है। यदि इसमें मेरी बुद्धिकी अल्पताके कारण कोई त्रुटि हो तो परम करुणासागर विद्वान् मुझे क्षमा करें ॥ ६९ ॥

शुक्तिकासु पतितैर्वै स्वातियारिदबिन्दवः।
मुक्ताभावं भजन्तेऽद्धा स्वाश्रयस्य प्रभावतः ॥७०॥

स्वाती नक्षत्रके मेघके बिन्दु सीपमें पड़कर मोती बन जाते हैं। यह उन बूँदोंके आश्रयका प्रभाव है ॥ ७० ॥

सदोपमपि मत्काव्यमिदं सम्प्राप्य धीमतः ।
भविष्यत्येव निर्दोषं निर्दोषदृगुपाश्रयात् ॥७१॥

मेरा यह काव्य सदोष होगा तो भी विद्वानोंके पास जाकर, उनकी निर्दोष दृष्टिसे यह भी निर्दोष हो जायगा ॥ ७१ ॥

गुणग्रहग्रहब्रह्ममिते विक्रमवत्सरे ।
महाकाव्यमिदं प्राप्तोत्पूर्णतां श्रावणे सुदि ॥७२॥

१९९३ विक्रम संवत्सरमें श्रावण सुदीमें इस काव्यको मैंने लिखकर पूरा किया था ॥ ७२ ॥

खखखाक्षिमिते श्रीमद्विक्रमादित्यवत्सरे ।
द्वितीयावृत्तिरेषाऽभूत्प्रस्तुता श्रावणे सुदि ॥७३॥

तथा विक्रमके ही २००० सवत्सरमे श्रावण सुदीमें ही इसकी द्वितीयावृत्ति हुई है ॥ ७३ ॥

काव्यस्यैतस्य पड्विंशः सर्गोऽपि रचितो मया ।
प्रकाशितश्च पूर्वं स परमत्र तिरोहितः ॥७४॥

पहले मैंने इस काव्यका २६ वाँ सर्ग भी लिखा और प्रकाशित किया था परन्तु इस द्वितीयावृत्तिमे वह सर्ग छोड दिया गया है ॥ ७४ ॥

कर्गजस्य महार्घ्यत्वं निरुणद्धि प्रकाशनात् ।
तस्येति तं परित्यज्य ग्रन्थोऽयं पूर्णतामगात् ॥७५॥

कागज बहुत महँगा है अतः उसका प्रकाशन कठिन है । अत. उस एक सर्गको छोडकर यह ग्रन्थ पूरा समझना ॥ ७५ ॥

तत्रत्या विषयाः सर्वे संक्षेपेण निवेशिताः ।
अस्मिन्नेवान्तिमे सर्गे ततः सन्तोषमाभजे ॥७६॥

उस २६ वें सर्गमें जो विषय थे, संक्षेपमें वह सब यहाँ २५ वें सर्गमें ले लिये गये हैं । इतनेसे ही मैं सन्तोष मानता हूँ ॥ ७६ ॥

पूर्वीय अफ्रिकादेशे मोम्बासाख्ये महापुरे ।
श्रीमन्मेघजिसत्सूनू रामजिः कानजिस्तथा ॥७७॥

पूर्वीय अफ्रिकाके मोम्बासा नगरमें श्रीमान्मेघजी भाईके श्रीरामजी और श्रीकानजी यह दो पुत्र हैं ॥ ७७ ॥

कनीयान्कानजिः श्रीमान्पृष्ट्वा ज्यायांसमात्मनः ।
आज्ञामादाय पूज्याया जनन्या आत्मनः शिवाम् ॥७८॥
एतद्ग्रन्थप्रकाशाय सर्वं सच्छ्रद्धया व्ययम् ।
अकरोद्देशसेवार्थे वादान्यं पूजयञ्छ्रिया ॥७९॥

छोटे पुत्र श्रीमान्कानजी भाईने अपने बड़े भाई श्रीरामजीको पूछकर और अपनी पूज्यमाताजीकी पवित्र आज्ञा लेकर इस ग्रंथके प्रकाशनकेलिये, सर्वव्यय देकर, देशसेवाकेलिये महती उदारता दिखायी है ॥ ७८-७९ ॥

वसुव्योमनभोनेत्रमिते वैक्रमवत्सरे ।
चैत्रमासे सिते पक्षे नवम्यां रविवासरे ॥८०॥
साहाय्यमेतदाश्रित्य तृतीयावृत्तिरेषिका ।
अस्य ग्रन्थस्य संजाता महाविद्वद्विनोदिनः ॥८१॥

चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमीतिथि, रविवार, विक्रम संवत् २००८ में ऊपर बतायी गयी सहायताको लेकर इस ग्रन्थकी यह तृतीयावृत्ति हुई है ॥८०-८१॥

जयन्तु गुरुपादाब्जरेणवः सुप्रकाशिताः ।
जनुषान्धोऽपि यान्छ्रित्वा गन्तव्यं याति निर्भयम् ॥८२॥

श्रीगुरुदेवके चरणोंके रेणुओंका विजय हो जिनका आश्रय लेकर जन्मान्ध भी अपने गन्तव्य स्थानपर निर्भय पहुँच जाता है ॥ ८२ ॥

श्रीसायेतपुरीललामललनालीलैकसरसाधनं
श्रीमद्राममनोहरार्यचरणाम्भोजेषु भृङ्गायितः ।

रागद्वेषकुलानलो भगवदाचार्य सुधी सद्व्रती
कृत्वा काव्यमिद यति स्वहृदय शान्ति परा प्रापयत् ॥८३॥

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपरमहसपरिव्राजकस्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यमहाराजप्रणीते
भारतपारिजात
पञ्चविंश सर्ग



भारतपारिजातस्य विवरणभूता गूढस्थलोपकारिण्यः काश्चित्कथाटिप्पण्यः ।

प्रथमसर्गे

Prime minister—प्रधानमन्त्री दीवान इति कथ्यते बम्बई-प्रान्तेषु । श्लो० ३६ ॥

जूनागढ इत्याख्य सौराष्ट्रे (काठियावाडे) मुसल्मानभूपालाधिष्ठित-मासीत्पुरा राज्यम् । अत्रैव महाकविमाघेन, केनचिज्जैनकविना मया च श्रीरामानन्ददिग्विजयमहाराज्ये वर्णितो रैवतकाभिध, गिरनार इत्याख्य-येदानीं सर्वत्र प्रसिद्धिं गत पवित्रतीर्थीभूतः पर्वतो विद्यते । अस्मिन्नेव राज्ये राजनी-पादशाहेन बहुकृत्वो लुण्ठित त्रोटित भ्रष्टीकृत च विधुवै-भवोपेत नयनाचर्नि स्पृशदेव निखिलहिन्दुमनोहरमहर्निश महता समुद्रेण प्रक्षालितपाद भगवत सोमनाथस्य प्रसिद्ध मन्दिरमासीत् । इदानीमपि तस्य भग्नावशेषस्तत्र दृश्यते स्म । अधुनैव तत्र सर्दार श्रीवल्लभभाईप्रयत्नतो नूतने मन्दिरे विनिर्मिते भगवान् सोमनाथो विराजते । अत्रैव प्रभासो, यत्र युद्धकलाविशारदेन नीतिनिपुणेन योगिमहाराजेन श्रीकृष्णेन यदवो विनाशिता । अस्मिन्नेव प्रभासे व्याधेन निहत शरीरमुत्सृज्य स यदुकुलालङ्कारभूतः स्वलीलामुपसजहार । श्लो० ३६ ॥

राजकोटेत्याख्य वाकानेरेत्याख्य च हिन्दुराज्ये सौराष्ट्रान्तर्गते । ते एवात्र राजकीटक इति वाकानिरक इति निर्दिष्टे । श्लो० ४० ॥

गुजरातेषु सौराष्ट्रेषु च आषाढशुक्लैकादशीमारभ्य कार्तिकशुक्लै-कादशीं यावच्चातुर्मास्यमनुसृत्य चातुर्मास्यनियमा प्रायेण पालिता भवन्ति । एषु चतुर्षु मासेषु व्रतदानादिकानि बहूनि पुण्योत्पादकानि कार्याणि प्राय-सर्वैरेव हिन्दुभि क्रियन्ते । श्लो० ५० ॥

द्वितीये सर्गे

एकस्मिन्समये चर्मकारभक्ताराधितो भगवान् श्रीकृष्णः प्रसन्नो भूत्वा तस्य समक्षं प्राकट्यमुपगत्य तत्प्रसाधित भोजन स्वीकृतमिति भक्तेषु प्रसिद्धिः। श्रीरामोपि शबरीसेवया प्रसन्नस्तदास्वादितानि वन्यानि फलानि मूलानि चाखादद् इति पद्मपुराणप्रसिद्धिः। श्लो० २९ ॥

श्रीकर्मचन्द्रगांधिरेव "कावागांधी" इति नाम्नापि प्रसिद्ध आसीत्। श्लो० ४२ ॥

तृतीये सर्गे

श्रवण इति नामधेयं पुत्रस्य वा पितुर्वेति मेऽस्पष्टम्। श्लो० १९ ॥

षष्ठे सर्गे

श्रीमगनलालभाईतिनाम्ना प्रसिद्धोऽतीव कार्यपटुर्मितमृदुभाषी सदाचारपरायणः श्रीमहात्मनो भ्रातुः पुत्र आसीत्। १९२३ तमे वैशव-वत्सरे स तदानीं सत्याग्रहमधिवसतो मद् भारतपारिजातकर्तुः उपनिषद उर्दूभाषा चाधीतवान्। श्लो० २७ ॥

सप्तमे सर्गे

विहारप्रान्ते चम्पारनप्रदेशे क्षेत्राणां ३/२० तमे भागे क्षेत्रस्वामिभ्यो नीलामुत्पादयितुं कृषका नियमबद्धा आसन्। कट्ठेति प्रसिद्ध भूमिमानम्। एकड इत्यपि भूमिमानमेव। विंशत्या कट्ठाभिरेकमेकडं भवति। यस्य सविधे यावत्यो भूमय आसन्क्षेत्ररूपास्तासु प्रत्येकड तिसृषु कट्ठासु वैवश्येन नीलाया उत्पादनं कर्तव्यमासीत्। एतदेव तिनकठियेति नाम। श्लो० १० ॥

अववादः = आज्ञा। श्लो० ३५ ॥

अवगीर्णम् = स्तुतम्। श्लो० ४३ ॥

भोगपतिः = गवर्नर इत्याख्यः प्रान्ताधीशः। तदानीं तत्स्थस्य गवर्नरस्य नाम सर् एडवर्ड गेइट् इत्यासीत्। श्लो० ५७ ॥

अष्टमे सर्गे

तेषु दिनेषु गुजरातसभेतिनाम्नी राजनीतिकी काचित्सस्थाऽऽसीत्। तस्या एवैते माननीयाः सभ्या आसन्। श्लो० ७ ॥

मि० प्रेट इतीदं खेडाकमिश्नरस्य नामासीत् । श्लो० ११ ॥

यस्मिन्वर्षे चतुर्थांशादपि न्यूनः क्षेत्रपाकः स्यात्तस्मिन् भूमिकरो न देय इति नियम आसीत् । श्लो० १६ ॥

ग्रामिका मुखीपदवाच्याः । ग्रामस्य सर्व एव प्रबन्धस्तेषु नियतस्तिष्ठति । प्रतिग्राममेको मुखी भवति ।

तलाटीति हिन्दीभाषाया पटवारीत्युच्यते । क्षेत्रकरः कृषकेभ्योऽनेनैव संगृह्यते । श्लो० २० ॥

चम्पारनसत्याग्रहयुद्धसमये ग्रामसेवाश्रमियं श्रीमती आनन्दीबाई नियोजिताऽऽसीत् । श्लो० ३१ ॥

नवमे सर्गे

अमृतसरे (पञ्जाबे) जलियानवालेति प्रसिद्धं मध्येनगरमिदमुद्यानमस्ति । अधुना राष्ट्रियमहासभाधिकारे वर्तते । प्रत्येकं यात्री तत्र गतोऽवश्यमिदं पश्यति । श्लो० ४४ ॥

प्राड्विवाक् = वकील इति बैरिस्टर इति वा । प्राड्विवाको न्यायाधीशः । श्लो० ५६ ॥

दशमे सर्गे

यङ्ग इण्डियेत्याख्यं साप्ताहिकं पत्रमासीत् । तस्य सम्पादकः महात्मा श्रीगान्धिरेव । तत्र राजद्रोहः (२-१०-१९२१ ई०) वाइसरायस्य व्याकुलता (१५-१२-१९२१ ई०) हुङ्कारः (२३-२-१९२२) इति लेखत्रयलेखनेन महात्मनि अभियोगः प्रवर्तित आसीत् श्लो० १५ ॥

तेष्वेव दिनेषु सत्याग्रहाश्रमे राष्ट्रियमहासभायाः कार्यकारिण्याः समितेरधिवेशनमासीत् । तत्र समागताः सर्व एव प्रसिद्धा नेतारो न्यायालये समुपस्थिता आसन् । श्लो० १७२ ॥

एकादशे सर्गे

सर्वसहापः = राजा । श्लो० २२ ॥

श्रीरेजिनेल्ड आसीदङ्ग्रेजजातीयो युवा । दीनबन्धुना एन्ड्र-

जमहोदयेन श्रीमहात्मसविधेऽयं प्रेषित आसीत्। अयमहिंसामार्गश्रद्धालुरासीत्। श्लो० ६७ ॥

त्रयोदशे सर्गे

इण् धातोर्लिटि अकचि च "एतकि" इति रूपम्। श्लो० ३१ ॥

एलिसेतिनामा कश्चन अंग्रेज आसीत्। तस्य स्मरणार्थमयं सेतुः सम्पन्नः। तत एव एलिससेतुः (एलिस ब्रिज) इत्युच्यते। श्लो० ३८।

चतुर्दशे सर्गे

कस्यापि महापुरुषस्य स्वागतावसरे गुर्जरदेशभुवो महिलाः सजलान्कलशानादाय पुरो गच्छन्तीति सम्प्रदायः श्लो० ५ ॥

पञ्चदशे सर्गे

राष्ट्रियमहासभायाः कार्यवाहिनी समितिः कुत्राऽऽवाहनीयेति प्रष्टुं नेहरूपण्डितजवाहिरलालस्य तडित्पत्रमायातमासीत्। तदेवादाय श्रीमहादेवदेसाई श्रीमहात्मनः सविधे समायातः। समितिसम्मेलनस्थलनिर्देशेन पण्डितजवाहिरलालस्य मनोरथः पूरितः। श्लो० ११ ॥

काकासाहेबेति प्रसिद्धिं गतस्य श्रीदत्तात्रेयस्य शङ्करो बालश्चेति द्वौ पुत्रौ स्तः। बालस्तु आश्रमादेव सैनिकतां प्राप्तः। शङ्करः फर्ग्युसनकालेजे पुण्यपत्तने पठन्नासीत्। स्वकीययोग्यतया छात्रवृत्तिद्वयं तेन समुपार्ज्य बम्बईविश्वविद्यालयस्य तृतीया वृत्तिमधिगन्तुं सोद्यम आसीत्। कालेजपरीक्षां परित्यज्य महात्मनः सैनिको भवितुमहम्मदाबादमागत्य पितुश्चरणयोर्न्यपतत्। पितुरानन्दो हृदये न माति स्म। काकासाहेबस्तमादाय महात्मसविधे समागात्। शङ्करं स्वसेनायां निवेशयन् मुखसमीपस्थं पक्वं फलं त्वत्तो यदि युष्मादृशः सन्ति तर्हि स्वराज्यमवश्यमस्माभिः प्राप्यमिति महात्मोवाच। "एष स शङ्करेण मनोऽरक्षि," इत्युक्त्वा तत्स्वागतमाततानेत्यस्यायमाशयः—जन्मदातुः पितुर्धर्मपितुश्च प्रतिष्ठाऽनेन कर्मणा शङ्करेण रक्षितेति। श्लो० १२ ॥

सैनिकाः प्रत्यहं गव्यूतित्रयं गव्यूतिचतुष्टयं वा गच्छन्ति स्म। स्नानादिभोजनावधिकासु क्रियास्वपि कालव्यय आसीत्। ततः परं सर्व एव सैनिकाः श्रीमहात्मना अन्येष्वपि कार्येषु नियोज्यन्ते स्म। केचन पाकशालायां केचन ग्राम्यजनतायाः सुरक्षादिविज्ञाने ग्राम्यजीवनानुभवे च केचन रोगिसेवायां केचन उपहाररूपेणागतानां मुद्राणां व्यवहारशुद्धौ च नियोज्यन्ते स्म। सूत्रचक्राणां संख्या नासीत्पर्याप्ता। तत्स्या द्वादशाधिकशतद्वयगजपरिमितसूत्रोत्पादने होराभयं व्ययितं भवति स्म। केचन कारणैरेतैर्नियतपरिमाणंसूत्रं निर्मातुं न शक्नुवन्ति स्म। एतेनैव दुःखेन महात्मन इदं प्रवचनम्। श्लो० १६ ॥

अहमदाबादीयविद्यापीठस्य विद्यार्थिनामेकः संघो गाधिसेनायाः पुरश्चलति स्म। यत्र गाधिसेना निगृहीता स्याचत एव स संघो दांडीयात्रा प्रारभेतेति योजनाऽऽसीत्। श्लो० ३७ ॥

एकोनविंशे सर्गे

श्रीरामपादरजसा यदि मदीयेयं नौरहल्यावत्स्त्रीदेहधारिणी भवेन्मम नावा जीविका कुर्वतो महत्कष्टं भवेदिति गुहचिन्तेति हिन्दीकविसम्राजः श्रीतुलसीदासस्य कल्पना। अथ महात्मा गाधिस्तु दीननाथतया न कस्यापि जीविकां विनाशयिष्यतीति निर्भयत्वेन नौस्वामिनस्तस्य पादप्रक्षालनेन धूलिनिराकरणोद्योगं न समपीपदत्। श्लो० ६९ ॥

विंशे सर्गे

यदा कुत्रचित्सभाभूमौ जनानां सम्मर्देनाशान्तिरनुभूयते स्म श्रीमहात्मना तदा मौनमास्थाय तकली—तर्कुं गृहीत्वा केवलं प्रवचनमन्त्रमाराध्य सूत्रसर्जनं क्रियते स्मेत्येव तकलीभाषणमित्युच्यते। श्लो० ११२ ॥

(१) श्रीप्यारेलालः-श्रीमहात्मगाधेः सचिवः (प्राइवेटसेक्रेटरी) पञ्जाबविश्वविद्यालयस्य बी० ए० पदवीधारी। १९२० तमे वैक्रमवत्सरे एम० ए० श्रेणीतो बहिर्निर्गतोऽसहयोगेन। वयस्त्रिंशद्वर्षमितम्। (२) श्रीछगनलालजोशी बी० ए० (मुम्बई)। गाधिमगनलाले दिवं गतेऽस्य-

मेव साबरमती—आश्रमस्य व्यवस्थापक आसीत्। प्रो० पेट्रिकगेडिसस्य च्छात्रः। १९२० तमे वैशवयत्सरेऽसहयोगाश्रयी। वयः ३५ वर्षमितम्। (३) श्रीखरे—श्रीविष्णुदिगम्बरस्थापितगान्धर्वमहाविद्यालये द्वादशवर्षाणि सङ्गीतशास्त्रमधीत्य सत्याग्रहाश्रमस्य सगीतशिक्षकः। वयः ४२ वर्षमितम्। (४) गणपतिरावगोडशे—अहमदाबादविद्यापीठस्य स्नातकः। शिक्षकः। वयः २५ वर्षमितम्। (५) पृथिवीराज आसरः—सत्याग्रहाश्रमविद्यालयस्य छात्रः। वयः १६ वर्षमितम्। (६) महावीरः—नयपालदेशीय आश्रमच्छात्रः। वयः १९ वर्षमितम्। (७) बालः—काकासाहेबदत्तात्रेयस्य कनिष्ठः पुत्रः। आश्रमच्छात्रः। वयः १८ वर्षमितम्। (८) खड्गबहादुरः—पर्वतीयः। श्रीमहात्मन आज्ञाविशेषेण पश्चान्मार्गे सेनाया निविष्टः। (९) रसिकदेसाई—आश्रमच्छात्रः। वयः १९ वर्षमितम्। (१०) विट्ठलः—आश्रमच्छात्रः। वयः २० वर्षमितम्। (११) हर्षः—हरिजनः (अन्त्यजः) वयः १८ वर्षमितम्। (१२) तनसुखभट्टः—गोसेवासघस्य कार्यकर्ता। वयः २० वर्षमितम्। (१३) कान्तिगांधिः—महात्मनः पौत्रः। वयः २० वर्षमितम्। (१४) शङ्करकालेलकरः—श्रीदत्तात्रेयकालेलकरस्य ज्येष्ठः पुत्रः। (१५) आनन्दहिङ्गाराणी बी० ए० (बम्बई)। अस्य पितृपादा एग्जिक्यूटिव इञ्जिनियर आसन्। वयः २४ वर्षमितम्। (१६) मोदीरमणीकलालः, बी० ए० (बम्बई)। आश्रमविद्यालयस्य शिक्षकः। वयः ३८ वर्षमितम्। (१७) छोटूभाई पटेलः—खादीकार्य कर्ता। वयः २२ वर्षमितम्। (१८) अब्बासजी—मुसल्मानः। साधुयोगशालायाः शिक्षकः। वयः २० वर्षमितम् (१९) नारायणः—उत्कलदेशीयः खादीकार्यकर्ता। वयः २५ वर्षमितम्। (२१) पूंजाभाईशाहः—बहूनि वर्षाणि आश्रमे न्यवात्सीत्। वयः २५ वर्षमितम्। (२२) माधवलालः—बी० ए० (बम्बई)। शिक्षकः। (२३) डुङ्गरशीभाई—कच्छदेशे खादीकार्यकर्ता। वयः २७ वर्षमितम्। (२४) सोमाभाई-आश्रमे कृषिरक्षकः। नागपुरे ध्वजसत्याग्रहेऽपि सम्मिलितः। वयः २५ वर्षमितम्। (२५) द्वारकानाथः—बी एस० सी० (केलिफोर्निया)। दुग्धालयकार्यनिपुणः। अमेरिका-

देशे बहूनि वर्षाणि शिक्षणमनुभवं च गृहीतवान्। बहुलधनागमदातृपदं परित्यज्य आश्रमे दुग्धालयस्याध्यक्षत्वं स्वीकृतवान्। वयः ३० वर्षमितम्। (२६) रामजीभाई-हरिजनः। द्वादशभिर्वर्षैराश्रमे एव तिष्ठति स्म। वयः ४५ वर्षमितम्। (२७) दाऊदभाई—मुसल्मानः। पूर्वं करीमभाईमिल्सकार्यालये कृतकैङ्कर्यः। वयः २९ वर्षमितम्। (२८) भानुशङ्करः खादीविद्यार्थी। वयः २२ वर्षमितम्। (२९) गजाननः—खादीशालाया रङ्गशिक्षकः। (३०) हँसमुखरामः-कृषिकार्यकर्ता। वयः २२ वर्षमितम्। (३१) कृष्णनायरः—जामियाविद्यापीठस्य स्नातकः। खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (३२) जेठालालः—खादीकार्यकर्ता। वयः २५ वर्षमितम्। (३३) गोविन्द-हरकरे—खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (३४) शङ्करन्—खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (३५) मुन्शीलालः-खादीविद्यार्थी। वयः ३७ वर्षमितम्। (३६) पाण्डुरङ्गः-खादीविद्यार्थी। वयः २२ वर्षमितम्। (३७) राघवन्—खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (३८) सुलतानसिंहः-खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (३९) तपननायरः—खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (४०) प्रेमराजजी- खादीकार्यकर्ता। वयः २२ वर्षमितम् (४१) शिवाभाई—गुजरातविद्यापीठस्य स्नातकः। कार्यालये नियुक्त आसीत्। वयः २७ वर्ष मितम्। (४२) जशभाई—खादीविद्यार्थी वयः २० वर्षमितम्। (४३) रावजीभाई पटेलः—१९२० तमे वैक्रमवत्सरेऽसहयोगमादाय ग्रान्ट मेडिकल कॉलेजत आगतः। गुर्जरेषु प्राचीनः खादीकार्यकर्ता। जलप्रलयावसरे दुष्कालसङ्कट-निवारणे च श्रीवल्लभभाईपटेलस्य स्वयसेवकः। वयः ३० वर्षमितम्। (४४) टाइटसजी—ईसाई। इण्डियन डेरीतः लब्धप्रमाणपत्रः। (४५) रत्नजी—धोधरा—आश्रमीयोऽन्त्यजः। वयः १८ वर्षमितम्। (४६) दुर्गेशचन्द्रदासः—वङ्गदेशे राजकीयकैङ्कर्यं परित्यज्य खादीविद्यार्थी। वय ४४ वर्षमितम्। (४७) केशवचित्रे—खादीविद्यार्थी।

वयः २५ वर्षमितम् । (४८) अम्बालालपटेलः—१९२० तमे वैशब-वत्सरे ग्रान्ट मेडिकल कालेजमसहयोगेन परित्यज्यागतः। प्रथमत एव खादीकार्यकर्ता । दुष्काले जलप्रलये च श्रीवल्लभभाईपटेलस्य स्वयं-सेवकः। वयः ३० वर्षमितम्। (४९) ज्योतीरामः—खादीवि-द्यार्थी। वयः ३० वर्षमितम्। (५०) जयन्तीपारिखः—(५१) विष्णुशर्मा—शिक्षकः। वयः ३० वर्षमितम्। (५२) सुरेन्द्रजी—संस्कृतविशारदः। आश्रमे धर्मालयाध्यक्षः। (५३) मणिलालगांधिः—इन्डियन ओपीनियनाख्यस्य आफ्रीकातः प्रकाश्यमानस्य समाचारपत्रस्य सम्पादकः। श्रीगांधिमहात्मना द्वितीयः पुत्रः। वयः ३८ वर्षमितम्। (५४) हरिभाऊमोहिनी—बी० ए०—शिक्षकः। वयः ३२ वर्षमितम्। (५५) चिन्तामणिशास्त्री—शशिवने इत्याख्ये स्थाने राष्ट्रियशाला-कार्यकर्ता। भूतपूर्वं आश्रमवासी च। वयः ४० वर्षमितम्। (५६) नारायणजीभाई—गुजरातकालेजस्य भूतपूर्व—इङ्ग्लिशभाषाध्यापकः। हिन्दूविश्वविद्यालयेऽप्यध्यापक आसीत्। तदानीं गुजरातविद्यापीठेऽध्यापक आसीत्। यङ्गइण्डियापत्रेऽपि तस्य साहाय्यमासीत्। वयः ३५ वर्षमितम्। (५८) विष्णुपन्तः—खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (५९) श्रीदिनकररावः। (६०) सुब्रह्मण्यम्—खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्ष-मितम्। (६१) हरिलालमाहीमतुरा बी. ए. एल. बी. [बम्बई]—खादीविद्यार्थी। वयः २७ वर्षमितम्। (६२) मोतीवासदासः—खादी-विद्यार्थी। वयः २० वर्षमितम्। (६३) सूर्यभानुः—(६४) मदनमोहनचतुर्वेदी—(६५) हरिदासमजूमदारः, एम्. ए. पी. एच्. डी [विसकोनसीन]—सद्य एवाम्रीकात आयात आसीत्। वयः २५ वर्षमितम्। (६६) हरिप्रसाद—फीजीद्वीपजः। राष्ट्रियकार्येषु दक्षो भवितुं भारतमागत आसीत्। वयः २० वर्षमितम्। (६७) महादेव-मार्तण्डः—खादीविद्यार्थी। वयः १८ वर्षमितम्। (६८) चिमन-लालः—गुजरातमलयसङ्कटनिवारणकार्यकर्ता खादीकार्यकर्ता च। वयः २४ वर्षमितम्। (६९) सुमङ्गलप्रकाशः—काशीविद्यापीठे हिन्दी-

भाषाध्यापकः। वयः २५ वर्षमितम्। (७०) पुरातनबुचः—गुजरातविद्यापीठस्य स्नातकः। वयः २५ वर्षमितम्। (७१) हरिदासगांधी—भूतपूर्वः कार्पासव्यापारी। वयः २५ वर्षमितम्। (७२) पन्नालालजौहरी—पन्नाराज्यस्य भूतपूर्वदीवानसाहबस्य पुत्रः। तदानीं गोसेवासंघकार्यकर्ता आसीत्। वयः २५ वर्षमितम्। (७३) गिरिवरधारी चौधुरी—खादीविद्यार्थी। वयः २० वर्षमितम्। (७४) भैरवदत्तः—खादीविद्यार्थी। वयः २५ वर्षमितम्। (७५) माधवलालः—बी. ए. (बम्बई)—शिक्षकः। (७६) रामधीररायः—ब्रह्मदेशे पूर्वमासीत्। तत्रस्थे पत्रालये पत्रप्रापककैङ्कर्यं विहायात्र खादीविभागे कार्यं करोति स्म। वयः ३० वर्षमितम्। (७७) माधवजीभाई—लन्दने प्रतिष्ठितो महान् व्यापारी आसीत्। कालिकातानगरेऽपि व्यापार आसीत्। सर्वं विहाय कतिचिद्वर्ष एव कालेभ्यः पूर्वमाश्रम आयात आसीत्। वयः ४० वर्षमितम्। (७८) विनायकरावः—महाराष्ट्रेषु खादीकार्यकर्ता। वयः ३३ वर्षमितम्। (७९) शङ्करभाई—खादीविद्यार्थी। वयः २० वर्षमितम्। (८०) लालजी—हरिजनः। वयः २५ वर्षमितम्। (८१) जयन्तीप्रसादः—खादीविद्यार्थी। वयः ३० वर्षमितम्। श्लो० १४७–१६४॥

द्वाविंशे सर्गे

आरियानामधेय एकः सार्जन्ट आसीत् स च लगुडप्रहारेऽतीव प्रख्यात आसीत्। श्लो० ३७॥

पञ्चविंशे सर्गे

दक्षिणाफ्रिकायां यदा महात्मना युद्धारम्भः कृतस्तदा तेनैका सूचना प्रकाशिता। सा चेदृशी,–अस्मिन्मया प्रारब्धे युद्धे मत्सैनिकस्ताडितोऽपि शत्रुं न ताडयेत्, घातितोऽपि न घातयेत्, दुःखानि विषह्यापि नान्यान् पीडयेत्, शत्रुष्वपि प्रेमपूर्णो व्यवहार कुर्यादिति म आग्रहः।

वयः २५ वर्षमितम् । (४८) अम्बालालपटेलः-
वत्सरे ग्रान्ट मेडिकल कालेजमसहयोगेन परित्यज्याग
खादीकार्यकर्ता । दुष्काले जलप्रलये च श्रीवष्ट
सेवकः । वयः ३० वर्षमितम् । (४९) ज्ये
यार्थी । वयः ३० वर्षमितम् । (५०) जयन
विष्णुशर्मा—शिक्षकः । वयः ३० वर्षमितम् ।
संस्कृतविशारदः । आश्रमे चर्मालयाध्यक्षः । (५३
इण्डियन ओपीनियनाख्यस्य आफ्रीकातः प्रकाश्यमा
सम्पादकः । श्रीगांधिमहात्मना द्वितीयः पुत्रः ।
(५४) हरिभाऊमोहिनी—बी० ए०-शिक्षकः ।
(५५) चिन्तामणिशास्त्री—शशिवने इत्याद
कार्यकर्ता । भूतपूर्व आश्रमवासी च । वयः ४
नारायणजीभाई—गुजरातकालेजस्य भूतपूर्व—
हिन्दूविश्वविद्यालयेऽप्यध्यापक आसीत् । तदानीं
आसीत् । यङ्गइण्डियापत्रेऽपि तस्य साहाय्यमासी
(५८) विष्णुपन्तः—खादीविद्यार्थी । वयः
श्रीदिनकररावः । (६०) सुब्रह्मण्यम्—खाद
मितम् । (६१) हरिलालमाहीमतुरा बी.
खादीविद्यार्थी । वयः २७ वर्षमितम् । (६२)
विद्यार्थी । वयः २० वर्षमितम् । (६३
मदनमोहनचतुर्वेदी—(६५) हरिदासमः
एच. डी [विसकोनसीन]—सद्य एवाफ्रीकात
२५ वर्षमितम् । (६६) हरिप्रसादः—फीज
भवितुं भारतमागत आसीत् । वयः २० वर्षमि
मार्तण्डः—खादीविद्यार्थी । वयः १८ वर्ष
लालः—गुजरातप्रलयसङ्कटनिवारणकार्यकर्ता
२४ वर्षमितम् । (६९) सुमङ्गलप्रकाश

भारतपारिजातमें आये हुअे अन्य नेताओं और सैनिकोंके नाम

य

र

अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ	पृष्ठे
शक्ति प्र	शक्तिप्र	७०
पद्व	पद्व	७१
तेप द्रा	तेपद्रा	
धैर्या दी	धैर्य दो	७३
अजिह्य	अजिह्म	
भुविर्तास्थि	भुवि नस्थि	७५
सुग्वदेने	सुखा देने	७६
शिवे	शिव	
श्रम कम	श्रमकर्म	,
तत्स विधे	तत्सविधे	८०
ह्युप	ह्युप	८७
दि सु	दिसु	१०२
दुर्ग्विर्वि	दु र्खैवि	१०३
नये न	विनयेन	१०६
चलने	चल्न	११०
स्या द्य	स्याद्य	
था स्यमू	थैत्यमू	१२२
रोगी	गोरा	११९
त्तु	त्तु	१२७
माघ	फाल्गुन	१२८
विधि	विवि	१३२
इङ्गलण्ड	इङ्गलण्ड	१३८
र्दितम	तिंदम्	

अशुद्ध पाठ	शुद्धः पाठ	पृष्ठे	पङ्क्तौ
...त्या पर .	...त्यापर .	१३९	२२
...सीनां	...सानां	१४०	..
...तुमनामहा...	...तुमना महा...	१५४	२५
कावि	त्र वि	१५७	२४
...शनंत ..	...शनं त .	१५९	२३
जनाह्...	जनान्ह्...	१६३	६
चिन्ला	चिता	.	२०
शक्तः	शक्ताः	१६५	१७
.. श्रध .	.. श्र ध...	१७०	५
.. याभार...	...या भार...	१७४	१
...द्भवि	...द्रुवि	१७६	१६
. देशसायम्	देश सायम्	१७८	,,
तद्भवे .	तद्भवे	२०१	६
कलङ्कस्यमियेव	कलङ्कस्य मियेव	२१६	२
मिथ्या	मिथ्या		
शान्त्यास	शान्त्या स	,,	,
मृत्युर्नमदी ..	मृत्युर्न मदी...		
भा.यद्यवि ..	भान्यद्य वि...	२१८	१६
विधानिचिह्ना	...विधानि चिह्ना	..	,,
. फल्पि ..	...कल्पि	२२०	..
.. शुक्ल	शुल्क...	२४३	२४
.. नतायतो	जनता यतो	२४४	
वच सुधा ..	वचःसुधा .	२४९	३

अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ :	पृष्ठे
स्सृताय ..	.. स्सृता य	२५५
विमलोहितस्मात्त,.	विमलो हि तस्मात्त..	२५८
समाप्य	समाप्य	२६२
वाध्य	बोध्य ..	२६४
. श्रमा	...श्र मा ..	२६५
स्तारे जया	स्तारें जया	२७३
चाद्भत ..	चाद्भुत ..	२७६
नित्य	नित्य	२८१
...दव	.. देव	२८५
...डम्बरोमहान्	. डम्बरो महान्	२९०
नेऽद्भते	नेऽद्भुते	२९७
मद्यमा	मद्यपाः	२९८
त्यागिनो	त्यागिनी	३०२
अम्रता	अम्रतो	,,
श्रागण	श्रीगण	३०३
...माधायके।	. माधाय के।	३१४
लवण नियम...	लवणनियम...	३१८
दित	विदित ...	३१९
.. करो	करी...	३३४
निंशा .	. निंशा	३३७
हुंगरी स्थले .	हु गरीस्थले...	३३९
तीनोंमे	तोनों स्थानोंमें	,,
...नरा न्यर्ता ..	नरान्यता ..	३४०

अशुद्धः पाठः	शुद्धः पाठ	पृष्ठे	पङ्क्तौ
गतोनर....	गतो नर...	३४०	६
भवेच्चवलि....	भवेच्च वलि....	३४२	१५
...मन: स्थिति....	...मन:स्थिति...	३४४	९
श्रनिखिलाजनानि	श्र निखिलाजना ति .	३४६	२३
असीत्	आसीत्	३५०	१३
स	सा	३५४	९
स्वीकृत्यमत्र	स्वीकृत्य तत्र	३५७	२६
हिन्दि ..	राष्ट्र...	३६३	६
भारतार्थे....	भारतार्धे...	,,	१७
योपिद्गणे...	योपितगणे...	,,	१९
भूपश्च	भूयश्च	,,	२४
त्पथ...	पत्थ....	३७३	५
प्रपयत्पन्न .	प्रपयत्पथ....	३७६	२
विपरीत भवद्...	विपरीत भवद्....	३७७	१२
....मास .	....आस...	३७८	१३
आफ्	आप्	३८१	११
दु:खिनीम्	सुदु:खिनोम्	३८४	११
देहीप रि...	देहीं परि...	३९१	१८
...पुर मार्ग....	....पुरमार्ग ...	३९८	१३
तस्वागत	तस्त्वागत	४१४	२४
साद्युद्योग	साद्युद्योग	४१६	२०
कतिचिद्रम्य:	कतिभ्यश्चित	४१९	१२

पृष्ठ ५ में १९ वें श्लोककी व्याख्या अपूर्ण रह गयी है उसमें १६ वीं पंक्तिमें "सुवर्णमय" से आगे इतना जोड कर पढें-' शिखररूप ......ओंसे सूर्य के रोकने के लिये खड़े हुए हैं' ॥१९॥

सर्ग	छन्दोनाम	श्लोकसंख्या
२१	मालिनी	६८
	मेघविस्फूर्जितम्	१
	शार्दूलविक्रीडितम्	१
२२	जलोद्धतगतिः	८२
	उपजातिः	१
२३	वसन्ततिलका	७८
	शिखरिणी	१
२४	अनुष्टुप्	१११
	रथोद्धता	१
	स्रग्धरा	१
२५	मञ्जुभाषिणी	३४
	अनुष्टुप्	१९
	मत्तमयूरम्	१
	अनुष्टुप्	३
	उपजातिः	११
	शिखरिणी	१
	अनुष्टुप्	१३
	शार्दूलविक्रीडितम्	१